राष्ट्रबंधु
एस. निजलिंगप्पा

अंग्रेजी मूल
डॉ. के. राघवेन्द्र राव

अनुवादक
डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी'

राष्ट्रबंधु एस. निजलिंगप्पा

अंग्रेजी मूल

डॉ. के. राघवेन्द्र राव

अनुवादक

डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी'

श्री एस. निजलिंगप्पा राष्ट्रीय प्रतिष्ठान

बेंगलूर - 560 001

Rastrabandhu S. Nijalingappa - A Hindi translation of Dr. T.G. Prabhashankar 'Premi' of the original in English entitled "Rastrabandhu S. Nijalingappa - Man and Statesman" by Dr. K. Raghavendra Rao. Published by Shri S. Nijalingappa National Foundation # 314 (Terrace Rooms) Karnataka State Cricket Association, M. Chinnaswamy Stadium, Mahatma Gandhi Road, Bangalore-560 001.

© Shri S. Nijalingappa National Foundation

First Impression : 2012

Size : Demmy 1/8

Price : ₹ 400

Cover design : Manjunath S.

Type setting : Yogasadana Press, Bangalore-4

Pages : xx + 396

Svan Printers
080-26742233

प्रथम संस्करण : 2012

मूल्य : ₹ 400

अक्षर संयोजन : योगसदन प्रेस, बेंगलूर-४

प्रकाशक :

श्री एस. निजलिंगप्पा राष्ट्रीय प्रतिष्ठान
बेंगलूर-560 001

स्वान प्रिंटर्स
080-26742233

सत्यमेव जयते

डॉ. न्यायमूर्ति वी.एस. मळिमठ कमरा नं. 302, तीसरी मंज़िल
अध्यक्ष विधान-सौध
कर्नाटक विधि आयोग बेंगलूर-560 001

भूमिका

श्री एस. निजलिंगप्पा जी की जीवनी अंग्रेजी में 'राष्ट्रबंधु एस. निजलिंगप्पा-मैन एण्ड स्टैट्समैन' शीर्षक से डॉ. के. राघवेन्द्रराव जी से 1999 में रची गयी और प्रकाशित भी हो गयी। पाठकों से इसके लिए माँग बढ़ने से इसका दूसरा संस्करण भी 2001 में प्रकाशित हुआ। श्री निजलिंगप्पा जी की जीवनी पढ़ने से कन्नड़ के पाठक चूक न जाय और इस उद्देश्य से श्री एस. निजलिंगप्पा नेशनल फौंडेशन ने निर्णय लिया कि इसका कन्नड़ अनुवाद प्रकाशित हो। इसी संदर्भ में यह भी निर्णय लिया गया कि इसका अनुवाद राष्ट्रभाषा हिन्दी में भी निकले ताकि राष्ट्रभर के हिन्दी पाठक तक यह पहुँचे। परिणामतः डॉ. टी.जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी' जी को इसके अनुवाद की जिम्मेदारी दी गयी। तदनुसार डॉ. प्रभाशंकर 'प्रेमी' ने कम समय में सुंदर अनुवाद प्रस्तुत किया है। उन्हें श्री. एस. निजलिंगप्पा नेशनल फौंडेशन की ओर से हृत्पूर्वक कृतज्ञता अर्पित करते हैं। उसी तरह अत्यंत श्रद्धा से इस ग्रंथ की छपाई करनेवाले स्वान प्रिंटर्स के प्रति भी हृत्पूर्वक धन्यवाद। इस कार्य में सभी तरह से सहयोग दे रहे कर्नाटक सरकार के कन्नड़ और संस्कृति विभाग के प्रति भी हृदय से धन्यवाद।

आज के प्रदूषित राजनैतिक वातावरण में मूल्यों का ह्रास दुःख की स्थिति पहुँचा है। अतः अब आदर्श पुरुषों की जरूरत है। आदर्शों को प्रोत्साहित करने शुद्ध चारित्र्य के सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में स्वार्थ रहित, शुद्ध सेवा व्रतियों का आदर्श जीवन स्फूर्ति का स्रोत बनना है। इसलिए मूल्य पर आधारित

राजनीति के क्षेत्र में सेवा करनेवालों का अपूर्व निदर्शन के साथ आज की युवा पीढ़ी के लिए स्फूर्तिदायक मार्गदर्शन की आवश्यकता है। इस दिशा में श्री निजलिंगप्पाजी से तय किया रास्ता सत्य, शुद्ध, पवित्र जीवन, उनका मूल्याधारित राजनीतिक चाल आज के और आगामी पीढ़ी के लिए भी पथ प्रदीप बने, इस उद्देश्य से उनकी जीवनी को हिन्दी में प्रकाशित किया जा रहा है। मैं चाहता हूँ की आज के प्रदूषित राजनीति को शुद्ध बनाने श्री निजलिंगप्पा जी का आदर्शवान स्पटिक-सा जीवन मार्गदर्शक बने, स्फूर्तिदायक बने।

01-3-2011 **डॉ. न्यायमूर्ति वी.एस. मळिमठ**

भूमिका

राष्ट्रबंधु एस. निजलिंगप्पा 'मैन एण्ड स्टैट्समैन' शीर्षक से डॉ. के. राघवेन्द्र राव जी से रचित यह जीवनी भारत के श्रेष्ठतम सुपुत्र के जीवन और साधना का मात्र विवरण नहीं, अपितु श्री एस. निजलिंगप्पा जी ने जो राष्ट्रीय महत्व की प्रक्षुब्ध स्थितियों का सामना किया उसका इतिहास भी है। विस्तार से दैनिकी लिखते, अपने जीवन में गुजरे व्यक्तियों के बारे में अपने मंतव्य का दस्तावेज अगली पीढ़ियों के उपयोग के लिए छोड़कर गये पाश्चात्य राष्ट्र के राजनेताओं के समान न होकर, भारत के राजनेता अपनी समकालीन घटनाओं का भी दस्तावेज और उनपर अपनी प्रतिक्रिया जो लिख गये हैं वह अपूर्व है। इसप्रकार अनंतर वे जो लिखते हैं या लिखवाते हैं उन जीवनियों में उनको लिखते समय के तत्कालीन अभिप्राय व्यक्त हुए रहते हैं न कि उनके घटित समय में ही बने अभिप्राय हैं। इससे ऐसे कई प्रकरणों के मूल्य कम हो जाते हैं। व्यवस्थित रूप में दैनिकी को लिखने दृढ़ निर्धार और बड़े अनुशासन की आवश्यकता होती है। भूल जाने या आगे की घटनाओं से प्रभावित होने से पहले ही उन्हें लिखकर रखना चाहिए।

यह हमारा अहोभाग्य है कि, घटित बातों के साथ ही तत्कालीन अपनी प्रतिक्रियाओं को दिनांक के क्रम में ठीक समय में ही निजलिंगप्पा जी ने दर्ज किया है। अत: लेखक को दैनिकी से सीधा उल्लेख कर अपनी व्याख्या अधिकृत करने में मदद मिली है।

निजलिंगप्पा जी का जीवन युवा पीढी के लिए स्फूर्तिदायक है। गाँव की राजनीति से भारत के राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष पद तक उन्होंने जीवन में संघर्ष किया और उसमें सफल भी हुए। अपने समय के प्रसिद्ध शिक्षावेत्ता और राज्य शिक्षा विभाग के प्रधान डॉ. सी. आर. रेड्डी जी को लिखा था कि ''मैं सुदूर बस्ती के गरीब परिवार से आया है। मेरे लिए न कोई आश्रयदाता है न किसी की शिफारिश है......... मैं मेट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास हूँ और

बेंगलूर के किसी कालेज में प्रवेश के लिए आवेदन पत्र दिया था''। कानून की परीक्षा पासकर वकीलवृत्ति का भी आरंभ किया। उन दिनों सरकार में नौकरी पा सकते थे। परंतु उन्होंने वकील की वृत्ति को इसलिए चुना कि उसमें देशसेवा के लिए कुछ समय निकालना संभव होता है। उन दिनों, वे गरीबों से बिना पैसे लिए कानूनी मदद देनेवाले लॉयर थे। अपने काम में और जीवन में वे परिपूर्ण व्यक्ति थे। ये गुण ही आगे उनके जीवन की बड़ी संपत्ति बने।

उनकी सबसे बड़ी साधना है, कर्नाटक का एकीकरण। कन्नड़भाषी महाराष्ट्र, आंध्र, केरल और तमिलनाडु के प्रदेशों के अंतर्गत हो गये थे। लेखक ने यहाँ किस प्रकार राज शासन के मैसूर रियासत में प्रजासत्तात्मक व्यवस्था लाने का मैसूर कांग्रेस ने प्रयत्न किया और किस प्रकार पडोसी राज्यों में बँटे हुए कन्नड़भाषियों को इकट्ठा करने हेतु संघर्ष किया उसका इतिहास सविस्तार लिखा है। और निजलिंगप्पा जी ने किस प्रकार मैसूर राज्य कांग्रेस और कर्नाटक प्रांत कांग्रेस समिति दोनों में लोकप्रियता हासिल की उसका भी वर्णन लेखक ने सविस्तार किया है।

भाषा के आधार पर प्रांत-रचना के समर्थन में निजलिंगप्पा जी के दृढ़ विचार थे। इस विषय में उन्हें सरदार पटेल, तत्कालीन कांग्रेस के अध्यक्ष डॉ. पट्टाभि सीतारामय्या और तमिळनाडु के श्री कामराज नाडार का समर्थन और प्रोत्साहन मिला था। कर्नाटक एकीकरण समिति ने व्यापक रूप में, विशेषकर महाराष्ट्र सीमा प्रदेशों में, आंध्र के आदोनी में, तमिळनाडु के होसूरु और कोळ्ळेगाला आदि कई केन्द्रों में आंदोलन किया। महाराष्ट्र और मद्रास राज्यों की शासनसभाओं ने एकीकृत कर्नाटक के समर्थन में निर्णय दिया। श्री निजलिंगप्पा जी ने ही इस आंदोलन का नेतृत्व किया। अलग आंध्र की रचना के लिए पोट्टी श्री रामुलु ने जब साठ दिनों तक मृत्युपर्यंत उपवास किया और उसमें वे शहीद हुए तब पूरे तेलुगुभाषी प्रदेश में भयानक हिंसाचार हुआ। अपनी माँग पूरा करने के लिए केन्द्र सरकार पर दबाव डाला गया। तभी भाषा के आधार पर प्रांतों की रचना हुई।

श्री निजलिंगप्पा जी पर कर्नाटक एकीकरण के आंदोलन के बारे में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में की गई टिप्पणी का लेखक उल्लेख करते हैं। उसमें पहला है, निजलिंगप्पा जी ने कर्नाटक में वीरशैव समाज की बल-वृद्धि चाही, इसलिए

पूरा आंदोलन जातिनिष्ठ था। दूसरा है, एकीकरण आंदोलन का उद्देश्य वीरशैवों के राजनीतिक अधिकार का ग्रहण करना और तीसरा है श्री निजलिंगप्पा जी ही अधिकारदाही हैं। इन तुच्छ आरोपों का निराकरण लेखक ने समर्थ रूप में किया है। इसके लिए लेखक ने जो उत्तर दिए हैं उन्हें अधिकृत माना जा सकता है राज्य पुर्नगठन की विधि के बारे में। एकीकृत कर्नाटक 'विशाल-मैसूर' हो गया। और सहज ही निजलिंगप्पा जी ने उसके प्रथम मुख्यमंत्री के रूप में 1956 को अधिकार ग्रहण किया। लेखक ठीक ही बताते हैं कि निजलिंगप्पा जी के कर्नाटक को अपने सपनों के राज्य निर्माण के लिए जो योगदान दिया उसके परिशीलन के लिए मुख्यमंत्री पद की दोनों अवधियों - 1956-57 और 1962-68 को मिलाकर देखना चाहिए। पडोसी राज्यों के साथ सीमा-प्रदेश की समस्याओं को हल कर लिया। कर्नाटक की प्रशासन व्याप्ति के प्रदेशों में सरकारी नौकरों के सेवानियमों में एकरूपता लाये। और नये राज्य में मिले राज्यों के विविध भागों के कानूनों को अनुभवी प्रशासक के रूप में कुशलता से लागू कर दिया। कृषि, सिंचाई और विद्युत् के क्षेत्र के विकास के लिए उन्होंने विशेष ध्यान दिया। उनकी दूरदर्शिता के फलस्वरूप जो शरावती योजना है वह जब तक पहाड और नदियाँ रहेंगी, हमें सदा याद रहेंगी। राष्ट्र में सींचाई और पानी के दर की समस्या के बारे में रिपोर्ट देने पर राष्ट्रीय मंडल ने उन्हें अध्यक्ष बना कर सींचाई के क्षेत्र में उनकी विशेषज्ञता को मान्यता दी।

गरीबों के बारे में निजलिंगप्पा जी की सहानुभूति दिखावे की नहीं अपितु सच्ची और भावपूर्ण है। ग्रामीण उद्योग और गाँव के उद्धार के बारे में उनकी दिलचस्पी ने समाज के निर्बल वर्ग पर गहरा प्रभाव डाला है। कुल मिलाकर, उन्होंने गाँधी जी के आदर्शों का वास्तविक कार्यक्रम में रूपायित किया। अत्यंत उत्साह से उन्होंने तांत्रिक और वैद्यकीय शिक्षा संस्थाओं को प्रोत्साहित किया।

अतुलघोष स्मारक व्याख्यान में निजलिंगप्पा जी ने अपनी राष्ट्रीय आर्थिक नीति का निचोड़ ही दिया है। शायद वह गाँधीजी की तात्विकता का अत्युन्नत विवरण है।

निजलिंगप्पा जी के जीवन का तीसरा आयाम 1968 के बाद देश के संकट के संदर्भ में उनकी भूमिका का निर्वहण। निजलिंगप्पा जी की मूल आसक्ति कर्नाटक और कन्नड़ जनता की श्रीवृद्धि होने पर भी, उन्होंने असुखमय भारत

के राष्ट्रीय कांग्रेस की वस्तुस्थिति की जिम्मेदारी लेने के लिए, अपनी वैयक्तिक आसक्ति छोड़ दी।

कामराज योजना (1963) से लेकर आज तक की घटनाओं का लेखक ने जो बयान किया है वह दिलचस्प, विस्तृत और परिपूर्ण है।

कामराज योजना वास्तव में नेहरू योजना है, इसमें संदेह के लिए कोई गुंजाइश नहीं। कामराज की वास्तविक भावना थी कि सभी राष्ट्रनायक और राष्ट्र प्रतिभाएँ शासन कार्य में मग्न होने से कांग्रेस पक्ष के लिए नायकत्व रहित होकर जन-संपर्क से दूर रही हैं। उन्होंने अपनी इस सोच के बारे में मुझे विवरण देते हुए सलाह दी थी कि कुछ नायक अपने पद को छोड़कर पार्टी के काम में लग जाय। मुझे इसके बारे में संदेह था। अतः मैंने कहा था कि केवल एक (अर्थात् कामराज) पद त्याग सकते हैं अन्य लोग तो वही रह जायेंगे। वह बात सच निकली। क्योंकि सिर्फ कामराज ने अपने मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दिया। बाद में वह पद उन्हें मिला ही नहीं। जो अधिकार खो गये वे असंतुष्ट हो गये। उन्होंने 'कामराज योजना' को 'यमराज योजना' कहकर मेरे सामने असंतोष व्यक्त किया।

नेहरू जी की मौत के बाद उत्पन्न संकट स्थिति को कांग्रेस अध्यक्ष, कामराज ने निभाया। परिस्थिति को कुशलता से निभाकर 'नेहरू के बाद कौन ?' प्रश्न के लिए योग्य उत्तर दिया। लाल बहादुर शास्त्री जी के निधन के संदर्भ में 1966 में ऐसी ही हालत जब पुनरावर्तित हुई, आसानी से, क्रमबद्धता से, प्रजासत्तात्मकता से प्रधान मंत्री के रूप में इंदिरा गाँधीजी को लाने का श्रेय इन्हीं को जाता है। इंदिरा गाँधी जी कामराज का चुनाव है, यह खुला राज़ था। उस चुनने के बारे में कामराज जी ने मुझे इस प्रकार विवरण दिया कि इंदिरा गाँधी जी को प्रादेशिक (उत्तर) पूर्वाग्रह नहीं, भाषा अंध अभिमान भी नहीं। आर्थिक मामलों में उनका प्रगतिपरक विचार है और चुनाव में अपने प्रभावी व्यक्तित्व से जीत सकती हैं।

स्वतंत्रता के बाद, प्रधान मंत्री के पद और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष के पद के बीच एक अंतर्निहित विरोध है, इसे समझने में कांग्रेस पक्ष विफल हुआ। स्वतंत्रता आंदोलन के समय में, कांग्रेस के अध्यक्ष, कांग्रेस संसदीय मंडल और कार्यकारिणी समिति परमोच्च थी। परंतु असीम पोषकत्त्व, अधिकार

और संसाधनों से युक्त प्रधान मंत्री और राज्यों के मुख्य मंत्री पद सृजित होने के बाद, गुरुत्वाकर्षण उनकी ओर झुक गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के दिनों में, कांग्रेस अध्यक्ष टण्डन जी ने नेहरू को निमंत्रित करने का प्रयत्न किया। परंतु उसमें वे सफल न हुए। कामराज के निजी दोस्त श्री लाल बहादुर शास्त्री जी उनकी सलाह सुनने पर भी मंत्रीमण्डल रचना और प्रशासन के बारे में निर्णय खुद ही लेते थे। प्रधान मंत्री इंदिरा गाँधी, मंत्रीमण्डल के बारे में कांग्रेस अध्यक्ष कामराज नाडर जी से सलाह नहीं माँगती थीं। नामों की सूची राष्ट्रपति को अर्पित करने राष्ट्रपतिभवन जाते समय रास्ते में उस सूची को दिखाती थीं। भारत के राष्ट्रपति के चुनाव में इंदिरा गाँधी जी ने जो अपना अधिकार दिखाया और राष्ट्रपति चुनाव में उनका विजयी होना यह साबित करता है कि प्रधानमंत्री कांग्रेस पक्ष से भी अधिक शक्तिशाली थी। इत:पूर्व मद्रास में राजाजी आदि के साथ जैसे किया गया वैसे ही कामराज उन्हें अधिकार च्युत करेंगे, यह भय इंदिरा गाँधी में उनके नज़दीक के कुछ लोगों ने बो दिया था। रुपये के अवमूल्यन के बारे में कामराज जी का तीव्र विरोध था और उन दोनों के बीच खुले में टीका-टिप्पणी होने से दोनों का स्नेह-संबंध बिगड़ गया था। 1967 के राष्ट्रीय चुनाव के समय, प्रधानमंत्री और कांग्रेस अध्यक्ष के बीच मतभेद अत्यधिक बढ़ गया।

1967 के चुनाव में कामराज की हार के साथ उनका भविष्य धूमिल हो गया। उन्हें कांग्रेस अध्यक्ष पद छोड़ देना पड़ा। इसी संदर्भ में, कांग्रेस अध्यक्ष का पद जब तप्त था तब उसे स्वीकारने के लिए कामराज जी ने निजलिंगप्पा जी को मनवाया। उसके बाद जो घटनाएँ हुईं उन्हें लेखक ने अनेकों अध्यायों में निरूपित किया है।

चुनाव में हारने के बाद जनता सरकार का पतन होने पर भारत के राजनैतिक आकाश में इंदिरा गाँधी का पुनः प्रबल व्यक्ति के रूप में उदय होने पर, निजलिंगप्पा के निजी सहचर उनसे दूर होने लगे। निजलिंगप्पा जी ने जिन्हें राजनैतिक जीवन में आगे बढाया था वे वीरेन्द्र पाटील कांग्रेस (आइ) से मिले गये। इंदिरा गाँधी जी के नायकत्व को मानकर कांग्रेस (ओ) को उनके पक्ष में विलीन करने के लिए श्री एस.के. पाटील ने खुला आमंत्रण दिया। इंदिरा गाँधीजी के आलोचक कामराज जी तमिलनाडु में अपने राजकीय शत्रुओं से लड़ने के लिए पुनः इंदिरा गाँधीजी के साथ जुड़ गये। किसी भी प्रकार राज़ी

न होनेवाले एकमात्र व्यक्ति निजलिंगप्पा जी थे। तब निजलिंगप्पा जी के मन में जो हताशा और विषाद छाए उनका दैनिकी में अंकन हुआ है।

जॉनसन तो विरले हैं परन्तु बास्वेल तो और भी विरले – ऐसी उक्ति प्रसिद्ध है। इस ग्रंथ के लेखक डॉ. के राघवेन्द्रराव ऐसे दुर्लभ व्यक्ति हैं। निजलिंगप्पा जी के विशिष्ट व्यक्तित्त्व का उन्होंने यथावत् परंतु कहीं भी उत्प्रेक्षा न हो ऐसा चित्रण किया है। निजलिंगप्पा जी की सरलता, प्रामाणिकता, देशसेवा में समर्पण भावना और गाँधी तत्वों में दृढ़ निष्ठा आदि का वास्तविक दृष्टांतों के द्वारा निरूपण इस जीवनी में किया गया है। राजकीय क्षेत्र के विरोधी भी निजलिंगप्पा जी की प्रामाणिकता को मानते थे और उनकी तारीफ करते थे।

अपने 96 साल की उम्र में भी निजलिंगप्पा जी राजनीतिज्ञों के लिए अनुकरणीय बन शोभित हैं। अब वे 'गाँधी वेदिका' के प्रधान हैं, और उसके द्वारा गाँधीजी के तत्व शांति, प्रगति और सामरस्य के भारतीय जनता में प्रचार करने में निरत हैं।

स्वतंत्र्योत्तर भारत के प्रक्षुब्ध राजनीतिक इतिहास के साथ मिली हुई निजलिंगप्पा जी की दृष्टांतपूर्वक जीवनी लिखकर डॉ. राघवेन्द्र राव जी ने राष्ट्र का बहुत बड़ा उपकार किया है। सारे देश को इस कार्य के लिए उनका कृतज्ञ रहना चाहिए।

नई दिल्ली
28 अक्तूबर 1998

आर. वेंकटरामन
भारत के पूर्व राष्ट्रपति
5, सफदरजंग मार्ग,
नई दिल्ली- 110 001, भारत

एक बात

श्री निजलिंगप्पा जी पर संपूर्ण जीवन-वृत्तांत प्रकाशित करने की सलाह देनेवाले श्री निजलिंगप्पा राष्ट्रीय प्रतिष्ठान के ट्रस्टियों में एक दि० श्री जे. बी. महालिंग शेट्टी, विश्वेश्वरनगर, हुबली, जी को सभी ट्रस्टी कृतज्ञता ज्ञापन करेंगे। यदि वे आज जीवित रहते तो इसे देख अतीव आनंद का अनुभव करते।

अपने पर लिखी जा रही इस जीवनी को प्रकाशित करने, सम्मति देनेवाले श्री निजलिंगप्पा जी के प्रति श्री निजलिंगप्पा राष्ट्रीय प्रतिष्ठान के सभी ट्रस्टी आभारी रहेंगे।

श्री एस. निजलिंगप्पा जी के बारे में संपूर्ण और अधिकृत इस जीवनी को अत्यंत श्रम और श्रद्धा से रचना करनेवाले डॉ. के. राघवेन्द्र राव, सेवानिवृत राज्यशास्त्र प्राध्यापक, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड - के प्रति हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं।

इस जीवनी की छपाई के खर्च के लिए उदारता से धन-सहयोग श्री आर. एन. शेट्टी, निर्देशक, मे. मुरुडेश्वर सिरामिक्स, हुबली ने किया। तदर्थ उन्हें हम हृदय से कृतज्ञता अर्पित करते हैं।

इस कृति के लिए मूल्यवर्धक अमूल्य भूमिका श्री. वेंकटरामन्, भरत के पूर्व राष्ट्रपति, ने लिखी है। उन्हें हमारे नमन। दि० 11-11-1998 के अपने पत्र में उन्होंने श्री. एस. निजलिंगप्पा की भारत के श्रेष्ठ पुत्र कहकर प्रशंसा की है।

नेहरू आदि से प्रतिपादित समाजवाद का श्री. एस. निजलिंगप्पा जी ने अनुसरण किया। भारतीय तैल कंपनी के अध्यक्ष के रूप में रु. 10,000 वेतन और अन्य भत्ते पर 1958 में उनकी नियुक्ति की गयी। उन्होने वेतन और भत्ते को स्व-इच्छा से इन्कार कर, महीने एक रुपये सांकेतिक वेतन स्वीकार किया था। भारत के संदर्भ में पं. जवहरलाल नेहरू के साथ बातचीत करते हुए बड़ी

रकम के वेतन पर नियुक्त करने में कथनी और करनी के बीच अंतर के बारे में उन्होंने नेहरू जी को बताया था।

श्री ए. आर. बदरीनारायण, कर्नाटक के पूर्व शिक्षा मंत्री, श्री शामनूर शिवशंकरप्पा, सांसद, श्री वै. रामचंद्र, पूर्व मेयर और मंत्री, यादाळं गंगाधर शेट्टी, उद्योगपति, श्री आर. एन. शेट्टी, निर्देशक मे. मुरुडेश्वर सिरामिक्स, हुबली, डॉ. वी. जी. नेलवगी, शिक्षा शास्त्री, श्री चंद्रकांत बेल्लद, विधानसभा सदस्य, दि० के. अभिशंकर, सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, कर्नाटक गेजेटियर और शोध विद्वान और श्री. एल. एस. चंद्रशेखर संस्थापक ट्रष्टी और प्रतिष्ठान के शिल्पी इन सबके प्रति हम कृतज्ञता अर्पित करते हैं।

इस कृति के प्रकाशन में प्रोत्साहन देकर हृत्पूर्वक सहायता करनेवाले संयोजित ट्रस्टी श्री बी. एस. मुद्दप्पा ऐ.ए.एस. (निवृत्त), श्री ए. बी. पाटील, मंत्री, खान और भूविज्ञान, कर्नाटक सरकार, श्री एम. वी. राजशेखर, पूर्व सांसद, श्री प्रभाकर कोरे, पूर्व राज्यसभा सदस्य, श्री अल्लं वीरभद्रप्पा, विधानसभा सदस्य, श्री बसवराज एस. भीमळ्ळी, अध्यक्ष, हैदराबाद कर्नाटक शिक्षा संस्था, श्रीमती प्रतिभादेवी मुद्दप्पा, अध्यापक, एच के इ एस कालेज, बेंगलूर, डॉ. मंगळा वी. बेट्केरूर, क्यांटन (यू.एस.ए.), सतीशचंद्र हेगडे, कंट्राक्टर, श्री एच. शिवलिंगय्या चार्टर्ड अकाउंटेंट, श्री बन्सीलाल पूर्व मुख्यमंत्री हरियाणा, श्री सिकंदर भक्त, केन्द्र उद्योग मंत्री, श्री ए. आर. अंटुले, पूर्व मुख्यमंत्री, महाराष्ट्र, श्री ए. जी. गोविन्दे गौड़, शिक्षा मंत्री, प्राथमिक और हायर, कर्नाटक सरकार, श्री एस. एन. किरणशंकर बेंगलूर और श्री एम. बी. पाटील इन सबके प्रति हम मनःपूर्वक धन्यवाद देते हैं।

श्री एम. बी. पाटील, निवृत्त प्रधान संपादक, कर्नाटक गेजेटिरयर, श्री एल. एस. चंद्रशेखर, विकास अधिकारी (निवृत्त) खाद अनिल योजना और विशेष अधिकारी (बैंक, वित्त), कर्नाटक खादी बोर्ड - इनकी संपादकीय सहायता के लिए हम कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं।

श्री एस. बी. मुद्दप्पा ऐ.ए.एस. सेवानिवृत्त मुख्य सचिव, कर्नाटक सरकार, श्री के. चंद्रशेखरय्या और श्री गो. रु. चन्नबसप्पा से प्रदत्त मूल्यवान सहयोग के लिए हम धन्यवाद देते हैं।

इस ग्रंथ के छपाई संबंधी दोष का परिष्करण करनेवाले श्री सी. आर. गडगोळि, सूपरिंटेंडेंट, शिक्षा विभाग, कर्नाटक सरकार (निवृत्त) के प्रति हम विशेष आभार प्रकट करते हैं।

सुंदर छपाई के लिए मुद्रक मे. सत्यश्री प्रिंटर्स और कलाकारों के प्रति भी एवं इस ग्रंथ के प्रकाशन में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में सहयोग देनेवाले सभी के प्रति नमस्कार।

बेंगलूर

ए. आर. बदरीनारायण
अध्यक्ष
श्री. एस. निजलिंगप्पा राष्ट्रीय प्रतिष्ठान

अनुवादक की बात

श्री एस. निजलिंगप्पा राष्ट्रीय प्रतिष्ठान से डॉ. के. राघवेंद्र राव जी द्वारा 'राष्ट्रबंधु एस. निजलिंगप्पा - मैन एण्ड स्टैटस्मैन' शीर्षक से मूल अंग्रेजी में जो प्रकाशित है, उसका हिन्दी अनुवाद ''राष्ट्रबंधु एस. निजलिंगप्पा' शीर्षक से प्रकाशित हो रहा है। प्रतिष्ठान ने सोचा कि जब मूल अंग्रेजी ग्रंथ जो निजलिंगप्पा जी के गाँधीवादी व्यक्तित्व और परिशुद्ध राजनैतिक जीवन का परिचायक है और वह निजलिंगप्पाजी के जीवित काल में ही लोकप्रिय हो गया है तो इसका कन्नड़ और हिन्दी अनुवाद क्यों न लाये जिससे कर्नाटक के तथा समग्र भारत के आम पाठक इसका लाभ उठा सके।

यह मेरा सौभाग्य है कि इसके हिन्दी अनुवाद करने की जिम्मेदारी मुझे दी गयी और मैंने अनुवाद में मूल आशय को सरल व सुबोध शैली में प्रस्तुत करने का प्रामाणिकता से प्रयास किया है।

इस अनुवाद कार्य को सौंपनेवाले सम्माननीय डॉ. न्यायमूर्ति वी. एस. मळीमठ जी, अध्यक्ष श्री निजलिंगप्पा राष्ट्रीय प्रतिष्ठान, बेंगलूर तथा प्रतिष्ठान के ट्रस्टी व सचिव श्री एस. जी. मंजुनाथ के प्रति भी आभारी हूँ।

इस बृहत ग्रंथ के अनुवाद कार्य में मेरी मदद करनेवाली आदरणीय बहन डॉ. शकुन्तला आर. भूसनूरमठ तथा अनुवाद का आमूलाग्र परिशीलन करनेवाले आदरणीय मित्र डॉ. दिविक रमेश, पूर्व आचार्य, मोतीलाल नेहरू कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली तथा डी.टी.पी. करनेवाले योगसदन प्रेस तथा मुद्रक स्वान प्रिंटर्स बेंगलूर के प्रति भी आभारी हूँ।

डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी'

अनुक्रम

डॉ. एस. निजलिंगप्पाजी आरंभ में

प्रस्तावना

एक साहित्य प्रकार के रूप में जीवनी भारतीय संस्कृति का पारंपरिक अंग नहीं। उसका तीव्र व्यक्तिगत, वैयक्तिक लक्ष्य, व्यक्ति को और व्यक्तिगत भूल को जानने का हमारा अपौरुषेय नमूने से बाहर है। व्यक्ति के मन को गहराई और सूक्षमता से शोधन करने की आधुनिक पाश्चात्य पद्धति से यह आयात किया गया है। परंतु अन्य आयात पद्धति के समान अब वह भी वैश्विक पद्धति हो गयी है। हरेक जीवनी को लिखनेवाले हो गये हैं। पाश्चात्य संदर्भ में जीवनी में साधारणतः एक विभूति चरित होने की प्रवृत्ति है। जीवनी छायाचित्र की अपेक्षा व्यक्ति चित्र के निकट है। क्योंकि जीवनी-लेखक अपने कथा नायक के जीवन के कुछ लक्षणों और विवरणों को आगे करके, कुछ विवरणों को ठीक करने का या नज़रंदाज करने का प्रयत्न करता है। अतः जीवनी का मतलब, ध्यान को केन्द्रित करने के बिंदु के लिए, एक फ्रेम या परिप्रेक्ष्य को चुनकर, उसी में जीवन के सभी विवरणों को जैसे शल्य चिकित्सा में किया जाता है निर्भावुकता और अनासक्ति से निचोड़ना होता है। इसलिए एक जीवन को विभिन्न दृष्टिकोणों और परिप्रेक्ष्यों में रखकर विश्लेषित करनेवाली कई जीवनियाँ हो सकती हैं। एक अर्थ में, इसमें कल्पनात्मकता और प्रतिभाविलास आवश्यक हैं। तब तो, जीवनी उपन्यास जैसे हो जाती है। परंतु उपन्यास जैसी न होकर इसे प्रतिभाविलास व्यापक वास्तवांशों के फ्रेम में कार्यशील होना पड़ता है। मगर उपन्यासकार के लिए इस प्रकार के दबाव नहीं होते हैं। जीवनीकार को वास्तवांशों की राशि से ही चुनना पड़ता है। यदि कोई व्यक्ति आत्मकथा लिखेगा तो वह अपने जीवन के विवरणों को अपने ही शब्दों में बयान करेगा, अपने ही परिप्रेक्ष्य में रखकर देखें तो जीवनी अनावश्यक हो जाती है क्या? प्रस्तुत संदर्भ में श्री निजलिंगप्पा जी अब अपनी आत्मकथा अंग्रेजी में लिखनेवाले हैं। उनके साथ जब हाल ही में बातचीत हुई तब मैंने यही प्रश्न उनके सामने रखा। तब

उन्होंने कहा कि अपनी कथा आप बीती और अपने स्मरण में जितना आ सकती है उतना अन्य ऐतिहासिक व्यक्तियों के साथ अपने संबंध का वास्तविक निरूपण हो सकता है। इस प्रकार उनमें आत्मकथा और जीवनी में कोई विरोध दिखाई नहीं पड़ता है। उसके बदले उन्होंने पहचाना कि इन दोनों जिये जीवन के यथार्थ के चित्रण को वस्तुनिष्ठ होकर देने में अपनी ही मात्र भूमिका है। यदि आत्मकथा जिंदगी के अत्यंत व्यक्तिगत और खास क्षणों पर सही दृष्टि से रोशनी डाल सकती है, तो जीवनी ऐसे निजीपन से दूर होकर व्यक्तिकथन को इतिहास से अभिन्न होने की रीति से व्यापक चित्रण दे सकती है।

निजलिंगप्पा जी जैसे सार्वजनिक और ऐतिहासिक प्रमुख व्यक्ति की जीवनी रचते समय, व्यक्ति जीवन और इतिहास के बीच एक निश्चित रेखा खींचना असंभव ही नहीं, गलत भी होता है। ये दोनों इतनी निकटता से बंधे रहते हैं कि अपने कथानायक के वैयक्तिक जीवन और उसके विवरण के इतिहास पर प्रभावित करनेवाले परिणाम को बराबर देखते रहना पड़ता है। उदाहरण के लिए, निजलिंगप्पा जी जैसे ऐतिहासिक रूप में उन्नत स्तर के व्यक्ति पर रची कोई भी जीवनी कर्नाटक और भारत के इतिहास के लिए भी महत्वपूर्ण देन होती है। कुछ संदर्भो में, हो सकता है कि प्रस्तुत कथा-नायक के विषय में न सही, जीवनी विश्व के इतिहास के लिए एक अपूर्व देन होती है। इसके लिए स्पष्ट कारण यह है कि इतिहास निर्माता के जीवन को विशाल इतिहास के अंग के रूप में देखना पड़ता है। उदाहरण के लिए इस जीवनी में, भाषिक मंडलों के सम्मिलन का और भारत राष्ट्र निर्माण की विशाल ऐतिहासिक भूमिका का इतिहास भी मिल हुआ है। और भी विशाल भूमिका में, वह भारत की आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का, उस गंभीर अर्थ और दुरुपयुक्त शब्द किसी भी अर्थ में, इतिहास के लिए भी देन होती है। यही जीवन कथन राजत्वरहित ब्रिटिश संसदीय प्रजातंत्र और आधुनिक पाश्चात्य रीति की नागरीक समाज स्थापना और स्थूल रूप में औद्योगिकीकृत पूँजीवादी प्रथा के नियंत्रण और अनुमतियों की आर्थिक व्यवस्था (मिश्र आर्थिक व्यवस्था, सरकारी पूँजीवादी व्यवस्था अथवा उदयोन्मुख पूँजीवादी व्यवस्था की सहायता के लिए समाजवादी व्यवस्था) की स्थापना ऐतिहासिक कार्य की पुनर्रचना समझ सकते

हैं। यह कथन न इतना सरल है न सहज। तब तो संघर्ष के बाद संघर्ष होता ही नहीं। यह तो सच है। कथन की प्रमुख संकीर्णता अथवा कथन में मोड़ इस पर इस प्रकार की आधुनिकता के लिए संप्रदाय शरण संस्थाएँ और आधुनिकता के विरुद्ध मूल्यों से भरे समाज में यह एक बड़ा सवाल है। गाँधीजी या जे. पी. या अंबेडकर जी ने भी भूमिका जो इस संदर्भ में निभाई, उसके प्रति दिखाई प्रतिक्रिया है। अपनी ही रीति से, निजलिंगप्पा जी भी अपने जीवन में, समाज और सरकार का अतिक्रमण करने जैसे विशालार्थ में साधारण लोग इसके बारे में जटिल रीति से प्रतिक्रिया देनेवाला नगर; उच्च वर्ग से प्रेरित होकर अपनी आधुनिकता की परिकल्पना को सरकार और समाज पर लादनेवाली राजनीतिक की समस्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। नेहरू और उनकी पीढ़ी, जिसमें निजलिंगप्पा जी भी हैं इस ऐतिहासिक बलवे का प्रतिनिधित्व करते हैं। अब मालूम हुआ है कि प्रारंभ में उसका यश अल्पायुषि था। निजलिंगप्पा जी को अच्छी तरह मालूम है कि उदार प्रजासत्तात्मक मूल्य का ह्रास हुआ है और अपनी पीढ़ी से निर्मित व्यवस्थाबद्ध सांघिक संरचना ढ़ीली पड़ गयी है। परंतु वे जो एक प्रबुद्ध राजनेता हैं, उनका मनोभाव है कि इसकी प्रतिक्रिया हताशा से युक्त अथवा अतृप्तता से युक्त नहीं होनी चाहिए। उसके बदले वह अत्यंत वास्तविक मूल और आदर्शों के लिए पुनरुज्जीवित नैतिक बद्धता से युक्त होना चाहिए। इसीलिए, इस उम्र में भी अपनी नयी सोच और भरोसा से युक्त होकर अपनी ही आधुनिक अवतरणिका से अब भी अपूर्ण आधुनिक भारत के राष्ट्रनिर्माण कार्य में कार्यशील है। इस उत्साही बुजुर्ग को देखने से हमें अब भी इस ढलती उम्र में भी विनाशकारी अणुअस्त्रों के विरुद्ध लड़ रहे रसेल और मानव विवेचना रहित होकर दुराशा से भूमि नाश जो कर रहे हैं उसके विरुद्ध लड़ रहे शिवराम कारंत जी याद आते हैं।

संक्षेप में, प्रस्तुत लेखक का अभिप्राय या उद्देश्य केवल वैयक्तिक जीवन का चित्रण मात्र करके जीवन को समकालीन ऐतिहासिक प्रक्रिया के एक अभिन्न भाग के रूप में निरूपित करना है। निजलिंगप्पा जी इतने विनयशील हैं कि वे अपने जीवन के ऐतिहासिक महत्त्व का वैभवीकरण नहीं करेंगे। इस जीवनी लेखक के साथ हाल ही में उन्होंने जो साक्षात्कार दिया उसमें जो 'स्टैट्समैन'

(राजनीतिज्ञ) शब्द का प्रयोग किया है, उस पर ही उन्होंने संकोच व्यक्त किया। उन्हें 'स्टैट्समैन' कहने पर उनके इस संकोची विनय स्वभाव से बढ़कर और क्या, गवाही चाहिए कि उन्होंने अपने स्वार्थ-लाभ के लिए राजकर्म न करके, गाँधीजी के प्रेरक नायकत्व में हुए स्वातंत्रय संग्राम में राष्ट्र और राष्ट्रनिर्माण में अपने को अर्पित कर अपार त्याग किया है।

1. प्रारंभिक दिनों में

जीवन और साधन के बारे में बताने से पूर्व उनके खानदान के बारे में संक्षिप्त जानकारी पाना आवश्यक है। खानदान का इतिहास जीवन में आगे होनेवाली घटना को तो निर्धारित नहीं करता मगर वह यह दिखाता है कि व्यक्ति के जीवन की घटना चाहे जितनी छोटी क्यों न हो वह प्रभावित करती है।

निजलिंगप्पा जी के पूर्वज मूलतः अबलूर के हैं। मध्य युग में अबलूर का एक वैभवपूर्ण इतिहास है, यही वह स्थान है जहाँ महान जन कवि सर्वज्ञ का जन्म हुआ था। सर्वज्ञ की त्रिपदियाँ कर्नाटक की जन भाषा कन्नड़ की अमूल्य निधि है। अबलूर वीरशैवों के समाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन का केन्द्र था। परंतु यह तो इतिहास है। ऐसे भव्य नगर का कालक्रम में पतनोन्मुख होते देखा जाता है। इस पतन के कारण लोग अधिक संख्या में इधर उधर अपने भविष्य की खोज में निकल पड़े। स्वभावतः इस प्रकार निकल पड़े लोगों में अधिकतर व्यापारी थे। अबलूर में व्यापारी सभी लिंगायत समाज के 'पंचमसाली' हैं। निजलिंगप्पा के वंशज भी संपन्न 'पंचमसाली' थे। वे भी समीप के 'हलवागिलु' में आ बसे। 'हलवागिलु' आज के हरिहर शहर से अठारह मील की दूरी पर है और वह हरपनहल्ली से आठ मील और राणीबेन्नूर से नौ मील की दूरी पर है। 'हलवागिलु' का भी अपना पुराना इतिहास है। नगर के समीप ही एक किला जिस पर विजयनगर साम्राज्य के किसी 'पाळेयगार' या मांडलीक का शासन था। लगता है कि यह वीरशैव धर्म के आंदोलन का केन्द्र था, जिसका 12वीं शती में संत, समाज सुधारक एवं महान कवि-अनुभावी बसवेश्वर ने नेतृत्व किया था।

आबादी की दृष्टि से ग्वाले, शिकारी, कुलवा (गड़रिये), हरिजन और मछुआरे आदि जातियों में बँट जाने पर भी हलवगिलु में अधिकार और प्रतिष्ठा की दृष्टि से लिंगायत समुदाय प्रबल था। कोई एक लिंगायत परिवार अबलूर से यहाँ आया होगा। इसके लिए कोई प्रमाण तो नहीं मिलता ह। परंतु वह परिवार व्यापारी आज भी 'अबलूर शेट्टरु के नाम से प्रसिद्ध है। हमारे पास निजलिंगप्पा

जी के दादा (पितामह) से वंशावली का प्रामाणिक दस्तावेज मौजूद है। अडवेप्पा और उनकी पत्नी नीलम्मा आर्थिक दृष्टि से प्रबल न होने पर भी एक आदर्श लिंगायत के रूप में जीवन बिताते थे। वे कृषक होकर कठिन परिश्रम से जीविका चलाते थे। अडवेप्पा के समय तक यह परिवार अर्थिक दृष्टि से विपन्न हो गया था, यह शायद इसलिए कि वे आदर्शवादी और नैतिक मूल्य से युक्त जीवन बिताते थे। इस परिवार ने अन्य व्यापारी परिवार का अनुसरण न किया, जिनका लक्ष्य केवल अनैतिकता से धन कमाना होता है। परिणामतः इस अपवित्र स्पर्धा के कारण इसे हानि उठानी पड़ी। ऐसी स्थिति में अडिवप्पा जी का पूर्ण रूप से साथ दिया उनकी पत्नी नीलम्मा ने। नीलम्मा एक आदर्श जीवन-साथी थीं। नीलम्मा के पिता हुल्लहट्टी चेन्नमल्लप्पा उस नगर के संभ्रांत व्यक्ति थे, जो सुसंस्कृत और साहित्य प्रेमी के रूप में जाने जाते थे। वे वचन साहित्य तथा मध्यकालीन कन्नड़ काव्य लक्ष्मीश के 'जैमिनी भारत' के अध्येता थे। इतना ही नहीं, वे परंपरागत वैद्य थे जो पार्शवायु, कमर-दर्द, हड्डी संबंधी दर्द की चिकित्सा करने में सिद्धहस्त थे। वे तेजदार पत्थर के औज़ार से शल्य चिकित्सा भी करते थे। वे केवल मनुष्य ही नहीं पशुओं की भी चिकित्सा करते थे। वे धार्मिक प्रवचन भी देते थे जिससे आसपास के गाँववाले आकर्षित होते थे। इस प्रकार उनका असाधारण व्यक्तित्व था। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन जीया। अडिवेप्पा के परिवार में साथ पीढ़ियों से एक पुत्र संतान थी और शेष सब पुत्री थीं। उनकी प्रथम दो संतानों में एक पुत्र बसप्पा और दूसरी पुत्री पुट्टम्मा थी। और तीसरी संतान भी पुत्री समझते थे। परंतु प्रत्याशा के विरोध में तीसरी संतान एक पुत्र रत्न का जन्म 10 दिसंबर 1902 को हुआ। इस अप्रत्याशित उपहार को पाकर माँ-बाप खुश हुए। इस पुत्र रत्न का जन्म भारत देश और उसके अविभाज्य अंग कर्नाटक राज्य के निर्माण में नायकत्व की भूमिका अदा करने के लिए ही हुआ था। स्थानीय उज्जनी मठ के स्वामीजी ने शिशु की लिंग दीक्षा 'षडाक्षरी मंत्र' कानों में भरने के द्वारा करायी और उसे स्वामीजी ने इष्टलिंग धारण कराके शिशु के माथे पर विभूति धारण कराया। शिशु का नाम उनके दादा की इच्छानुसार निजलिंगप्पा रखा गया। शिशु का बालपन सुखमय था। बालक निजलिंगप्पा अपने परिवार के लाडले बच्चे थे। निजलिंगप्पा का बाल रूप बड़ा आकर्षक था। इस सदा हँसमुख बालक को काकी सावक्का बहुत प्यार करती थी।

बालक निजलिंगप्पा बड़ा हुआ तो हमेशा पडोस के बच्चे के साथ खेलता फिरता था। पिता को घोड़ा बताकर उनपर सवार होता था। बालक खुलकर सभी खेलों में भाग लेता था और खेल में उन बच्चों का नेता बन जाता। इस बीच बालक निजलिंगप्पा छः साल का हुआ तो वह अपने पिता को खो बैठा। पिता निजलिंगप्पा को अपनी संतान में छोटे होने के कारण बहुत चाहते थे, परंतु निजलिंगप्पा को उनके पिता के बारे में बहुत कम स्मरण है। उनको केवल अस्वस्थता में मरते पिता की ही याद है। अडवप्पा को उनके ससुर के वैद्यकीय शुश्रुषा ने या उनकी पत्नी की प्रार्थना मरने से नहीं बचा सकी। उस समय परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। उनके पास केवल एक छोटा घर और साढ़े तीन एकड़ कृषि भूमि थी। नीलम्मा को तीन सौ रुपये का कर्ज चुकाना पड़ा था जो उस समय के लिए कोई छोटी रकम न थी। नीलम्मा अपने पिता की सहानुभूति से इस स्थिति का सामना कर सकी और अपने परिवार की परवरिश करने का बीड़ा उठाया। निजलिंगप्पा जी याद करते हैं कि उनकी माँ बड़ी स्वतंत्रचेत्ता थीं। अपने रिश्तेदारों की मदद न लेते हुए नीलम्मा अकेले ही छोटी सी भूमि में खेती करती थी। इस प्रकार अपने बच्चे को बड़ा करने में बहुत संघर्ष किया। बचपन में घर आते साधु-संत ज्योतिषी बताते थे कि निजलिंगप्पा का भविष्य उज्ज्वल है। पिता की मृत्यु के पहले ही निजलिंगप्पा जी की प्रारंभिक शिक्षा का आरंभ पारम्परिक मठ में हो गया था। अक्षराभ्यास रेत पर ही शुरु किया था। वहाँ आगे कल्लेश्वर देवालय में उनकी स्कूली शिक्षा आगे बढ़ी। कुछ समय के लिए उन्हें स्कूली शिक्षा अध्यापक एत्तिनहळ्ळि रामप्पा के घर में मिली थी। उन दिनों पढ़ाई के संदर्भ में अध्यापक से किसी प्रकार की सजा भोगने की नौबत न आयी। अध्ययन में इतनी दिलचस्पी थी कि उन्हें खेलकूद आदि दैहिक व्यायाम के लिए समय ही न मिलता था। वह ऐसा बालक था जो स्वच्छता की ओर ही अधिक ध्यान देता हो। घर में उसकी शिक्षा अधिकतर धार्मिक और नैतिक होता था और रामायण, महाभारत की कथाओं का और शिवशरणों के पवित्र जीवन आदि का परिचय कराया जाता था। इसकी तुलना में स्कूलों में जो पढ़ाया जाता था वह नीरस लगता था। परंतु उसके अध्यापक निजगुण शिवयोगी, पुरंदरदास और कनकदास की भक्तिपरक और नीतिपूर्ण रचनाओं के वाचन के द्वारा उस क्षति की पूर्ति करते थे। इस प्रकार उनकी प्रारंभिक शिक्षा जातिभेद की भावना से मुक्त थी। निजलिंगप्पा के बडे भाई उतने प्रभावशाली

नहीं थे और सब साथी निजलिंगप्पा की ओर आकर्षित थे। विद्यार्थी जीवन में निजलिंगप्पा की स्मरणशक्ति तेज थी। उसमें छात्रोचित सभी गुण थे। एक बार वह जेब में 'होळिगे' (मीठा खाद्य) भरकर स्कूल ले गये थे। वहाँ अपने साथियों को बाँट दिया था। सभी खाकर खुशी से नाच उठे थे। जब अध्यापक ने जानना चाहा कि किसने यह काम किया तब निजलिंगप्पा ने प्रामाणिकता से अपनी गलती मान ली थी। कभी कभी बालक निजलिंगप्पा दोस्तों के घर जाकर उनके साथ मीठे खाद्यों को खाकर आनंदित होता था। माँ उन्हें अपने घर की स्थिति से अवगत कराती थीं, 'देखो बेटा, अपने दोस्तों का आतिथ्य स्वीकार करना गलत नहीं, परंतु बदले में हमें भी आतिथ्य देने की शक्ति रखनी चाहिए। और तुम जानते ही हो हम इतने गरीब हैं कि बदले में आतिथ्य नहीं दे सकते।' बालक निजलिंगप्पा पूछ बैठता, 'माँ, कोई प्यार से आतिथ्य देंगे तो कैसे इन्कार किया जा सकता है?' माँ नीलम्मा कहती, 'बेटा, कोई बहाना सोचो और त्योहारों के दिनों में दोस्तों के साथ खेलने मत जाओ।' बालक निजलिंगप्पा माँ से कहता कि 'माँ, ऐसी छोटी सी बात के लिए झूठ क्यों बोले। वैसे तो त्योहार है ही बच्चों को खुशी से मनाने के लिए। फिर भी मैं आश्वासन देता हूँ कि आपकी बात मानकर चलूँगा और त्योहारों में दोस्तों के घर जाने से बचूँगा।'

बालक निजलिंगप्पा हट्टा कट्टा था और आम के पेड़ों पर चढ़ने, आम तोड़ने और तैरने आदि में भी दिलचस्पी दिखाता था। अपने साथियों के साथ नजदीक की पहाड़ियाँ घूमने में आनंद लेता था। भक्तिरस प्रधान भजनों में भी भाग लेता था। गाँव के अखाड़े में व्यायाम में भी आगे रहता था। बालक निजलिंगप्पा में सदा कुतूहल रहता था और नये अनुभव पाने में उत्साह दिखाता था। यह साहसी लड़का गाँव के नाटक प्रदर्शनों में जाता था। सत्य हरिश्चन्द्र का नाटक उसे बहुत पसंद आया था। परंतु नाटक देखने तुंगभद्रा नदी पार कर जाना पड़ता था। इससे उनकी माँ बहुत आतंकित होती थीं। माँ से क्षमा माँगता और कहता कि आगे ऐसा न करूँगा।

गर्मी के दिन थे। नीलम्मा घर के आंगन में बैठी थीं। उनके मन में बच्चों के भविष्य की चिंता थी। भिक्षा माँगते एक साधु आया और साधु ने माँ से कहा, 'माँ क्यों चिंतित हो, तुम्हारा बेटा एक दिन बड़ा आदमी बनेगा। कीर्तिवान् बनेगा। उसे अच्छी शिक्षा दिलाओ।' वह साधु फिर न आया। नीलम्मा ने साधु की

बातें सुनकर भगवान पर भरोसा करके लंबी साँस ली। और मन में ठान ली 'जैसे शिव की इच्छा'। अडिवेप्पा की मृत्यु के बाद, पिता की जिम्मेदारी अब नाना चेन्नमल्लप्पा को लेनी पड़ी। नातियों को वे कपड़े आदि ला देते थे। मेलों में उन्हें ले जाते थे। निजलिंगप्पा के मन में पुस्तक और विद्या के प्रति बड़ी आसक्ति थी। प्रकृति के प्रति ममताभाव उनके नाना ने नाना जगाया था। नाना के कारण ही लड़के के मन में 'ऊरम्मा मेला' ग्राम देवता के मेले में भगवान और धर्म के नाम पर भैंसे की बलि देना देख बड़ा दुख हुआ। कई बार रक्त को देखते ही उल्टी आती थी। इससे लड़के को कभी कभी प्रज्ञा खोयी-सी लगती थी। नाना लड़के के एकमात्र आत्मीय सलाहकार थे। सदा लड़के को प्रबोध देते, हँसाते, उत्साहित करते थे। एक बार उन्होंने एक कुतिये के पीछे कुत्तों को भागते दिखाया और कहा, 'देखो बेटा, कितने ही कुत्ते कुतिया के पीछे भाग रहे हैं। इसी को कुत्ते की चाल कहते हैं। मनुष्य वैसा नहीं। वह एकपत्नीव्रत का आचरण करता है। याद रखो। एकपत्नीत्व प्रकृति नियम है, सामाजिक नीति है, संस्कृति का रहस्य है। इसका यदि हम अनुसरण न करेंगे तो समाज का स्तर गिरेगा। मनुष्य कुत्ते से भी गये बीते होते हैं।' इस प्रकार का प्रबोध दिया था। ऐसे प्रबोध बालक के दृष्टिकोण तथा व्यक्तित्व को रूपित करते हैं। परंतु अडिवेप्पा की मृत्यु के तीन वर्ष के बाद नाना की भी मृत्यु हो गयी। इससे परिवार पर बड़ा आघात पड़ा। अब नीलम्मा को बच्चों की परवरिश का संघर्ष अकेले ही जारी रखना पड़ा।

चेन्नमल्लप्पा की मृत्यु के बाद इस परिवार के हित चिंतक बने थे दावणगेरे रुद्रप्पा, वे कभी कभी घर आकर कुशलमंगल पूछते थे। वे सिद्धवनहळ्ळी के थे। परंतु व्यापार दावणगेरे में करते थे। वे भाइयों में बीच के थे। सभी मिलकर व्यापार करते थे। रुद्रप्पा जी नीलम्मा की बहन सावक्का के पति थे। अतः वे निजलिंगप्पा के काका बने। रुद्रप्पा-सावक्का निस्संतान थे। इसलिए सावक्का ने बहन नीलम्मा के बच्चों को हलवागिल से लाकर शिक्षा कराने की सलाह पति को दी। हलवागिल में प्राथमिक शिक्षा के बाद आगे पढ़ने के लिए सुविधा न थी। इसी बात को मन में रखकर वे दोनों एक दिन शाम को हलवागिल आकर नीलम्मा से यह प्रस्ताव रखा। अब उनके दिमाग में तीन विषय भरे थे। बच्चों से दूर रहना, दूसरों पर निर्भर रहना, और बच्चों की शिक्षा। बच्चों में निजलिंगप्पा जो बहुत तेज था उसे साथ भेजने के लिए सावक्का ने विनती की। बोचरी नीलम्मा

बच्चों से अलग होने की चिंता में रात भर आँसू बहाती रही। परंतु सुबह तक उन्होंने निश्चय कर लिया कि भविष्य की दृष्टि से भेजना ही सही है। बच्चों और उनके बालपन को भूलना विधवा नीलम्मा के वश के बाहर था। पाँच बरस स्तनपान कराके बड़े किये बच्चों को दूर रखना मन को चुभता था। जो बच्चा साथ ही सोता था उससे बिछुड़ना कितना दर्दनाक था। दर्द को इसलिए भूलना पड़ा कि बच्चों को अच्छी शिक्षा मिल रही थी और उनका भविष्य बन रहा था। माँ ने निजलिंगप्पा को समझाया कि लिंगपूजा करना मत छोड़ो, गलत रास्ते पर मत चलो। इस प्रकार नीलम्मा अपने दोनों बच्चों को सावक्का-रुद्रप्पा के हाथ में सौंप दिया।

दावणगेरे कर्नाटक का केन्द्र स्थान था, वह उत्तर कर्नाटक और दक्षिण कर्नाटक की संस्कृति और जीवन शैली का संगमस्थान था। वह बहुत बड़ा व्यापार केन्द्र था। वहाँ तेल और कपास के मिल थे। वहाँ की समृद्धि के कारण अमीर और गरीब के बीच का अंतर दिखाता था। इससे निजलिंगप्पा के जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन यह आया कि प्रशांत गाँव के वातावरण से भीड़भाड़ के नगर जीवन में आ गए। सबसे बढ़कर, माँ की देखरेख से दूर होना पड़ा। बालक निजलिंगप्पा के मन को मालूम था कि दावणगेरे आने का उद्देश्य अच्छी शिक्षा पाना है। इसलिए नये वातावरण के लिए अभ्यस्त होने में अधिक समय न लगा। दावणगेरे पहुँचने के बाद उनका पहला काम था दावणगेरे के आंग्लो-वर्नाक्युलर स्कूल में दूसरी कक्षा में प्रवेश पाना। वह एक आदर्श छात्र था। एक क्लास भी नहीं चूकता था न एक भी क्लास में देर से नहीं जाता। पहले ही से उनमें स्वच्छता के प्रति आसक्ति थी। साथ ही वह अपने दैहिक स्वास्थ्य और दृढ़ता पर विशेष ध्यान देते थे। दूसरों के साथ उनका स्नेहपूर्ण व्यवहार था। कभी भी दोस्त के साथ झगड़ते नहीं थे माँ और दादा की देखरेख में जो अनुशासव मिला था उसका उपयोग अब होने लगा था। वह अपने अध्यापकों का प्रिय छात्र बना। अध्यापक आदर्श विद्यार्थी के रूप में इसे दिखाते थे। इन्स्पेक्शन के समय में अध्यापक इनकी ओर विश्वास और भरोसे से देखते थे। क्योंकि यह पूछे प्रश्नों के लिए विवेक और कुशलता से उत्तर देते थे। निजलिंगप्पा जब छठी कक्षा में पढ़ रहा था शिक्षणाधिकारी स्कूल आये। इनसे अंग्रेजी में भाषण देने के लिए कहा गया। इन्होंने सरल अंग्रेजी में छः-सात वाक्य लिखकर याद करके धैर्य और विश्वास से सुनाया था। इससे अध्यापक और सहपाठियों की

दृष्टि में उन्नत स्थान पा गये। उसके बाद से कालेज के समारोहों में धन्यवाद देने की जिम्मेदारी उनकी हो गयी। वह दूसरों के समान नहीं थे। उनकी पढ़ाई पाठ्य पुस्तक तक सीमित न थी। कहीं से भी मिले वह ज्ञान भण्डार को लूट लेते थे। हर इतवार मठ के गुरु मृत्युंजय स्वामी से आयोजित बालकों के सम्मेलनों में जाकर वचन साहित्य गंगा में नहा लेते। बालक पर धार्मिक और नैतिक प्रभाव डालनेवाले और एक थे जयदेव स्वामीजी।

इस प्रकार बौद्धिक विकास के साथ नैतिक विकास भी होने से बालक का पूर्ण व्यक्तित्व-विकसित हो गया। काकी सावक्का को उसपर अतिशय गर्व था। इसका कारण हो सकता है कि वह निस्संतान थी या उसकी असाधारण प्रतिभा से प्रभावित होकर ममता की वर्षा ही उसपर करती थीं। काका भी निजलिंगप्पा को बहुत चाहते थे और उसकी उन्नति देख संतुष्ट होते थे। अपूर्व प्रतिभा और असाधारण यश का मूल्य भी चुकाना पड़ता है न! इस लड़के की प्रतिभा और यश से जलने वाले मात्सर्यभाव के दावणगेरे में अन्य संयुक्त परिवार भी थे। ये लोग लड़के पर अकारण ही नाराज़ होते और अपनी असहनीयता दिखाते थे। मगर बालक निजलिंगप्पा उनके प्रति गौरव दिखाने में चूकता न था। इससे उनकी असहनीयता और बढ़ी होगी। इन सब को बालक निजलिंगप्पा पढ़ाई में आसक्ति दिखाने के द्वारा और उसी में हर्ष देखने के द्वारा सह लेता था। लड़के की असाधारण बुद्धिमत्ता को देख रुद्रप्पा जी ने चाहा कि वह शीघ्र लोयर सेकेंडरी परीक्षा पास हो, उसे फीस देकर खासगी शाला में भर्ती करायें। पुराने मैसूर की सार्वजनिक शालाएँ छात्रों से शुल्क नहीं लेती थीं। श्री नरसिंहराव नामक अध्यापक खासगी शाला चलाते थे। काका समझते थे कि लड़का परीक्षा में पास हो जाय तो उसे परिवार में जो मानसिक हिंसा दे रहे हैं वह समाप्त होगा। बेचारे रुद्रप्पा जी को अपराध प्रज्ञा सताती थी। परंतु वे विवश थे। रुद्रप्पा चाहते थे कि निजलिंगप्पा घर लौटकर कुली जैसी अपनी माँ को जो खेती में मजूरी करती थीं, उसे और कष्ट न दे। जहाँ तक दूसरे बेटे बसप्पा का प्रश्न है, इसका कोई मतलब नहीं था क्योंकि विद्यार्थी के रूप में उसने कोई भरोसा नहीं दिखाई थी। बालक निजलिंगप्पा को तंग करने रिश्तेदार मौके के इंतजार में थे। रुद्रप्पा जब दूसरे गाँव गये थे, उस मौके का फायदा उठाकर लड़के को खूब मारकर उसे गाँव लौटाने में सफल हुए। घर लौटने पर रुद्रप्पाजी को मालूम हुआ, तो वे तुरंत हलवागिलु जाकर ननद को समझाकर फिर लड़के

को दावणगेरे ले गये। परंतु ऐसे संदर्भ बार बार आते ही थे। इसलिए बालक निजलिंगप्पा को दयावलगी बसप्पा के घर में रखना ठीक समझा रुद्रप्पाजी ने। उसी प्रकार लड़के के खाने, रहने आदि का खर्च खुद अपने ऊपर लिया।

प्राइवेट स्कूल के मुख्योपाध्याय उस प्रदेश में श्रेष्ठ शिक्षक के रूप में प्रसिद्ध थे। निजलिंगप्पा की सामर्थ्य को देख, उसकी पढ़ाई के बारे में आस्था दिखाई। परंतु वे शराबी थे। इससे उनकी अध्यापक वृत्ति में बाधा पड़ी। दिन में ही खूब पीकर क्लास की जिम्मेदारी बालक निजलिंगप्पा पर छोड़ जाते थे। मास्टर को प्रज्ञा आने तक छात्रों को लिखवाते या प्रश्न पूछते क्लास निजलिंगप्पा को निभानी पड़ती थी। कई छात्र पढ़ाई में बालक निजलिंगप्पा का मार्गदर्शन पाते थे। उदार भाव से मदद करता था बालक निजलिंगप्पा। स्कूल चलता था एक धनी के किराये घर में। एक बार, कोई चोर धनी के बेटे को रेल की पटरी के पास खींच ले जाकर उसका हाथ काटकर सोने का कड़ा छुरा ले गये। निजलिंगप्पा के नेतृत्व में लड़कों ने उसे चोरों से बचाया। परंतु धनी ने समझा कि इस कार्य के पीछे लड़के ही होंगे। भाग्यवश, लड़का सुध पाते ही पिता से जो कुछ हुआ बता दिया। तब पिता संतुष्ट होकर निजलिंगप्पा और साथी लड़कों की प्रशंसा करने लगे। कष्ट सहना निजलिंगप्पा का स्वभाव हो गया था। उसमें ऐसी बाल प्रतिभा थी कि वह तीन वरस में जो सीखना है एक ही साल में सीख लेता। इस प्रकार 1915 में प्रथम श्रेणी में लोयर सेकेंडरी परीक्षा में पास हो गये। गणित में 90 प्रतिशत पाये। यह खबर सारे शहर में फैल गयी थी। नगर के गण्यमान लोगों ने घर आकर लड़के की प्रशंसा कर अभिनंदन किया था। काकी सावक्का और काका रुद्रप्पा इससे अत्यधिक प्रसन्न हुए थे। 1885 में शुरू हुआ भारत राष्ट्रीय आंदोलन अब तक, केवल प्रार्थना-पत्र देने के स्तर तक पहुँचा था। गाँधीजी के नेतृत्व में अहिंसात्मक आंदोलन चलाने के एक नये मंज़िल पर प्रवेश कर रहा था। दक्षिण आफ्रीका के उपनिवेशवादी के विरुद्ध आंदोलन में वहाँ के प्रवासी भारतीयों को सत्याग्रह के लिए संगठित करने में सफल हुए थे। वहाँ से गाँधीजी 1915 में भारत लौटकर ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को क्रांतिकारक आंदोलन के पथ पर चलने के लिए तैयार कर रहे थे। आंदोलन को संगठित करने के पूर्व सारे देश में भ्रमणकर वास्तविक स्थिति से परिचित होने का प्रयत्न किया, यह एक विशेष बात है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उद्घाटन के संदर्भ में दिये उनके भाषण

कांग्रेस नेतृत्व के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को एक नयी दिशा दिखाई। जिस वर्ष गाँधीजी का भारत की राजनीति में प्रवेश हुआ उसी वर्ष निजलिंगप्पा जी सेकेंडरी शिक्षा पाने चित्रदुर्ग के लिए निकले। उसकी पढ़ाई के लिए भी रुद्रप्पाजी आर्थिक और नैतिक सहयोग देते थे। इस समय में काडप्पा नामक एक उदार व्यक्ति ने निजलिंगप्पा को रहने की व्यवस्था और खाने की व्यवस्था भी की। इससे रुद्रप्राजी की चिंता कम हुई। व्यापार के कारण भीड़भाड़ से युक्त दावणगेरे की अपेक्षा चित्रदुर्ग बड़ी प्रशांत जगह है। अतः छात्रों के लिए सुविधा से युक्त जगह है। नगर के चारों ओर रक्षा करनेवाले देव की तरह खड़े हुए पहाड़ी पंक्तियाँ हैं। वह एक इतिहास प्रसिद्ध मांडलीक मदकरीनायक की राजधानी थी। चित्रदुर्ग की ऐतिहासिक उन्नति और स्फूर्तिदायक सौंदर्य को निजलिंगप्पा ग्रहण कर सकता था। कुछ समय बाद साथ में रहनेवाला काडप्पा रोग के कारण मर गये। फिर से रुद्रप्पा प्रयास करके धनी चिक्कवीरप्पा के घर में छोड़ दिये। चिक्कवीरप्पा लड़के को अपने रिश्तेदार के रूप में देखते थे। अब निजलिंगप्पा उनके घर का बेटा जैसा हो गया। परिवार के बच्चों को मिलनेवाला प्यार, स्नेह, एकांत, आर्थिक सुविधाएँ इनको भी मिलने लगीं। चिक्कवीरप्पा के मरने के बाद भी लड़के को किसी भी प्रकार का कष्ट न हुआ। क्योंकि उनका बेटा वीरभद्रप्पा भी उसी प्रकार प्यार दिखाते थे और मदद करते थे। निजलिंगप्पा ने सहज ही अपनी अध्ययनशीलता और सद्व्यवहार से अध्यापकों और सहपाठियों का प्यार और स्नेह पा लिया। उनकी पढ़ाई केवल पाठ्य पुस्तकों तक सीमित नहीं थी। नगर के ग्रंथालय में जाकर प्राचीन और अद्यतन विषयों को पढ़ लेता। निजलिंगप्पा राष्ट्र विख्यात अनीबसेंट से संपादित 'न्यू इंडिया' और गाँधीजी आदि नायकों के भाषणों को बराबर पढ़ता था। सीधा स्वातंत्र्य के आंदोलन में न कूदने पर भी छात्र जीवन में ही उसे राष्ट्रीय आंदोलन में बड़ी आसक्ति थी।

अपने समय के अन्य छात्रों की तरह युवक निजलिंगप्पा भी पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित था और वैचारिक आधार पर सुधार का सपना देखता था। जब हाईस्कूल में पढ़ता था, एक बार चर्चा प्रतियोगिता में भाग लिया था और स्त्री-पुरुष समनता के आधार पर विधवा विवाह के समर्थन में भाषण दिया था। उसकी आधुनिक वैचारिक दृष्टिकोण पर अपनी लिंगायत परंपरा, उसमें भी बसवण्णा की मानव समानता और स्वातंत्र्य का प्रतिपादन आदि का प्रभाव बिना उसकी सुध के पड़ा होगा। उनके अध्यापकों को स्त्री-पुरुष समानता की

परिकल्पना उतनी समझ में न आयी थी। इसलिए वे असमानता का प्रतिपादन करते थे। आधुनिक काल के लिंगायत अपने मतोद्धारक बसवण्णा के क्रांतिकारी मानवतावाद से दूर रहने का संकेत यह रहा होगा। बाह्य क्रिया-कलापों में निजलिंगप्पा जो आस्था दिखाता था उनमें बलचम् (स्काउट) में भाग लेना भी एक था। वह हर क्रिया-कलाप में सक्रिय भाग लेता था। तब उसे अपने लोग अर्थात् वीरशैव अथवा जो लिंगायत नहीं उनके घर में एक गिलास पानी पीने का भी मौका नहीं मिला था। परंतु अब बलचम् होने से अन्य जाति समुदाय के लड़कों के साथ मिलना पड़ता था। सब से पहले उसे अपने अध्यापक मीर पाळ्य कृष्णराव के घर में खाना पड़ा। इससे उनमें मनुष्य जाति एक ही है कि भावना दृढ़ होने में सहायता मिली। आगे उसने अपने माथे पर विभूत धारण करना भी छोड़ दिया। यह उस युवक में हुआ एक अद्‌भुत परिवर्तन था। यह परिवर्तन कितना क्रांतिकारक था यह समझने के लिए उसके संप्रदाय शरण लिंगायत विश्वास-आचरणों की पारिवारिक पृष्ठभूमि पर ध्यान देना चाहिए।एक बार नगर के स्काउट कमीशनर घटक का एक विदेशी ने संदर्शन किया। वह एक समुदाय क्रिया-कलाप था। अतः सभी मिलकर भोजन तैयार करने लगे। स्वयं कमीशनर ही पानी लाने के द्वारा उसमें भाग ले रहे थे। अशुद्धि के नाम पर कुछ लड़कों ने भोजन न किया। इससे निजलिंगप्पा का क्रोध उठा। चिल्लाया कि ''कमीशनर जैसे बड़े अधिकारी पानी लाने से भोजन और शुद्ध होना चाहिए। उसे अशुद्धि कैसे कहेंगे ? काम के महत्त्व को बतानेवाले उनके आदर्श का पालन हमें करना चाहिए।''

निजलिंगप्पा सभी क्रीड़ाओं में भाग लेते थे। क्रीड़ा में भी पढ़ाई की तरह आगे रहते थे। क्रिकेट, फुटबॉल, हाकी खेलते थे, साथ ही दैहिक व्यायाम में भी आसक्ति थी। अधिक अंक पाकर आठवीं कक्षा पास होने के बाद नवीं कक्षा में भर्ती हो गया। उस वर्ष उसे ऐच्छिक विषयों को चुनना था। उसकी आसक्ति विज्ञान और गणित की ओर थी, जिनमें पिछली कक्षा में 10 प्रतिशत अंक पाये थे। मगर उसके अध्यापक जाति के बारे में अंधे थे। अतः उन्होंने इन विषयों को चुनने न दिया और इतिहास विषय को चुन लेने को कहा। मगर निजलिंगप्पा ने प्रधान अध्यापक से प्रार्थना करके अपने पसंद का ले लिया। 1918 में चित्रदुर्ग में प्लेग रोग फैला। जाति, मत, भेदरहित असंख्य लोग उसमें आहुति हो गये। वीरभद्रप्पा के परिवार ने मेक्कापुर में अपना ठिकाना बदल लिया। उनके साथ

निजलिंगप्पा को भी जाना पड़ा। जाने के एक महीने बाद, वीरभद्रप्पा और उनकी पत्नी भी इन्फलूऐंज़ा के शिकार हुए। सारा परिवार भयभीत हो गया। परिवार में 'ईश' नामक रसोईया लड़का था। बीमार लड़के की शुश्रूषा की जिम्मेदारी निजलिंगप्पा ने अपने ऊपर ली। मगर निजलिंगप्पा लड़के को बचा नहीं सके। पुनः निजलिंगप्पा मौत के फन के नीचे फँस गये। जब निजलिंगप्पा के पिता की मृत्यु हुई थी तब उस भय के ताप का वह उतना जानकार नहीं था। परंतु अब परिस्थिति बदल गयी थी। मौत के साथ अत्यधिक निकटता से आमना-सामना होने का और मौत को जीतकर अट्टहास करने का प्रसंग सामने आया। इस अनुभव से लड़के की समझ में आया कि मनुष्य विधि के सामने कितना असहाय है। परिवार के अन्य लोगों की भी शुश्रुषा की। वह कोई आसान काम नहीं था। औषध लाने तीन मील पर जो अस्पताल है वहाँ जाना पड़ता था। रोगी के लिए माँड़ बनाना पड़ता था। मगर सब से अधिक परिवार के अन्य लोग, खासकर बच्चों को समय पर खाना खिलाना था। हलवागिलु में सुरक्षित रहने के लिए भागने के बदले यहीं रहकर समस्या का धैर्य से सामना किया। उस साल सारा देश इन्फलूऐंज़ा की मुट्ठी में फँस गया था। मृत्यु का रुद्र नर्तन होता था। ऐसी स्थिति में परिवार की मदद करने से निजलिंगप्पा वीरभद्रप्पा का और भी आत्मीय हो गये। निजलिंगप्पा की पढ़ाई में किसी भी तरह की मदद करने का निर्णय वीरभद्रप्पा ने लिया।

1918 को स्वयं निजलिंगप्पा मलेरिया के शिकार हुए। इससे वे इतने शक्तिहीन हो गये कि मेट्रिक परीक्षा न दे पाये। दैहिक दुर्बलता के साथ, यह भी घोषित हुआ कि वे परीक्षा में बैठने हेतु पर्याप्त वयस्क नहीं है। इससे अच्छा ही हुआ। यदि 1918 में ही मेट्रिक पास करते तो उन्हें आगे की शिक्षा के लिए तुमकूर या बेंगलूर जाना पड़ता और इस बीमारी की हालत में वीरभद्रप्पा के परिवार की शुश्रूषा न कर सकता था। अगले वर्ष मेट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। कुछ प्रश्न पत्रों में इन्होंने आवश्यकता से अधिक प्रश्नों के लिए उत्तर लिखे थे। इससे सौ अंक के लिए एक सौ बीस अंक पा गये।

आगे की पढ़ाई के लिए निजलिंगप्पा को बेंगलूर चुनना पड़ा। इस नगर में किसी निःशुल्क छात्रवास में खाने और रहने की व्यवस्था हो सकती थी। परंतु कालेज शुल्क, पाठ्य पुस्तक खर्च आदि का क्या करे? और ओढ़ना,

पहनना! वीरभद्रप्पा या वीरम्मा जी से सहायता तो मिल ही सकती थी। कुछ लोगों ने सलाह दी कि पढ़ाई छोड़कर कहीं नौकरी करो और माँ की मदद करो। और कुछ लोगों ने सलाह दी कि छोटी-सी दूकान खोलकर कमाओ। इससे निजलिंगप्पा अनिश्चितता में पड़ गये। आखिर उनकी आगे पढ़ने की इच्छा की ही जीत हुई। निजलिंगप्पा ने निश्चय किया कि किसी भी परिस्थिति में पढ़ाई को छोड़ना नहीं चाहिए। उनकी माँ तो बेटे की पढ़ाई के लिए किसी भी प्रकार के त्याग को तैयार थी। माँ ने उन्हें याद दिलाया कि उनके पिता भी चाहते थे कि लड़का अच्छी पढ़ाई करे और दादा की भी यही इच्छा थी। माँ ने आश्वासन दिया कि आगे की पढ़ाई के लिए जैसे भी हो पैसे की व्यवस्था करेगी। श्री रुद्रप्पा ने पूर्णरूप से मदद करने की स्थिति में न रहने पर भी जितना भी हो सके मदद करने का भरोसा दिया। धनी वीरभद्रप्पा ने तो धैर्य बँधाते हुए घोषणा की कि ''चिंता मत करो। जो भी सहायता चाहिए मुझ से पूछो। जब पैसे की जरूरत हो लिखो। तुरंत पैसे भेज दूँगा।'' आशीर्वाद पाने श्री जयदेव जगद्गुरु के पास गये। स्वामीजी ने आशीर्वाद देते हुए कहा, ''तुम तो सुना है कि बुद्धिमान लड़के हो। प्रथम श्रेणी में पास हुए हो। इससे पूरे वीरशैव समाज को गौरव मिला है। बेंगलूर में गुब्बी तोटदप्पा की धर्मशाला है। वहाँ तुम्हारे लिए सारी सुविधा मिलेगी। तुम पढ़ाई करके डिग्री पास हो तो वीरशैव समाज में तुम मुकुटमणी बनोगे। तुम जैसे बुद्धिमान विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देने को मठ तैयार है।''

कुछ लोगों ने सलाह दी कि वैद्य बनोगे तो खूब कमा सकते हो। परंतु निजलिंगप्पा की आसक्ति विज्ञान विषय में था। इसलिए वैद्य बनने की सलाह का तिरस्कार किया। बेंगलूर में कोलिजियेट स्कूल में प्रवेश के लिए अर्जी दी तो उन्हें तुमकूर में प्रवेश मिला। वहाँ भी खाने और रहने की कोई समस्या न थी। परंतु बेंगलूर तो सांस्कृतिक केन्द्र है। निजलिंगप्पा जैसे प्रतिभावान युवक के लिए बेंगलूर में आगे बढ़ने का मौका अधिक होने से बेंगलूर की बराबरी तुमकूर न कर सका। उस समय शिक्षा संस्था के प्रधान थे डॉ. सी. आर. रेड्डी। उन्हें एक पत्र लिखकर विनती करते हुए विस्तार से बताया था कि ''मैं दूर के गाँव के एक गरीब परिवार से आया हूँ। मेरे लिए किसी बड़े सम्मानित व्यक्ति की न कोई सिफारिश है न समर्थन। आप जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति से विनती कर रहा हूँ और आपकी मदद पर भरोसा रखता हूँ। मैं प्रथम श्रेणी में मैट्रिक

पास हो गया हूँ। मेरी विज्ञान विषय में आसक्ति है। फिलहाल मुझे तुमकूर में प्रवेश मिला है। तुमकूर के वातावरण से जुड़ना मुश्किल है। बेंगलूर के कोलिजियेट स्कूल में पढ़ने का मौका मिले तो बड़ा उपकार होगा। आप मदद करेंगे तो, एक गाँव का लड़का विद्यार्जन के मार्ग में आसानी से आगे बढ़ सकता है। ऐसा न कर सके तो आपसे एक गाँव के लड़के का भविष्य बिगड़ जायेगा।'' तुमकूर में पढ़ने की इच्छा न होने से चित्रदुर्गा लौटे थे। एक हफ्ते में, बेंगलूर में प्रवेश देने की बात सूचित करते हुए डॉ. रेड्डी जी का पत्र आया।

बेंगलूर जैसे बड़े शहर को पहले कभी निजलिंगप्पा ने देखा नहीं था। परंतु यहाँ आने के बाद वह बहुत सुविधाजनक नगरी लगी। चित्रदुर्ग से तीस मील दूरी पर होळल्केरे ही अत्यंत निकट का रेल्वे स्टेशन था। वहाँ से रेल में चढ़े तो यह छोटा पण्डित बेंगलूर पहुँच सकता था। उतार-चढ़ाव वाले रास्ते में यात्राकर आखिर निजलिंगप्पा होळल्केरे पहुँचकर वहाँ से आधीरात को पूना-बेंगलूर रेल में बैठे। सुबह ट्रैन से उतरते ही एक छोटा सा ट्रंक उठाकर सीधा तोटदप्पा धर्मशाला चल पड़े। धर्मशाला में जो खाने को देते थे वह जीवित रहने के लिए काफी था। परंतु निजलिंगप्पा ने इस ओर ध्यान न दिया। पढ़ाई ही उनका प्रधान लक्ष्य था। थोड़े ही दिनों में छात्र जीवन में घुलमिल गये। पहले दिन ही एंट्रेस कक्षा में दाखिल हुए। उन दिनों शाला-कालेजों में लड़कों की भीड़ न होती थी। इसलिए प्रिंसपाल हरेक विद्यार्थी का नाम याद रखते थे। और अध्यापक और छात्रों के बीच स्नेह संबंध था। प्रथम श्रेणी में पास लड़के होने से निजलिंगप्पा अपने अध्यापक और सहपाठियों के आदर का पात्र बने थे। आम तौर पर सुदूर गाँव से आये लड़के नगर जीवन के प्रलोभन में पड़कर बुरी आदत के अधीन हो जाते थे। मगर छुटपन से भोगे कष्टों के कारण निजलिंगप्पा परिपक्व बने थे। उन्हें तो पढ़ाई पर ही अधिक ध्यान था। दूसरी बातों की ओर ध्यान न था। 1920 में एंट्रेस परीक्षा पास कर सेंट्रल कालेज में भर्ती हुए। अपने पुराने निर्णयों को बदलकर मानविकी को विकल्प के रूप में लिया। परंतु पाठ्य विषय में भौतिकी, रसायनशास्त्र जैसे विज्ञान विषय को भी ले सकते थे। इन प्रशांत दिनों नें विद्यार्थियों की आसक्ति कई आकर्षणों से युक्त होकर आज की आसक्तियों से भिन्न रहती थी। जब कक्षाएँ न हो तो ये ग्रंथालय में या दोस्तों के समूह में सामान्य आसक्ति के विषयों पर गंभीर चर्चा करते रहते। खेल-कूद में, व्यायाम आदि में भी सक्रिय रहने से कठिन दैहिक श्रम के

लिए तैयार रहते थे। निजलिंगप्पा को अंग्रेजी और कन्नड़ भाषा पर अच्छा अधिकार प्राप्त था। साथ ही तमिल, तेलुगु छात्रों के साथ भी मिले रहने से उन भाषाओं का भी परिचय था।

23 जुलाई 1923 के दिन सेंट्रल कालेज में तिलक दिन मनाया गया। एक राष्ट्रवादी जिसने 'आजादी को अपना जन्मसिद्ध हक' कहा था, उसके नाम पर समारोह के लिए तैयारियाँ होने लगीं। गाँधीजी और गाँधीवादियों के प्रसिद्ध होने के पहले तिलक, बिपिनचंद्र पाल और लाला लाजपत राय का राष्ट्रीय आंदोलन में और कांग्रेस में प्रमुख पात्र था। सोचा गया था कि यह तिलक दिन मनाने से लोगों की राष्ट्रीय भावना में तीव्रता आयेगी। कार्यक्रम के बाद मेक्सियन् नामक अध्यापक ने अपने भाषण में कक्षा में विद्यार्थियों के देशद्रोह और अनुशासनहीनता का खण्डन किया इससे गुस्से में आकर विद्यार्थी समूह ने निजलिंगप्पा के नेतृत्व में विरोध व्यक्त करते हुए उच्च अधिकारी को तार भेजा। और उसमें खुलकर अध्यापक के व्यवहार का खण्डन किया। इससे अध्यापक ने विरोध के तीव्रता पाने के पहले ही विषाद व्यक्त कर दिया। निजलिंगप्पा जी को पता नहीं था कि इस घटना से उनके जीवन में विशेष मोड़ आयेगा। वे गाँधीजी की 'यंग इंडिया' पत्रिका को बराबर पढ़ते थे। गाँधीजी के सत्याग्रह मनोभाव से प्रभावित थे। इंडियन नेशनल कांग्रेस के नेतृत्व में भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का गाँधी युग शुरू हो गया था। इससे पहले के आंदोलन में कांग्रेस सिर्फ प्रार्थना-पत्र समर्पित करते थे और कुछ संदर्भों में हिंसात्मक आंदोलन करना पड़ता था। परंतु गाँधीजी ने उसे संपूर्ण अहिंसात्मक बनाया। इन्हीं दिनों में गाँधीजी बेंगलूर आये थे। अन्य युवकों के समान युवक निजलिंगप्पा भी उनके आकर्षण में आये। गाँधीजी की बातें सुनकर इन्होंने भी निश्चय किया कि आगे केवल खादी पहनेंगे।

तोटदप्पा छात्रवास के साहित्य संघ के सचिव पद के चुनाव में खड़े होने पर निजलिंगप्पा को चुनाव राजनीति का पहला अनुभव हुआ। उनका यह शुद्ध प्रामाणिक आंदोलन था। मगर उनके प्रतिस्पर्धी ने होटल में मतदाताओं को रिश्वत के रूप में खूब खिलाया, पिलाया था। वैसा ही करने के लिए निजलिंगप्पा के समर्थकों ने सूचना दी और पैसे की सहायता करने की बात भी की। परंतु निजलिंगप्पा ने ऐसे भ्रष्ट व्यवहार का तिरस्कार किया। नैतिक मूल्य पर आधारित

ऐसी तत्वाधारित राजनीति आगे निजलिंगप्पा के राजनैतिक जीवन का प्रमुख आधार बनी। वे चुनाव में जीते और उनके सचिव पद के कार्यकाल में संघ ने अच्छा काम किया। अनेकानेक कार्यक्रम संपन्न हुए। इसी संदर्भ में ग्रंथालय और वाचनालय सुविधा को बढ़ाने के लिए एक निधि संग्रह का आंदोलन ज़ोरों से चला। तोटदप्पा धर्मशाला के स्थापक के निजी गाँव गुब्बी से आये छात्र बहुमत में थे। इसलिए वे चाहते थे कि धर्मशाला उनकी इच्छा के अनुसार चले। ऐसी संकुचित भावना हो तो कर्नाटक का एकीकरण कैसे संभव हो। और निजलिंगप्पा ने बहस की कि संकुचित मनोभाव लिंगाय धर्म स्थापक बसवण्णा के आदर्श के विरुद्ध है। इसका असर पड़ा। 1923 के प्रारंभ में निजलिंगप्पा मलेरिया से ग्रस्त हुए। अतः उनका बी.ए. परीक्षा पूर्ण करना कठिन हो गया। परंतु रोगपीड़ित होने पर भी 'ए' विभाग की परीक्षा में बैठे और पास हुए। परंतु 'बी' विभाग के आरंभ में निजलिंगप्पा ने अपना वासस्थान जयदेव विद्यार्थी निलय के लिए बदल दिया। उसकी देखरेख मैसूर के पूर्व दीवान और प्रसिद्ध लिंगायत नेता श्री के. पी. पुट्टण शेट्टी करते थे। उनके दंभ और सर्वाधिकारी रूख का विद्यार्थियों ने विरोध किया। आगे जो विद्याथी-निर्वाहक मण्डल की बातचीत में निजलिंगप्पा सुवर्ण माध्यम रीति और सठीक वाद ने श्री पुट्टण्ण शेट्टी के मन को जीत लिया। निजलिंगप्पा को अपने घर बुलाकर भोजन कराके पुट्टण शेट्टीजी ने भविष्यवाणी की कि आगे तुम्हारा भविष्य भव्य है।

निजलिंगप्पा के बी.ए. पास होने पर अत्यधिक खुश हुई माँ नीलम्मा को और उनके पोषक वीरभद्रप्पा और उनके परिवार को भी। निजलिंगप्पा के सामने अब एक समस्या खड़ी हुई। पढ़ाई समाप्त कर नौकरी करे या आगे वृत्तिपरक शिक्षा जारी रखे। वास्तव में, नौकरी करने के अलावा और दो विकल्प थे। स्नातकोत्तर शिक्षा पानी चाहिए या कानून परीक्षा के लिए अध्ययन करें। दोनों दो साल की अवधि की थी। दोनों के लिए पैसे की जरूरत थी। उनके सामने एक नैतिक प्रश्न था कि मेरे हितैषियों को और सताना कहाँ तक ठीक है? उनके कुछ साथियों ने सलाह दी कि काम ढूँढों। उन दिनों स्नाथक को अच्छी नौकरी मिल जाती थी। अब तक वे गाँधी-आदर्श के भोजनोपचार का अनुसरण करते थे। अनुशासित थे और सबमें सम प्रमाण के मनोभाव के थे। आगे देश सेवा के लिए अनुकूल हो इसलिए वकील वृत्ति करने का निश्चय किया। दूसरी बात है कि पहले से सरकारी नौकरी के प्रति अनादर भाव था। वकील वृत्ति

कोई लाभदायक वृत्ति नहीं इसकी जानकारी थी उनमें। परंतु निजलिंगप्पा जी में ऐसी भावना नहीं थी कि 'आर्थिक विकास ही जीवन का लक्ष्य है।' जब निजलिंगप्पा जी ने कानून की पढ़ाई करने की इच्छा व्यक्त की तो श्री वीरभद्रप्पा और श्री जयदेव मुरघराजेन्द्र स्वामीजी ने उन्हें धन-सहायता करने का भरोसा दिया। उस समय कर्नाटक की ऐसी हालत थी कि यहाँ एक भी कानून का कालेज नहीं था। अतः कानून की पढ़ाई के लिए विद्यार्थी को पूना या मद्रास जाना पड़ता था। श्री रुद्रप्पा और उनके मित्रवर्ग ने धन संग्रह कर उन्हें पूना भेजा। पूना में फर्ग्यूसन कालेज दक्षिण भारत में ही कानून की पढ़ाई के लिए प्रसिद्ध था। वहाँ अधिकतर छात्र कक्षा में बिना हाजिर हुए हाजरी देते थे। लेकिन निजलिंगप्पा जी ने कभी भी उद्देश्य पूर्वक ऐसा नहीं किया हाँ, कभी कथार धन की तंगी के कारण कालेज हाजिर होना संभव न होता था। पहले जैसे ही कानून विषयक ग्रंथों का श्रद्धा से अध्ययन करते थे, साथ ही पाश्चात्य वैचारिक कृतियों को भी पढ़ते थे। मराठी भाषा को भी जानने लगे थे। देह और मन को श्रम के लिए अनुकूल बना लिया। क्रिकेट और टेनिस भी खेलते थे। नाटकों को भी पढ़ते थे। कर्नाटक और हिन्दूस्तानी संगीत सुनने जाते थे। वास्तव में वे शास्त्रीय संगीत के आस्वादक थे। उन्होंने वर्ण चित्रकला का भी अभ्यास कर लिया था। उनका क्रीडा-मनोभाव खेल तक ही सीमित न था। जीवन में भी क्रिड़ा-मनोभाव रखते थे। जब पूना में थे तभी से गाँधीजी की कृतियों को पढ़ने लगे थे। एक गाँधीवादी होकर आहार आदि विषयों में गाँधीजी के सूत्रों का पालन करते थे।

मैसूर से आये छात्र अधिकतर योगाश्रम के छात्रवास में रहते थे। मैसूर और मराठी छात्रों के बीच बार बार संघर्ष होता था। एक बार, यह बढ़ गया तो मैसूर के छात्र अलग मैसूर छात्रवास खोलने आगे बढ़े। इसमें निजलिंगप्पा जी ने दिलचस्पी दिखाई और उसकी देखरेख की जिम्मेदारी ली। मैसूर से सुब्बण्णा नामक रसोइया को ले आये। छात्रनिलय का भोजन स्थानियों को भी पसंद आया। निजलिंगप्पा जी के सचिव होते छात्र निलय एक उत्साही सांस्कृतिक केन्द्र बना था। उन लोगों ने कैलासम के 'टोळ्ळुगट्टी' नाटक खेला और उसमें नाटक का निर्देशन निजलिंगप्पा ने किया था। उसमें नायक पात्र का अभिनय भी किया था। हलवागिलु में ही तैरना सीख लिया था। इसलिए छुट्टियों में शहर के बीच

में जो तालाब है उसमें तैरते काफी समय बिताते थे। एक बार डूबते लड़के को बचाने पानी में कूदकर हीरो बने थे।

1924 के दिसंबर में कर्नाटक राज्य में, बेलगाँव में एक ऐतिहासिक घटना घटी। वह इंडियन नेशनल कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन का समय था। स्वतंत्रता पूर्व के दिनों में कांग्रेस का वार्षिक सम्मेलन सचमुच एक राष्ट्रीय घटना थी। स्वातंत्र्योत्तर काल में जैसे वह एक पक्ष का कार्यक्रम नहीं था। बेलगाँव कांग्रेस की विशेषता यह थी कि वह महात्मा गाँधीजी की अध्यक्षता का एकमात्र सम्मेलन था। अब तक निजलिंगप्पा कांग्रेस के सामान्य सदस्य बन चुके थे। वे सम्मेलन देखने इसलिए उत्सुक हुए कि वह वरिष्ट नायकों के भाषण सुन सकते हैं और गाँधीजी को नज़दीक से देख सकते हैं। परंतु सम्मेलन में प्रतिनिधि शुल्क देना पड़ता था। साथ यात्रा खर्च और खाने ठहने का खर्च। संयोग से एक सहपाठी जो धनी का बेटा था, सारा खर्च देने को तैयार हुआ। इस महान् संदर्भ के लिए वह महान् व्यक्तियों और कनिष्ठ व्यक्तियों को ले गये। मितव्यय की दृष्टि से एक ही प्रवेश पत्र को बाँट लेने, अर्थात् हर रोज़ एक एक दो दो घंटे के लिए भाग लेने का निर्णय लिया। इस अधिवेशन का निजलिंगप्पा जी पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। नायकों का भाषण सुनने का, उन्हें नज़दीक से देखने का अनुभव, उसके आंतरिक परिवर्तन का कारण बना। अध्ययन के लिए पुनः जब पूना लौटे तो अपने को बेलगाँव कांग्रेस सम्मेलन में ही हो ऐसा व्यवहार करते थे। उनके कानों में अब भी सम्मेलन की आवाज़ गूँजती थी। आँखों में वे ही दृश्य दीखते थे। उनकी यादों की माला के केन्द्र में गाँधीजी ही थे। भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में गाँधी युग का आरंभ हुआ था। गाँधीजी ने सत्य अहिंसा जैसे आध्यात्मिक मूल्याधारित भारतीय राष्ट्रीयता का दर्शन रूपित किया था। व्यावहारिक स्तर पर, इस भारतीय दर्शन में असंख्य स्थानिक गणराज्य थे। उनमें हरेक अपने जीवन को रूपित करने का स्वतंत्र घटक हो गये थे। गाँधीजी की दृष्टि में, स्वतंत्रता का अर्थ केवल राजनीतिक मुक्ति नहीं, अपने आध्यात्मिक और नैतिक परंपरा में गहराई में स्थिर राष्ट्र का निर्माण। गाँधीजी के अंधी अनुयायी न होने पर भी आज भी निष्ठावान् गाँधीवादी थे।

1926 में निजलिंगप्पा जी ने दूसरे वर्ष की कानून की परीक्षा दी। उनके लिए परीक्षा कोई बड़ा सवाल न था। पाठ्य पुस्तकों के साथ और भी बहुत-सारी पुस्तकें पढ़ी थीं। इसलिए उन्हें कानून का सूक्ष्म करतलामलक था। उनका

कानून का अध्ययन पूरा हुआ। वे वकीली वृत्ति करने पूना से चित्रदुर्गा लौटे। उनके दोस्तों ने समझा था कि निजलिंगप्पा के लिए वकीली वृत्ति ठीक नहीं बैठता। क्योंकि निजलिंगप्पा जी की प्रामाणिकता, सरलता, सत्यशीलता और दृढ़ चाल थी। ऐसे आदर्शवाले सामान्य वकीलों के मार्ग का सामना करना कठिन है। मगर निजलिंगप्पा जी ने उस वृत्ति को चुना धन कमाने के लोभ से नहीं, वे इस वृत्ति के द्वारा समाज और राष्ट्र की सेवा करना चाहते थे। पढ़ाई के सोलह साल बाद अपनी माँ से आशीर्वाद लेने जब हलवागिल गये तो हृष्ट पुष्ट शरीरवाले अपने बेटे को देख माँ आनंदविभोर हो गयीं। बेटे के लौटने पर अति उत्साहित थीं। निजलिंगप्पा ने यहाँ अपने पुराने अनुभवों को याद किया। सेंट्रल कालेज के अध्यापक भी याद आये। उनके स्मरण में आये अत्यंत प्रभावी विद्वान व्यक्ति थे कन्नड़ प्राध्यापक वेंकण्णय्या। पुरानी बात से ज्यादा आगे के बारे में ध्यान देने लगे। विद्यार्थी जीवन का स्वर्णकाल समाप्त हुआ था। अब उन्हें आगे कमाई करनेवाले गृहस्थ के रूप में जीवन सिद्ध करना था।

(यह अध्याय और अगले अध्याय भी दे.जे.गौ. से रचित 'कर्नाटक रुवारी' नामक निजलिंगप्पा के जीवन चरित्र के लिए अभारी है। परंतु वहाँ से चुने विषय का व्याख्यान और निरूपण अलग रीति से हैं।)

2. वकील वृत्ति और गृहस्थाश्रम प्रवेश

वकील वृत्ति करने के लिए केवल कानून की डिग्री और उसके लिए सरकार से अनुमति मिल जाना तो काफी नहीं। एक वरिष्ठ वकील के पास प्रशिक्षण लेकर वृत्ति की सूक्ष्मताओं को जानना चाहिए। अब निजलिंगप्पा जी प्रशिक्षण के लिए वरिष्ठ वकील को ढूँढने लगे। उन दिनों नगर में जो वरिष्ठ वकील थे वे सब ब्राह्मण समुदाय के थे। ब्राह्मण और लिंगायत वकीलों के बीच वृत्ति स्पर्धा तीव्र थी। अतः उन्हें सहायक वकील के रूप में लेने कोई भी ब्राह्मण वकील तैयार न था। वे बाहर से कोई निराकरण की बात न करते थे, परंतु कोई बहाना करके सहायक के रूप में लेने का निराकरण कर अपना संकुचित मनोभाव दिखाते थे। इससे धैर्य न खोकर निजलिंगप्पा जी ने, अपने साहसी और आगे बढ़ने के स्वभाव होने से, परंपरागत प्रशिक्षण के बिना स्वतंत्र रूप में वकीली वृत्ति को आरंभ करने का निश्चय लिया। उन्होंने 1926 में वकीली वृत्ति के लिए सनद पा लिया। आश्चर्य की बात है कि वकीली वृत्ति के लिए काले कोट पहने पहले दिन ही उनके पास एक मुवक्किल आया। वह एक सरल केस था : प्रामिसरी नोट के आधार पर एक हज़ार रुपये कर्ज वसूल करना। यह पहला केस था, इसलिए न्यायालय में कैसे कैसे दाखिल करे यह निजलिंगप्पा जी को मालूम न था। इस विषय में उनकी मदद के लिए आया न्यायालय का एक क्लर्क। निजलिंगप्पा जी का सद् विवेक था कि अपने पाये केस के शुल्क 25 रुपये से पाँच रूपये उस क्लर्क के लिए उन्होंने दिये। परंतु उस क्लर्क ने अपने इस छोटे-से मदद कार्य के लिए इतनी बड़ी रकम की अपेक्षा न की थी। अतः क्लर्क ने न माना। परंतु निजलिंगप्पा जी ने उस बुजुर्ग को आग्रहपूर्वक लेने के लिए मनवाया। शेष रूपये में और पाँच रुपये खर्च करके अपने नाम का फलक लिखकर श्री वीरभद्रप्पा के घर के पिछवाडे में लगवाया।

इस प्रकार कमाने लगे निजलिंगप्पा ने निश्चय किया कि आगे अपने हितैषी वीरभद्रप्पा जी का और बोझ न बनूँगा। इसलिए एक किराये के घर में रहने का निश्चय किया। परंतु वीरभद्रप्पा जी ने इसको न माना और पूछा निजलिंगप्पा

जी से कि आगे हमारे घर में घर का ही आदमी बनकर रहने की इच्छा नहीं है क्या? आग्रह करने पर, निजलिंगप्पा जी ने अपने निश्चय को तब तक के लिए टाल दिया जब तक विवाहित होकर अलग घर न बनायेंगे। निजलिंगप्पा जी अपनी सहज श्रद्धा और बद्धता से नई जिंदगी रूपित करने लगे। प्रामाणिकता और कठिन श्रम से धन कमा सकते हैं, यह उनका विश्वास था। परंतु उन्हें कमाई कायक निर्वहण के आनंद का एक भाग मात्र था। इस विषय में वे बसवण्णा के कायकतत्व का अनुसरण करते थे। एक साल में वे एक ख्यात वकील कहलाये। क्योंकि वे अपने कायक में अनन्य श्रद्धा, कौशल और मृदु बातों से वे लोकप्रिय वकील कहलाये। वे मुवक्किल का हित चाहनेवाले थे। ऐसे लोग स्पर्धा या द्वेष पैदा नहीं कर सकते। अपनी वृत्ति के मार्ग में उन्होंने नैतिकता और गाँधीजी के तत्वों का अनुसरण किया। इस प्रकार वे मुवक्किल साक्षी सृष्टि, अप्रमाणिकता, झूठ पर बननेवाले केस से दूर ही रहे। यदि लगे अपना केस दुर्बल है या दोषपूर्ण है तो उसे मान लेने में हिचकिचाते नहीं थे। इसलिए वे केवल न्याययुक्त, कानून सम्मत केस मात्र ही लेते थे और इस कीर्ति के लिए पात्र बने। इससे उनके साथी वकील उनपर अधिक सम्मान और सद्भावना दिखाते थे।

अपने प्रयत्न में जो हारजीत होती उस ओर ध्यान न देकर वे अपने केस पर प्राप्त कमाई से तृप्त होते थे। उन्हें गरीबी और कठिनाई का अनुभव होने से, अपने मुवक्किल को, उसमें भी जो देहाती गरीबों को बड़ी सहानुभूति से देखते और कम शुल्क लेते थे। साथ ही, उन्हें उपदेश देते कि अदालतों में भटकते श्रम की कमाई को व्यर्थ नहीं करना चाहिए। उनका और मुवक्किल का संबंध सिर्फ वहीं तक सीमित न होकर, आगे बढ़कर कानून की परिधि से बाहर की समस्याओं पर भी अपनी सलाह देते थे। इस प्रकार निजलिंगप्पा जी के वकील बने आठ महीने में भद्र बुनियाद पर खड़े होकर नाम पा गये। उनकी कीर्ति लगता है कर्नाटक में फैल गयी। गरीबों के हितैषी होकर, सामान्य वकीलों के समान पैसा न लूटनेवाले हैं, ऐसी सद्भावना लोगों में फैल गयी। इसके साथ दूसरे प्रकार से भी उनका नाम फैल गया कि वे एक सुंदर यशस्वी विद्यावान् युवक हैं! लड़कीवाले उन्हें एक आदर्श दामद के रूप में देखते और वे अपनी लड़कियों के लिए योग्य वर समझते थे। उनके दोस्तों ने आग्रह किया कि अकेला रहना समाप्त कर शादी कर ले। निजलिंगप्पा जी की माँ नीलम्मा जी एक संप्रदायस्थ भारतीय माँ थीं; उन्होंने चाहा घर में बहू और बेटे हो। वे बेटे

को आग्रह करने लगीं कि शीघ्राति शीघ्र गृहस्थ बन जाय। उनके दोस्त उनके लिए सुंदर वधू की खोज करते हुए आखिर चार वधुओं की सूची लाये। निजलिंगप्पा जी भी इस विषय में संप्रदायस्थ थे। उनकी धारणा थी कि अपने चुनाव से शादी करने के बदले विवाह करके पत्नी का प्यार करना ही ठीक है।

वधू देखने एक बार निजलिंगप्पा के दोस्त उन्हें एक धनी के घर ले गये। वधू के घरवालों ने खूब खातिरदारी की। इसमें निजलिंगप्पा इतने निरासक्त थे कि दोस्त फुसलाने लगे कि लड़की पसंद आयी क्या ? निजलिंगप्पा ने कहा मुझे कोई एतराज नहीं। तब दोस्त ज़ोर से हँस पड़े और कहा लड़की तो अशिक्षित है और तुम लड़की चुनने में सिद्धहस्त नहीं। मगर निजलिंगप्पा की धारणा बदली नहीं। उन्होंने दोस्तों से पूछा, ''वधू के घरवालों का आतिथ्य स्वीकार करने के बाद यदि कहे लड़की पसंद नहीं तो क्या उनके मन को ठेस नहीं पहुँचेगी ? दोस्तों ने बहस किया कि वधू देखने किसी के घर जाय तो यह मतलब नहीं लड़की से शादी करनी ही चाहिए। देखने आये सब लड़कों से लड़की शादी तो नहीं करेगी न। तब निजलिंगप्पा जी ने बता दिया इस तरह लड़की को देखने जाना ठीक नहीं। इसलिए लड़की देखने जाने से पहले उनके घरवालों के बारे में अमूलाग्र पूछताछ करके जाने का निश्चय किया। दोस्तों ने समझा ये तो अबोध है। परंतु वधू की खोज का काम चलता रहा। दावणगेरे बेळ्ळुळ्ळि घराने में एक वधू है यह बात मालूम हुई। उस घराने का एक इतिहास था। वे पूर्व में प्रसिद्ध वचनकार भोगण्णा की बस्ती केंभावी के थे। वे कंभावी बसवेश्वर के भक्त थे। उनके धार्मिक गुरु थे कर्नाटक के बळ्ळारी जिला कोट्टूर के पास गुडेकोटे के हिरेमठ के स्वामीजी। यह परिवार लहसुन का व्यापार करते हुए दावणगेरे में आ बसा था। इसीलिए उस परिवार का नाम बेळ्ळुळ्ळि (लहसुन) हो गया। बेळ्ळुळ्ळि चेन्नबसप्पा के दस बच्चे थे। उनमें मुरिगेम्मा जी नौवीं थीं। उनका जन्मदिन 30 सितंबर 1910 था। मुरिगेम्मा जी की पढ़ाई माध्यमिक शाला तक हुई थी। उनकी जन्मपत्री देखकर ज्योतिषी ने बताया था कि उससे शादी करनेवाला भविष्य में बड़ा नाम पायेगा और उनके घर के आगे हमेशा तीन कारें सेवा में तैयार खड़ी रहेगी। दावणगेरे में यह परिवार बड़ा नामी था। दोस्तों ने सलाह दी कि लड़की सुंदर है और संपन्न व गौरवान्वित परिवार से है। अतः उससे शादी कर ले। लड़की के पिता नहीं थे। ऐसे धनी घराने की लड़की गरीब को मानेगी क्या यह संदेह निजलिंगप्पा

को था। निजलिंगप्पा जी ने दोस्तों से कहला भेजा कि मैं शादी में ज्यादा पैसा खर्च करने की स्थिति में नहीं हूँ, गहने-वस्त्र लेने के भी पैसे नहीं हैं, और लड़की के भाई सरल विवाह करने को तैयार हो तो मानूँगा। बुजुर्गों ने कहा कि लड़की को गहनों की चाह नहीं, वह चाहती हैं सिर्फ शिक्षित युवक। मुरिगेम्मा और उसके भाई मुरिगेप्पा दोनों का विवाह एक साथ करने का निश्चय किया गया। माँ नीलम्मा और काकी सावक्का ने भी लड़की को पसंद किया। विवाह में निजलिंगप्पा के द्वारा वधू के लिए बनवाया गया गहना केवल मांगल्य (मंगलसूत्र) था। उनकी भावना थी कि गहनों के लिए क्यों व्यर्थ पैसे खर्च करें। जमीन-जाय्दाद खरीदने का भी विरोध करते थे। कुल मिलाकर उन्हें वैभव और धन दौलत की चाह नहीं थी। उनका विश्वास था कि दैहिक और नैतिक रूप में परिशुद्ध जीवन जीना मुख्य है। दोनों की जोड़ी अच्छी थी। कालरवाला कोट और पगड़ी में दुल्हा आकर्षक लगते थे। अपने सरल निराभरण सौंदर्य से दुल्हिन ने सबका मन हर लिया। मुरिगेम्मा सिर्फ कन्नड़ जानती थी। वे सीधे स्वभाव संप्रादयस्थ और अच्छी मिजाज़वाली थीं।

मुरिगेम्मा पति और परिवार के प्रति समर्पित एक परंपरावादी भारतीय गृहिणी थी। निजलिंगप्पा भी पत्नी के प्रति आसक्त पति थे। आपसी प्यार और समझ की ठोस बुनियाद पर उनका वैवाहिक जीवन खड़ा था। विवाह होते ही निजलिंगप्पा ने नया घर न बसाया। कुछ समय तक मुरिगेम्मा दावणगेरे में ही थी। दावणगेरे में भी निजलिंगप्पा के काफी मुवक्किल रहते थे। इसलिए दावणगेरे कोर्ट में भी उन्हें बहुत काम रहता था। शनीचर तो काम में बीत जाता। वे चित्रदुर्गा से शनिवार को सुबह ही दावणगेरे जाते थे। मात्र पूरा इतवार पत्नी के लिए रखते थे। सोमवार सुबह चित्रदुर्गा लौट जाते थे। कभी कभी सुदूर शिवमोगा भी काम पर जाना पड़ता था। उन्होंने स्वतः घर बसाया 1927 को। अपने साथ रहने के लिए वे माँ को बुला लाये। वे रहते थे श्री वीरभद्रप्पा जी के घर के पिछवाड़े में। निजलिंगप्पा जी ने सोचा कि अब मैं कमा रहा हूँ इसलिए घर का थोड़ा-सा किराया दे दे, यदि न मानेंगे तो दूसरी जगह घर बसाने की अनुमति दे। इस आग्रहपूर्ण अनुरोध पर वीरभद्रप्पा ने प्रतिक्रिया दी कि यदि आप हमारे मन को दुखाना नहीं चाहते हैं तो अपना घर बनवाने तक इसी घर में बिना किराये रहे। यह प्रतिक्रिया श्री वीरभद्रप्पा जी के स्वभाव के अनुसार ही थी। अतः पहले जैसे ही उनको रहना पड़ा।

निजलिंगप्पा का सुखी परिवार था। वे माँ और पत्नी के प्यार और प्रीति-रक्षा में सुबह धूप में स्नान करते थे। हमारे यह कनिष्ठ वकील धन के पीछे जानेवाले न था। अत: यह परिवार संतृप्त और सुखी जीवन बिताता था। उनकी कमाई और सच्ची संपत्ति सह वृत्तिवालों और मुवक्किलों का स्नेह-विश्वास था। किसी भी केस में जीत हो, इस कनिष्ठ वकील के घर में उत्साह और खुशी रहती थी। दिन-ब-दिन कार्य बढ़ने पर आफिस में सहायक की नियुक्ति करनी पड़ी। वे इस कनिष्ठ वकील को समझाकर मार्गदर्शन करते थे। अपने इन बुजुर्गों से उन्होंने वृत्ति का ज्ञान और कौशल ही प्राप्त नहीं किया बल्कि वृत्ति नैतिकता और मानवीयता, उसमें भी गरीब और असहायकों के प्रति अनुकंपा दिखाना भी सीख लिया। इससे नये नये वकील बनने वाले लालायित कनिष्ठ वकीलों में निजलिंगप्पा जी आदर्श व्यक्ति बने। अपने सहायक जो भी काम करते उनके लिए उन्हें यथोचित धन देने का न्याययुत व्यवहार निजलिंगप्पा जी का था। तीन साल की अल्पावधि में ही उनके महिने की आय एक हज़ार रुपये हो गई थी। आज के रुपये के मूल्य से तुलना करे तो उस समय के लिए यह बहुत बड़ी रकम थी। परंतु उनमें पैसे की बचत करने या जमीन-जायदार खरीदने में आसक्ति न थी। मगर अपने बढ़ते परिवार के लिए अपना घर बनाने की आवश्यकता की ओर ध्यान था। तब तक परिवार बड़ा हो गया था। पहली संतान थी पार्वती जिसका 1928 में जन्म हुआ था। पहला बेटे उमाकांत जिसका 1930 में जन्म हुआ था। उसके बाद दूसरा बेटा राजशेखर का जन्म 1932 में हुआ। सहज ही इस परिवार के लिए घर की अपेक्षा बहुत बड़े आवरण की आवश्यकता थी। निजलिंगप्पा जी ने वेंकटेश एक्सटेंशन में एक घर खरीदा और अपने अनुकूल उसमें परिवर्तन कर लिया। मुख्य बात यह है कि अच्छी तरह हवा और रोशनी घर में हो। बाहर की बस्ती से आकर रात भर ठहरने के लिए अपरिचितों के घर के चबूतंरे में समय बिताना पड़ता था, ऐसे मुवक्किलों के लिए एक घर बनवाया। घर सुंदर था। सभी सुविधाओं से युक्त था। नये घर को साफ सुथरा रखने में निजलिंगप्पा जी की माँ और पत्नी को बड़ा उत्साह था। अब तक निजलिंगप्पा जी ने विदेशी वस्त्रों को पहनना छोड़कर खादी पहनने के प्रति प्रतिबद्ध हो चुके थे। वे कभी भी आलसी होकर समय बरबाद न करते थे। घर में कोई न कोई कार्य करते ही रहते थे। बागवानी में उन्हें बड़ी दिलचस्पी थी। खेल-कूद में भाग लेना और उचित विश्रांति को वे परस्पर विरोधी न समझते

थे। वैसे तो वे परस्पर पूरक थे। वे नगर के आफीसर्स क्लब के सदस्य बनकर सभी कार्यक्रमों में भाग लेते थे। आगे वे उस क्लब के सचिव चुने गये। उनकी कार्यव्याप्ति में वित्त व्यवहार भी शामिल था। कितने ही लोगों को सदस्यता शुल्क दिये बिना क्लब की सुविधाएँ पाते देख चकित हुए। ऐसे लोगों में न्यायपालिका के अधिकारी और एक मुन्सीफ भी थे। कल्ब में प्रवेश पाने के बाद इन्होंने एक बार भी सदस्यता शुल्क नहीं भरा था। ऐसे अव्यवहार को रोकना चाहा। अवैद्य को ठीक करना शुरू किया। शुल्क भरने के लिए कहे तो वह अधिकारी कुपित हो सकता था, इसकी जानकारी निजलिंगप्पा को थी। इसका परिणाम अदालत के अपने कार्य पर भी पड़ेगा, उसे जानते थे। परंतु तत्त्व के आधार पर कानूनी कार्यवाई करने से नहीं हटे। जिन्होंने शुल्क नहीं भराओ ऐसे अधिक अधिकारी वर्ग और अन्य लोगों को जानकारी देनेवाले पत्र भेजे और उन पर शेष धन का भी उल्लेख किया। निजलिंगप्पा को मुन्सीफ़ का कोपभाजन बनना पड़ा। इसके विरुद्ध प्रतिकार लेने की बात कहकर उसे डराया था। निजलिंगप्पा ने तब साधारण सभा बुलाकर उस अधिकारी के असभ्य व्यवहार पर सब का ध्यान आकर्षित किया। आखिर सभा ने मुन्सीफ़ के व्यवहार का खण्डन किया। इसे समझकर सरकार ने उसका दूसरी जगह बदला कर दिया। भले ही यह एक छोटी-सी घटना होगी, परंतु अपराधी कोई भी हो, कभी भी अन्याय और गलतियों के विरुद्ध सिर न झुकानेवाले निजलिंगप्पा के मनोभाव का द्योतक है। उनके कोमल व सौजन्यपूर्ण व्यवहार का परिचय जिनको है वे तत्त्व और नीति के विषय में वे कितना कठोर बनेंगे कि उसके लिए यह घटना उदाहरण बन सकते हैं।।

अन्य लोगों ने पत्र पाते ही शेष शुल्क दे दिया था। मगर परिस्थिति उतनी सरल नहीं थी। अधिकारी सदस्यों ने तर्क करते हुए कहा कि क्लब हमारा अपना है, सिर्फ अधिकारेतर सदस्यों की सुविधाओं के लिए शुल्क अदा करना है। इस तर्क में यह अहंकार भाव था कि हमारा साधारणों के साथ समीकरण न करें। अधिकारी सदस्यों ने तर्क दिया कि अधिकारेतर सदस्यों को धन तो अदा ही नहीं करना, क्लब में सहूलियतों का उपयोग करने का मौका देने के कारण उन्हें अधिकारियों के प्रति कृतज्ञ रहना चाहिए। इस विवाद के कारण अधिकारेतर सदस्यों ने अपनी सदस्यता छोड़कर निजलिंगप्पा जी के नेतृत्व में अपना अलग क्लब बना लेने का निश्चय किया। इससे क्लब के अध्यक्ष को चिंता हुई। क्लब अधिकारेतर सदस्यों के समर्थन पर आश्रित था। क्योंकि वे

सब उस नगर के शाश्वत निवासी थे। अधिकारी सदस्य का तो बार बार तबादला होता था। जिला मुख्य अधिकारी बने जिलाधिकारी विविध संघों को मिलाकर, दोनों पक्षों को इसी क्लब में ही मिलकर रहने के लिए मनाने में सफल हुए। निजलिंगप्पा जी ने इसका स्वागत किया। वे हमेशा समरसता और शांति के समर्थक होकर केवल अनिवार्य संदर्भों में तात्विक स्तर पर लड़ने में आगे आते थे। इसमें भी वे सच्चे गाँधीवादी जैसे व्यवहार करते थे। प्रमुख तात्विक आधार पर करार न मानने पर भी गौण विषयों में आनुषंगिक विषयों में करार के लिए तैयार थे।

निजलिंगप्पा जी का जीवन पूरा अनुशासित था। दैनिकी का क्रमबद्ध होकर पालन करते थे। उनकी दैनिकी प्रातःकाल पाँच बजे शुरू होकर घड़ी के समान ठीक चलती थी। समय का मूल्य जानते थे। इसलिए अपने अत्यंत उपयुक्त कार्यक्रमों के बीच व्यर्थ समय बरबाद न करते थे। प्रातःविधि समाप्त करके आठ बजे वे अपने दफतर में आकर अपने कार्य में लग जाते थे। काम शुरू करने से पहले समाचार पत्र पर नज़र डालकर सहायक वकीलों को सूचना देते। उसके बाद फैलों के अध्ययन में लग जाते थे। फिर आये मुवक्किल के साथ बहस करके अपने केसों के हियरिंग के लिए हाजिर होने अदालत में चले जाते थे। यदि वह क्रिमिनल केस हो तो दुपहर का खाना चूक जाने का भय रहता था। शाम करीब साढ़े चार बजे चाय के लिए घर लौट आते। उसके बाद फिर समाचार पत्र पढ़ते थे। इसी समय वे घर में परिवार के साथ आराम से समय बिताते थे, विशेषकर माँ और पत्नी के साथ। बच्चे भी पिता के साथ थोड़ा समय बिताते। उसके बाद घर के बगीचे में ठहलते और शाम क्लब चले जाते। वे हाकी आदि खेल न जानते फिर भी क्रिकेट, टेनिस उसके प्रिय खेल थे। एक घंटे टेनिस खेलते। टेनिस के बाद फिर एक घंटे ताश खेलते। और अंत में घर लौटते। रात के भोजन के बाद थोड़ा विश्राम कर नींद आने तक अंग्रेजी उपन्यास या नाटक देखते रहते। साधारणतः रात 10 बजे उनकी दैनिकी समाप्त होती थी।

काम करने की उत्सुकता में और मूल्य व दृष्टिकोण के विषय में उन्होंने दादा को आदर्श बना लिया था। माँ के प्रति तो उनकी संपूर्ण निष्ठा थी। माँ की इच्छा के विरुद्ध वे कभी नहीं गये। माँ पुरानी परंपरा की थी और संप्रदाय के प्रति श्रद्धा रखती थीं। इन संप्रदायों पर विश्वास न रखते हुए भी निजलिंगप्पा

जी को कुछ नियमाचरणों का अनुसरण करना पड़ता था। नहीं तो माँ को दुःख होता। नीलम्मा जी को संतुष्ट करने के लिए घर के सभी लोग स्नान करके लिंगपूजा करते थे। उन दिनों निजलिंगप्पा जी को भगवान पर विश्वास होने पर भी आचरण के रूप में पूजा करने का विरोध था। शिव सर्वांतर्यामि है। अतः इष्टलिंग जैसे संकेत कोई माने न रखता यह उनकी धारणा थी। उपनिषद में वर्णित देव निराकार, सर्वशक्त, अनिर्वचनीय और निरंजन है, इसमें उनका पूरा विश्वास था। देव संबंधी चिंतन-मनन को महत्व देते थे। ताकि इससे व्यक्ति और प्रकृति के बीच संबंध का स्वरूप कैसा होगा, इसमें कुछ प्रकाश पड़ सके। इससे व्यक्ति अच्छा कार्य कर सकता है। भगवान के लिए अर्पित होने से श्रेष्ठ कोई पूजा है तो वह सत्कार्य है। 3 अक्टोबर 1983 में प्रो. दे. जवरेगौड़ा जी को दिये साक्षात्कार में इसके बारे में अपने विचार यूँ व्यक्त किये हैं। "मेरी समझ में, हर एक जीव के अन्तर में कोई एक चेतना छिपी हुई है। प्रकृति को देखते ही मैं अपने को भूल जाता हूँ। मेरे विचार में मैं भी प्रकृति का एक भाग हूँ। प्रकृति के बारे में चिंतन करना भी एक प्रकार से ध्यान ही है। सृष्टिकर्ता के अद्भुत शिल्प को देख मैं पिघल जाता हूँ। सौंदर्य के आस्वादन में वह मदद करता है। कई बार देवालय गया हूँ, मित्रों के संतोष के लिए भगवान के समाने हाथ जोड़ नमस्कार भी किया है। संत-महात्माओं के सामने मैंने सिर झुकाया है। वहाँ मुझे दैवत्व का अस्तित्व दिखाई पड़ा है। राजघाट, वृंदावन, एडयूर, मलै महदेश्वर पहाड जैसे स्थानों में जाने पर मेरी अतःप्रज्ञा जागृति हुई है। मैं बाह्य जगत् भूल सका हूँ।" इससे निजलिंगप्पा में भगवान की सर्वव्याप्ति में जो विश्वास है उसका पता चलता है। वैसे तो उन्होंने भगवान को माँ के स्वरूप में देखा है।

निजलिंगप्पा की माँ को तीन पोतों पर और उन्हें, जन्म देनेवाली बहू पर अधिक प्यार था। एक अर्थ में परिवार में तीन पात्रों की भूमिका निभानेवाली अपढ़ माँ, जो गरीबी से संघर्ष करती रही, जो एक कम पढ़ी लेकिन सुंदर पतिनी थी और जिसका पति अपनी प्रतिभा से आगे बढ़ा था – ये अनुभव और संस्कृति में भिन्न था। परंतु वे अत्यंत समरसता से मिलकर जीवन बिताते थे। पारिवारिक संतोष में भागीदार होते थे। यह संतुलन सूक्ष्म होता है, ज़रा से कारण से संतुलन खो सकता है। एक संदर्भ में, जैसे समस्त भारतीय गृहस्थ जीवन में चलता है वैसे ही सास-बहू के बीच विरस के कारण माँ उपवास पर

बैठ गयी। उनको खाने के लिए मनवाने में निजलिंगप्पा जी को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। तब इस दंपति ने निश्चय किया कि आगे ऐसी स्थिति न आये उसके लिए सतर्क रहे और बुजुर्ग माँ की बात का सम्मान करना चाहिए। इस प्रकार दंपति ने आत्माभिमान की ओर ध्यान न देकर पारिवारिक सामरस्य को स्थापित किया। निजलिंगप्पा जी की दीदी पुट्टम्मा का उसके मामा से ही विवाह हुआ था। विवाह होकर पति के घर पुट्टम्मा के जाते ही, इधर निजलिंगप्पा के कम पढ़े बड़े भाई ने हलवागिल से चित्रदुर्ग आने का निश्चय किया। निजलिंगप्पा जी की आर्थिक सहायता से बड़े भाई ने जीवनोपार्जन के लिए एक दूकान खोली। आगे भी निजलिंगप्पा जी ने अपनी कमाई को कम आमदनीवाले भाई के साथ बाँट लिया। वैसे तो पुट्टम्मा के बड़े बेटे बसवराज का पालन निजलिंगप्पा जी ने किया था। एक बार पत्नी मुरिगेम्मा ने सूचित किया कि अपने स्वयं के भविष्य अर्थात् अपने बच्चों की पढ़ाई और विवाह के बारे में सोचे और उसके लिए थोड़ा धन इकट्टा करे। तब निजलिंगप्पा जी ने बसवण्णा के वचन का उदाहरण देकर समझाया कि कल के लिए आज का सुख त्यागना नहीं चाहिए। पत्नी तो उस समय चुप हो गयी, परंतु मन की गहराई में बच्चों के भविष्य की चिंता सताती रही। कमाई के भाग को अन्यों को अर्थात् बड़े भाई को उदारतापूर्वक देने का पत्नी ने जब विरोध किया तब निजलिंगप्पा जी ने कुडबुड़ाते हुए कहा – ''तीन साल से जीवन गुजारने पर भी तुमने मुझे समझा नहीं। मेरा भाई बदनसीब है। उसकी मदद करना हमारा कर्तव्य है। इससे माँ भी खुश होगी। मैं भी जीवन में कई लोगों की उदारता से ही यहाँ तक आगे आया हूँ। मेरी सहायता माँगनेवालों को खाली में हाथ लौटा नहीं सकता। यदि वे दुःखी हों तो हमारे बच्चों का भला न होगा। गरीब लोग दैव स्वरूप हैं। भगवान शिव ने जो दिया है उसे शिव को ही अर्पित करना चाहिए न? पैदा होते समय हम कुछ नहीं लाये और मरने पर कुछ नहीं ले जायेंगे।'' मगर मुरिगेम्मा जी ने तो आग्रह किया कि ''कम से कम हमारी बेटियों के लिए गहने तो बनाना चाहिए न? सोना हमारे मुसीबत के दिनों में काम आता है।'' अच्छे दिनों में, आगे कुछ अनहोनी होने की आशंका में बैठना नहीं चाहिए।'' और निजलिंगप्पा जी ने तर्क दिया कि 'शादि के समय में कहा था न कि मुझे सोने का मोह नहीं।' अंत में कहा कि 'बच्चों को अच्छी शिक्षा देना हमारा कर्तव्य है। इससे वे अपना भविष्य खुद रूपायित कर सकते हैं और बच्चों की अति रक्षा करने से बच्चे बिगड़ भी सकते हैं।' वे चुप हो गयी क्योंकि उन्हें पति के विवेक पर भरोसा था।

निजलिंगप्पा जी का घर-संसार मुक्त और गौरवपूर्ण था। संतान अधिक होने से घर का खर्चा भी बढ़ गया था। साथ ही मुवक्किलों और गरीब विद्यार्थियों के लिए भोजन और आतिथ्य का खर्च भी। निजलिंगप्पा जी दूसरों की सहायता से आगे आये थे, इसलिए गरीब विद्यार्थियों के प्रति उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में वे अधिक संवेदनाशील और सहानुभूति रखनेवाले थे। खर्चा बढ़ रहा था और आमदनी भी काफी थी, परंतु समस्या पैसे की नहीं थी। इतने सारे लोगों की भोजन की व्यवस्था कौन करे ? घर का दूसरा कार्य भी कौन निभाये ? इसके बारे में मुरिगेम्मा जी ने पति से कहा भी। परंतु निजलिंगप्पा जी ने उसे गंभीर रूप में न लिया और मज़ाक में कहा, ''ये गरीब बच्चे सब तुम्हारे ही बच्चे होते तो क्या करती ?'' यदि उनके पास संपति होती तो वे क्यों भोजन माँगने हमारे पास आते ? साथ ही औरतों को मर्दों को निभाने की कला भगवान ने दी है। तुम चाहो तो और भी नौकरों को रख सकती हो।'' अब नौकरों की सेना ही थी। निजलिंगप्पा जी के यहाँ नौकरों का स्वरूप ऐसा था कि उन्हें वेतनभोगी नौकर के रूप में नहीं, उन्हें घर के सदस्य के समान देखते थे। उन्हें रहने के लिए जगह भी दी थी। निजलिंगप्पा जी नौकरों को ममता दिखाते, गौरव देते। कभी भी नौकरों के शोषण के लिए मौका न देते। वे सहज ही उनसे मिलते और त्योहार के दिन साथ बिठाकर खाते थे। एक बार एक सेवक ने उनके पास आकर कहा कि राजस्व अधिकारी से कहकर अपने लिए सरकारी जमीन मंजूर कराये। परंतु वैसा करने का निजलिंगप्पा का मन न हुआ। उसके बदले मार्केट में जमीन खरीदने के लिए धन की मदद की। रसोइया जब मर गया, तब निजलिंगप्पा जी ने स्वयं उत्तरक्रियाओं की जिम्मेदारी ली। उन्हें सेवक-मालिक, जाति-मत इन विषयों में कोई भेदभाव नहीं था। घर के सदस्य की तरह एक नौकर कहीं भी घर के भीतर घूम सकता था। वास्तव में निजलिंगप्पा जी के घर में नौकर बनना जीवन का पुण्य माना जाता था। परंतु असाधारण औदार्य के साथ अनुशासन और काम के प्रति निष्ठा वे नौकरों से चाहते थे। वे कभी भी काम के प्रति उदासीन भाव को सहते नहीं थे। जो भी गलती करे, वे गलती करनेवालों को दण्ड देते थे। एक बार एक नौकर ने खोटा सिक्का तैयार करने के अपराधी की ओर से वकीली करने को कहा तो निजलिंगप्पाजी ने न माना। मगर जब उन्हें मालूम हुआ कि वह अपराधी नहीं था तो निजलिंगप्पा ने अपना विचार बदल लिया और अपने वकील मित्र को उसके केस की वकालत सौंप दी।

शायद निजलिंगप्पा जी को बसवण्णा के वचन 'दया रहित धर्म वह कौन-सा है!' पर अनन्य निष्ठा थी। मुग्धता और अनावश्यक दर्द को देखने पर उनका मन पिघल जाता था। मूक जानवरों के प्रति भी यही अनुकंपा की भावना थी। सड़क के कुत्तों के साथ कूडे में जूठन के लिए स्पर्धा करते नंगे भिखमंगों और भूखे हरिजनों को देखकर उन्हें अतीव दुःख होता था। दूध के लिए घर में काफी गाय भैंस थीं। निजलिंगप्पा जी खुद उनका ख्याल रखते थे। उन्होंने आदेश दिया था कि बछड़े के पेट भर दूध पीने तक दूध न दुहे। अपनी जीविका के लिए बंदर कुत्ता भालू आदि प्राणियों का उपयोग करना वे कभी पसंद न करते थे, परंतु द्वेष करते थे। वे सर्कस के प्राणियों के प्रति भी करुणा दिखाते थे। उनके घर के बगीचे के पौधे भी ममता के पात्र बने थे।

वृत्ति जीवन में निजलिंगप्पा जी ने परिपूर्ण वकील-वृत्ति के साकार रूप के समान चित्रदुर्गा जिला में यश पाया था। गरीब मुवक्किलों के तो वे प्राण स्वरूप थे। इनपर उनका विशेष गौरवादर था। मुवक्किलों से बहुत कम धन लेते या नहीं के बराबर ही। एक बार ऐसा हुआ कि मोळकाल्मूर के किसान को उसके बंधु ने जमीन के विषय में धोखा दिया था। उस गरीब किसान को लॉयर को देने के लिए भी पैसे न थे। किसी ने सलाह दी कि निजलिंगप्पा जी से मिलो। और एक बार गढ़ीरिया समुदाय के चळ्ळकेरे के एक गरीब व्यक्ति ने एक धनी वीरशैव व्यक्ति के पास ज़मीन गिरवी रखी थी। वह धनी ने सूद पर सूद लगाकर ज़मीन को हड़पना चाहता था। किसी ने सलाह दी कि दीनबंधु , दीन सहायक निजलिंगप्पा से मिलो। परंतु उसे संदेह था कि एक धनी वीरशैव के विरुद्ध यह वीरशैव वकालत् करेंगे क्या? परंतु उसे सलाह देनेवाले ने कहा कि निजलिंगप्पा जी जाति-भावना से परे हैं, वे न्याय के लिए लड़नेवाले हैं। उनमें परिणत-वृत्तिपरता और गरीबों के पक्ष में न्याय के लिए लड़ने की मानवीयता दोनों का अपूर्व संयोग था। जिले के लोग उन्हें इसीलिए गौरव देते थे कि उनमें वृत्ति कौशल्य के साथ मानवीय-प्रेम था। प्रो. जवरेगौड़ा जी के अनुसार निजलिंगप्पा जी के प्रतिवाद-कौशल पर उनके समकालीन अत्यंत सम्मान रखते थे। न्यायपालिका के पदों पर नियुक्ति के लिए सरकार सामान्यतः निजलिंगप्पा जैसे वकीलों को चुनने के लिए ढूँढ़ती भी। उन्हें न्यायपालिका के पद पर बिठाने के लिए सरकार ने वकील-वृत्ति छोड़ने के लिए उकसाया था। परंतु निजलिंगप्पा जी उसके शिकार न हुए। पहले से सरकारी वृत्ति के प्रति तिरस्कार भाव था। और कमाई की दृष्टि

से भी। वकील वृत्ति की बराबरी नहीं करती थी। परंतु निजलिंगप्पा जी के उस निर्णय के लिए वही एक कारण नहीं था।

एक बात यहाँ स्पष्ट करनी है। उनपर एक आरोप लगा कि वे कर्नाटक के एकीकरण के लिए समर्थन देने के पीछे वीरशैव बल को प्रदेश में स्थापित करना उनका उद्देश्य था। परंतु वह ठीक नहीं थी; वे सच्चे मायने में लिंगायत होने पर भी कौमियत न रखते थे। वे एक विचारवादी थे। स्वतंत्र विचारक थे। वे वीरशैव क्रांतिकारक मनोभाव का अनुसरण करते थे। वैसे तो, बसवेश्वर के उन्नत तत्वों का अनुसरण न करनेवाले वीरशैवों के प्रति उनमें तीव्र असंतोष था। उनका विश्वास था कि अपनी नीयत् में और आचरण में जो शुद्ध हैं उन्हें माठाधिपति के चरण छूने या शासकों के पैर पड़ने की आवश्यकता नहीं। उनका मन गुलामी और दुर्जनता के मनोभाव के विरुद्ध था। औपचारिकताओं का विरोध करते थे। उनमें प्रजातंत्र के प्रति अत्यंत निष्ठा और विश्वास; महाराजा जब चित्रदुर्ग आये तब उन्होंने कभी भी आसक्ति न दिखाई। उनका मनोभाव धार्मिकता को विचार की कसौटी में कसकर देखने का था। 1927 में बेंगलूर में आयोजित वीरशैव महासभा के अधिवेशन में निजलिंगप्पा जी ने विधवा विवाह के समर्थन में निर्णय रखा। यह निर्णय पुराने मैसूर राज्य के कई संप्रदायबद्ध शरणों के आक्रोश का कारण बना। फिर भी उनके तर्क-कौशल और वैचारिकता ने प्रेक्षकों का मन जीता।

निजलिंगप्पा ने भविष्य के स्थानीय और राष्टीय्र राजनीति में महत्वपूर्ण पात्र निभायी। उसे देखने से, आश्चर्य होता है कि प्रारंभ में उन्होंने राजनीति के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी थी। उनका हित चाहनेवाले ने नगर-सभा के चुनाव में स्पर्धा करने के लिए स्थानीय राजनीति में भाग लेने के लिए प्रेरित किया तो उस सलाह को उन्होंने न माना था। उन्हें चुनाव की राजनीति में फँसने की इच्छा नहीं थी। क्योंकि उससे स्पर्धा, मत्सर और संघर्ष उत्पन्न होते हैं और इनसे द्वेष का वातावरण उत्पन्न होगा। अधिकारी वर्ग उनके अनुभव और विवेक का उपयोग नगर सभा के प्रशासन में लेने को उत्सुक थे। इसलिए निजलिंगप्पा जी नगर सभा के सदस्य के रूप में नामित हुए। लगभग चार महीने बाद, उन्हें लगा कि उनका निर्णय ठीक है। सदस्यता की अवधि में निजलिंगप्पा जी ने नागरिक सुविधा दिलाने का प्रयास किया। क्षुद्र राजनीति को किनारे रखकर सभी रचनात्मक कार्यक्रमों में भाग लेते थे। नगरसभा में जो मनमुटाव था उसे

दूरकर सदस्यों में सामरस्य लाने में निजलिंगप्पा जी ने जो प्रभाव डाला वह उल्लेखनीय है। परंतु वे सतर्क रहे कि यह उनके वृत्ति जीवन के लिए हानिकर न हो। पारिवारिक सामरस्य, वृत्ति के यश और समृद्धि से भरपूर उनके प्रशांत जीवन में यह भूमिका एक छोटा-सा मोड़ है। इस संदर्भ में उन्हें राजनीति ने आकर्षित न किया। क्योंकि उन्होंने जो साधना की उससे भिन्न कुछ भी राजनीति ने न दिया। ब्रिटिश शासन में गरमाता राष्ट्रीय आंदोलन चलता था। अभी राजाओं के शासन में राज्य कलुषित न थे। मैसूर के महाराजा के प्रशासन ने लोगों में अतृप्ति न पैदा की थी। अतः राज्य राजनीति ने उन्हें आकर्षित नहीं किया था।

राष्ट्रीय आंदोलन में सीधा भाग न लेने पर भी, वे सभी घटनाओं को दिलचस्पी से देखते थे। 1922 से ही वे गाँधीजी के निष्ठावान अनुयायी थे। गाँधीजी के लेखों को अत्यंत चाव से पढ़ते थे। उनके कार्यों को कुतूहल से देखते थे। उन्हें सत्याग्रह तत्व को ग्रहण करने में बहुत कुतूहल था। हिन्दू-मुसलमान एकता पर गाँधीजी की पुकार ने निजलिंगप्पा को आकर्षित किया था। उन्होंने 1924 में बेलगाँव में संपन्न कांग्रेस अधिवेशन में उत्साह से भाग लिया था। 1927 में गाँधीजी स्वास्थ्यलाभ के लिए बेंगलूर के पास नंदीहिल्स में ठहरे थे। तब महात्मा जी के स्वास्थ्य संबंधी विवरण रोज़ कुतूहल से पढ़ते थे। इस प्रकार साइमन समिति का बहिष्कार, नेहरू रिपोर्ट और 1930 में लाहोर में संपन्न होकर भारत में गणराज्य स्थापना की चाह जैसा क्रांतिकारी निर्णय लिया कांग्रेस अधिवेशन – आदि राज्य के बाहर चलते राजनैतिक कार्यक्रमों के बारे में दूर से ही चाव से देखते थे। सरदार पटेल जी के नेतृत्व में 1928 में बारदौली सत्याग्रह के यश पर निजलिंगप्पा में गौरव भाव जगा। छुटपन से ही उन पर 'कर्नाटक गाँधी' के रूप में प्रसिद्ध हर्डेकर मंजप्पा जी का प्रभाव था। इसलिए उनके मन में कई बार राजनीतिक आकर्षण और वृत्तिपरता के बीच संघर्ष चलता था। एक साथ दो नावों पर पैर रखना विवेक नहीं समझ उन्होंने तत्काल अपनी वकीली वृत्ति पर ध्यान देना ठीक समझकर उस क्षेत्र में महान् बनने की साधना करने का निश्चय किया। इस बीच देश में महत्वपूर्ण बात हो रही थीं। कांग्रेस प्रतिनिधियों की उपस्थिति के बिना लंदन में गोल मेज़ परिषद् चला। जैसा कि पहले ही मालूम था किसी भी ठोस निर्णय के बिना बैठक समाप्त हुई। ब्रिटिश समझ गये कि गाँधीजी के सहयोग के बिना भारत की जनता के साथ कोई भी अर्थपूर्ण संवाद संभव नहीं। अतः इस दुबले अधनंगे फकीर को दूसरे गोल

मेज़ परिषद् के लिए आमंत्रित किया गया। गाँधीजी ने इस सभा में राष्ट्रीय एकता पर अपनी निष्ठा प्रकट करते हुए अल्पसंख्यकों के लिए अलग चुनाव के हक का विरोध किया था। लंदन से लौटने के बाद गाँधीजी ने सरकार को चेतावनी दी कि कांग्रेस सत्याग्रह और असहयोग आंदोलन आरंभ करेगा। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में ब्रिटिश शासन ने कांग्रेस नेताओं को कैद किया और कांग्रेस का बहिष्कार किया। 1932 में धक्का पहुँचानेवाली खबर कि मुस्लिम और हरिजनों को प्रत्येक चुनाव का हक देने की सरकार सोच रही है, यरवाड जेल में पड़े गाँधीजी के कानों में पड़ी। तुरंत इसके विरुद्ध उन्होंने उसी वर्ष 20 सितंबर से आमरण अनशन आरंभ करने की घोषणा की। इसे सुनकर सारा देश अंधकार में डूब गया। केवल हमारा देश ही नहीं, सारा संसार इन घटनाओं पर गौर कर रहा था। नेताओं के मध्यप्रवेश और अंबेड्कर के समझौते से यह समस्या हल हुई। महात्मा जी का जीव बच गया। गाँधीजी के द्वारा फल का रस सेवन कर उपवास पूर्ण करने पर निजलिंगप्पा जी ही नहीं, सारे देश ने चैन की साँस ली। निजलिंगप्पा के आतंर्य में सक्रिय गाँधीवादी बनने की ललक जगी। परंतु घर की स्थिति इसके लिए अनुकूल न थी। गाँधीजी के लोह-चुंबक व्यक्तित्व और नैतिक सत्व से आकर्षितों में निजलिंगप्पा जी ही नहीं और भी लोग थे। 1933 में गाँधीजी ने 'हरिजन' पत्रिका शुरू की। तब उसे भगवद्गीता की तरह पूरा पढ़ लेते थे निजलिंगप्पा जी। अब तक वे गाँधीजी के अनुयायी बन पूर्ण समय पाने पर भी, स्वास्थ्य और शुचिता के बारे में महात्मा के आचरणों के अनुसरण का प्रयत्न करते थे। कुछ हद तक वे गाँधीजी की आहार पद्धति को मान गये थे।

1935 में, ब्रिटिश सरकार ने भारत में सीमित स्वयंशासन और परिसंघ पद्धति अमल में लाने के द्वारा थोड़ा सुधार लाने की घोषणा की। 1935 की विधि के अनुसार चुनावों में भाग लेने के लिए कांग्रेस संस्था मान गयी। छः प्रांतों में कांग्रेस को बहुमत मिला। और तीन प्रांतों में अधिक संख्यक सदस्य पक्ष के रूप में उभरा। आज के भारत की स्थिति को देखकर ही शायद, रिश्वतखोरी और अधिकार दुरुपयोग के विरुद्ध वृद्ध पितामह ने अधिकार की गद्दी पर बैठ कांग्रेस को चेताया था। सितंबर 1939 में विश्व महायुद्ध के आरंभ होने पर गाँधीजी ने हिट्लर की अमानवीयता का तो खण्डन किया परंतु भारत को गुलामी में रखे ब्रिटिश और उनके मित्रों की भी आलोचना की। उनके नायकत्व

में कांग्रेस ने युद्ध प्रयत्न के लिए समर्थन देने से इन्कार किया। कांग्रेस सरकारों ने त्यागपत्र दे दिया।

निजलिंगप्पा जी जो गृहस्थ और वकील थे उन दिनों की ओर मुड़कर देखने से उनके व्यक्तित्व और व्यवहार हमें चकित कर देते हैं। यहाँ निरूपित कथन कुछ लोगों को अतिशयोक्ति या कल्पनात्मक लग सकता है। मगर ऐसा नहीं है। आज हमारा राष्ट्रीय जीवन ऐसी स्थिति पर पहुँचा है कि यह विश्वास करना कठिन है कि वकील और राजनीतिज्ञ सज्जन और प्रामाणिक भी थे। परंतु निजलिंगप्पा ये दोनों थे - सज्जन और प्रामाणिक। इसके लिए अनगिनत आधार दिये जा सकते हैं। हाँ, यह अलग प्रश्न है कि क्या उन जैसे व्यक्ति हमारे समसामयिक सार्वजनिक जीवन में जो अपराधी काले धंधेवालों और भ्रष्ट लोगों से भरा है, बचे रह सकते हैं। ऐसे व्यक्ति रह नहीं सकते, यह बात सच होने पर भी उनको शरणागत होने की जरूरत नहीं। क्योंकि आज की स्थिति की ओर उँगली दिखाकर किसी देश का स्वरूप रचना संभव नहीं। एक आधुनिक देश के रूप में न होने पर भी, एक संस्कृति के रूप में भारत युगयुगांतरों से महत्तर साधना द्वारा जींवत रहा है। उसका तुरंत तिरस्कार करना ठीक नहीं। निजलिंगप्पा जी अद्यतन परिस्थिति से दुखी होने पर भी आशावादी थे। भ्रष्टाचार और अपराधी वातावरण के प्रस्तुत संदर्भ में शुद्ध करने के लिए प्रयत्नशील थे। उनकी तो वास्तविक प्रज्ञा थी। कोई दैवी चमत्कार तो संभव नहीं। वास्तविकता निराशावाद के लिए कारण नहीं बननी चाहिए। अतः यहाँ का चित्र यह विश्वास दिलाता है कि, यदि संकल्पशक्ति और बद्धता हो तो कुछ भी साधा जा सकता है।

3. राष्ट्रीय आंदोलन के प्रवाह में

राष्ट्रीय आंदोलन में, कूदना – इसका पूर्ण अर्थ यह नहीं, कि अचानक प्रवेश हो गया। क्योंकि लंबे समय से, निजलिंगप्पा जी के मन में, यह विचार गुनगुना रहा था। इस कूदने का यह अर्थ है कि अपने प्रदेश के राजकीय जीवन में, उन्होंने सीधा प्रवेश किया और राष्ट्र उनके जीवन में गुणात्मक परिवर्तन लाया और उसकी लय व दिशा बदल गई। इससे बहुत पहले ही गाँधीजी के आदर्शों ने उन्हें आकर्षित किया था। अपने आसपास के परिवर्तन को वे सूक्ष्मरीति से देख रहे थे। उसके साथ ही, वे सीधे राजनीति में, भाग लेने से प्रज्ञापूर्वक ही दूर रह गए थे। शुरू में, कांग्रेस को धन की सहायता करते हुए, राष्ट्रीय आंदोलन में अपने आपको सांकेतिक रूप में पहचान देने तक ही तृप्त रह गए थे। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय, राजनीति का, सहज प्रबल आकर्षण तथा उससे दूर रहने का संकल्प, इन दोनों के बीच संघर्ष उनके मन में चल रहा था। निजलिंगप्पा जैसे राजकीय प्रज्ञा व आदर्श को रखनेवाले उस समय के किसी भी युवक को, राजकीयाकर्षण के प्रबल खिंचाव से छुटकारा पाना बहुत ही कठिन था। समूचा राष्ट्र, राष्ट्रीय मनोभाव से तप रहा था। विद्यार्थियों ने शाला-कालेज का बहिष्कार किया। वकीलों ने न्यायालय में प्रवेश नहीं किया। श्रमिक वर्ग ने काम से दूर रहने में संकोच नहीं किया। यह सब हो रहा था, राष्ट्रीय भावना से और साम्राज्यशाही के विरुद्ध। इस वातावरण ने उन्हें चुप रहने नहीं दिया। इस व्यापक ऐतिहासिक प्रक्रिया से स्वयं दूर रहना, उनके मन को अशांत कर रहा था। अपराध बोध से वे तड़प रहे थे। जब वे ऐसी दुविधा में पड़े थे, तो उसी समय मैसूर राज्य कांग्रेस के अध्यक्ष, टी. सिद्धलिंगय्या जी कांग्रेस के प्रचारकार्य के लिए चित्रदुर्ग आये। निजलिंगप्पा जी के दृढ़ व्यक्तित्व ने उन्हें प्रभावित किया; उन्होंने चाहा कि ऐसा सदाचारी व्यक्ति, कांग्रेस की मदद करे। ऐसे अमूल्य रत्न का मन जीतने के लिए, वे अपने सहयोगी कार्यकर्ताओं के साथ निजलिंगप्पा जी से मिले। पहली मुलाकात में ही, इस युवा वकील ने उनको बहुत प्रभावित किया। मैसूर कांग्रेस में प्रवेश करने के

लिए, उन सभी ने निजलिंगप्पा जी से आग्रह किया। परंतु निजलिंगप्पा जी ने कहा कि, अपने ऊपर निर्भर अपने पारिवारिक हित की वे उपेक्षा नहीं कर सकते। फिर भी उन्होंने स्पष्ट किया कि, जो कुछ बन पाता है, कांग्रेस की सहायता करने के लिए वे तैयार हैं। सिद्धलिंगय्या का अभिप्राय था कि, महान कार्यों के लिए, बड़े त्याग की आवश्यकता है। अंत में ''मुझे राजनीति में प्रवेश करने की इच्छा नहीं है, मुझे टेनिस खेलने क्लब जाना है'' कहते हुए उन्हें बिदा किया। परंतु सिद्धलिंगय्या व उनके सहयोगी, निराशा नहीं हुए। वे सभी निजलिंगप्पा जी के पीछे पीछे क्लब पहुँचे, और उनके खेल खतम होने तक इन्तजार किया। फिर एक बार उन्होंने उन्हें मनाने की कोशिश की। कुछ लाभ नहीं हुआ। वे वापस लौटे।

उस प्रदेश के अनेक कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने कांग्रेस में आने के लिए उन पर दबाव डाला। उन्होंने पहचान लिया था कि निजलिंगप्पा जी में एक महान नायक के गुण छिपे थे। निजलिंगप्पा जी की चिंता थी कि यदि उन्हें जेल जाना पड़ा तो उनके परिवार का क्या होगा ? फिर भी स्वतंत्रता आंदोलन के लिए, राष्ट्रनायकों के बड़े त्याग का स्मरण करते हुए उनके मन में बड़ी उथलपुथल मचती थी। इसी समय, भारत सेवादल के संस्थापक व मुंबई कर्नाटक प्रदेश के बुजुर्ग कांग्रेसी, नारायणराव हर्डीकर जी इस प्रदेश की राजनीतिक परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए यात्रा करते हुए चित्रदुर्ग पहुँचे। उनका प्रमुख उद्देश्य था कि, राष्ट्रीय आंदोलन का जो दूसरा नाम कांग्रेस रहा, उसमें निजलिंगप्पा जी को प्रवेश करने के लिए प्रभाव डाले। हर्डीकरजी, निजलिंगप्पा जी के साथ जिले भर में घूमे फिरे। जहाँ भी गए, लोग निजलिंगप्पा जी का बहुत सम्मान करते थे। इससे हर्डीकरजी बहुत प्रभावित हुए। दुंविधा में पड़े निजलिंगप्पा जी के सामने उन्होंने बयान दिया कि गाँधीजी के नेतृत्व का स्वातंत्र्यांदोलन अंतिम घड़ी पर पहुँच चुका है, थोड़े ही समय में, ब्रिटिशों के शासन से मुक्ति मिलनेवाली है। उनसे यह भी कहा कि भारत के इस राष्ट्रीय आंदोलन के सुवर्ण समय में वे भी इस कार्य में भाग ले। अंत में, जब निजलिंगप्पा जी के घर में सब खाना खा रहे थे, उस समय निजलिंगप्पा जी को मनाने में वे सफल हुए। सहमति देने के बाद भी, अपने परिवार की चिंता के कारण वे अभी अनिश्चित्त रहे। लेकिन उस समय ''फलाफल के बारे में न सोचते हुए, कर्तव्य को निभाना चाहिए'' वाली गीता और बसवण्णा के वचनों ने उन्हें धैर्य दिया। मुंबई कर्नाटक कांग्रेस

के नायक, गंगाधरराव देशपांडे और उमाबाई कुन्दापुर ने इससे पहले चित्रदुर्ग आकर निजलिंगप्पा जी को मनाने का प्रयत्न किया था। परंतु अंत में हर्डीकरजी इस कार्य में सफल हो गए।

हर्डीकरजी के जाने के बाद, निजलिंगप्पाजी ने सदस्यता के अभियान जैसे क्रियात्मक कांग्रेस कार्यों में सीधे भाग लेने में दिलचस्पी दिखाई। 1936 में अपने सहायकों को अधिक जिम्मेदारी सौंपते हुए, अपने कार्यभार को कम कर लिया। 1937 से पहले मैसूर कांग्रेस में ब्राह्मण व ऊँचे वर्ग के लोगों का प्रमुख पात्र था। इसके विरोधी स्थान में ब्राह्मण विरोधी प्रजापार्टी थी। इसके लिए प्रेरणा दे रही थी ब्रिटिस प्रांत मदरासी ब्राह्मण विरोधी जस्टीस पार्टी। यह पार्टी प्रचार करती रही कि वह ब्राह्मणेतरों के लिए उच्चवर्ग के लोगों को छोड़कर बाकी लोगों के हित के लिए काम करती है। कांग्रेस का बड़ा लक्ष्य था कि देश में स्वतंत्रता ला सके तथा राज्य में राजा के शासन के अधीन जिम्मेदार सरकार की रचना हो। लेकिन प्रजापार्टी जान गयी थी कि देश के स्वतंत्र हुए बिना राज्य में जिम्मेदार सरकार की रचना नामुमकिन होगी और गाँधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस द्वारा ही देश को आजादी प्राप्त हो सकती है। इस कारण उसका कांग्रेस में विलय हो गया। कांग्रेस की दृष्टि में भी यह अपेक्षणीय था। क्योंकि उसी वर्ष अप्रैल 17 के दिन चित्रदुर्ग में यह ऐतिहासिक घटना हुई, निजलिंगप्पा जी स्वागत समिति के अध्यक्ष थे, समावेश के अध्यक्ष बने, मैसूर कांग्रेस के नायक श्री के. चेंगलराय रेड्डी जी, जो के. सी. रेड्डी के नाम से प्रख्यात थे।

1937 के बाद निजलिंगप्पा जी ने अपने जीवन के नए अध्याय को प्रारंभ किया; वह था राजनीतिक कर्तव्य तथा वृत्तिबद्धता दोनों का संतुलन। यहाँ आनेवाले कांग्रेस नायकों के लिए उनका घर अतिथिगृह बन गया।

एक बार, एच्. के. वीरण्णगौड़ाजी चित्रदुर्ग आए। निजलिंगप्पा जी के घर के सामने से गुजर रहे थे, तो निजलिंगप्पाजी उसी वक्त टेन्नीस रैकेट लेकर क्लब की ओर जा रहे थे। उन्होंने देखा कि कार पर कांग्रेस का त्रिवर्ण ध्वज फहरा रहा था; तो वे जान गए कि वह कांग्रेस नायक की कार है। उन्होंने उन सभी को अपने घर आने के लिए विनती की, फिर उनके क्लब जाकर एक सेट गेम खेलकर आने तक विश्राम करने के लिए कहा। निजलिंगप्पाजी को वीरण्णगौड़ाजी पहली बार देख रहे थे। उनके आतिथ्य के पीछे जो अपनापन

था, उसने वीरण्णागौड़ाजी को बहुत प्रभावित किया। निजलिंगप्पाजी की पत्नी मुरिगेम्माजी भी पति के समान ही अतिथि सत्कार में आगे थीं, उन्होंने भी मुस्कुराहट के साथ गेट के पास ही अतिथियों का स्वागत गिया। इसके बाद, निजलिंगप्पा जी व गौड़ाजी आजीवन मित्र बन गए। 1938 में मद्दूर के पास शिवपुर में, भारत के राष्ट्रध्वज को फहराने का निर्णय मैसूर कांग्रेस ने किया। टी. सिद्धलिंगय्या जी की अध्यक्षता में हुए सभा में, यह निर्णय लिया गया था। इससे मालूम होता है कि उस समय, कांग्रेस कितनी अनुशासित, प्रामाणिक, व उत्साहभरी संस्था थी।समारोह हुआ था उस वर्ष, अप्रैल महीने में। सरकार का आदेश था कि यह समावेश न हो। फिर भी मैसूर के जिलाधिकार ने बिना किसी अवरोध के, शांतिपूर्ण समारंभ के लिए अनुमति दी। बहुतों ने सोचा था कि गोली चलेगी। परंतु ऐसा कुछ नहीं हुआ। भाग लेनेवालों को, कारागृह में भेजा गया। उस कांग्रेस सभा में निजलिंगप्पा जी भी थे; परंतु पुलिस ने उन्हें छुआ तक नहीं।

शिवपुर सत्याग्रह, ब्रिटिश शासनाधीन मैसूर रियासत में घटित एक महत्वपूर्ण घटना है। भारतभर में, इसके लिए सभी ओर से प्रशंसा मिली। इस घटना से सरकार घबरा गई। इसलिए, आंदोलन को दबाने के लिए सरकार सोचने लगी। इसीकारण आगे चलकर, कोलार जिले के विदुराश्वत्थ में पुलिस की गोली चलने की घटना हुई। किसी भी प्रशासन पर निषेध और नायकों के बंधन सरकार के कार्य बन गए। इसके प्रतिरोध में, मैसूर कांग्रेस ने प्रजाप्रतिनिधि सभा के सदस्यों को इत्तीफा देने की सूचना दी। राज्य के शासन व कांग्रेस के बीच का यह संघर्ष, ए.आई.सी.सी. के कारण शांत हुआ। सर् दीवान मिर्ज़ा इस्माइल से समझौता करने के लिए उसने अपने प्रतिनिधियों के रूप में सरदार वल्लभभाई पटेल और जे.बी. कृपलानीजी को भेजा। तो सभी प्रतिबंधों को वापस लेने, राजनैतिक कैदियों को मुक्त करने तथा राजनैतिक सुधारकों के बारे में सूचना देने के लिए, मैसूर कांग्रेस समिति के प्रतिनिधियों की समिति बनाने के लिए सरकार मान गई। साथ ही अधिकृत मैसूर ध्वज के साथ, कांग्रेस ध्वज को फहराने के लिए भी अनुमति दी। आखिरकार मैसूर कांग्रेस को लोगों के अधिकृत वक्ता के रूप में मानने के लिए भी सरकार तैयार हो गई। लेकिन इन समझौतों को पूरा करने में सरकार असफल रह गई। घाव को और गहरा करते हुए, सरकार ने अपने प्रतिबंध लगाने के कार्यों को और अधिक बल दिया।

सभी समाचार पत्रों व प्रकाशन पर निषेध लगाया और नेताओं को कैद करने का आदेश जारी किया। इससे कांग्रेस को स्पष्ट हो गया कि सरकार के साथ शांतिपूर्ण और संविधानिक मार्ग से समझौता करना व्यर्थ है और उसने प्रतिबंध लगाने के अहिंसात्मक संघर्ष को संगठित करने तथा तद्वारा स्वतंत्रता की लडाई को आगे बढ़ाने का निश्चय कर लिया। अहिंसात्मक आंदोलन करनेवालों पर लाठीचार्ज किया, राष्ट्रध्वज को फहराने के लिए कोशिश करनेवालों पर गोलियाँ चलाईं। पूरे मैसूर राज्य में प्रतिरोध की आग भड़कने लगी। 1939 के सितंबर में राज्य कांग्रेस ने महत्वपूर्ण निर्णय लेते हुए, प्रतिबंधक कायदों के विरोध में, पूर्णरूप का आंदोलन शुरू किया। खुली सभा के आयोजन, ध्वजारोहण आदि पर लगाये गए निषेध को राज्यभर में तोड़ा गया। कांग्रेस अध्यक्ष सिद्धलिंगय्या जी का बंधन हुआ। इस प्रसंग ने अपने आपको एक प्रबुद्ध संगठक के रूप में साबित करने का निजलिंगप्पा जी को अच्छा मौका दिया। उन्होंने वन कानून का विरोध करने के लिए संघर्ष करने का निर्णय किया।

चित्रदुर्ग से करीब दस मील की दूरी पर एक ताड़ के पेड़ों का वन था। आसपास के गाँवों को यहीं से देसी शराब मिलती थी। निजलिंगप्पाजी ने अपने अनुयायियों को इन ताड़ के पेड़ों को काटने को कहा। गाँधी टोपी धारणकर, स्वयं उनके अगुआ बनकर, अनुशासित व योजनाबद्ध कार्य करने के लिए वे कारणीभूत बने। ताड़वन के 'तुरुवनूर' जाकर, अपने साथियों के साथ पेड़ काटने लगे। 18 सितंबर, 1939 के दिन यह कार्य संपन्न हुआ। इसमें, प्रसिद्ध राज्यनायक श्री राजशेखरय्याजी और उनकी पत्नी के. नागरत्नम्मा भी शामिल थे। कानून तोड़नेवालों को कैदकर चित्रदुर्ग लाये। बंधितों में श्री एस. रंगराव, श्री भीमप्पा नायक और गोविंद रेड्डी भी थे। उनपर दोषारोप लगाया गया और जमानत पर छोड़ दिया गया। श्री निजलिंगप्पा जी ने सोचा था कि दीर्घ समय तक माने दो या तीन साल तक जेल जाना पड़ेगा। ऐसा हो तो परिवार के लिए आमदनी का मूल ही बंद हो जायेगा। और अपने को कमाई की वृत्ति छोड़नी पड़ी। परिवार को आर्थिक संकट में और अनेक तकलीफों में फँसाना पड़ेगा। निजलिंगप्पा जी नहीं जानते थे कि परिवारवाले इसे कैसे स्वीकारेंगे। वे सोच में पड़ गये कि क्या वे इस त्याग के लिए तैयार होंगे। इसके बारे में चर्चा करने के लिए माँ और पत्नी को बिठा लिया। वैसे तो, उन्हें भी मालूम था कि ताड़ के पेड़ को काटकर कैसी परिस्थिति में फँस गए हैं। उन्होंने जहाँ तक हो सकता

है समझाया कि इनके जेल जाने पर क्या कष्ट उठाने पड़ेगा। सामान्य और संकट की परिस्थिति दोनों संदर्भों में पति का साथ देनेवाली थीं मुरिगेम्माजी। उन्होंने अपने ढंग से परिस्थिति की गंभीरता को समझा था। वे जानती थीं कि उसके पति इस कार्य को गाँधीजी की पुकार पर कर रहे हैं और नेता होने से जो भी बीतती है उसके लिए वे ही जिम्मेदार होते हैं। वे यह भी जानती थीं कि पति किसी बड़े ध्येय की पूर्ति के लिए लड़ रहे हैं। अपने पति की बात के उत्तर में कहा, ''अबतक आप मेरी परीक्षाओं में पास हुए हैं। अब आपको गाँधीजी की परीक्षा में पास होना है! आप उसके लिए जाइए। हम अपने बचत के पैसे से जैसे भी हो यहाँ की हालत से निभा लेंगी।'' माँ नीलम्मा जी ने भी वैसा ही प्रोत्साहन दिया। उस रात को निजलिंगप्पा जी जब सोने गये तो मन निश्चिंत था। अतः चैन की नींद ले सके। जैसी कि प्रतीक्षा थी, सुबह तड़के ही चार बजे दरवाज़े पर दस्तक दी गयी। सबको मालूम था कि वह पुलिस की है। निजलिंगप्पा जी ने दरवाज़ा खोला और तैयार होने तक इंतज़ार करने के लिए पुलिस से कहा। कुछ ही क्षणों में कानून के अनुसार उन्हें कैद कर लिया गया। उन्हें डेढ़ साल की कठिन सज़ा दी गयी। तुरुवनूर गाँव के लोगों पर दण्डात्मक कर लगाया गया और इस प्रकार सरकार से उनपर बदला लिया गया। निजलिंगप्पा जी के नायकत्व के कारण सरकार द्वारा आदेशित किये गये प्रतिबंधक कार्य से लड़ाई को और भी दृढ़ता से करने का हठ लोगों में आ गया। निजलिंगप्पा जी को कैद करने की खबर जंगली आग की तरह चित्रदुर्ग के चारों ओर फैल गयी। उनके पुराने मुवक्किल और नगर के सार्वजनिक लोगों ने वचन दिया कि हम निजलिंगप्पा के परिवार के खर्च का वहन करेंगे। निजलिंगप्पा जी के लॉयर और एक वकील श्री ओ. वीरभद्रप्पा आफीस की देखरेख करने लगे। तुरुवनूरु घटना ने दूसरे नगरों में भी ताड़वृक्ष काटने के आंदोलन को उत्तेजित किया।

29 सितंबर 1939 को निजलिंगप्पा जी का बेंगलूर सेंट्रल जेल में तबादला किया गया। कानून की अनेक विधियों का उल्लंघन करने से कैद किये गये कई नेता वहाँ आ गये थे। जेल का जीवन नरक ही है। वे साधारण कैदी-से गिने जाते थे। उन्हें राजनीतिक कैदी की सहूलियत न दी गयी। योग्य शौचालय व्यवस्था भी न थी। कैदी गड्ढे खोदकर शौचालय के रूप में उनका उपयोग करते थे। खाना भी गंदे बर्तनों में तैयार करते थे। इस गंधे खाने के लिए हर कैदी को दस सेर रागी पीसना पड़ता था। रोटी जली होने से खाने योग्य नहीं

थी। उनका बिस्तर था एक गंदा कंबल। उनकी हालत लड़ने के लिए योग्य थी। निजलिंगप्पा जी ही कैदियों के सहज नेता थे। उन्होंने अपने नेतृत्व में लड़ाई जारी रखी। परिणामतः थोड़ी उत्तम स्थिति आ गयी। उदाहरण के लिए मिट्टी के बर्तन के बदले अल्यूमिनियम के आ गये। उनके साथ रहे कैदियों में टी. सिद्धलिंगय्या और टी. सुब्रह्मन्यम् जैसे बुजुर्ग नायक थे। तब दीवान थे सर इस्माइल मिर्ज जी और उन्हें सिद्धलिंगय्या जी पर विशेष द्वेष था। इस प्रकार कांग्रेस नायकों की स्थिति सुनकर वे पीड़ा रति का अनुभव करते थे। जेल का वॉडन एक इंडो-इंग्लीश महिला थी। वे निजलिंगप्पा जी के सौजन्य और सुसंस्कृत व्यवहार से प्रभावित थीं। कभी-कभी आकर कुशल-समाचार पूछती थीं। उनके बारे में उत्तेजक बातें करती थीं। उन्होंने कैदियों के बीच लोकप्रियता पायी। अधिकारियों में मात्सर्य भाव जगाया था। इसलिए उनमें सैकड़ों सत्याग्रहियों को कोलार जैल भेजा गया और कठिन काम दिया गया। तभी के.टी. भाष्यं और हर्डिकर मंजप्पा को तबदला शिमोगा किया गया। निजलिंगप्पा जी को हासन जेल भेजा गया।

राज्य में यह जो घटना हुई इसका अखिल भारत कांग्रेस नेताओं ने खण्डन किया। इस अहिंसात्मक आंदोलन से प्रभावित गाँधीजी ने अपने निजी सचिव महादेव देसायी जी को परिस्थिति के अध्ययन के लिए राज्य में भेजा। उनकी रिपोर्ट ने गाँधीजी और अखिल भारत कांग्रेस नेताओं को यह निर्धारित करने दिया कि राजशासन के राज्यों के आंदोलन से दूर रहना ठीक नहीं। उन्होंने सूचना दी कि आंदोलन को स्थगित करके रचनात्मक कार्यक्रमों में लग जाय और आगामी चुनाव में भाग ले। इसी समय मैसूर कांग्रेस का अधिवेशन श्री के.टी. भाष्यम् की अध्यक्षता में शिवमोग्गा में चला। उसमें महात्मा जी की सलाह को मानने का निर्णय लिया गया। श्री जयचामराज ओडेयर के राजगद्दी पर बैठने के महोत्सव के संदर्भ में निजलिंगप्पा आदि जेल में पड़े सभी नायकों को 8 सितंबर 1940 को रिहा कर दिया गया। यह एक छोटी-सी तसल्ली थी, बस। क्योंकि सरकार ने उनके जीविका चलाने के एकमात्र मार्ग वकीली वृत्ति करने का 'सनद' रद्द कर दिया था। इससे बहुत बड़ा आघात पहुँचा। ऐसा निर्णय भारत में ब्रिटिशों ने भी न किया था। निजलिंगप्पा जी ने अपनी वैयक्तिक समस्या को नज़रंदाज कर कांग्रेस के रनचात्मक कार्यक्रमों में भाग लिया। वे जब जेल में थे तो उन्होंने अंग्रेजी उपन्यासों के साथ गाँधीजी के लेखनों का तलस्पर्शी

अध्ययन करके उनके आदर्शों को आत्मसात कर लिया था। उनकी प्रतिभा और सामर्थ्य को पहचान कर सरकार ने उनको कांग्रेस आंदोलन से दूर रखने के लिए अनेक प्रकार के प्रलोभन दिखाये। सहज रूप में, किसी भी प्रकार के अधैर्य के बिना, विनयपूर्वक उनका निराकरण किया। राज्य शासन के लिए अभी चुनाव होनेवाला था। राज्य कांग्रेस मंडल के सदस्य निजलिंगप्पा जी ने चुनाव प्रचार के लिए राज्यभर में दौरा किया। चुनाव में दोनों सदनों में मैसूर कांग्रेस को अत्यधिक बहुमत प्राप्त हुआ। चुनाव के बाद कांग्रेस ने अपना चौथा राज्य समावेश हरिहर के पास हरपुर गाँव में करने का निश्चय किया। उसकी अध्यक्षता श्री एच. सिद्धय्या करनेवाले थे। निजलिंगप्पा जी स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। उनके अविरत प्रयास से सम्मेलन सफल हुआ। अखिल भारत कांग्रेस प्रतिनिधि के रूप में बाबू राजेन्द्र प्रसाद सम्मेलन में आये थे। सम्मेलन के संगठन में दिखाये अद्भुत कौशल तथा अनुशासन के बारे में राजेन्द्र बाबू ने मुक्त मन से प्रशंसा की थी। विशेषकर स्वागत समिति के अध्यक्ष श्री निजलिंगप्पा जी की खूब तारीफ़ की। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति में प्रस्तुत रिपोर्ट में भी गाँधीजी के सामने भी उन्होंने अपने अभिप्राय पुनः प्रतिपादित किये। सम्मेलन का आकर्षण था निजलिंगप्पा जी द्वारा रचित वर्ण और रेखाचित्र प्रदर्शन! उनको देख सभी खुश हुए। राजेन्द्र बाबू जी ने तो चकित होकर पूछा कि निजलिंगप्पा जी क्या वृत्ति से चित्रकार हैं। निजलिंगप्पा जी ने विस्तार से बताया कि उन्होंने चित्रकला जेल में सीखी और प्रदर्शन के अधिकतर चित्र जेल में रचे गये। राजेन्द्र बाबू ने सूचित किया कि कला के लिए ज्यादा समय व्यतीत करे। परंतु वह संभव नहीं था। उनका राजनैतिक जीवन अत्यंत द्रुत गति से आगे बढ़ रहा था। घर में समय बिताने के लिए उन्हें साल में एक दो महीने मात्र मिलते थे।

मैसूर कांग्रेस सम्मेलन ने साबित कर दिया कि निजलिंगप्पा जी एक श्रेष्ठ संगठक हैं। और उससे ज्यादा वे उत्तर कर्नाटक और पुराने मैसूर दोनों ओर लोकप्रिय हैं। इससे यह भी सूचित होता है कि अखिल कर्नाटक और भारत के स्तर पर मान्य सच्चे प्रतिनिधि बनने योग्य नेता कर्नाटक में छिपे हैं। सम्मेलन के मुख्य सभागार के लिए विनोबा भावे का नाम रखा गया था। कन्नड़ साप्ताहिक 'प्रजामत' की रिपोर्ट में उस व्यक्ति को योग्य बताया गया था। क्योंकि विनोबा भावे केवल विद्वान ही नहीं थे, उनकी जनहित में आसक्ति थी और सत्यप्रियता, दया और बद्धता थी। साथ ही यह भी बताया गया था कि भावे जी [illegible]

गुण सम्मेलन के मुख्य संगठक श्री निजलिंगप्पा जी में भी हैं। उस समय के नेताओं को भी इस कथन में अतिशयोक्ति न दिखाई पड़ी। जैसा कि देखा गया, द्वितीय महायुद्ध ने राष्ट्रीय कांग्रेस को पुनः तीव्र संघर्ष में डाला। स्वतंत्र राष्ट्र हुए बिना युद्ध प्रयत्नों के लिए समर्थन देना संभव नहीं कहकर कांग्रेस ने समर्थन देने से इंकार किया। इस संकष्ट समय में सामूहिक सत्याग्रह कर सरकार को परेशान करना ठीक न समझा गाँधीजी ने। उसके बदले गाँधीजी ने वैयक्तिक सत्याग्रह द्वारा मौन रहने का क्रम सुझाया। पहले ऐसे सत्याग्रह करने के लिए विनोबा जी को सूचना दी गयी। सरकार ने इस बहाने कि युद्ध प्रयत्न में बाधा डाल रहे हैं उन्हें तीन महीने के कारावास की सज़ा दी। पीछे पटेल और नेहरू भी कैद हुए। उन्हें चार साल की सज़ा दी गयी। विश्व महायुद्ध महत्त्वपूर्ण स्तर पर पहुँचने के कारण सरकार ने 1941 दिसंबर में कार्यकारिणी समिति के सदस्यों को बंधन से मुक्त किया। इसके पीछे कांग्रेस का सहयोग पाने का षड्यंत्र छिपा था। सर क्रॉफर्ड क्रिप्स को समझौते के लिए भेजा। कांग्रेस ने उनकी सलाह का तिरस्कार किया। केवल कम्युनिस्ट पक्ष ने उन्हें अपने अंतराष्ट्रीयता का भाग समझकर सलाह को मान लिया। इसप्रकार क्रिप्स के समझौते के टूटने पर, गाँधीजी कांग्रेस में और अधिक विशिष्ट स्थान पर पहुँचे। इसके परिणामस्वरूप आगे चलकर 1942 के अगस्त में, मुंबई में जो कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ, उसमें कांग्रेस के प्रसिद्ध ''भारत छोड़ो'' जारी का निर्णय लिया जा सका। इसकी प्रतिक्रिया में, किसी भी समझौते को मौका दिये बिना सरकार ने गाँधीजी, नेहरू और कई नेताओं को सबेरे ही कैद कर लिया। मैसूर कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में, निजलिंगप्पा जी ने भी इस अधिवेशन में भाग लिया था। चित्रदुर्ग लौटते समय राज्य की सीमा पर उन्हें भी कैद कर लिया गया।

किसी ने भी सोचा नहीं था कि सरकार एकाएक ऐसा सख्त कार्यवाही करेगी। इन बंधनों से लोग क्रोधित हुए। अब राष्ट्रीय आंदोलन की लड़ाई का उग्ररूप लेना अनिवार्य हो गया। जनसमुदाय की सहज प्रतिक्रिया ने सरकार की नींव को ही हिला दिया। इस क्षिप्र बंधन के कारण कैद हुए नेताओं के परिवार, घोर संकट में पड़ गये। जिसकी खानदानी संपत्ति नहीं, वे परिवार तो बड़ी मुसीबतों में पड़े। ऐसे नेताओं को अपनी पत्नी के बंधुओं की कृपा की यातना झेलनी पड़ी। नहीं तो उन परिवारों को उपवास पर ही रहना पड़ता। उनके बच्चे शिक्षा से वंचित रह गए। कई बच्चे तो गलत रास्ते पर चले गए। वे सब

अपने घर के मालिक से दूर रह गए। निजलिंगप्पा जी के परिवार की हालत भी यही थी। मोळकाल्मूरु, चळ्ळकेरे, दावणगेरे और चित्रदुर्ग के प्रायः सभी केस निजलिंगप्पा जी के पास ही आते थे। कई मुवक्किल, उनके ही घर में डेरा डालते थे। कमरे को इतना गंदा करते कि सबेरे नीलम्मा जी को साफ करना पड़ता था। बीड़ी, सिगरेट के टुकडों की सफाई करनी पड़ती थी। कई बार उन्होंने अपने बेटे से इसकी शिकायत भी की थी। परंतु निजलिंगप्पा जी इसे लोगों का सहज व्यवहार मानकर उसकी उपेक्षा कर देते थे। इन मुवक्किलों ने ही इस मुसीबत के समय उनकी सहायता की। निजलिंगप्पा जी अपने संकष्ट का भार, परिवारवालों पर डालना नहीं चाहते थे; इसलिए वे अपने राजनीतिक विषयों की चर्चा घरवालों के सामने नहीं करते थे। अब ऐसी मुसीबत का सामना करने को परिवार की तैयारी नहीं थी।

इसके अलावा, निजलिंगप्पा जी ने अपनी आमदनी से कोई बचत नहीं की थी। धन खर्च करने में, उनकी उदारता ही इसका कारण है। इस पारिवारिक संकट के तीन वर्ष पहले निजलिंगप्पाजी का ''वृत्ति सनद'' रद्द हो गया था। 1941 में अपने भतीजे गुरुनाथजी के द्वारा तुमकूर के श्री सी.आर. बसप्पाजी से परिचय हुआ था। वे लॉ ग्रेजुएट होकर भी तीर्थहळ्ळी में हाइस्कूल अध्यापक का काम करते थे। निजलिंगप्पा जी ने अपनी वृत्ति निभाने के लिए उनसे कहा तो वे उसी क्षण मान गए। परिवार के बुला लाने तक उन्हें अपने ही घर में अतिथि बनकर रहने के लिए, निजलिंगप्पा जी ने विनती की। दोनों शीघ्र ही आत्मीय मित्र बन गए। 1941 से 1946 तक श्री सी.आर. बसप्पाजी ने निजलिंगप्पाजी के दफतर की जिम्मेदारी लेकर निजलिंगप्पाजी के नाम से ही, कार्य निभाया। उन्हें निजलिंगप्पा जी से श्रेष्ठ वृत्ति शिक्षण प्राप्त हुआ। जब तक निजलिंगप्पाजी जैल में थे, तब तक बसप्पाजी अपनी आमदनी का एक भाग उनके परिवार को देते थे। नीलम्माजी और मुरिगेम्माजी अपने परिवार को अच्छी तरह से निभाती थीं। रुद्रप्पा और सावक्का दंपति के पुत्र गुरुनाथजी, धार्मिकेतर कार्यों में परिवार की सहायता करते थे। परिवार के एक और हितैषी हेग्गेरे तिप्पेरुद्रप्पाजी चावल-धान्य आदि की सहायता करते थे। संक्षेप में कहना हो तो, इस व्यवस्था के कारण निजलिंगप्पाजी अपने कारावास में निश्चिंत रहे। परिवारवालों ने अपना खर्चा बहुत ही कम कर लिया था। निजलिंगप्पाजी के परिवार की मुसीबत का वर्णन, बसप्पाजी ने बाद में किया है। उनके अनुसार

यह सोचते हुए कि बच्चों पर कोई असर न पड़े, दोनों महिलाओं ने बहुत कष्ट उठाया। फल, दूध, तरकारी का खर्चा बहुत ही कम कर दिया था। इसके साथ ही वे पडोसियों से अपने संकष्ट को छिपाना चाहती थीं। पिता के घर में न रहने के कारण, बच्चे नाखुश थे। यह पिता के प्रेम व हिफाजित चाहने की उनकी आयु थी। इससे बच्चों पर दुष्परिणाम होने की संभावना भी थी। त्योहारों के दिनों में, घर में उल्लास का वातावरण नहीं रहता था। यात्रा करना तो बंद ही हो गया था। इस कारण उनकी शिक्षा कुंठित हो गयी थी। उनके पुत्र श्री राजशेखर के अभिप्राय में, उनकी माता को उनके पति का स्वातंत्र्य संग्राम में भाग लेना, बड़ी ही गर्व की बात थी। सामान्यतः वह भोजन में रोटी और सब्जी बनाती थीं। परंतु जब राजनैतिक नेता खाने पर आते तो, चावल लाकर पकाती थीं। क्योंकि उनके लिए उस समय चावल महंगा था। श्री राजशेखरजी ने स्मरण किया कि वास्तव में दादी ने ही उनका पालन किया। पोतों के बर्ताव के बारे में वे बहुत ही ख्याल रखती थीं। दादी ने ही उनकी बड़ी देखभाल की। वे कहानियों की भंडार थीं, बच्चों के लिए तवनिधि थी, बच्चों को सुलाते हुए वह लोक-कथाएँ, रामायण, महाभारत की कहानियाँ सुनाती थीं। कभी कभी दादी गीत गाकर सुलाती थीं। इससे बच्चों में नियमपालन की आदत हो गयी; नैतिकप्रज्ञा जग गई। दादी को अपने बेटे पर बड़ा ही गर्व था। पोते-पोतियों से गहरा प्रेम था। गाँव के वातावरण में पली बढ़ी, वे संप्रदायों का पालन करती थीं, रूढ़ियों के अनुसार चलती थीं। उदाहरण के लिए अस्पृश्यों को छूना या घर में आने देना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। राजनीतिक जीवन के प्रारंभ में जब उनका बेटा बिना किसी भेदभाव के हरिजन अतिथियों से व्यवहार करता था, यह उन्हें पसंद नहीं था। परंतु शरणों के वचनों को, गाँधीजी के विचारों को बार बार बताते हुए उनके मन का परिवर्तन करने में निजलिंगप्पाजी सफल हो गए। अंत में वे ही उत्साह के साथ, हरिजन अतिथियों का सत्कार करने लगीं। यह प्रसंग, पुत्र की माँ को मनाने की रीति, व माता के मुक्त मन के लिए आइने के समान है। नीलम्मा जी को अपने पिता से जड़ीबूटियों की दवा देना, एक देन के रूप में प्राप्त था। उनके पोते आज भी यह स्मरण कर गर्व करते हैं कि वे पेंसिलिन से अधिक अपनी दवाओं पर विश्वास करती थीं। निजलिंगप्पा जी ने कभी अपने बच्चों पर हाथ नहीं उठाया। परंतु कभी एक ही बार अपने बेटे को मारने पर बहुत ही पछताए थे। अच्छे काम करने पर बच्चों की प्रशंसा कर, उन्हें प्रोत्साहित

करते थे। उदाहरण के लिए एक बार, चार वर्ष की उनकी बेटी प्रतिभा ने उन्हें चार पंक्तियों का एक पत्र लिखा तो वे बहुत खुश हुए थे। परिवारवालों के स्वस्थ रहने के लिए स्वास्थ्य नियम बनाए थे। बाहर खाने के लिए जाना पड़ता तो वे कभी ज्यादा नहीं खाते थे, या स्वास्थ्य के लिए हानिकर लगनेवाली चीजें वे छूते तक नहीं थे। अच्छे खाने की प्रशंसा करते हुए भी वे विशेष वस्तु की माँग कभी नहीं करते थे। उनके बेटे ने बताया कि, इष्टलिंगधारण लिंगायतों के लिए अनिवार्य होने पर भी, उनके घर में किसी ने इष्टलिंगधारण नहीं किया था, घरवाले भी कोई धार्मिक आचरण या इष्टलिंगपूजा नहीं करते थे। इस मानवीय तथा वैचारिक धारणा के लिए निजलिंगप्पाजी का विश्वास तथा आचरण ही कारण थे। जेल से लौटने के बाद तो, उन्होंने न विभूति धारण किया, न लिंगपूजा की। पहले वकालत करने के समय सब करते थे। धार्मिक गुरु श्री मृत्युंजय स्वामीजी को छोड़कर किसी भी व्यक्ति के पादस्पर्श कर उन्होंने कभी प्रणाम नहीं किया। दूसरों की सहायता करने के लिए वे हमेशा तत्पर थे, परंतु कभी भी उन्होंने विशेष पक्षपात नहीं किया। अपने बच्चों की भी कोई सहायता नहीं की। राजनीति में प्रवेश करने के बाद तो परिवार के बारे में आसक्ति स्थगित हो गई। उनकी पुत्रियों का विवाह भी उनके प्रयत्न के बिना ही संपन्न हो गये। उनके तीन पुत्रों में सबसे छोटे किरणशंकर का विवाह उसके अपने उत्साह व प्रयत्न से ही हुआ। अपने पिता के द्वारा किसी भी प्रकार की जायदाद न छोड़ने के कारण, बाकी दो पुत्र विवाह के लिए तैयार नहीं थे। अर्थात् उनके स्वातंत्र्य संग्राम में प्रवेश का मूल्य परिवार को चुकाना पड़ा। दो पुत्रों को अच्छी शिक्षा मिली; बीच का पुत्र इससे वंचित रह गया। अपने पुत्रों के लिए जायदाद न बनाने का यह कारण था कि, निजलिंगप्पाजी चाहते थे कि वे अपना जीवन खुद रूपित कर लें। बच्चों के लिए कोई भी सिफारिश करने के लिए वे कभी तैयार नहीं थे। अपने आदर्शों के कारण, पिताजी ने उनपर कोई रुचि नहीं दिखाई तो बाद में पुत्रों के मन में थोड़ी कडवाहट आयी। परंतु अपने पिता की नैतिक उन्नति पर उनका गौरव कभी कम नहीं हुआ। पति के जेल जाने के बाद सभी मुसीबतों ने आ घेरा था, उनकी पत्नी मुरिगेम्माजी को। विवाह से पहले उन्हें कभी दुःख का अनुभव नहीं हुआ था। परंतु अब, बच्चों के पालन में उन्हें गरीबी का अनुभव होने लगा। अंतिम पुत्र साइकल पर कालेज जाता था, और पुत्रियों को दो ही साडियों में संतुष्ट रहना पड़ा था। मुरिगेम्मा में आत्मगौरव व स्वतंत्र मनोभाव

यहाँ तक रहे कि उन्होंने कभी भी, मुवक्किलों से कोई भी सहायता नहीं ली, जो मदद देने के लिए हमेशा तैयार थे। यह केवल मुरिगेम्मा जी का ही गुण नहीं था; पूरे परिवार का यही स्वभाव था। ''भारत छोड़ो'' आंदोलन में हजारों कार्यकर्ताओं से ब्रिटिश कारागार भर गए। उनमें से अनेक लोग दयनीय अवस्था में जेल में रहे। निजलिंगप्पा जी को नौ महीने, कोलार सोने के खान प्रदेश के जेल में अपराधियों के साथ रहना पड़ा था। बाद में उन्हें बेंगलूर जेल में रखा गया। परिस्थिति को समझने का स्वभाव निजलिंगप्पा जी का था; जेल में अपने साथ रहनेवाले अपराधियों की समाजिक-आर्थिक भूमिका को समझने का, वे प्रयत्न करते थे। उन दुःखी लोगों की हालत समझने के लिए और उनकी सहायता करने के लिए वे सभी तरह से प्रयत्न करते थे। उच्च न्यायालयों के लिए उनकी ओर से अपील तैयार करते थे। गाँधीजी ने शिकायत की कि, भारत छोड़ो आंदोलन के निर्णय के बाद देश में नेताओं का बंधन जो हुआ, जनता में जो आक्रोश भड़का, उसके लिए सरकार ही जिम्मेदार है। वाइसराय के साथ समझौते में असफल होने के बाद गाँधीजी ने 1943 फरवरी 10 तारीख से अपना उपवास प्रारंभ किया उसके छः दिन बाद ही उनका स्वास्थ्य क्षीण हुआ, वाइसराय परिषद के तीन भारतीय सदस्यों ने मृत्यु के कगार पर स्थित अपने नेता की देखभाल करने की रीति का विरोध करते हुए इस्तीफा दे दिया। स्वास्थ्य के कारण इस वृद्ध नेता को बंधनमुक्त करने के लिए जगत के नेताओं ने सरकार पर दबाव डाला। सरकार ने इन मांगों का तिरस्कार ही नहीं किया, अपनी दमननीति को और तीव्र किया। फिर भी गाँधीजी ने इक्कीस दिन के अपने उपवास को सफल रीति से समाप्त किया तो सारे संसार ने चैन की साँस ली। इस बीच, महादेव देसाई जी व कस्तूरबाजी के निधन के बाद गाँधीजी तीव्र मलेरिया ज्वर से ग्रस्त हुए। वे अत्यंत कमजोर हो गए। पक्षभेद भूलकर सभी नेताओं ने गाँधीजी को रिहा करने के लिए सरकार पर दबाव डाला तो सरकार ने उन्हें रिहा कर दिया। गाँधीजी, विश्राम करने के लिए मुंबई के जुहू में रहने लगे। सरकार में लॉर्ड लिनलिथगो के स्थान पर लॉर्ड वैवेल, वाइसराय पद पर नियुक्त हुए। केंद्र कार्यकारिणी परिषद ने नये वाइसराय पर जोर डाला कि सभी कांग्रेस नेताओं को मुक्त कर दे, और केंद्र में राष्ट्रीय सरकार की रचना का कार्य शीघ्र ही प्रारंभ करें।

मैसूर राज्य में सबसे उदार मन के मुहम्मद इमाम जी, लॉ मिनिस्टर बन गए। वे भी चित्रदुर्ग के थे; इस कारण उन्हें निजलिंगप्पाजी से स्नेह था व अच्छा परिचय भी। अस्वास्थ्य के कारण श्री के.सी. रेड्डी जी, के. हनुमंतय्या जी व दासप्पाजी को बंधनमुक्त कर दिया गया। जमानत पर छोड़ दिया गया था। निजलिंगप्पाजी को भी यही सहायता करने के लिए इमाम जी आतुर थे; एक मित्र से उन्हें जमानत पर मुक्त करने की बिनती करते हुए सरकार को पत्र लिखने के लिए निजलिंगप्पाजी को कहलाया गया। किन्तु कोई बहाना बनाकर जमानत पर मुक्त होने के लिए निजलिंगप्पा जी तैयार नहीं थे। 1944 में, राष्ट्रीय नेता लोग बंधन में सड़ते रहने पर भी, मैसूर सरकार ने सभी राजनीतिक कैदियों को बिना किसी शर्त के, मुक्त कर दिया। निजलिंगप्पा जी पहले से ही मैसूर कांग्रेस के संपर्क में थे। अब वे उसकी कार्यकारिणी समिति के सदस्य बनकर सेवा करने के लिए तैयार हो गए। प्रधान सचिव के रूप में राज्यभर में उन्होंने दौरा किया। साधारण लोगों के साथ संपर्क किया। और कांग्रेस व गाँधीजी के आदर्शों का प्रचार किया। कांग्रेस के कार्य में वे इतने लग गये थे कि अपने मुवक्किलों की वकालत के लिए लौटने की बिनती को अनसुना कर दिया। उनके सामने एकैक सर्वोच्च ध्येय रहा देश का राजनीतिक स्वातंत्र्य। जेल से मुक्त होते ही मैसूर कांग्रेस के अध्यक्ष पद ने उन्हें बुलाया। आज तो वह स्थान, अधिकार का केन्द्र है, उच्चस्तर का संकेत है, और प्रभाव तथा धन का स्रोत ही है। परंतु उस समय वह त्याग, गरीबी और दैहिक श्रम माँगता था। कांग्रेस ऑफीस की आर्थिक परिस्थिति ऐसी दयनीय थी कि कई बार, बिल्डिंग का किराया देना, ऑफीस के नौकरों को तनख्वाह देना, यात्रा का खर्चा देना अत्यंत कठिन हो गया था। सामान्यतया निजलिंगप्पा जी बेंगलूर में रेल से उतरकर अरळेपेटे के कांग्रेस ऑफीस अपना सामान खुद उठाकर चले जाते थे। वहाँ सामान बिछाकर, उसपर बैठते थे। रात को वही उनका पल्लंग बनता था। आफीस में पैसे होते तो, नौकरों के खाने के लिए, रसोई बनाने के लिए किसी को रख लेते थे; वैसे तो वैसे अवसर भी कम थे। बाकी समय, अध्यक्ष जी पास के रेलवे स्टेशन से चावल का पैकेट मंगवाते और सभी साथियों के साथ बांटकर खाते थे। कई रात वह सौभाग्य भी नहीं मिलता था; तो·एक-दो केले खाकर समझ लेते थे कि पेट भर गया। अपने से संग्रह की गयी कांग्रेस निधि को बहुत सावधानी से खर्च कर, ऑफीस चलाने के लिए और नौकरों के वेतन

के लिए उपयोग करते थे। अपने कपड़े खुद धो लेते थे; कई बार खाना बनाने में भी सहायता करते थे। यहाँ तक कि फर्श की सफाई में भी हाथ बँटाते थे। परंतु इन कार्यों से उनकी मानसिक स्थिरता भंग नहीं होती थी। उनके चेहरे पर की मुस्कान कभी फीकी नहीं पड़ती थी। वास्तव में, उनकी बातचीत के पीछे, उनकी मुस्कुराहट की पहचान बनी थी। अध्यक्ष पद का अर्थ था कि अपने घरवालों से और दूर रहना; अर्थात् घर के लिए काम करने का उत्साह, देश की स्वतंत्रता की इच्छा में पिघल जाना था। वे अथक परिश्रमी कार्यकर्ता थे। पक्ष के कार्यों के लिए बार बार उन्हें यात्रा में जाना पड़ता था। इस प्रकार वे अपनी ओर तथा कांग्रेस आंदोलनों की तरफ लोगों को आकर्षित करने में सफल हो जाते थे। अपनी उदारता व अच्छे गुणों के कारण, राजनीतिक क्षेत्र में वे अजातशत्रु बने थे। मैसूर कांग्रेस अध्यक्ष के पद को छोड़ते ही उन्हें उससे अधिक कठिन जिम्मेदारी को संभालना पड़ा। वह थी कर्नाटक प्रदेश कांग्रेस समिति - के.पी.सी.सी. की अध्यक्षता। अपनी भूमिका के कारण वे छिन्नभिन्न कर्नाटक के विशेष रूप से उस वक्त मुंबई प्रांत कहलानेवाले ब्रिटिश भारत के भाग - उत्तर कर्नाटक और पुराने मैसूर प्रांतों के एकीकरण का संकेत माने गए। कर्नाटक के उत्तर भाग में, जन्म लेने पर भी उनकी शिक्षा पुराने मैसूर भाग में हुई थी। वे इस पद के लिए तब चुन गए, जब देश कठिन परिस्थिति में रहा, और स्वातंत्र्य प्राप्त करने के दिन समीप हो रहे थे। उस वक्त ब्रिटिश एक पैर बाहर रख चुका था; राष्ट्रीय सरकार शासन की डोर पकड़ने को तैयार थी। इन सबसे बढ़कर वह देश के लिए नई बुनियाद डालने का समय था; संविधान सभा की रूपरेखा तैयार होने का समय था। इतिहास की ऐसी संदिग्ध परिस्थिति में, के.पी.सी.सी. के अध्यक्ष निजलिंगप्पा जी संविधान सभा के लिए भी चुने गए। इन पदों के निर्वाह करने के कारण उन्हें, आधुनिक कर्नाटक के अत्यंत प्रमुख आंदोलन को प्रेरित करने का मौका मिला। वह था, विविध भागों में बंटे हुए कन्नड़ प्रदेशों का एकीकरण होकर, भारतांतर्गत राज्य का निर्माण। यह कार्य उनके लिए जीवन की साँस के समान मुख्य बना। कर्नाटक के एकीकरण में उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी। ''मैसूर राज्य'' नाम से एकीकृत कन्नड़ प्रदेश, 1956 नवंबर, पहली तारीख के दिन साकार हो गया। लेकिन, इस अध्याय के एक भाग के रूप में निरूपित होने पर भी अधिक महत्वपूर्ण होने के कारण अगले अध्याय में पूर्णरूप से उसी का बयान किया जायेगा।

इस अध्याय में ध्यान देने योग्य, महत्वपूर्ण विषय यह है कि कर्नाटक एकीकरण के कार्य में उनका गहरा समर्पणभाव था; और राजनीतिक क्षेत्र में वे इतना प्रमुख स्थान पा चुके थे कि, आजादी के बाद कांग्रेस नेता उनकी अवज्ञा कर ही नहीं सकते थे। इसलिए अखिल भारतीय कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति के लिए उनका नाम सूचित किया गया। इसके लिए कारण बना कांग्रेस अध्यक्ष पट्टाभी सीतारामय्या जी का मध्य प्रवेश। वे भी निजलिंगप्पा जी के समान, भाषा के आधार पर प्रांतों के हिमायती थे। निजलिंगप्पाजी ने दिखा दिया कि वे देश के विकास के समर्थक कारणकर्ता नेता हैं। उदाहरण के लिए 6 अप्रैल 1954 को शिवमोगा में, उस समय के केंद्रीय रेल मंत्री, रफी अहमद किद्वाई जी से उद्घाटित प्रथम मलेनाडु सम्मेलन के अध्यक्ष के रूप में निजलिंगप्पा जी ने अमूल्य प्राकृतिक संपदा प्राप्त इस भाग के विकास के लिए एक अमूल्य योजना पेश की।

राष्ट्रीय आंदोलन में उन्होंने जो पात्र निभाया, उसका वर्णन अब यहाँ समाप्त करेंगे। क्योंकि एक तरह से वह एक छोटी कहानी है। निरूपण की अनुकूलता के लिए और विश्लेषण की सुलभता के लिए हम प्रादेशिक राजनीतिक आंदोलन और राष्ट्रीय आंदोलन में विभाजित कर सकते हैं। दीर्घावधी में और मूल अर्थ में, उन्हें अलग नहीं मान सकते हैं। क्योंकि निजलिंगप्पाजी जैसे राज्यस्तर के नेता में उन दोनों को भिन्न लक्ष्य समझने की भावना नहीं थी। स्वतंत्र भारत में, एकीकृत कर्नाटक की स्थापना ही उनका आदर्श रहा। विभिन्न भाषा क्षेत्रों का भारत, एक राष्ट्र के रूप में, संघ की व्यवस्था पाना ही संभव है और उसमें वे सारे वलय, अपने विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सके – यही निजलिंगप्पाजी द्वारा स्वीकृत एकीकरण का प्रतिपादन था।

4. एकीकरण के लिए संघर्ष

इसमें कोई संदेह नहीं है कि एक महत्त्वपूर्ण प्रादेशिक राष्ट्रीय नेता के रूप में निजलिंगप्पाजी अपने प्रदेश के एकीकरण के संघर्ष में पूर्णरूप से निरत रहे। मानते हुए भी कि प्रदेशिक विचार राष्ट्रीय भावना के विरुद्ध नहीं, विभिन्न भाषायें तथा संस्कृतियाँ और अपनी ही निर्दिष्ट परंपराएँ माननेवाला व्यक्ति ही भारत में वैसे रहने के द्वारा विचार व आचरण में सच्चा राष्ट्रीयवादी बन सकता है। अपनी इस भूमिका के कारण निजलिंगप्पा जी ऊँचे स्थान पर पहुँचने की योग्यता पा चुके थे। फिर भी उन्होंने राज्य स्तर पर ही, प्रमुख ऐतिहासिक पात्र निभाने का निर्णय कर लिया था।

उनकी तीव्र प्रादेशिक भावना और बद्धता के कारण, राष्ट्रीय नायकत्व ने उन्हें, अपने बीच रख लेने की बात पसंद नहीं की। वास्तव में, भारत जैसे देश में, जहाँ, गंभीर राजनीति, प्रादेशिक स्तर तक ही रहती है, कोई भी सच्चा प्रादेशिक नेता, अपने राजनीतिक अधिकार व पद-सम्मान के श्रमात्मक राष्ट्र राजनीति के आकर्षण में नहीं पड़ता। बी.सी. राय अथवा प्रतापसिंह कैराण जैसे लोग कभी भी नई दिल्ली जाना नहीं चाहते थे।

वास्तव में 28 मई 1997 के दिन प्रस्तुत लेखक ने जब चित्रदुर्ग के उनके पुराने और साधारण घर में उनका साक्षात्कार लिया तो, निजलिंगप्पा जी ने राष्ट्र राजनीति में कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में जाने पर विषाद व्यक्त किया। उन्होंने बताया कि कामराज नाडर जी उन्हें आग्रहपूर्वक नई दिल्ली ले गए थे। इस प्रकार, निजलिंगप्पा जी की राष्ट्र राजनीति के लिए देन थी कि वे कन्नड़ प्रदेश के कांग्रेस नेता रहे। राज्य राजनीति में उन्होंने दो पात्र निभाये। हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि सबसे पहले राष्ट्रीय आंदोलन को राज्य में, स्थिर करने के लिए योगदान दिया साथ ही राज्य में, प्रजासत्तात्मक सरकार की रचना के समय में भी उन्होंने महत्त्वपूर्ण पात्र निभाया। 1948 में मैसूर को भारत की संघ सरकार में रहने के लिए भी उन्होंने संघर्ष किया था। क्योंकि, मैसूर के महाराजा

कुछ समय तक भारत से अलग रहने का खतरनाक निर्णय ले बैठे थे। निजलिंगप्पा जी के दूसरे पात्र का पहला स्तर था कि भारत संघ सरकार में रहकर ही, कर्नाटक एकीकरण को संभव बनाने में वे सफल रहे। और प्रथम मुख्यमंत्री के रूप में उन्होंने नए राज्य के सर्वांगीण विकास के लिए परिश्रम किया। इन दोनों में, कौनसा पात्र अधिक मुख्य था, इसके बारे में सोचना महत्वपूर्ण होने पर भी, इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्होंने जो आसपास के महाराष्ट्र, आंध्र और तमिल प्रदेश की सीमा के विवादग्रस्त प्रदेश छोड़कर कन्नड़ बोलनेवाले भू भागों को एक बना दिया, यह अत्यंत महत्वपूर्ण साधना थी। मुख्यमंत्री के रूप में, अपनी साधना पर उन्हें अभिमान अवश्य था, फिर भी, उन्होंने अपने साक्षात्कार में यह बात व्यक्त की कि, कर्नाटक एकीकरण की नींव डालना ही उनके अनुसार अधिक महत्वपूर्ण रहा।

कन्नड़ प्रदेश के एकीकरण के लिए जो आंदोलन हुआ, उसमें निजलिंगप्पा जी के ऐतिहासिक पात्र का वर्णन करने से पहले संक्षेप में उसका इतिहास बताना ठीक होगा। वह एक दीर्घ इतिहास है; उसे पूर्णरूप में कहना यहाँ संभव नहीं, व आवश्यक भी नहीं। उस प्रसंग को समझने के लिए उसका स्थूलचित्र यहाँ दिया जा रहा है। वह थोड़ा क्लिष्ट है; किसी भी तरह के तात्पर्य से उसे न्याय नहीं दिया जा सकता। अलग कन्नड़ राज्य के निर्माण के लिए जो संघर्ष हुआ उसका केंद्र था, मुंबई का कर्नाटक भाग। बहुभाषा प्रदेश मुंबई प्रांत में मराठी लोगों के दबाव के कारण, कन्नड़ लोगों के हित की रक्षा की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया जाता है – यह शिकायत ही उस संघर्ष का मूल है। ऐसी ही शिकायत विभिन्न भाषा क्षेत्रों में पहला स्थान, मुंबई कर्नाटक भाग का है; हैदराबाद कर्नाटक भाग से भी यह आवाज़ प्रतिध्वनित हुई कि, निजाम के सर्वाधिकारी शासन में मुसलमान उच्चवर्ग से कन्नड़ लोग कठिनाई का अनुभव कर रहे थे। राजा के शासन के कारण, मैसूर में कन्नड़ भाषाभाषी अल्पसंख्यक नहीं थे। इसकारण, उनके लिए एकीकरण प्रेरक विषय नहीं था। वहाँ कन्नड़त्त्व ऋणात्मक अस्मिता न रहकर कन्नड़ भाषा साहित्य प्रमुख होनेवाली सांस्कृतिक परंपरा के बारे में, एक अभिमान के विषय के रूप में साकार था। इसलिए एकीकरण के उद्देश्य के बारे में, पुराने मैसूरवालों का विचार संदिग्धपूर्ण था। कई स्थानों में, उसके लिए बाह्य समर्थन व्यक्त होता था और कहीं कहीं उसका विरोध था। ध्यान देने योग्य विषय यह है कि महाराजा के शासन में कई प्रतिष्ठित वीरशैव तथा

'ओक्कलिग' (कृषक) परिवार पर विशेष रूप से राजकृपा रही। इस प्रसंग को और उलझाने की बात यह थी कि कांग्रेस के नेतृत्व के, स्वातंत्र्य संघर्ष के लिए कई क्षेत्रों में विरोध था। इसका कारण वह नायकत्व उच्चवर्ग के ब्राह्मणों के हाथ में था। किन्तु ये समूह मुंबई कर्नाटक भाग के एकीकरण को पूर्ण सहयोग दे रहे थे। स्थूलरूप में कह सकते हैं कि, यह माँग उन्नीसवी सदी के अंतिम भाग से ही थी। आगे चलकर उसे एक संघटनात्मक स्वरूप मिला और अधिक विशाल सैद्धांतिक नींव प्राप्त हुई। स्वातंत्र्य संघर्ष तथा एकीकरण के आंदोलन के पूरक स्वरूप के संकेत के रूप में, 1924 में बेलगाम में इंडियन नेशनल कांग्रेस का चालीसवाँ अधिवेशन हुआ। उसमें भाग लेते हुए निजलिंगप्पा जी ने प्रायः उससे संपर्क पाया होगा। किन्तु इसके लिए कोई स्पष्ट आधार नहीं है। एकीकरण अपनी अस्मिता को पहचानने के लिए, कन्नड़वालों की इच्छा का स्वरूप था। अनेक विद्वान व इतिहासकारों का अभिप्राय था कि यह आधुनिक पाश्चात्य प्रभाव के कारण हुए, नए बौद्धिक-सांस्कृतिक नवोदय का परिणाम था। यह भी एक कारण था - यह सच होने पर भी यह कह सकते हैं कि एकीकरण आंदोलन के राजनीतिकरूप लेने का कारण था कि अल्पसंख्यक कन्नड़ लोगों की उपेक्षा हो रही थी।

कह सकते हैं कि आंदोलन का प्रारंभ बुद्धिजीवियों व सैद्धांतिक लोगों से ही हुआ। उसके बाद मातृभाषा की उपेक्षा का कारण, साम्राज्यशाही शासन और उससे मिली गुलामी है – इस भावना से उसे स्वातंत्र्य-आंदोलन के लिए पूरक बनाते हुए राजनीति के लोगों ने उसे राजनीतिक स्वरूप दिया। इस प्रकार एकीकरण की दृढ़ता का कारण केवल प्रबल भाषिक वर्ग ही नहीं, साम्राज्यशाही विरोधी भावना भी है। इन दोनों को अलग माँग समझा गया था। वह केवल कन्नड़ लोगों के लिए ही सीमित नहीं था। वह संपूर्ण भारतव्यापी आंदोलन रहा। यहाँ के विभिन्न भाषी समुदायों के कारण उद्भूत सहज परिणाम था। ब्रिटिश इंडिया के अनेक भागों में और राज्यशासन के प्रदेशों में ब्रिटिश शासनों के अधीन विभक्त कन्नड़भाषी प्रदेशों को एक करने की माँग थी। 1924 में, बेलगाम में जो पहला एकीकरण समिति का अधिवेशन हुआ, उससे पहले ही 1920 में, वी.पी. माधवराव की अध्यक्षता में धारवाड में हुए कर्नाटक प्रांतीय राजनैतिक सम्मेलन में एकीकृत कर्नाटक की रचना पर जोर देते हुए, नागपुर के कांग्रेस सम्मेलन में, उसके लिए समर्थन पाने का श्री कडपा राघवेंद्रराव जैसे नेताओं

ने बहुत प्रयत्न किया। इस सम्मेलन के लिए कर्नाटक से करीब 800 प्रतिनिधि गए थे और वे 1920 में कर्नाटक के लिए अलग कांग्रेस समिति की रचना करने में सफल हुए थे। हर साल संपन्न होनेवाले अखिल कर्नाटक-खद्दर, आयुर्वेद, इतिहास उद्योग और वाणिज्य सम्मेलन में कन्नड़ प्रदेश की विशिष्ट अस्मिता के बारे में भावना दृढ़ होती गयी। उत्तर कर्नाटक अथवा मुंबई कर्नाटक भाग के आंदोलन का केंद्र था धारवाड़। श्री मुदवीडु, श्री कड़पा, श्री होन्नापुरमठ आदि नेताओं को बेंद्रेजी के चुम्बक व्यक्तित्व से प्रभावित साहित्यकारों की 'गेळेयर गुंपु' (मित्रों की टोली) ने समर्थन दिया। इस आंदोलन का संगठनात्मक साधन था, 'एकीकरण सभा' जो बाद में 'कर्नाटक एकीकरण संघ' नाम से जाना गया था। उसने कर्नाटक कांग्रेस समिति के निकट रहकर कार्य किया। 1947 तक उसने कर्नाटक के विविध स्थानों में 11 वार्षिक सम्मेलन संपन्न किये। धारवाड़ में ही, चार बार – 1928, 1933, 1938 और 1944 - सम्मेलन हुए। 1947 से पहले ही कांग्रेस को अपना निर्णय मनवाने में वह सफल हुआ था। उदाहरण के लिए 1937 की कांग्रेस चुनाव प्रणालिका में इसका प्रस्ताव था।

बहुत जल्दी ही यह आंदोलन कर्नाटक भर में फैल गया; 1938 में बेंगलूर में श्री बेनेगल रामरावजी की अध्यक्षता में और श्री बी. शिवमूर्ति शास्त्री जी के सचिवत्व में 'कर्नाटक एकीकरण संघ' का प्रारंभ हुआ। इस कर्नाटक एकीकरण संघ ने मड़कशिरा, होसूरु, कोळ्ळेगाल, आदोनी जैसे, स्थानों में कन्नड़ प्रदेशिक भावना को जागृत करने के कार्यक्रमों को चलाया था। 1946 तक ब्रिटिशों का भारत छोड़कर जाना निश्चित हुआ। 1946 के दिसंबर में देहली में कार्यारंभ करते हुए, संविधान सभा ने इसे बल दिया। इससे एकीकरण को और अधिक तीव्रगति प्राप्त हुई। इसकारण, 1946 में मुंबई में हुए, एकीकरण सम्मेलन में और उसके बाद तत्कालीन मुंबई सरकार के राजस्व मंत्री श्री एम.पी. पाटील की अध्यक्षता में दावणगेरे में हुए, अखिल कर्नाटक सम्मेलन ने कर्नाटक एकीकरण के बारे में प्रबल रूप में दबाव डाला। फिर 1947 के अप्रैल में मुंबई और मद्रास इन दोनों राज्यों की शासनसभाओं ने एकीकृत कर्नाटक की रचना के लिए आग्रह करते हुए निर्णय लिए।

निजलिंगप्पा जी ने 1946 में के.पी.सी.सी के अध्यक्ष के रूप में इसमें प्रवेश किया। जैसे पहले देखा गया है, के.पी.सी.सी. और एकीकरण संघ, कर्नाटक एकीकरण के विषय में निकट सहयोग के साथ कार्य करते रहे। उस

दिन से ही निजलिंगप्पा जी, कन्नड़ प्रदेशों को एक करने के आंदोलन में, मन:पूर्वक भाग लेने लगे। 1946 में मुंबई में हुए कर्नाटक एकीकरण संघ की सभा का उन्होंने उद्घाटन किया। उस अधिवेशन का उद्घाटन करते हुए, सरदार वल्लभ भाई पटेल जी ने कर्नाटक एकीकरण को संपूर्ण सहयोग देने की घोषणा की। इसमें व 1946 के अगस्त 31 के दिन दावणगेरे में हुए अखिल कर्नाटक अधिवेशन में निजलिंगप्पा जी ने सक्रिय रूप में भाग लिया। फिर एकीकरण के ध्येय की साधना में, तीव्ररूप से हृत्पूर्वक भाग लेते रहे। इस अधिवेशन में प्रत्येक कर्नाटक रचना के आंदोलन को तीव्रगति देने के लिए एक समिति की रचना हुई। उसके सदस्य थे श्री निजलिंगप्पा जी, श्री एम.पी. पाटील और श्री जिनराज जी हेगडे। कुछ समय बाद श्री के.सी. रेड्डी जी की अध्यक्षता में मैसूर कांग्रेस समिति ने भी बेंगलूर की सभा में निर्णय लेते हुए, कर्नाटक की रचना का स्वागत किया। 1947 के दिसंबर में केरल की सीमा के गाँव कासरगोडु में हुए कन्नड़ साहित्य सम्मेलन को एकीकरण समावेश में मिला लिया। इस महत्वपूर्ण प्रसंग में निजलिंगप्पा जी ने अपने भाषण में, प्रत्येक कन्नड़ राज्य रचना के विरोध में संविधानिक षड्यंत्र करनेवालों के विरुद्ध स्पष्ट रूप में सचेत किया।

इसी बीच 1947 के अक्तूबर 24 के दिन पुराने मैसूर में महाराज के नेतृत्व में एक जिम्मेदार सरकार अस्तित्व में आई। 1948 के नवंबर 6 के दिन बीरूरु में हुए मैसूर कांग्रेस के महत्वपूर्ण अधिवेशन में मुख्यमंत्री के.सी. रेड्डी जी ने खुले में घोषणा की कि पुराने मैसूर के लोग कर्नाटक प्रांत रचना के लिए बाधा न डालेंगे। इस अधिवेशन में निर्णय लिया गया कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भाषावार प्रांतों की रचना के लिए तैयार है; मैसूर राज्य कांग्रेस ने इसे मान लिया है, एकीकरण के बिना, बिखरे प्रदेश का विकास संभव नहीं। यह भी उस निर्णय में बताया गया था कि कर्नाटक की जनता समान आसक्ति रखती है। निर्णय में कहा गया कि महाराजा ही एकीकृत कर्नाटक के संविधानात्मक मुख्य होंगे। यह निर्णय एकमन से स्वीकृत हुआ। 1946 में संविधान सभा जब अस्तित्व में आई, भाषावार प्रांतों की रचना के अंश को संविधान में मिलाने के लिए, संविधान सभा पर ज़ोर डाला गया। इसी उद्देश्य से 1946 दिसंबर 8 के दिन पट्टाभी सीतारामय्या जी की अध्यक्षता में भाषावार प्रांतों की रचना के हिमायतियों की सभा देहली में हुई। भाषावार प्रांत रचना के लिए कांग्रेस द्वारा व्यक्त की गयी बद्धता 1920 तलक पुरानी है और 1945 की अपनी चुनाव प्रणाली में भारत

के प्रांतों की भाषा के आधार पर फिर से रचना करने के उसके निर्णय को सभा ने याद दिलाई। इसलिए, संविधान सभा ने भाषावार प्रांत बनाने के लिए दबाव डाला। संविधान सभा के अध्यक्ष बाबू राजेंद्रप्रसाद की अध्यक्षता में ही 1948 फरवरी 24 के दिन, देहली में हुए प्रांतीय कांग्रेस अध्यक्षों की सभा ने भी भाषावार प्रांत रचना के पक्ष में निर्णय लिया था। मैसूर राज्य में बाकी कन्नड़ प्रदेशों को मिलाकर, राज्य के स्वरूप को बदलने का दृढ़ बनाने के लिए, मैसूर प्रांत कांग्रेस समिति ने 1948 में इस्तीफा दे दिया; कन्नड़ प्रदेश के अनेक बुद्धिमानों ने भी इसका समर्थन किया। इसके लिए अकेले डी.वी.जी. अपवाद रहे। वे दो कर्नाटक की रचना चाहते थे – एक पहलेवाला मैसूर और दूसरा शेष कन्नड़ प्रदेशों का राज्य। शायद केंद्र के नेता उनमें भी नेहरूजी को यह पसंद नहीं था। उन्होंने संसद में कहा कि, आंध्रप्रांत की रचना कर्नाटक की रचना से आसान है। इसके प्रति स्वाभाविक रूप में,कर्नाटक में विषाद व्यक्त हुआ। कई लोगों ने नेहरूजी पर आरोप लगाया कि वे कर्नाटक के नेताओं के अभिप्रायभेद का दुरुपयोग करना चाहते हैं। उसी क्षण नेहरूजी की बातों की प्रतिक्रियास्वरूप संविधान सभा के कर्नाटक के प्रतिनिधि और इस प्रदेश के सदस्यों ने मिलकर दिल्ली जाकर, कांग्रेस कार्यकारिणी समिति को एक ज्ञापन पत्र समर्पित किया। उस वक्त, के.पी.सी.सी. अध्यक्ष निजलिंगप्पा जी ने इसका नेतृत्व किया। इसमें के.आर. कारंत जी, एम.पी. पाटीलजी और आर्.आर्. दिवाकर जी थे। इसने केंद्र नायकत्व को चेतावनी दी कि इस विषय में कर्नाटक और आंध्र में भेद करके आंध्र को अनुकूलकर व्यवहार करे तो, उसके विरोध में कर्नाटक शासन सभा के सभी प्रतिनिधि इस्तीफा दे देंगे। वे सभी गाँधीजी से मिलने गए और उन्हें ज्ञापनपत्र की प्रति भी दे दी।

गाँधीजी की हत्या के कारण, भाषावार प्रांतों के बारे में शुरू किए सभी कार्य थोडे समय के लिए रुक गए। परंतु केरल, आंध्र, कर्नाटक और महाराष्ट्र के लोगों के जबरदस्त माँग रखने के कारण, कांग्रेस नायकत्व को जल्दी कुछ न कुछ करना पड़ा। किसी भी विषय पर, कुछ कारवाई करने की इच्छा न हो तो, सामान्यतः सरकार एक आयोग अथवा समिति की रचना का निर्णय करती है; इससे समिति की कारवाई के लिए आसान होता है। भारतीय कांग्रेस ने भी यही किया। श्री एस.के. धर के नेतृत्व में 'धर समिति' बनाकर उसे इस विषय का परिशीलन करने को कहा गया। इस आयोग की रचना का निश्चय 1948

जून 17 को प्रकट हुआ। प्रायः यह आयोग उनकी इच्छा पूरा कर देती थी। इसीलिए इस विषय की संकीर्णता और अंदरूनी झमेलों के कारण उसने सिफारिश की कि, इस विषय को स्थगित करना अच्छा है। कर्नाटक के बारे में, उसे जो महत्त्वपूर्ण बातें ज्ञात हुईं, वे यें हैं कि तेलगु और तमिल प्रदेशों के कन्नड़ क्षेत्रों को कर्नाटक में सम्मिलित होने देना चाहिए और कर्नाटक रचना के लिए प्रमुख रुकावट यह थी कि राजा के शासन के अधीन मैसूर में उसके लिए विरोध था। जैसाकि सोचा गया था कर्नाटक में के.पी.सी.सी. के नेतृत्व में तीव्र तथा व्यापक विरोध व्यक्त हुआ। एकीकरण के उद्देश्य के लिए किए गए जनसंगठन के कारण उस बृहत् विरोध की सभा में, निजलिंगप्पा जी केंद्रबिंदु रहे। एकीकरण के पक्ष में सभी अंशों के साथ, उन्होंने संसद के अंदर और बाहर, केंद्र के नायकत्व पर प्रबल प्रहार किया। उस विषय में वे इतने तल्लीन रहे कि खाने, सोने जब भी समय मिलता वे इसी के बारे में सोचते थे। राष्ट्रीय कांग्रेस का 55वाँ अधिवेशन जब 1948 दिसंबर में जयपुर में हुआ तो समस्या की गंभीरता पर ध्यान देते हुए, रिपोर्ट देने के लिए पट्टाभि सितारामय्या, नेहरू और पटेल आदि नेताओं की एक त्रिसदस्य समिति की रचना करनी पड़ी। यह एक और समिति बनी और उसका फल भी पहले जैसा ही रहा। 1 अप्रैल 1949 के दिन प्रकट हुई रिपोर्ट में वही पुराना राग आलापा गया। उसने कहा, होशियारी से आगे बढ़ना चाहिए। क्योंकि, इससे देश की भौगोलिक समग्रता व एकता भंग नहीं होनी चाहिए; यह चेतावनी भी दी गई कि देश के आर्थिक विकास पर इसका दुष्परिणाम न हो! साथ ही यह सूचना दी कि आंध्र की माँग को अधिक महत्त्व दिया जाय! क्योंकि, समिति के एक सदस्य आंध्र के थे। इस रिपोर्ट से कन्नड़ प्रदेश के लोग भड़क उठे। तीव्र विरोध व्यक्त हुए। 8 मई 1949 के दिन इस रिपोर्ट के परिशीलन के लिए हुब्बळ्ळी में निजलिंगप्पा जी की अध्यक्षता में के.पी.सी.सी. ने उन सिफारिशों के बारे में, अपने संपूर्ण भ्रम निरसन को व्यक्त किया। कर्नाटक और आंध्र प्रांतों की पुनः रचना के लिए, परिश्रम किया था निजलिंगप्पा जी और अन्य नेताओं ने। इस विषय में संविधान की असफलता सभा की समझ में आ गई। 3 दिसंबर 1949 के दिन, हुब्बळ्ळी में हुई के.पी.सी.सी. सभा के निर्णय में विरोध और निराशा व्यक्त हुई। उस सभा में कहा गया था कि कर्नाटक से चुने गए सभी शासक व पार्लिमेंट के सदस्य इस्तीफी दे दे। निर्णय में यह भी बात थी कि कन्नड़ लोग कांग्रेस पर विश्वास

खो बैठे हैं। आक्रोश व्यक्त किया गया कि एकीकरण न हो सकने के कारण उन्हें प्रतिदिन दबाया जा रहा है और यह कन्नड़ लोगों के देश के विकास में भाग लेने में रुकावट बनी है। निर्णय में कहा गया कि इसलिए कर्तव्यपालन न कर पाने से प्रतिनिधियों की इस्तीफा देना ही अनिवार्य मार्ग है। 4 जनवरी, 1950 को निजलिंगप्पा जी के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मंडल मुंबई में वल्लभभाई पटेल जी से मिलकर, इस ऐतिहासिक निर्णय की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया गया। उसके बाद कांग्रेस कार्यकारिणी समिति को मुख्यत: समर्पित करने, प्रतिनिधि मंडल देहली गया। कांग्रेस अध्यक्ष श्री राजेंद्र प्रसाद ने आश्वासन दिया कि इस विषय में कर्नाटक के विरुद्ध कोई भेदभाव नहीं होगा। इसी बीच, आंध्र का विषय भी आया। इसका कारण था कि एकीकृत आंध्रप्रदेश की रचना के लिए रायलसीमा में स्थित बळ्ळारी, कर्नूल्, कडपा और अनंतपुर के जिले के लोगों ने विरोध व्यक्त किया था।

यह सच था कि राज शासन के मैसूर राज्य में एकीकरण के लिए विरोध रहा; परंतु वह नेताओं के स्तर पर न होकर राज्य के प्रमुख समुदाय स्थानीय लिंगायत लोगों में था। उनकी भावना थी कि एकीकरण से राजशासन में जो सुविधाएँ मिल रही है उनका अंत होगा। इस लेखक से निजलिंगप्पा जी ने अपने साक्षात्कार में कहा था, सामान्य लोग एकीकरण के पक्ष में थे। पुराने मैसूर के कई नेताओं का विरोध शमन के लिए कारण निजलिंगप्पा जी का निर्मल व्यक्तित्व, परिशुद्ध चरित्र और उनकी विचारशीलता था। परंतु एच.सी. दासप्पाजी, के.सी. रेड्डी जी, के.टी. भाष्यंजी, ए.डी. बंदीगौडाजी आदि प्रमुख नेता कभी भी एकीकरण के विरोध में नहीं थे। असली समस्या थी, उत्तर के केंद्रीय नेताओं की आँखमिचौनी और कन्नड़ लोगों में एकता न रहने के कारण धीमी गति। पुराने मैसूर के प्रमुख नेता श्री केंगल हनुमन्तय्या जी कहते थे कि लोगों की अनैक्यता और प्रभावशाली नेतृत्व का अभाव ही इसका कारण है। उन्होंने स्पष्ट रूप से क्रोध से कहा कि दक्षिण के कई नेताओं ने अपने राज्य की समस्या की उपेक्षा करते हुए, राष्ट्रीय नेताओं के समीप रहने का प्रयत्न किया।

परंतु एकीकरण का संघर्ष, विविध संगठनों के कारण जीवित रहा। उदाहरण के लिए 1951 जुलाई 12 को कर्नाटक युवा परिषद की कार्यकारिणी समिति ने के.एम. रुद्रप्पाजी की अध्यक्षता में मिलकर एकीकरण के उद्देश्य का स्वागत करने और पूर्णरूप से उसका समर्थन करने का निर्णय लिया। कांग्रेस के अध्यक्ष

पुरुषोत्तमदास टण्डन जी से मिलकर, निजलिंगप्पा जी ने उनसे भाषावार प्रांतों की रचना के बारे में सुदीर्घ चर्चा की। कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति में भी भाग लेते हुए, उन्होंने स्पष्टरूप से कहा कि एकीकरण के पक्ष में, बहुत पहले ही निर्णय लेने पर भी विफल होने के कारण, कन्नड़ जनता कांग्रेस पर अपना विश्वास खो बैठी है। उन्होंने यह चेतावनी भी दी कि जनता की यह अतृप्ति चुनावों में कांग्रेस के विरोध में भी हो सकती है। उसी समय नेहरू जी से हुई व्यक्तिगत मुलाकात में निजलिंगप्पा जी ने उनसे विस्तृत रूप में बताया कि कन्नड़ राज्य रचना में होनेवाली देरी के कारण, कर्नाटक भर में विषाद फैला है और प्रतिगामी और कांग्रेस विरोधी शक्तियाँ राजनैतिक लाभ के लिए उसका उपयोग कर रही हैं। इन सभी प्रयत्नों के फलस्वरूप 1951 के अपनी चुनाव प्रणालिका में कांग्रेस भाषावार प्रांत रचना के भरोसे को सम्मिलित करना मान गया। 1951 जुलाई 17 को शंकरराव देव की अध्यक्षता में हुई प्रांतीय कांग्रेस समितियों के अध्यक्षों की सभा में इसका स्वागत किया। इस माँग को पूरा करने के लिए क्रियाशील होने और लोगों को संघ-संस्थाओं को तैयार करने के लिए निजलिंगप्पा जी की अध्यक्षता में छः लोगों की समिति बनाई गई।

इसीबीच, स्थानीय राजाओं ने कुछ प्रतिगामी शक्तियों और दक्षिण के सभी राजाओं ने मिलकर एक स्वतंत्र परिसंघ बना लेने का प्रयत्न किया। इस उद्देश्य के लिए सभी इकट्ठा हुए थे; इसके नेतृत्व को सांग्ली के महाराजा के हाथ दिया गया। कर्नाटक के सत्रह स्थानीय राज्यों ने प्रत्येक राजकीय घटक, स्वतंत्र संविधान रखने के कारण इस परिसंघ में शामिल होने की इच्छा व्यक्त की। इस उद्देशपूर्ण परिसंघ के संविधान की रचना के.एम. मुंशी जी ने की। इस उद्देश्य के लिए सांग्ली महाराजा ने दिल्ली के इंपीरियल होटल में सभा बुलाई; उसमें पट्टाभी सीतारामय्या जी, शंकरराव देव जी और आर्.आर्. दिवाकरजी जैसे कांग्रेस नेता गए थे। हमेशा प्रजासत्तात्मक और प्रगतिपर विचार रखनेवाले निजलिंगप्पा जी इस परिसंघ के विरुद्ध प्रचार करने लगे। अपने तत्वों के बद्ध रहकर उसके लिए खुले में कार्य करते हुए, ऐसे एक परिसंघ की रचना के लिए अनुमति देनेवाले, उस समय के कांग्रेस अध्यक्ष आचार्य कृपलानी थे। उनसे मिलकर उन्होंने सवाल लिया कि क्या आप भारत को विभक्त करने जा रहे हैं? कृपलानी जी ने नेहरू जी की तरफ इशारा किया और नेहरू जी ने हमेशा की तरह सरदार पटेल की ओर देखा। इस प्रयत्न के परिणामों को तुरंत समझते

हुए, पटेल जी ने इसके विरुद्ध सभी राज्यों में सत्याग्रह प्रारंभ करने का नेतृत्व स्वयं निजलिंगप्पा जी को निभाने के लिए कहा और बाकी कार्य खुद देख लेने का आश्वासन दिया। निजलिंगप्पा जी के कार्यों की प्रशंसा की। मुंशी जी से मिलकर प्रतिरोध व्यक्त किया। मुंशी जी ने कहा कि उन्होंने इस समस्या को केवल एक तांत्रिक प्रश्न के रूप में देखते हुए, एक संविधान विशेषज्ञ वकील के रूप में उसका परिशीलन किया। यह भी बताया कि इस कार्य के लिए उन्हें तीस हजार रुपये दिये हैं; परंतु यदि निजलिंगप्पा जी अपने राज्य में सत्याग्रह प्रारंभ करें तो वे एक सैनिक की भाँति उनको सहयोग देंगे। यह बात बहुत लोग नहीं जानते हैं। भाषावार प्रांतों की रचना में निजलिंगप्पा जी का पात्र महत्वपूर्ण था। भारत के प्रजातंत्र और परिसंघ के सौभाग्य से निजलिंगप्पा जी के विरोध ने जन्म लेने से पहले ही इस परिसंघ को मार डाला था। अप्रत्याशित घटनाओं के कारण लोकसभा में 19 दिसंबर 1952 के दिन पहले आंध्र राज्य रचना की घोषणा की गई।वह घटना थी, आंध्र राज्य के लिए श्री रामुलु का आमरण उपवास। अट्ठावन दिनों के उपवास के बाद, श्री रामुलु मरकर आंध्रराज्य के लिए शहीद हुए। तब पूरे तेलगु भाषी लोगों ने दंगा किया। ऊहातीत हिंसाचार हुए; जायदादों का नुकसान हुआ; हिंसा के सामने नहीं झुकेंगे कहते हुए, अंत में नेहरूजी को झुकना पड़ा। परंतु आंध्र की सीमा में कई कन्नड़ प्रदेश भी अटक गए थे। उसमें प्रमुख प्रदेश था बळ्ळारी। प्रश्न उठा कि उसे आंध्र में शामिल करे या नहीं ? इस विषय में, निर्णय लेने के लिए बनाये गये वांछू एक सदस्य आयोग ने निर्णय दिया कि अधिक कन्नड़ भाषी लोग कहनेवाले जिले के सात तालुकों को कर्नाटक की रचना होने तक आंध्र में शामिल किया जाय। अर्थात् कर्नाटक राज्य रचना के समय इस विषय के बारे में पुनः परिशीलन करने का मौका होगा। 1953 जनवरी 12 को कर्नाटक एकीकरण के दृढ़ प्रतिपादक निजलिंगप्पा जी ने एक घंटा, आवेशपूर्ण इस विषय पर कर्नाटक के पक्ष में भाषण दिया। केंद्र सरकारऔर राष्ट्रीय कांग्रेस नेतृत्व के उसमें भी नेहरूजी के अनिश्चित अभिप्राय से निजलिंगप्पा जी का मन बहुत दुःखी हुआ। 1953 जनवरी 15 को उनकी डायरी में यह देख सकते हैं। उन्होंने उसमें लिखा है कि पूरा नायकत्व देश की वास्तविकता को समझने में असफल हुआ। उसका कारण, वृद्धावस्था का मनोदौर्बल्य ही है। ''राजशासित हैदराबाद के निजामराज्य को भाषावार के आधार पर नहीं तोड़ना चाहिए'' – नेहरूजी का यह विचार

मौलाना आजाद जी के अलावा किसी को भी ठीक नहीं लगा। निजलिंगप्पा जी ने कहा कि नेहरूजी थक गए हैं, इसलिए उनमें समचित्तता नहीं है। वे ढोंगी प्रशंसकों के कठपुतली बने हैं। उन्हें विषाद हुआ कि नेहरूजी अपनी प्रशंसा पर मुग्ध होते हैं, और लोगों को समझने में भूल करते हैं। निजलिंगप्पा जी के बारे में गलतफहमी है कि वे कभी कभी दुर्बल होते हैं। परंतु, सच्चाई यह है कि उनके सहज सौजन्य और सज्जनता को उनकी दुर्बलता मानी जाती है। जैसे हैदराबाद-प्रसंग में देखा गया, उन्होंने देश के अत्यंत प्रबल व्यक्ति देश के प्रधान मंत्री नेहरूजी के विरुद्ध, अपना दृढ़ विचार प्रकट किया। उन्होंने विषादभाव से यह भी देखा कि दासप्पा जी भी बिना किसी विरोध के वास्तव में नेहरूजी के मार्ग में ही जा रहे थे। उन्होंने कहा कि मल्या जी ने भी एकीकरण को मुंबई कर्नाटक के दो जिलों की माँग कहकर बहुत निम्नस्तर का व्यवहार किया। अब पीछे मुड़कर देखे तो लगता है कि निजलिंगप्पा जी ने अकेले ही, कर्नाटक के लिए अपना संघर्ष केंद्र नेताओं की धोखाघडी के विरुद्ध जारी रखा था। परंतु जब केंगल हनुमंतय्या जी ने समर्थन किया कि पुराने मैसूर में विविध कन्नड़ प्रदेशों को शामिल कर एकीकृत कर्नाटक की रचना की जाय तो निजलिंगप्पा जी को उससे तसल्ली मिली।

बळ्ळारी को कर्नाटक में रहने देने के लिए जो संघर्ष हुआ उससे पता चलता है कि निजलिंगप्पा जी ने कितनी दृढ़ता व प्रतिबद्धता के साथ कर्नाटक के हित को चाहा। 1953 जनवरी 28 को के.एस. हेगड़े जी और कई साथियों के साथ, न्यायमूर्ति वांछूजी से जो दूसरी बार बातचीत हुई उसमें उन्होंने आंध्र रचना में बळ्ळारी जिले को शामिल करने के विरुद्ध जबर्दस्त प्रतिपादन किया। 1953 मार्च 11 को निजलिंगप्पा जी ने नेहरूजी को एक पत्र लिखकर उसमें बळ्ळारी व मड़कशिरा तालुकों को मैसूर राज्य में मिलाने के लिए दबाव डाला। अधिकृत रूप से जब आंध्र की घोषणा हुई थी, तब बळ्ळारी जिले के - आदोनी, आलूरु व रायदुर्ग - इन तीनों तालुकों को आंध्र में शामिल किया गया था। इससे भी बढ़कर बळ्ळारी शहर को भी मिलाना चाहते थे। कर्नाटक राज्य की रचना के बिना आंध्र का अस्तित्व में आना और बळ्ळारी शहर को आंध्र में मिलाना, इन सब ने कन्नड़ लोगों को बहुत क्रोधित किया। उत्तर कन्नड़ जिला के मुंडगोडु तालुके के श्री नारायण पै ने उपवास करते हुए इसका विरोध किया। बळ्ळारी के लोगों ने हड़ताल की। नगर का जीवन अस्तव्यस्त हो गया। यहाँ और एक

मुख्य घटना जो हुई वह थी, हुब्बळ्ळी के पास के अदरगुंची नामक गाँव के शंकरेगौड़ा जी ने कर्नाटक के पक्ष में, आमरणांत उपवास किया। हालात इतनी गंभीर हो गई कि परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए 13 अप्रैल, 1953 को निजलिंगप्पा जी की अध्यक्षता में के.पी.सी.सी. ने सभा बुलाई। प्रधानमंत्री की धारणा और कार्यों के विरुद्ध कर्नाटक के विविध प्रदेशों से आए हुए लोगों ने हुब्बळ्ळी में इकट्ठे होकर, अपना आक्रोश व्यक्त किया। क्रोधभरे लोगों ने कानून तोड़ा; परिस्थिति के विकोप के कारण पुलिस ने गोली चलाई। के.पी.सी.सी. ने निर्णय ले लिया कि 1954 से पहले कर्नाटक की रचना हो जानी चाहिए; के.पी.सी.सी. की यह माँग यदि पूरी नहीं की जाती तो बाकी राज्यों के कांग्रेस नेता व पार्लिमेंट सदस्य सभी इस्तीफा दे देंगे। इस तरह, के.पी.सी.सी. ने चेतावनी दी। साथ ही श्री शंकरेगौड़ा जी को उपवास तोड़ने की बिनती की। 2 मई, 1953 को जब निजलिंगप्पा जी बळ्ळारी आए तो देखा कि पूरा शहर, आक्रोश और हताशा से उबल रहा था। उनका अधिक उत्साह व जोश से स्वागत किया गया और वर्णरंजित जुलूस में ले जाया गया। तेलगु शक्तियों ने उसमें बाधा डालने की कोशिश की, परंतु उसे असफल किया गया। बळ्ळारी के बारे में इन विरोधों के कारण अंत में इस विषय के पुनः परिशीलन के लिए न्यायमूर्ति एच.एस. मिश्राजी के साथ एक समिति की रचना करने के लिए केंद्र ने निर्णय लिया। 5 मई, 1953 को निजलिंगप्पा जी, न्यायमूर्ति मिश्राजी से मुलाकात कर, इस विषय के बारे में संपूर्ण विवरण देते हुए, अंत में एक बिनती पत्र समर्पित किया। अंत में, बळ्ळारी जिले को मैसूर राज्य में शामिल करने के लिए अपने तर्कपूर्ण समर्थन से निजलिंगप्पा जी ने न्यायमूर्ति मिश्रा जी को मनवा ही लिया। मुसलमान समुदाय ने भी इसे एकमत से मान लिया।

एकीकरण की प्रमुख समस्या थी, आसपास के राज्यों के साथ लगी सीमा के बारे में शिकायतें! इसलिए सीमा प्रदेशों में आंदोलन का प्रबल संगठन करना था। पुराने मद्रास राज्य में रहनेवाले नीलगिरि प्रदेश पर कन्नड़वालों का पुराना हक रहा; उसे कर्नाटक में शामिल करने के लिए ज़ोर डाला गया। इस भाग के 'बड़ग' समुदाय को कन्नड़भूमि में शामिल करने के लिए नीलगिरि कर्नाटक संघ ने 25 मई, 1953 को निजलिंगप्पा जी की अध्यक्षता.में एक सभा का आयोजन किया। उस समय के पुराने मैसूर राज्य के मुख्यमंत्री श्री के. हनुमंतय्या जी ने अधिवेशन का उदघाटन किया। इस संदर्भ में बड़ग लोगों ने खुद आकर,

एक बिनती पत्र दिया कि उन्हें कर्नाटक में विलीन किया जाय । 13 अगस्त, 1953 को दिल्ली में हुई कांग्रेस संसदीय पक्ष की सभा में पेश किए गए आंध्र रचना मसौदे का निजलिंगप्पा जी ने स्वागत किया। साथ ही उन्होंने कहा कि यदि इसके साथ कर्नाटक रचना का मसौदा भी पेश किया जाय तो दुगुना संतोष होता। उन्होंने आधारसहित विचार पेश किया कि आदोनी, आलूरु, तथा रायदुर्ग और नीलगिरि प्रदेशों को कर्नाटक में शामिल किया जाय।

नेहरूजी ने इस विषय को टालना या स्थापित करना नामुमकिन समझकर लोगों के दबाव के आगे झुककर, भाषावार आधार पर राज्य रचना की समस्याओं का अच्छी तरह से अध्ययन करते हुए, सरकार को सिफारिश करने के लिए एक आयोग की रचना करने की उन्होंने घोषणा की। उन्होंने बताया कि 1955 के मध्य तक, एक तात्कालिक रिपोर्ट देने को कहा जाएगा। उडिसा के तत्कालीन राज्यपाल श्री सैयद फझ्ल अली, राज्य पुनःर्विभाजन आयोग (एस.आर.सी.) के अध्यक्ष बने और पंडित एच्.एन्. कुंज्रूजी उसके सदस्य बने। इस घोषणा का व्यापक रूप में स्वागत हुआ। 4 फरवरी 1954 को, हुब्बळ्ळी में कांग्रेस शासकों की सभा का उदघाटन करते हुए एस.आर.सी. का स्वागत करते हनुमंतय्या जी ने यह आश्वासन दिया कि पुराना मैसूर इसके लिए कोई बाधा नहीं डालेगा। फिर भी पुराने मैसूर के कुछ नेता प्रचार करने लगे कि पुराने मैसूर और कोडगु मिलकर एक कर्नाटक, बाकी हैदराबाद, मद्रास, मुंबई के कन्नड़ प्रदेशों का एक दूसरा कर्नाटक बने। इसप्रकार, एकीकरण के बारे में पुराने मैसूर के नेताओं में दो दल हो गये। उसके बाद मैसूर कांग्रेस ने निर्णय किया कि एस्.आर.सी. को कोई भी विनति पत्र न भेजा जाय। मैसूर कांग्रेस को छोड़कर बाकी कन्नड़ प्रदेश के प्रमुख संघ-संस्थाओं ने – कर्नाटक प्रांत रचना संघ, अखण्ड कर्नाटक राज्य निर्माण परिषद, कर्नाटक युवक संघ, पत्रकारों का संघ, कर्नाटक एकीकरण संघ, कर्नाटक वणिक संघ और अनेक कांग्रेसेतर राजकीय पक्षों ने – कर्नाटक राज्य रचना के पक्ष में विनतिपत्र समर्पित किया। इस तरह के अभूतपूर्व व्यापक समर्थन के पीछे निजलिंगप्पा जी का अविरत व अथक परिश्रम था!

परंतु एस्.आर.सी. रचना की पुष्टभूमि में मैसूर राज्य सरकार को एकीकरण के विषय का परिशीलन कर, रिपोर्ट देने के लिए शेषाद्री आयोग की रचना हुई। इस प्रश्न के संबंध में सभी आधारों का संपूर्ण व व्यवस्थित रीति में

संग्रह कर, पुराने मैसूर राज्य को छोड़कर बाकी कन्नड़ प्रदेशों के सामाजिक-आर्थिक विकास स्तरों का परिशीलन करते हुए इस समिति ने एकीकरण को मानने पर सामने आनेवाली समस्याओं पर प्रकाश डाला। इन समस्याओं के निवारण के लिए जो कार्य करने हैं उसके बारे में भी, इस आयोग ने सूचना दी। मूलतः इस आयोग की रचना, वस्तुस्थिति के अध्ययन के लिए हुई थी। इसलिए, एकीकरण होने पर आनेवाली समस्याओं के स्वरूप के बारे में, उसने विवरण दिया। इसी बीच 7 मई 1954 को निजलिंगप्पा जी ने स्वयं इस आयोग के सामने जाकर, कन्नड़ प्रदेश के एकीकरण के पक्ष में जबरदस्त बहस पेश की। एकीकरण के कार्य का अगला कदम यह था कि एस.आर.सी. को कर्नाटक एकीकरण के पक्ष में, एक सर्वानुमति ज्ञापन पत्र को पेश करने के लिए कर्नाटक के आद्यंत के सभी पक्षों के प्रतिनिधियों की एक बृहत् सभा दावणगेरे में 28 व 29 मई 1954 को दो दिनों तक हुई। इस सभा ने, ज्ञापन पत्र देकर एकीकरण के पक्ष में बहस करने के लिए निजलिंगप्पा जी को अधिकार दिया। अर्थात् निजलिंगप्पा जी को एकीकरण उद्देश्य के प्रश्नातीत संकेत के रूप में सब की ओर से माना गया।

निजलिंगप्पा जी की राजनीतिक शैली ऐसी थी कि वे स्नेहपूर्ण तथा आदान-प्रदान के मनोभाव के साथ वस्तुनिष्ठ और निर्भावुक रीति से समस्याओं का परिशीलन करते थे। यदि परिस्थिति बड़ी गंभीर हो तभी वे आक्रमणशील शैली को अपनाने थे। अपनी विशिष्ट शैली के कारण ही राज्य सीमा विषयक शिकायतों का सामना करने में और उससे भी ज्यादा आयोग के सामने कर्नाटक एकीकरण के पक्ष में बहस करना संभव हुआ। किन्तु केंद्र के कांग्रेस नेताओं के साथ व्यवहार करने में उन्हें इस शैली को छोड़कर अधिक आक्रमणकारी रीति को अपनाना पड़ा। उदाहरण के लिए 29 जनवरी 1956 को उन्होंने नेहरूजी को लिखे पत्र में चेतावनी दी कि बळ्ळारी की समस्या अति गंभीर है, इसलिए उसके बारे में उपेक्षा करना ठीक नहीं होगा!

यदि कार्यनिर्वहण किया जायेगा तो एस.आर.सी. अंत में क्या निर्णय देगा – इसके बारे में अनेक ऊहापोह हवा में तैर रहे थे। एक बात ने श्री निजलिंगप्पा को विचलित किया कि पूरे दक्षिण भारत को मिलाकर एक ही राज्य का निर्माण करने के लिए सोच रहा है। तुरंत वे कार्यप्रवृत्त हो गए। इस विषय पर चर्चा करने के लिए दक्षिण के प्रमुख नेता श्री कामराज नाडार आदि की सभा बुलाई।

इसका फल यह था कि उनमें कोई भी, आयोग की इस बात को माननेवाले नहीं थे। अंत में मालूम हुआ कि यह केवल हवा में उड़ी बात थी, इसका कोई आधार न था। बेंगलूर के जयदेव छात्रवास में 2 जनवरी 1956 के दिन हुए, सीमाप्रांत के कन्नड़ भाषियों के सम्मेलन के उद्घाटन भाषण में उन्होंने यह बात बताई। चार सौ प्रतिनिधियों का वह बृहत सम्मेलन था। उनमें कई लोगों ने पूरे दक्षिण भारत को एक राज्य बनाने के विचार का खण्डन किया। एकीकरण को रोकने की, नेहरूजी की यह साजिश है मानते हुए, प्रतिनिधियों ने उनका सीधे शब्दों में खण्डन किया। किसी कारणवश उस समय नेहरूजी बेंगलूर में ही थे। वैसे एक संयुक्त राज्य की स्थापना के बारे में चर्चा करने, सभा का आयोजन करते हुए नेहरूजी ने मैसूर, मदरास तथा आंध्र के मुख्यमंत्रियों को आयोजित किया। इससे यह प्रमाणित हो गया कि इस कार्य के पीछे नेहरू का हाथ था। शायद उन्हें भी पता चला था कि ऐसे संयुक्त राज्य के विचार के विरुद्ध अपनी देह की अंतिम खून की बूँद तक संघर्ष करने के लिए निजलिंगप्पा जी ने प्रण किया था। इससे निजलिंगप्पा जी विचलित नहीं हुए। वे जानते थे कि दक्षिण कन्नड़ और धारवाड़ के कई नेता उनके विरुद्ध नेहरू जी के मन में जहर घोलने का प्रयत्न कर रहे थे। उनके निजलिंगप्पा जी के प्रति इस मनमुटाव का कारण था निजलिंगप्पा जी का जनानुराग। निजलिंगप्पा जी के प्रति उन नेताओं को भय था। वे सोचते थे कि उनके प्रमुख शत्रु का जब तक नेहरूजी विरोध करेंगे तब तक उनका स्थान मज़बूत रहेगा। निजलिंगप्पा जी को कभी भी पद की चाह नहीं थी। इसलिए उन नेताओं को मालूम था कि निजलिंगप्पा जी ऐसे तुच्छ राजनीति से नहीं डरेंगे। परंतु जैसे निजलिंगप्पा जी के विचार थे, दक्षिण भारत को संयुक्त राज्य बनाने का विचार नेहरूजी के मन में नहीं था। नेहरूजी के साथ बळ्ळारी की समस्या पर जब चर्चा हुई तो उन्होंने संयुक्त राज्य के बारे में चर्चा ही नहीं की। निजलिंगप्पा जी को झूठी प्रशंसा या दिखावे की निष्ठा अच्छी नहीं लगती थी। अगले दिन सवेरे नेहरूजी जब दिल्ली जा रहे थे तो उन्हें विदा करने हवाई अड्डे पर आए झूठे प्रशंसकों में निजलिंगप्पा जी नहीं थे। शायद नेहरूजी जो को झूठी प्रशंसा पर मुग्ध होते थे, निजलिंगप्पा जी का स्वाभिमानी मनोभाव को अच्छा न लगा होगा।

30 सितंबर 1955 को एस.आर.सी. ने सरकार को अपनी रिपोर्ट पेश की। 10 फरवरी 1956 के अमृतसर के कांग्रेस अधिवेशन में चर्चा का विषय

बना। इस चर्चा में देश की भाषायी पुनःगठन के बारे में सोचने के विशाल मनोभाव से अधिक, संकुचित दृष्टिकोण ही प्रदर्शित हुआ। अनेक नेताओं में मन खोलकर बोलने की हिम्मत नहीं थी। इससे संपूर्ण अधिवेशन एकव्यक्ति प्रदर्शन जैसा रहा। लोग जो अपने अभिप्राय मुक्त रूप से कहने के बजाय अधिकारशाही के पीछे चल रहे थे – इस प्रवृत्ति के बारे में, निजलिंगप्पा जी ने 10 फरवरी 1956 को लिखी अपनी डायरी में विषाद व्यक्त किया है। उनकी चिंता थी कि मुक्त चिंतन के बिना इससे देश की भलाई नहीं होगी। इस रिपोर्ट के बारे में अधिकृत स्थगन प्रस्ताव के समर्थन के लिए जब जगजीवन रामजी ने इन्हें कहा तो निजलिंगप्पा जी चुप रहे; क्योंकि, उसका परिणाम वे जानते थे। एन.वी. गाडगीळजी ने उस स्थगन प्रस्ताव का विरोध किया तो नेहरूजी, पंतजी और अन्य वरिष्ठ नेताओं ने उसका विरोध किया। प्रमुख विषय था द्विभाषिक राज्यों की रचना की संभवनीयता। उसे आगे ले चलने के लिए सभी नेता चाहते थे। चर्चा में प्रादेशिक राजनीतिक स्पर्धा का भी प्रमुख पात्र था। मदरास के सुब्रह्मण्यजी दक्षिण भारत के नाम से संयुक्त राज्य की स्थापना के पक्ष में इसलिए बोल रहे थे कि वे अपने प्रबल विरोधी कामराज नाडार को संकोच में डालना चाहते थे। निजलिंगप्पा जी को अच्छी तरह से मालूम था कि द्विभाषिक राज्यों की रचना ठीक नहीं है। सामान्यतः, दिखाई देनेवाली व्यक्ति पूजा से वे दुखी थे। उसके बाद मैसूर प्रदेश कांग्रेस समिति की बैठक 19 फरवरी 1956 को बेंगलूर में हुई। अपनी बैठक में द्विभाषिक राज्यों के बारे में चर्चा की। यह सूचना एकीकरण विरोधियों के लिए एक अस्त्र बन गई। उनमें शामिल थे, एच.के. वीरण्णगौडा जी, एच्.सी. दासप्पाजी, और एम.वी. कृष्णप्पाजी। इसका अंतिम निश्चय कार्यकारिणी समिति को पेश करने के लिए उस सभा ने निर्णय किया। द्विभाषिक राज्य रचना तथा दक्षिण भारत संयुक्त राज्य रचना की योजनाओं को विरोध करने के लिए निजलिंगप्पा जी को योग्य व्यक्ति मानकर एस.आर.सी. के सदस्य पणिक्करजी ने उन्हें बुला भेजा। इसके साथ यह सोचकर कि केंद्र के द्वारा इसका निर्वाह करना कठिन होगा बड़े राज्यों की स्थापना के विरोध में भी उन्होंने चर्चा की। परंतु द्विभाषिक और बहुभाषिक राज्य रूपी भूतों से वे चिंतित थे। कर्नाटक राज्य रचना की समस्या, जाति संघर्ष के कारण – उसमें भी ओक्कलिग (कृषक) और लिंगायत जैसे प्रमुख समुदायों के संघर्ष के कारण जटिल हो रहा था। ओक्कलिग समुदाय का अधिक विरोध रहा; क्योंकि उन्हें संदेह था

डॉ. के. शिवराम कारंत जी के साथ एस. निजलिंगप्पा जी

कि एकीकरण के बाद लिंगायत प्रधान सरकार की रचना होना संभव है। यह विरोध अल्पमात्र व तात्कालिक होने का विश्वास निजलिंगप्पा जी को था, वैसे वे तर्क भी करते रहे। फिर भी, उन्हें अपने ही बारे में संदेह हो रहा था कि यह पक्षपात है या आशावाद है। 3 मार्च 1956 को उन्होंने एक मजेदार विषय को दाखिल किया। शायद यह, कडूर से मैसूर जाने का संदर्भ था। उनके साथ शिवराम कारंत जी भी यात्रा कर रहे थे। सहज ही भाषावार प्रांत रचना के बारे में बातचीत शुरू हुई। बाद में कारंत जी ने क्रोध से उसका विवरण दिया कि एक प्रभावी 'ओक्कलिग' नेता ने एकीकरण के विरोध में और दक्षिण भारत संयुक्त राज्य रचना के पक्ष में, बहस की; और यह भी बहस की कि इससे लिंगायतों को वश में रखने में यह सहायक होगा; कारंत जी ऐसे संकुचित मनोभाव के विरुद्ध थे। कुछ दिनों के बाद, निजलिंगप्पा जी जब उस बुजुर्ग ओक्कलिग (कृषक) नेता से मिले तो, उन्होंने एकीकरण के लिए अपना समर्थन व्यक्त किया। वे थे साहूकार चेन्नय्या जी। निजलिंगप्पा जी को यह भय था कि दिल्ली के केंद्र नायकत्व के दबाव से वे कहीं अपना अभिप्राय बदल दे। 23 अप्रैल 1956 के दिन, केंद्र गृहमंत्री पंत जी ने एस.आर.सी. के रिपोर्ट को लोकसभा में रखा और सलाह दी कि उसे चुनी हुई समिति के सामने परिशीलन के लिए पेश किया जाय। उसमें मंत्री जी ने निजलिंगप्पा जी को भी शामिल करने के लिए कहा था – इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। प्रायः उतनी ही आश्चर्यपूर्ण बात थी कि सभापति द्वारा अधिकृत रूप से प्रकट की गई लिस्ट में निजलिंगप्पा जी का नाम था ही नहीं! निजलिंगप्पा जी ने संदेह व्यक्त किया कि इसमें उनकी लोकप्रियता व स्थान-सम्मान के बारे में जलते हुए, दक्षिण कन्नड़ के एक लोकसभा सदस्य का हाथ होगा! परंतु, सदन के एक और सदस्य श्री सी.आर. बसप्पाजी ने जब इस सूची के लिए आक्षेप व्यक्त किया तो, गृहमंत्री ने उस सूची में, निजलिंगप्पा जी का नाम शामिल किया। सभापति जी ने अधिकृत सूची में उसको प्रकट कर किया। उस समिति में निजलिंगप्पा जी ने बहस की कि, बळ्ळारी को कर्नाटक में और मुंबई को महाराष्ट्र में मिला दिया जाय। असंख्य ज्ञात व अज्ञात कर्नाटकप्रियों व निजलिंगप्पा जी के साथ अनेक राजनीतिक नेताओं के प्रयत्नों से और भाषावार प्रांत रचना के लिए देशव्यापी समर्थन के कारण, एकीकरण अनिवार्य हो गया। उसके विरुद्ध कार्य करनेवालों को भी अनिवार्य रूप से कन्नड़ प्रदेश का एक होना मानना पड़ा। फिर भी इन लोगों ने, छोटा-सा ही सही जीत

पाने के लिए, नए राज्य को 'कर्नाटक' के बदले 'मैसूर' नाम देने के लिए दबाव डालने से आलूरु वेंकटराव जैसे एकीकरणवादियों को थोड़ी निराशा हुई, एकीकरण के विरोधियों की इस किंचित जीत के लिए कारणीभूत लोगों में देवराज अरस प्रमुख थे। चुनी गई समिति ने जब द्विभाषिक राज्य रचना का तिरस्कार किया तो तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष यु.एन्. देभरजी ने निजलिंगप्पा जी के सामने अपनी निराशा व्यक्त की। 13 मई 1956 को अपनी डायरी में निजलिंगप्पा जी ने अपना विषाद व्यक्त किया है कि, "देभरजी जैसे बड़े नेता, देश की वास्तविकता को समझने में असफल हुए हैं; और अनेक प्रसंगों में अपने चारों ओर के झूठी प्रशंसकों के कारण, गलत रास्ता अपना रहे हैं। सरल व सज्जन देभरजी जनता के संपर्क को खोकर परिस्थिति के सामने कठपुतली बन गए थे।

रिपोर्ट के परिशीलन के लिए जब सभा बैठी तो दिल्ली में प्रबल राजनीतिक हलचल हुई। देश के विविध प्रदेशों से लोग दौड़ पड़े; समिति पर अपनी मांगों को थोपने का प्रयत्न किया गया। उसका एक निदर्शन है कि, श्रीरामरेड्डी जी, के.आर. कारंत जी, उमेश रावजी तथा कइयों ने मड़कशिरा व कासरगोड़ को कर्नाटक में मिला देने के लिए दबाव डाला। समिति की सभा में निजलिंगप्पा जी ने इसके बारे में प्रस्ताव पेश किया, परंतु उन्होंने इस पर कठिन अभिप्राय नहीं लिया। प्रमुख विषय के बारे में उनकी दृढ़ता होने पर भी, छोटे विषयों के लिए उनके लेन-देन के व्यवहार के लिए यह एक उदाहरण था। उनके सामने यह समस्या सताती थी कि, क्या यह राजी होने का मनोभाव ठीक है या नहीं? परंतु जिस विषय की उपेक्षा जो नहीं कर सके वह था, महाराष्ट्र के लोगों का दबाव कि कारवार और बेलगाव को महाराष्ट्र में शामिल किया जाय! पंत जी ने कहा कि कार्यकलापों में कर्नाटक को अधिक लाभ हुआ है, फिर भी, निजलिंगप्पा जी ने सवाल करते हुए तर्क किया कि, कन्नड़वालों के साथ बड़ा अन्याय हुआ है। परंतु इस विषय को आगे बढ़ाने के लिए उन्हें एक झिझक थी कि, जो मिला है, उसे भी खोना न पड़े; और विवाद को ही एक बहाना बनाकर केंद्र नायकत्व इस विषय को आगे के लिए न डाल दे! कर्नाटक रचना प्रमुख विषय होने के कारण, निजलिंगप्पा जी समिति के कार्य में जी जान से जुट पड़े। केरल और महाराष्ट्र के प्रतिनिधियों के साथ लगातार संपर्क रखते हुए, कन्नड़ जनता के हित की रक्षा के लिए उन्होंने सतर्कता से व्यवहार किया। समिति की

सिफारिशें जब लोकसभा में परिशीलन के लिए पेश की गई, तो मुंबई नगर के भविष्य का प्रश्न उभरकर बडे ही जोरदार वाग्वाद के लिए सामने आया। इस विषय पर केंद्र के अर्थ मंत्री सी.डी. देशमुखजी ने इस्तीफा दे दिया। कई लोगों ने सलाह दी कि महाराष्ट्र और गुजरात को मिलाकर, कुछ समय के लिए द्विभाषिक राज्य की स्थापना की जाय। कर्नाटक से संबन्धित अत्यंत प्रमुख प्रश्न सहज ही रहा, सीमा की समस्या! सौहार्द्रता के साथ, सीमा समस्या के परिहार के लिए कर्नाटक, आंध्र, महाराष्ट्र और केरल के प्रतिनिधि, निजलिंगप्पा जी की अध्यक्षता में सम्मिलित हुए। यह एक उदाहरण था कि मतभेद रखते हुए भी, उनके बारे में लोगों ने सम्मान रखा था। परंतु इस समस्या का जो भावनात्मक संबंध था उसके कारण सभा फिर से स्थगित हो गई। अब इस विषय के लिए एक ही मार्ग था कि, विवादों को हल करने के लिए अनुसरण करने को दिग्दर्शन करनेवाली तथा हो सके तो स्पष्ट परिहार पाने के लिए एक समिति की रचना करना। एकीकरण का सपना साकार होनेवाला ही था, तो द्विभाषिक राज्य रचना रूपी भयानक भूत सामने आया। बी. शिवराव और सी.पी. मथेन ने इस विषय में पुनः प्राण भरे। सभी जानते थे कि इसके लिए दासप्पाजी सपोर्ट दे रहे थे। 8 अगस्त 1956 को जैसे निजलिंगप्पाजी ने अपनी डायरी में लिखा है – इसके बारे में, उन्होंने दूरभाष द्वारा दासप्पाजी से संपर्क किया। एस.आर.सी. रिपोर्ट 9 अगस्त 1956 को संसद में तीसरी बार पढ़ने के स्तर पर पहुँचा। यह उनके जीवन में, गंतव्य तक पहुँचने का अत्यंत मधुर क्षण जैसा लगा। दूसरे दिन 10 अगस्त 1956 को तीसरी बार पढ़ने के बाद, तुरंत अनेक लोकसभा सदस्य दौड़कर आये, निजलिंगप्पा जी को बधाई देने लगे। कई ने उनका आलिंगन कर खुशी व्यक्त की। यह उनके प्रति सहज सम्मान ही था। आधुनिक भारत के इतिहास में राज्यपुर्नरचना के अध्याय में निजलिंगप्पा जी के महत्त्वपूर्ण पात्र को अमर बनाता हुआ क्षण था।

एकीकरण के आंदोलन के इतिहास और उसमें निजलिंगप्पा जी के पात्र तथा उनके पात्र के वैशिष्ट्य का वर्णन इन विषयों को यहीं रोकना ठीक होगा। एकीकरण के ध्येय की साधना में उनके महत्त्वपूर्ण पात्र के बारे में कोई भी सवाल नहीं कर सकता है और किसी ने किया भी नहीं। परंतु उनके पात्र व देन के बारे में कभी भी किए जानेवाले अस्पष्ट टीका-टिप्पणियों के पीछे, एक प्रश्नार्ह उद्देश्य होता है। उनके बारे में की जानेवाली वह भी ऊपर से समर्थनीय लगनेवाली

एक टीका यह रही कि, ''एकीकरण आंदोलन महत्त्वपूर्ण अर्थ में सांप्रदायिक था, परंतु उसके इस स्वरूप को छिपाया गया था।'' इसे और स्पष्ट रूप में कहना हो तो, इस आंदोलन का ध्येय कर्नाटक में लिंगायत साम्राज्य की स्थापना करना था। इसलिए, उस ध्येय की साधना में महत्वपूर्ण पात्र निभानेवाले निजलिंगप्पाजी को 'संप्रदायवादी' कहना होगा। कुछ हद तक वह भी ऊपरी दृष्टि से, यह आलोचना सही मान सकते हैं। परंतु उसकी दुर्बलता को दिखाने में कोई कठिनाई नहीं है। आंदोलन के लिए प्रेरक शक्ति, लिंगायतों की आकांक्षा थी – इसे एक क्षण के लिए मानने पर भी, निजलिंगप्पाजी का मनोभाव भी यही रहा – यह कहना तार्किक रूप से नहीं मान सकते। निजलिंगप्पाजी के विरुद्ध सांप्रदायिकता का आरोप लगाने से अधिक असत्य नहीं है। इसके लिए प्रमाण है, उनके जीवन के खुले पड़े पन्ने। अब तक के इस कथन के बारे में ध्यान देने पर मालूम होता है कि वे संकुचित अर्थ में लिंगायत नहीं थे। लिंगायत धर्म के आदर्शों का पालन करना एक बात है और जाति भेद के बिना सभी कन्नड़ लोगों के हित की उपेक्षा कर, उन्होंने एक जाति की उन्नति चाही थी, यह एक और बात है। अनेक सदियों के पहले बसवण्णा के दिखाए गए मानवीय मूल्यों के उपदेश के अनुष्ठान के लिए निजलिंगप्पाजी कटिबद्ध थे – यह सच है। वैसे तो वे गाँधीजी के आदर्शों के पालन में भी बद्ध रहे। लिंगायत धर्म का अक्षरशः पालन करने में और उसके सत्व को पचा लेने में जो भेद है उस, अर्थात् लिंगायत धर्म के सत्व व उसके छिलके के भेद को, वे स्पष्ट रूप से जानते थे। इसलिए, उन्होंने विधि और आचरण जैसे बाह्य क्रियाओं के द्वारा उसे दिखाया नहीं। निजलिंगप्पाजी जातिवादी थे – यह कल्पना करना भी सत्य से दूर है। उनसे संपर्क रखनेवाले सभी लोगों को उनके अंदर की मानवीयता की पहचान थी। वैसे देखा जाय तो, लिंगायत धर्म तथा गाँधीजी के आदर्शों के लिए उनकी बद्धता के पीछे उनकी मूलभूत बद्धता, मानवीय मूल्य - सत्य व वैचारिकता तथा न्यायपरता के कार्य करते हैं।

एकीकरण आंदोलन का मतलब है, लिंगायतों का राजनैतिक अधिकार पाने का प्रयत्न – यह बात परिहासपूर्ण है। पहले तो इसका कोई भी प्रमाण नहीं है कि, वास्तव में या प्रज्ञापूर्वक इस आंदोलन को प्रत्येक रूप में लिंगायत लोगों ने संगठित किया था अथवा नियंत्रित किया था। कर्नाटक एकीकरण के बाद लिंगायत, बहुसंख्यक होकर प्रबल होते हैं कहते हुए कोई यदि इसे लिंगायत

आंदोलन कहे तो तार्किक रूप से समंजस नहीं लगता है। दूसरों से लिंगायतों की आसक्ति ज्यादा थी, यह कहना वास्तविकता के विरुद्ध है – यह तो स्पष्ट है। वैसे देखा जाय तो इस आंदोलन को ब्राह्मणों ने प्रारंभ किया। बाद नें अन्य जातिवाले इसमें शामिल हुए। क्योंकि सभी में समान रूप में कन्नड़ भाषा के प्रति आदराभिमान है अर्थात् संकुचित निष्ठा व आसक्ति से परे एक कन्नड़ की सांस्कृतिक परंपरा है। इस लेखक के सामने निजलिंगप्पा जी ने स्पष्ट कहा था कि, पुराने मैसूर के ओक्कलिगों (कृषक वर्ग) ने भी एकीकरण का विरोध नहीं किया था। यह कहना कि एकीकरण का आंदोलन लिंगायतों के षड्यंत्र का फल था, अथवा पुराने मैसूर में व्यक्त विरोध ओक्कलिगों का था उसके इतिहास की संकीर्णता को सरल बनाकर गलत रास्ते पर ले जाना है। हमारी एकनिष्ठताएँ बहुमुखी हैं; वास्तव में यह सही लगता है कि हमें बहुमुखी एकनिष्ठताएँ कहना। एक व्यक्ति के लिए एक ही समय में, एक से अधिक एकनिष्ठताएँ रहनी हैं कि, वह लिंगायत, कन्नड़ भाषी, भारतीय, एक ग्रामवासी, पुरुष अथवा स्त्री आदि परिस्थितिवशात् बल पाते हैं। लिंगायत, ब्राह्मण अथवा किसी ओक्कलिग (कृषक) का अपनी प्रत्येक अनन्यता को दूर किए बिना ही कन्नड़वाले के रूप में, एकीकरण आंदोलन में भाग लेना भी संभव है। उसी प्रकार एक कन्नड़ भाषी ने भी अपना कन्नड़ अनन्यता को छोड़े बिना ही, स्वतांत्र्य संग्राम में भाग लिया था। भारत में एक दूसरे पर कौमीवाद का आरोप लगाना बहुत ही आसान है। इसीलिए दूसरों पर इस अस्त्र का प्रयोग करते हुए सतर्क रहना आवश्यक है। कुछ लोगों के मन में वैसी संकीर्ण ऐतिहासिक प्रक्रिया में संकुचित व बेकार की प्रेरणाएँ होने पर भी यह मुख्य विचार है कि, एकीकरण एक न्यायपूर्ण, भाषाधारित तथा उसमें अंतर्गत संस्कृति आधारित प्रादेशिक अनन्यता को साधने का प्रामाणिक प्रयोग है। उस प्रयोग का फल हुआ कि यह प्रश्न महत्वपूर्ण नहीं होता है। परंतु हमें याद रखना होगा कि इसे सरल रीति से सफल या विफल मानना असंभव है। हर सफलता के लिए विफलता का एक आयाम होता है; वैसे ही विफलता में सफलता का आयाम भी होता है।

निजलिंगप्पाजी के विरुद्ध किया गया तीसरा आरोप था कि वे अधिकारदाही हैं; और उन्होंने एकीकरण का कार्य भी अपनी स्वार्थ साधना के लिए किया। परंतु ये भी सत्य से बहुत दूर है। ऐसा आरोप उनका जानी दुश्मना भी नहीं लगा सकता। निजलिंगप्पा जी का स्वार्थ सरल व सहज था। यह आसानी से

कह सकते हैं। उन्हें अधिकार या कुर्सी चाहिए थी। उसे वे पा चुके। पर इससे उन्हें स्वार्थी कहना प्रमाणित नहीं होगा। लॉर्ड एक्टन की यह व्याख्या कि, अधिकार भ्रष्ट कर देता है, इसके बाद भी यह गलत अभिप्राय है कि अधिकार का मतलब स्वार्थ अथवा रिश्वत खाने का दूसरा नाम है। इतना ही नहीं, अधिकारविहीन भी भ्रष्ट हो सकता है। राजकीय अथवा सार्वजनिक जीवन में, यह मुख्य होता है कि अधिकार का उपयोग किस उद्देश्य के लिए किया जा रहा है। उसका उपयोग स्वार्थ साधना भी हो सकता है अथवा उदार नैतिक ध्येयों की साधना के लिए भी। यहाँ यह मुख्य प्रश्न है कि निजलिंगप्पाजी ने, के.पी.सी.सी. अध्यक्ष होकर या संसद सदस्य रहकर अथवा मुख्यमंत्री के अधिकार में होते हुए अपने अधिकार का प्रयोग, किस लक्ष्य की साधना के लिए किया? राजनीतिक अधिकार के आमिष के अधीन होना सहज है। इसलिए, उनके विरुद्ध भी समर्थन के बिना आरोप लगाना आसान है। निजलिंगप्पाजी के विषय में कहना हो तो वैसे आरोपों का समर्थन करना भी असंभव है। इसके लिए एक ही उदाहरण दे सकते हैं। केंद्र की खुशामद कर, वे और अधिक अधिकार अथवा और ऊँचा पद पा सकते थे। परंतु अपने आदर्श के लिए वे वैसे मौकों से दूर ही रहे। अधिकार के साथ भ्रष्टता को शामिल करना हमें इतना सहज हो गया है कि, यह विश्वास ही नहीं होता कि निजलिंगप्पा जैसे कोई व्यक्ति भी थे! जहाँ तक हो सके उन्होंने मूल्याधारित और आदर्शयुत राजनीति का अनुसरण किया। धीरे धीरे डूबते हुए गाँधीवाद की राजनीतिक संस्कृति, नैतिकता व आदर्शों का वे संकेत बने हैं।

उनके विरुद्ध थोड़े बहुत समर्थन के साथ जो आलोचना कर सकते हैं वह यह है कि, मुसीबत या संकटों का सामना करने की मनोदृढ़ता उनमें कम था। इस आलोचना के साथ, कई विशेषण जोड़ने पड़ते हैं। यदि इस काठिण्य-दृढ़ता का अर्थ अच्छे ध्येयों की साधना के लिए अनुसरण करने के मार्ग के लिए अपेक्षित दयाहीनता तथा सही मार्गों के प्रति उपेक्षा हो तो, जी हाँ। कह सकते हैं कि निजलिंगप्पाजी, सौजन्यरहित आचरण न होनेवाले क्षेत्रों में ऐसे न कर सकनेवाले सज्जन हैं। परंतु ध्यान देने योग्य सच्चाई यह है कि पक्षराहित्य का सौजन्य तथा इनसानियत जैसे अपने जन्मजात गुणों को बलिदान न कर देनेवाले क्रियाशील व्यक्ति के रूप में उन्होंने कितना कुछ साधा!

कर्नाटक सरकार की ओर से एस. निजलिंगप्पा जी को 'कर्नाटक रत्न' प्रशस्ति प्रदान। मंत्री श्री एम. पी. प्रकाश और श्रीमती लीलादेवी आर. प्रसाद, कन्नड़ और संस्कृति विभाग के सचिव श्री. ए. आर. चन्द्रहास गुप्त दर्शित हैं।

5. मुख्यमंत्री के रूप में निजलिंगप्पाजी

मुख्यमंत्री के रूप में, निजलिंगप्पाजी के पात्र और उनकी साधना के वर्णन के पहले तथा उसके मूल्यनिर्णय के पहले, एक सवाल पूछ लेना बेहतर होगा कि वे यह सब कैसे कर सके? हमारी राजनीतिक व्यवस्था में एक मुख्यमंत्री के पात्र तथा उनसे अपेक्षित कार्यों के स्वरूप का विवरण देते हुए, उसके प्रकाश में निजलिंगप्पाजी की साधना का वर्णन करना ही योग्य मार्ग है। भारत के उस संदर्भ में राज्य के मुख्यमंत्री का स्थान बहुत ही मुख्य होता है, उसे अलंकृत करनेवाले व्यक्ति से, वह अनेक व्यक्तिलक्षणों, कौशलों तथा सामर्थ्य की अपेक्षा करता है, साथ ही अनुकूलकर ऐतिहासिक मौकों का सौभाग्य भी। इस प्रकार वह एक संकीर्ण जिम्मेदारी है। उसको निभाने के लिए संतुलन कला को अपनाना पड़ता है। उसके संकीर्ण स्वरूप तथा उस पद पर आसीन होनेवाले व्यक्ति को बाहरी शक्ति और सन्निवेशों को वश में रखने की आवश्यकता के कारण एक मुख्यमंत्री की कार्य-साधना के बारे में, काला-सफेद जैसा स्पष्ट निर्णय देना असंभव है। फिर भी, मुख्यमंत्री की कार्य साधना के बारे में निर्णय देना संभव भी है, आवश्यक भी है। परंतु वह हमेशा ऐतिहासिक संदर्भ तथा उस पद पर आसीन व्यक्ति के लिए मौके और सीमाओं के संदर्भों की अनिवार्यता को ध्यान में रखने पर ही संभव होता है।

भारत के एक राज्य के मुख्यमंत्री, संविधानात्मक रूप से राज्य सरकार के कार्यकारी प्रधान होते हैं; व राज्यपाल तो गौरवपूर्ण स्थान पर अलंकृत होते हैं। क्योंकि चुनाव में, किसी भी पक्ष को बहुमत न होने के संदर्भ में, वास्तव में वे संविधानात्मक अधिकार चला सकते हैं – ऐसे संदर्भों के अलावा, राज्यपाल का आलंकारिक स्थान होता है। इस कारण मुख्यमंत्री का प्रथम व आद्य कार्य होता है, राज्य का शासन संभालना। इसको निभाने में उन्हें अपने पक्ष से खुद चुने गए मंत्रिमंडल और शाश्वत अधिकारशाही की सहायता मिलती है। ऐसे संदर्भ में उन्हें साथी मंत्रियों तथा अधिकारशाही का काम संयोजित करना होगा। इसके

लिए राजनीतिक निर्वहण तथा शासन बद्ध नायकत्व दोनों आवश्यक हैं। सरकार के ध्येय, उद्देश्यों तथा उन्हें कार्यान्वित करने की जिम्मेदारी उनकी होती है। दूसरी बात यह है कि वे विधानमण्डल के नेता भी होते हैं। इस कारण उनका सभी निश्चित संख्या और उचित विवरणों द्वारा चर्चा करने में कुशल होना जरूरी है। इसके लिए भाषण देने की कला में भी उन्हें पारंगत होना होता है। पहले पात्र में, उन्हें अपने व अपने राजकीय साथियों के बीच का संबंध निभाना होता है और दूसरे पात्र द्वारा उन्हें सरकार तथा अधिकारियों के बीच के संबंध को ठीक रखना पड़ता है। तीसरी बात यह है कि, राज्य के नेता के रूप में उन्हें सार्वजनिक व्यक्तित्व का प्रदर्शन करना होता है। इसके लिए एक तरह का आकर्षकत्व और अपने व्यक्तित्व के द्वारा, सार्वजनिक अनुमोदन रूपी ऐसे गुणों को अपनाना होता है जिनका स्पष्ट रूप से सूत्रीकरण नहीं हो सकता है। यह चुनाव के समय पर बहुत मुख्य होता है। चौथी बात यह है कि वे पक्ष के दो नेताओं में एक हैं दूसरे शासन पक्ष के राज्याध्यक्ष हैं। इस राजनीतिक रूप में, अत्यंत कठिन पात्र द्वारा उनका कर्तव्य यह होता है कि उन्हें पक्ष के विधान पक्ष और उसके अलावा जो दूसरा विरोध पक्ष होता है, दोनों में सामरस्य की रक्षा करना पड़ता है। अनेक संसदीय प्रजातंत्र के इतिहास में – जिसमें हमारा भी एक है – यह प्रमाणित हो गया है कि यह पात्र अत्यंत सूक्ष्म होता है। इसके साथ ही सदन के नेता के रूप में उन्हें विरोधी पक्षों के साथ भी सूक्ष्म संबंध रखना पड़ता है। जबकि ये दोनों, एक दूसरे के विरोधी स्थान पर होने के कारण, कठिन होता है। पाँचवीं बात जो प्रमुख है, वह यह है कि, एकगुट अथवा आधागुट संविधान व्यवस्था की सरकार के वे प्रधान होते हैं। भारत में राज्य सरकार केंद्र सरकार पर आर्थिक सहायता के लिए निर्भर रहती है; इस कारण से राज्य सरकार का केंद्र सरकार के साथ अच्छा संबंध रखना अनिवार्य होता है। यदि एक ही राजनीतिक पक्ष राज्य तथा केंद्र में अधिकार पर है तो, यह संबंध थोड़ा आसान होता है। 1937 के बाद यह संबंध और भी महंगा पड़ा है। जब कोई दूसरा पक्ष केंद्र में अधिकार पर है तो मुख्यमंत्री का काम कठिन होता है। शासन व राजकारण में उन्हें अधिक कौशलपूर्ण होना पड़ता है। छठी बात यह है कि उन्हें ज्यादातर आर्थिक वितरण की जिम्मेदारी उठानी पड़ती है। अर्थात् हथकरघा, तंत्रज्ञान तथा कृषि क्षेत्रों के विकास साधना की समस्याओं पर ध्यान देना होगा। स्पष्ट रूप से न होकर भी-मुख्यमंत्री की जिम्मेदारी यह होगी कि सरकार की आर्थिक तथा आर्थिक व्यवहार में ही धन लगानेवाले और श्रमिकों के बीच का संबंध, सामरस्य के साथ निभाते रहे। सातवाँ

यह है कि मुख्यमंत्री प्रधान भी हैं तो उन्हें आधुनिकता रूपी सामाजिक क्रांति की प्रक्रिया में समाज में सामाजिक न्याय साधना के कार्य में ज्यादातर लगे रहना पड़ता है। इसके लिए उन्हें ध्येय साधना की नैतिक तथा राजनीतिक बद्धता को और उस बद्धता को नीतिनिरूपण व कार्यक्रमों के द्वारा प्रदर्शित करना पड़ता है।

जब वे दोनों अवधियों में मैसूर के मुख्यमंत्री थे तो राज्य का नाम रोशन ही रहा। मुख्यमंत्री के रूप में निजलिंगप्पाजी की साधनाओं का परिशीलन करने से पहले, एकीकरणपूर्व के परंतु, प्रजासत्तात्मक पुराने मैसूर रियासत के विविध मंत्रिमंडलों के इतिहास को देखना, संसदीय प्रजातंत्र पद्धति को अपनाए हुए, भारत के प्रबल रहे और जो आज भी प्रबल हैं उन राजनीतिक संस्कृति व संप्रदायों की भूमिका को जान लेना आवश्यक है। इस संस्कृति को पार्श्विक कह सकते हैं। क्योंकि शासन करनेवाला सत्तारूढ़ पक्ष का भिन्नमत के अंदरूनी झगडों को निबटाने में तथा विरोध पक्ष के भय को दूर रखकर कार्यनिर्वहण करने में ही, मुख्यमंत्री के कौशल और शक्ति व्यर्थ हो जाते हैं। प्रजासत्तात्मक सरकार की स्थापना के लिए राज्य में जो संघर्ष हुआ, उसके फलस्वरूप अक्तूबर 1947 में पुराने मैसूर राज्य में पूर्णरूप से जिम्मेदार तथा प्रातिनिध्यात्मक प्रजातंत्र की स्थापना हुई। उस महीने के.सी. रेड्डी जी के मुख्यमंत्रित्व में संपूर्ण जिम्मेदार सरकार ने अधिकार स्वीकार किया। संसदीय अथवा अध्यक्षीय जो भी हो, आधुनिक प्रजातंत्र का स्वरूप और इतिहास को जाननेवाले किसी को भी ऐसा लगना आश्चर्य नहीं कि नयी राजकीय व्यवस्था का अर्थ, गुटबंदी कौमीवाद व राजकीय अनैतिकता, साथ ही व्यक्तिगत आकांक्षा व अधिकार दाह भरे राजनीतिज्ञों से ही भरा होगा। यह स्वाभाविक ही है। क्योंकि, प्रजासत्तात्मक राजनीतिक व्यवस्था मुक्त व्यवस्था होती है। यहाँ किसी व्यक्ति या गुट को अधिकार पाने की,सांस्थिक संभवनीयता होती है। इस कारण तीव्र राजनीतिक स्पर्धा तथा अब तक जो विषय राजनीति से दूर थे उन्हें राजनीतिक रूप देने के तंत्रों से भरा वातावरण पैदा होता है। सामाजिक विषय भी राजनीतिक रूप लेने लगते हैं। मैसूर की नई प्रजासत्तात्मक व्यवस्था में, ओक्कलिग (कृषिक), लिंगायतों के बीच का कौमी-संघर्ष तीव्र होता चला। व्यक्तिगत आकांक्षाएँ प्रबल हुईं। इस कारण सार्वजनिक जीवन तथा अधिकारी वर्ग के कर्तव्य व जिम्मेदारी भी पीछे रह गए। फलतः सत्तारूढ़ पक्ष के अंदरूनी संघर्ष और जटिलताएँ मुख्यमंत्री व उनके साथी मंत्रियों को अपने सामर्थ्य व समय का, विरोध पक्ष

का सामना करने में नहीं परंतु अंदरूनी दुश्मन का सामना करने में व्यय करना पड़ा। इसी समय पार्टी के केंद्र नेतृत्व के अपनी हितासक्ति की रक्षा के लिए मध्यप्रवेश के कारण, वातावरण और बिगड़ गया। राजनीति में ऐसे मध्यप्रवेश का कारण यह होता है कि, राज्य सरकार को अपने संसाधनों के लिए केंद्र के आदेश का पालन करना होता है। के.सी. रेड्डी जी व्यक्तिगत रूप में, नेहरूजी के साथ होने के कारण उनका मंत्रीमंडल थोड़े सुगम रूप से कार्य निर्वहण कर रहा था। परंतु उनके उत्तराधिकारी के रूप में, मुख्यमंत्री बने के. हनुमंतय्याजी को, अपनी सीधे व स्पष्ट तीखी बातों के कारण, अपने ही विचारों पर दृढ़ता के कारण अनिवार्य रूप से बारबार संघर्ष का सामना करना पड़ा। किंतु, उनकी शासन विचक्षणता, व गांभीर्य के कारण केंद्र के मध्यप्रवेश को कम करने की शक्ति बनी रही। परंतु कौमी संघर्ष के कारण हुई आंतरिक गुटबंदी और वैयक्तिक स्पर्था के कारण मुख्यमंत्री को समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था। निजलिंगप्पाजी को ही के. हनुमंतय्याजी से समस्या का सामना करना पड़ रहा था। इसका कारण रहा, उन्होंने भ्रष्ट व तत्वहीन व्यक्तियों को मंत्री मंडल में लेने के लिए विरोध किया। 1952 की अपनी डायरी में निजलिंगप्पाजी ने लिखा है कि हनुमंतय्याजी अपने राजनीतिक प्रतिस्पर्धी सिद्धवीरप्पाजी का मार्गदर्शन लेते थे – यह हनुमंतय्या जी के साथ उनका संबंध बिगड़ने का कारण बना। उस डायरी में यह संदेह भी व्यक्त किया गया है कि हनुमंतय्याजी मार्गदर्शन के लिए उनके पास आते रहे और उसका कारण, शायद सिद्धवीरप्पाजी के साथ उनके संबंध के परिणाम को दूर करना भी हो सकता है। हनुमंतय्याजी का मूल व्यक्तित्व उनका गांभीर्य और झूठे प्रशंसकों के कारण धूमिल हो गया था। उनके मंत्रिमंडल के गिरने का कारण वैयक्तिक संघर्ष रहा, न कि तत्त्व सिद्धांतों का संघर्ष । निजलिंगप्पाजी भी शायद, उनके पतन के कारण रहे। इस अनुमान का कारण यह है कि 1954 की डायरी में उन्होंने हनुमंतय्याजी को मुख्यमंत्री के पद में आगे बढ़ने के बारे में विरोध व्यक्त किया है। हनुमंतय्या जी के मुख्यमंत्री पद से च्युत होने के बाद उनके उत्तराधिकारी को चुनने के लिए मंच तैयार हुआ। साहूकार चेन्नय्याजी और हेच.के. वीरण्ण गौडाजी प्रमुख स्पर्धी रहे। निजलिंगप्पाजी ने तीसरे व्यक्ति की अपेक्षा की। वे चाहते थे कि चेन्निगरामय्या जैसा कोई व्यक्ति हनुमंतय्या जी के बाद आये। उनकी इच्छा के विरुद्ध कडिदाळ मंजप्पाजी मुख्यमंत्री बने। वे भी जानते थे कि मंजप्पाजी ईमानदार और उन्नत व्यक्तित्व के थे।

इस प्रकार 1956-57 व 1962-68 की दोनों अवधि में, निजलिंगप्पाजी ने मुख्यमंत्री के रूप में जिन संकष्टों का सामना किया, उसे स्वातंत्र्योत्तर भारत के कांग्रेस संस्कृति की गुटबंदी व अंदरूनी संघर्षा की भूमिका में देखना होगा।

संसद के विधेयक के द्वारा नवंबर 1956 पहली तारीख के दिन विशाल मैसूर राज्य अस्तित्व में आया। पुराने मैसूर राज्य के महाराजा श्री जयचामराज ओडेयर जी को नए राज्य का प्रथम राज्यपाल बनाया गया। अपने जीवन काल का अधिकतर समय एकीकरण के लिए व्यय करनेवाले व्यक्ति का नए राज्य के उदय पर उसका प्रथम मुख्यमंत्री बनना सही रहा। उस समय निजलिंगप्पाजी विधानसभा के सदस्य नहीं थे; फिर भी उन्हें मुख्यमंत्री बनाना, उनकी सेवा को इस दिशा में मान्य करने का प्रतीक था। भारत के राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्रप्रसाद जी ने नवंबर 1956 तारीख को, सेंट्रल कॉलेज के मैदान में, दुपहर 3-30 को, नए राज्य का उद्‌घाटन किया। निजलिंगप्पाजी ने अपने साथ बारह सदस्यों के मंत्रिमंडल को घोषित किया। मंत्रिमंडल के सदस्य थे – कडिदाळ मंजप्पाजी, ए.बी. शेट्टी, एम.पी. पाटील, सी.एम्. पूणच्चा, एच्. एस्. रूद्रप्पा, जगन्नाथराव चंदर्की, टी. मरियप्पा, एम्.वी. रामराव, आर्. चेन्निगिरामय्या, भीमप्पानायक और एच्.के. वीरण्णगौडा। आंतरिक प्रादेशिक प्रातिनिध्य के कारण मुख्यमंत्री जी को भी मिलाकर आठ सदस्य, पुराने मैसूर के थे और एम.पी. पाटील, कोडगु से सी.एम्. पूणच्चा और हैदराबाद कर्नाटक से जगन्नाथराव चंदर्की। जाति के आधार पर विभाग करे तो मुख्यमंत्री को भी मिलाकर तीन लिंगायत, दो ओक्कलिग (कृषक), दक्षिण कन्नड़ प्रदेश से एक और कोडगु से एक बंट; एक ब्राह्मण, एक हरिजन तथा पिछडे वर्ग से एक। समय की कमी और नए वातावरण की भूमिका से देखने पर वह प्रादेशिक और जाति आधार प्रातिनिध्य के विषय में अधिकतर संतुलित मंत्रिमंडल था। इससे लगेगा कि निजलिंगप्पाजी ने जाति के आधार को नहीं, प्रादेशिक प्रातिनिध्य को अधिक महत्त्व दिया। अज्ञात ग्रामीण लड़के को इतिहास ने जब राज्य के प्रमुख पद पर बिठाया तो निजलिंगप्पा जी विचलित न होते हुए समचित्त रहे, उत्साह से भरे रहे। जब किसी रिपोर्टर ने सवाल किया कि ''अब आप मैसूर पगडी धारण करेंगे या गाँधी टोपी?'' निजलिंगप्पाजी ने तुरंत उत्तर दिया हँसते हुए ''पगड़ी तो संभव नहीं। परंतु ठंड लगने पर टोपी, वरना मैं बिना टोपी का ही।'' मंत्रिमंडल की रचना का मतलब होगा, रस्सी पर चलने के समान मुश्किल का काम है। इसलिए

पूर्व राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद और श्री जयचामराजेन्द्र ओडेयर के साथ डॉ. एस. निजलिंगप्पजी

निजलिंगप्पाजी को भी वह आसान नहीं रहा होगा। वैसे तो उन्होंने निर्धारित दिन से एक दिन देर से मंत्रीमंडल को घोषित किया। उसका कारण था कि वे पुराने मैसूर के बलवान नेता चेन्नय्याजी को मंत्रीमंडल में शामिल होने के लिए मनवा रहे थे। परंतु उनका प्रयत्न सफल नहीं हुआ। इसे चेन्नय्याजी ने समाचार पत्र में प्रकाशित करते हुए कहा कि उन्होंने बहुत सोचकर ही यह निर्णय लिया है। 1 नवंबर 1956 को आकाशवाणी द्वारा भाषण करते हुए निजलिंगप्पाजी ने आशय व्यक्त किया कि, भाषा के आधार पर प्रांत देश को बलवान बनाएँगे। परंतु उन्होंने चेतावनी भी दी कि यदि इससे देश को नुकसान पहुँचता है तो उसे बदलने के लिए भी हमें तैयार रहना होगा। यह अभी शुरुवात है, राज्य का निर्माण कार्य अभी आगे है। अभी थोड़ा उत्तम विकास दिखाई देने पर भी कृषि, सिंचाई, वन संपदा, जहाजों का निर्माण, मछली उद्योग, तंबाकू उद्योग आदि क्षेत्रों में और अधिक विकास करना है। संसाधनों की दृष्टि में कर्नाटक समृद्ध राज्य है। परंतु केंद्र की सहायता के बिना, राज्य अपना लक्ष्य पूरा नहीं कर सकता है। दोनों का लक्ष्य तो सुखी राज्य की स्थापना ही है। राज्य के सामने एक विशेष समस्या यह है कि उसमें पाँच विभिन्न व्यवस्था के शासन में रहकर, विकास के विविध स्तर पर रहनेवाले भाग शामिल हुए हैं। पहला ध्येय होगा, भावनात्मक एकता स्थापित करना। एकीकरण के समय पर, इसका होना साबित होने पर भी उसे और बल देना होगा।

मुख्यमंत्री का सबसे बड़ा सिरदर्द होता है, संविभागों को बाँटना। इससे साथी मंत्रियों में अतृप्ति होने की संभावना रहती है। परंतु, निजलिंगप्पाजी इस कार्य में सफल रहे। उन्होंने अपने पास, सामान्य प्रशासन नागरिक सेवा, भ्रष्टाचार निर्मूलन सार्वजनिक सेवा आदेश और कोलार सुवर्ण खानों का राष्ट्रीकरण – इन विभागों को रखा। कडिदाळ मंजप्पाजी शिक्षा मंत्री बने, ए.वी. शेट्टी जी को स्वास्थ्य विभाग, एम्.पी. पाटील जी को राजस्व विभाग, सी.एम्. पूणच्चजी को वाणिज्य व उद्योग, एच.एस्. रुद्रप्पाजी को कृषि, अरण्य, मछली उद्योग, और ग्रामोद्योग, टी. मरियप्पा जी को वित्त विभाग और एस.टी., एस्.सी आदि दुर्बल वर्गों का कल्याण विभाग, भीमप्पा नायक जी को सहकार, मार्केट व सर्वोदय विभाग, एक्.के वीरण्णा गौड को लोकोपयोगी (पी.डब्लू.डी) और विद्युत विभाग मिले। विभागों को बाँटने के बाद मुख्यमंत्रीजी ने घोषणा की कि नई सरकार की कार्यप्रणाली की विशेषता यह है कि बिना दिखावे के सरल व उचित मार्ग का अनुसरण करना। समाचार पत्रों ने प्रकट किया कि बीमार पड़े अंबली

चेन्नबसप्पाजी के स्वस्थ होने के बाद उन्हें तेरहवें मंत्री के रूप में शामिल किया जाएगा। पाँच विभिन्न प्रदेशों की संयोजना की कठिन परिस्थिति निजलिंगप्पाजी के सामने एक कठिन सवाल बन गई थी। 8 नवंबर 1956 तारीख को हुब्बळ्ळी की एक पत्रिका में प्रकट हुआ कि नई सरकार ने अभी तक अपने स्थानीय ऑफीसों में ठीक नियंत्रण व संपर्कों को नहीं साधा है । इस कारण शासन व सार्वजनिकों को असुविधा हुई है। साधारण रूप से कार्य निर्वहण करने की शासन व्यवस्था को स्थापित करना, निजलिंगप्पाजी के लिए मुख्यमंत्री के रूप में पहला सवाल बन गया था। 8 नवंबर 1956 के दिन, शिवमोग्गा में राज्यसभा के उपाध्यक्ष, एस.वी. कृष्णमूर्तिराव जी ने उप्पारों (राजगीरों) के सम्मेलन का उद्‌घाटन किया। उसमें भाषण देते हुए निजलिंगप्पा जी ने कहा कि, अधिकारी वर्ग को जनता के मित्र के रूप में तात्विकों और मार्गदर्शकों के जैसे काम करना चाहिए। नई सरकार के मुख्य सचिव, पी.वी.आर्. राव ने 10 नवंबर 1956 को बेंगलूर में पत्रकर्तों के साथ कहा कि – हैदराबाद, कोडगु, मदरास से अधिक संख्या में नॉन गेजेटेड़ नौकर राजधानी आए हैं, तो उन्हें मौका देना चाहिए। साथ ही उन्होंने प्रकाट किया कि सरकार ने उनमें अनेक केसों का उचित निर्णय भी लिया है। निजलिंगप्पाजी जो शासन के छोटे-छोटे विषयों पर भी ध्यान देते थे, यह सचमें प्रशंसा करने योग्य है। आई.एम्.आर्.यू.पी (IMRUP) शोध के राज्यघटक के उद्‌घाटन के संदर्भ में मैसूर की दूसरी पंचवार्षिक योजना को प्रकाशित करते हुए निजलिंगप्पाजी ने कहा कि यह घटक, राज्य सरकार ने जैसे सोचा है वैसे समाजवादी स्वरूप के समाज के निर्माण के अनुसार राज्य के शासन की व्यवस्था की रीति के बारे में अध्ययन करेगा। नई सरकार के सामने जो समस्याएँ थीं उनमें प्रमुख समस्या, राज्य के पाँच प्रदेशों के विभिन्न कृषि संबंधित कानून। इनके बारे में लेनेवाले कार्यवाई के बारे में भी हर एक का अलग अलग अभिप्राय रहा। इसलिए समस्या का स्वरूप और गंभीर हो गया था। मुंबई कर्नाटक का कानून विशेष प्रकार का था। इस प्रदेश के अनेक शासक व अधिकारी वर्ग ने धारवाड़ में 17 नवंबर को सभा बुलाकर यह अभिप्राय व्यक्त किया कि, उस वक्त मुंबई कृषि कानूनों ने किसान और भूमालिक दोनों के हित की उपेक्षा की है; इसलिए उनको बदलना ठीक होगा। राजस्व-मंत्री, एम.पी. पाटील उस सभा के अध्यक्ष थे। उन्होंने आश्वासन दिया कि जल्दी ही एकरूप कानून बनाया जाएगा।

राज्य की जनता को संबोधित कर निजलिंगप्पाजी ने प्रसार भाषण में कहा था कि राज्य के लिए केंद्र सरकार से अधिक मात्रा में आर्थिक सहायता पाना बहुत ही मुख्य कार्य है। राज्य के उद्घाटन के थोड़े ही दिनों बाद 22 तारीख को उन्होंने राज्य की तीव्र समस्याओं के बारे में, केंद्र सचिवों से चर्चा की। नेहरूजी और कांग्रेस अध्यक्ष यू.एन्. धेबर जी से मिलकर, उन्हें आश्वासन दिया कि अपने राज्य में कांग्रेस पार्टी एकमत की ओर बढ़ रहा है और इससे अपनी सरकार को ज्यादा बल मिलेगा। उन्होंने रेल मंत्री से भी मंगलूर-हासन, हुब्बळ्ळी-कारवार रेल मार्गों के बारे में, बळ्ळारी, बेलगाँव के लिए रेल-अनुकूलता के बारे में तथा राज्य के रेलों के वेग को बढ़ाने के बारे में भी चर्चा की। कृषि मंत्री से मिलकर राज्य में मछली उद्योग और समुद्र के अंदर, मछली उद्योग के विकास के लिए अधिक सहायता माँगी। केनडा के मछली तंत्रज्ञों की भेंट के बारे में भी बताया। सिंचाई विभाग के मंत्रीजी से बातचीत करते हुए, मलप्रभा-कृष्णा नदी के ऊपरी तट की योजनाओं की तीव्रगति से कार्य के बारे में आग्रह किया। योजना आयोग की भेंट में, मंगलूर पोर्ट के विकास तथा आधुनिकीकरण की शीघ्रता; कारवार, भटकल और मल्पे पोर्ट के विकास की आवश्यकता के बारे में निवेदन किया। दिल्ली से लौटने के बाद, 23 नवंबर की पत्रिकागोष्ठी में मुख्यमंत्री निजलिंगप्पाजी ने बताया कि भावैक्य की साधना के बाद पाँचों प्रदेशों में शासन, सेवानियम तथा कानूनों में एकरूपता की साधना अभी बाकी है। उन्होंने यह भी कहा कि यह अति संकीर्ण विषय होने के कारण इसकी प्रतिपूर्ति के लिए थोड़ा समय लगेगा। उनका अभिप्राय था कि केंद्र के नेता लोग राज्य की आवश्यकताओं के बारे में सहानुभूति रखते हैं। निजलिंगप्पा-सरकार की प्रमुख आर्थिक साधना थी – कोलार स्वर्णखान का राष्ट्रीकरण। अस्सी सालों से जो विदेशी मालिक थे उनको जो 164 लाख रूपये देने थे, उसमें 123 लाख रूपयों का चेक् कंपनी के कार्यनिर्वाहक निदेशक, एस्.टी.ए टेलरजी को देते हुए 29 नवंबर 1956 के दिन जॉन टेलर कंपनी को सरकार के वश में लिया गया। राज्य के लिए कोई भी सेवा न पाने पर भी कंपनी को कृतज्ञता अर्पित करना निजलिंगप्पाजी की विशेषता थी। उसी सौजन्य के साथ, उस व्यक्ति ने स्वर्णखान के अगले कार्यनिर्वहण में सहायता करने का आश्वासन दिया।

11 दिसंबर 1956 को राष्ट्रीय विकास मंडल की सभा में निजलिंगप्पाजी ने राज्य के घटप्रभा-मलप्रभा बाँध योजनाओं को प्रमुखता देने के बारे में प्रबल

रूप में प्रतिपादन किया। साथ ही, धारवाड़ बिजापुर जिलों को व बेंगलूर शहर के लिए चावल भेजने के लिए केंद्र पर दबाव डाला। राज्य में पहले ही शरावती, भद्रा व तुंगभद्रा जैसी बड़ी योजनायें होने पर भी, अब छोटी छोटी योजनाओं की आवश्यकता के बारे में उस मंडल को समझाया। प्रशासन की समस्या को समझते हुए सरकार ने मंत्रियों के वेतन व भत्ता को निर्धारित किया। सरलता और मितव्यय के लिए बद्ध, मुख्यमंत्री निजलिंगप्पाजी से अपेक्षा के अनुसार वह आदर्श वेतनश्रेणी थी। मंत्रियों का मासिक वेतन 900 रू. कार भत्ता 200 रू. घर के भाड़े के लिए 250 रू, तय हुआ। सचिवों का बिजली का उपयोग 35रू तक निश्चित हुआ। यह नियम रहा कि कोई भी मंत्री व्यापार या वाणिज्य कार्य नहीं कर सकेगा। आज की परिस्थिति में देखे तो यह गगनकुसुम ही है। सदन के लिए हाजिर रहनेवाले शासक को शासक भवन में रहे तो रोजाना 12-50 रू. और बाहर रहे तो 16 रू. मिलता था।

1957 के प्रारंभ में होनेवाले चुनाव के लिए निजलिंगप्पाजी के नेतृत्व में पार्टी तैयार हुई। इस संबंध में मैसूर के पुरभवन में 57 दिसंबर को एम.पी.सी.सी.सभा हुई; उसमें कांग्रेस का चुनाव प्रचार प्रारंभ हुआ। उस सभा में कामराज जी आए हुए थे। सभा में भाषण देते हुए निजलिंगप्पाजी ने जोर दिया कि जाति और व्यक्तिगत गणना को ध्यान में लिए बिना, अर्हता, प्रामाणिकता, सत्यसंधता, सेवामनोभाव तथा दक्षता के आधार पर पार्टी को अपना अभ्यर्थी को चुनना होगा। पहले के चुनावों में उन्होंने माना कि – ऐसा नहीं किया गया था। उन्होंने चेतावनी दी कि यदि इस बार, वैसे नहीं करते तो सार्वजनिक दृष्टि में विश्वास खोयेंगे। 19 को शासन सभा के संयुक्त अधिवेशन में भाषण देते हुए, राज्यपाल ने निजलिंगप्पाजी की सरकार की नीति व विचारों का विवरण दिया। पहला, सरकार के निर्णय के अनुसार भू-श्रमिक जन, अपने परिश्रम के अनुसार प्रतिफल पाएँगे, गैर जमींदारी पद्धति तथा किसानों के शोषण को रोकने के लिए सुधार की कारवाई होंगे। दूसरा, अपने पहले से अधिकार व्याप्ति से मैसूर राज्य सार्वजनिक यातायात सेवा को बदलने का कार्य, सरकार पूरा करेगी। तीसरा, अधिक इंजनियरिंग (तांत्रिक) तथा वैद्यकीय कालेजों को प्रारंभ करते हुए, तांत्रिक शिक्षण का विस्तार करने के लिए सरकार बद्ध है। चौथा, प्रस्तुत विविध प्रशासन विभागों के विभिन्न कानूनों को एकरूप कानून में बदलना सरकार की नीति है। पांचवाँ सरकार सिंचाई योजना को प्रथम आद्यता देती

हैं। अंत में, औद्योगिक विकास के लिए जरूरी विद्युत उत्पादन को बढ़ाना भी सरकार का प्रमुख कार्य है।

20 तारीख के दिन शून्य समय में, सदस्य मुल्का गोविन्द रेड्डी जी ने सवाल उठाया कि विधानमंडल से चुने जाने पर भी सदस्य न होते हुए निजलिंगप्पाजी क्या सदन के कार्यकलापों में भाग ले सकते हैं? उन्होंने तर्क पेश किया कि संविधान के अनुसार, छः महीनों में उन्हें सदस्य के रूप में चुने जाने का मौका होने पर भी अभी कोई चुनाव की संभावना न होने कारण वह संभव नहीं है। उन्होंने तर्क किया कि तांत्रिक रूप से सम्मत होने पर भी निजलिंगप्पाजी का मुख्यमंत्री स्थान पर होना नैतिक रूप से असमर्थनीय है। परंतु सभाध्यक्ष श्री कंठीजी ने निर्णय दिया कि निजलिंगप्पाजी का मुख्यमंत्री पद पर होना विधिवत् है। आगे चलकर 1962 में भी ऐसा ही प्रसंग उद्भव हुआ। पक्ष ने चाहा कि चुनाव में हारने पर भी वे ही मुख्यमंत्री बने रहे। इस पुरानी घटना को स्मरण में रखते हुए शायद वे तब मुख्यमंत्री का पद न स्वीकार कर उपचुनाव में जीतकर आने तक, उन्होंने अपने प्रतिनिधि को उस पद पर बिठाना चाहा। परंतु उनके सदन के सदस्य न होने के कारण उन्हें मत देने का हक भी नहीं है – यह सभाध्यक्ष का निर्णय रहा।

दूसरे महा चुनाव के सन्निहित होने के कारण, उन्हें शासन से ज्यादा, चुनाव प्रचार को प्राधान्य देना पड़ा। पक्ष के अभ्यर्थियों की सूची को अंतिमरूप देने की प्रक्रिया अत्यंत कठिन तथा संदिग्धमय होता है। राज्य के तीन कांग्रेस समितियों से – कर्नाटक का के.पी.सी.सी., हैदराबाद कर्नाटक की कांग्रेस समिति और मैसूर कांग्रेस समिति – अपनी अंतिम सूची को तैयार करने का रिपोर्ट - 25 दिसंबर 1956 को आया। इन तीनों रिपोर्टों के कारण, पक्ष के कार्यकर्ताओं में व्यापक रूप से अतृप्ति फैल गयी। भिन्न मतीय जनार्दनराव देसाई, कोल्लूरु मल्लप्पा, के.एच्. पाटील और टी.आर. नेस्वी आदि ने अंतिम निर्णय लेनेवाले केंद्र संसदीय मंडली के सामने, पर्याय सूची पेश की। उसमें दो प्रमुख आपत्ति ये थीं – अल्पसंख्याता की उपेक्षा और गुटबंदी के कारण एक गुट का प्राधान्य और दूसरे गुट की उपेक्षा। ये शिकायतें श्रीमन्नारायण, देवेश्वर शर्मा, और मरगंत चन्द्रशेखर के सामने आईं। इसी बीच, राज्यपाल के भाषण पर की गई चर्चा का जवाब देते हुए, निजलिंगप्पाजी ने बिनती की कि, वे राज्य की सर्वांगीण प्रगति के पक्ष में हैं, और इस अमोघ कार्य में सभी पार्टी ही नहीं राज्य

की हर प्रजा, उन्हें सहयोग दें। चुनाव प्रचार के कारण ध्यान दूसरी ओर जाने पर भी, सरकार का कार्यनिर्वाह आगे बढ़ना था। राज्य के वित्त मंत्री, टी. मरियप्पाजी ने 27 को प्रकाशित किया कि शासनमान नौकरों के लिए समान रूप की वेतन श्रेणी जल्द ही प्रचलन में आयेंगी।

नई दिल्ली में, केंद्र संसदीय मंडल के साथ, अभ्यर्थियों की पहली सूची पर चर्चा करने के बाद, निजलिंगप्पाजी वी. वेंकटप्पाजी (नए प्रदेश के कांग्रेस समिति के अध्यक्ष) और एस. चेन्नय्या जी के साथ 31 दिसंबर को बेंगलूर वापस आए। उन्होंने रिपोर्ट दी कि एम्.पी.सी.सी. की सूची अपूर्ण होने के कारण अगले हफ्ते, पूर्ण सूची का केंद्र संसदीय मंडल परिशीलन करेगी। निजलिंगप्पा सरकार के मुख्य कार्यों में एक था, सेवाओं का संयोजन और उनके वेतनों का परिष्करण। वेतन श्रेणियों के परिष्करण कार्य को निश्चित करने में, अंत में सरकार सफल हो गई। लेकिन पुरानी श्रेणी में रहने के लिए कोई नौकर चाहता तो रह सकता था। नई वेतन श्रेणियों के कारण, सरकारी खजाने पर चार करोड़ रुपयों का बड़ा बोझ पड़ा। 3 जनवरी को निजलिंगप्पाजी कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के लिए नागपुर के लिए विमान पकड़नेवाले थे। हवाईअड्डे जाते हुए, उनकी कार की ट्रक से साथ दुर्घटन हो गयी। इसलिए उनकी यात्रा रद्द हो गई।

परंतु अपनी यात्रा जारी रखने के लिए वे जल्दी ही स्वस्थ हो गए। 9 जनवरी को उनके सम्मान के लिए और सरकार पर कुछ दबाव डालने के लिए हासन में संयोजित 'ओड्डु' (पत्थर तोड़ने का काम करनेवाले) जन के समुदाय की सभा में उन्होंने भाग लिया। सम्मान का जवाब देते हुए, उन्होंने जाति आधारित छात्रावास की स्थापना का, खुद वैसे छात्रवास में रहकर पढ़ने पर भी, विरोध प्रकट किया। पहले जैसी भी हालत रही होगी, परंतु प्रस्तुत संदर्भ में उसके लिए स्थान न हो – यह उनका अभिप्राय था। परंतु जो छात्रवास हैं वे आगे बढ़ सकते हैं। समुदायवालों को उन्होंने इंजिनियरिंग व वैद्यकीय जैसे क्षेत्रों में उन्नत शिक्षा पाने के लिए कहा। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि सरकार छात्रवासों को वित्तीय सहायता देगी, परंतु भूमि नहीं देगी। इस संदर्भ में उन्होंने, जाति आधारित आरक्षण के बारे में अपना विरोध व्यक्त करते हुए कहा कि, संविधान में दिये गए दस वर्षों की अवधि के बाद वह समाप्त होगा। यह उनका व्यक्तिगत अभिप्राय था, उनकी सरकार आरक्षण नीति को समाप्त न कर सकी।

आगामी चुनावों के बारे में कहना हो तो, मैसूर में छः पार्टी मैदान में थीं और वे थीं – कांग्रेस, कम्युनिस्ट, समाजवादी, जनसंघ, लोकसेवासंघ और प्रजासोशलिस्ट पार्टी अथवा पी.एस.पी.। परंतु वास्तव में स्पर्धा थी कांग्रेस और पी.एस.पी. के बीच में। कांग्रेस के सामने आंतरिक भिन्नता की समस्या थी, वह भी पुराने मैसूर के नेताओं में। इसके बारे में पहले ही बताया है। पुराने मैसूर कांग्रेस के आंतरिक झगडों का दीर्घ इतिहास है, वह 1952 में के. हनुमंतय्याजी के समय में अधिक स्पष्ट रूप में सामने आया। भिन्नमतीय जन मंत्री मंडल के विरुद्ध, अविश्वास निर्णय लाये, तो भी वह विफल हो गया। अगस्त 1956 में सरकार बडी मुसीबत नें पड़ी तो हनुमंतय्याजी को इस्तीफा देना पड़ा। उसके बाद नेताओं की स्पर्धा में उन्हें श्री कडिदाळ मंजप्पाजी के सामने झुकना पड़ा; श्री कडिदाळ जी अल्प समय के लिए मुख्यमंत्री बने। पक्ष पर इन घटनाओं का अमिट प्रभाव पड़ा। पुरानी स्पर्धा, वैषम्यभाव कम न हुए।

पुराने ये तीनों घाव, अधिक समय तक आगे भी दर्द देते रहे। इसी कारण से सूची को अंतिमरूप देना कष्टदायक रहा। 12 जनवरी को एस्. चेन्नय्या जी, एम.पी.सी.सी. के द्वारा तैयार की गई सूची के साथ नई दिल्ली रवाना हुए। परंतु इस सूची से अनेक लोग असंतुष्ट थे। इसकारण, भिन्नमतवाले ने अपनी अतृप्ति सूचित करते हुए एक पत्र देहली भेजा। उसके कर्तृ थे निजलिंगप्पाजी और चार अन्य नेता। उसके खत के साथ चेन्नय्याजी की सूची में न होनेवाले, नामों की सूची रखी गई थी। इसमें बदरीनारायण, गांजी वीरप्पा, कोंडज्जी बसप्पा और कई नाम थे। इसी समय हनुमंतय्या जी के पक्ष के दो प्रतिनिधि अपने अभ्यर्थियों के लिए देहली चले। 15 को देहली से लौटकर चेन्नय्याजी ने 'संयुक्त कर्नाटक' समाचार पत्र के प्रतिनिधि से कहा कि 18 से पहले एम्.पी.सी.सी. की अंतिम सूची प्रकट होगी। इसी बीच प्रकट हुआ कि राज्य के महा चुनाव 25 फरवरी 1957 के दिन होंगे और यह प्रक्रिया, सोलह दिनों में पूर्ण होगी। उस समय राज्य में एक करोड़ बयासी लाख मतदाता थे। इनमें 51,86,000 पुरुष, 48,96,000 स्त्रियाँ थीं। 18 तक एम्.पी.सी.सी. की अंतिम सूची के प्रकाशित होने की अवधि 23 तक बढ़ाई गई। और 23 को सूची प्रकाशित हुई। निजलिंगप्पा जी को चित्रदुर्ग जिले का 'मोळकाल्मूरु' क्षेत्र निश्चित किया गया था। परंतु अंतिम सूची के बारे में अतृप्ति अभी समाप्त नहीं हुई थी। 25 को मैसूर कांग्रेस के पुराने मैसूर के दो सौ लोगों की उस सूची के

बारे में सवाल करने के लिए पी.आर. रामय्याजी की अध्यक्षता में बेंगलूर में सभा हुई। उसमें के. हनुमंतय्याजी भी थे। उन्होंने एक घंटे तक भाषण दिया। अंत में, हनुमंतय्याजी के गुट से, तीन लोगों को चुनाव में लड़ने का निर्णय हुआ। उनमें हनुमंतय्या जी के अलावा श्री सिद्धलिंगय्या व श्री करियप्पा भी थे।

चुनाव में कांग्रेस पक्ष को 208 स्थानों में 150 स्थान प्राप्त हुए। यह करीब तीन चौथाई भाग (3/4) का बहुमत था। उसके समीप स्पर्धी, पी.एस.पी. को 18 स्थान मिले। कृषि कार्मिक पार्टी और परिशिष्ट जाति के गुट को एक एक स्थान मात्र मिले। पैंतीस स्वतंत्र अभ्यर्थी थे; उनमें अनेक भिन्नमतीय कांग्रेसी थे। जनसंघ और समाजवादी पक्ष को एक भी स्थान नहीं मिला। निजलिंगप्पाजी अत्यधिक बहुमत से चुने गए। हारे हुए प्रमुख लोगों में, निजलिंगप्पाजी के मंत्री मंडल के मंत्री और उनके मित्र एम्.वी. रामराव भी थे। लोकसभा चुनाव में, कांग्रेस की सफलता और अधिक थी। 26 में 23 स्थान उसे मिले थे। पी.एस.पी. और परिशिष्ट जाति के गुट को एक एक स्थान प्राप्त था। इस प्रकार शासन करने के लिए कांग्रेस पार्टी ने अत्यधिक प्रोत्साहन पाया। इस सफलता का श्रेय निश्चित रूप से निजलिंगप्पाजी का ही न होने पर भी, उस समय के मुख्यमंत्री व कांग्रेस के नेता के रूप में उन्होंने इस अभूतपूर्व चुनाव की जीत में महत्वपूर्ण पात्र निभाया था।

कांग्रेस पार्टी को प्राप्त इस अपूर्व सफलता के कारण प्रत्याशा कर सकते हैं कि निजलिंगप्पाजी का मुख्यमंत्री पद स्थिर बना रहेगा। परंतु थोडे समय के बाद परिस्थिति वैसी न रही। विधानसौध के निर्माण में, हनुमंतय्याजी के पात्र के बारे में हुए गडबड़ की जाँच के रिपोर्ट देने के लिए एक जाँच समिति बनाई गई। इस कारण हनुमंतय्याजी और निजलिंगप्पाजी का संबंध बिगड़ गया। परंतु निजलिंगप्पाजी ने अपनी पारदर्शिकता को निभाया। 27 मार्च को इमाम् जी ने, विधानसभा में इस विषय की चर्चा के लिए दबाव डाला। सभाध्यक्ष कंठी जी ने इस रिपोर्ट के सदन की कार्यसूची में शामिल न किए जाने का तांत्रिक कारण देते हुए, उसके लिए मौका नहीं दिया। परंतु हनुमंतय्या जी ने अपने ऊपर किए गए आरोपों का जवाब दिया। वस्तुस्थिति सामने रखने के लिए निजलिंगप्पाजी ने इस मौके का उपयोग किया। पहले निजलिंगप्पाजी ने अपने लिए अनभिज्ञ विषयों को प्रकट करने पर हनुमंतय्याजी को धन्यवाद दिया। वह था कि इस पार्टी के नेता के रूप में अविरोध रूप में चुने जाने के लिए हनुमंतय्याजी ही

कारण थे। हनुमंतय्याजी के विरुद्ध उनकी उस रिपोर्ट का उपयोग करने के आरोप के जवाब में निजलिंगप्पाजी ने परिस्थिति को स्पष्ट किया। उस विवरण के अनुसार विधानसौध के निर्माण के विवाद की चर्चा के बारे में हनुमंतय्याजी उनसे तीन बार मिले थे। पहली मुलाकात में यह पूछने के लिए कि हनुमंतय्याजी के एक विरोधी को अध्यक्ष बनाकर कानूनी जाँच करने का विषय क्या सच है? इसे नकारते हुए निजलिंगप्पाजी ने आश्वासन दिया कि जाँच आयोग को बनाने का निर्धार लेने पर भी हनुमंतय्याजी के किसी भी विरोधी को उसका अध्यक्ष नहीं बनाएँगे। दूसरी मुलाकात, रिपोर्ट के प्रकट होने के बाद हुई। दूसरी मुलाकात में वे उस रिपोर्ट के साथ ही बिल्डिंग निर्माण के कार्य में जो इंजिनियर थे, उनके नाम भी प्रकट करने के लिए वे दबाव डाल रहे थे। परंतु निजलिंगप्पाजी ने इनकार किया। एक सदस्य ने आरोप लगाया कि इस रिपोर्ट को निजलिंगप्पा जी ने मुख्यमंत्री बनने के कारण प्रकट किया। कभी न क्रोध करनेवाले निजलिंगप्पाजी इसे सुनकर क्रोधित हुए। उसे क्षुद्र आरोप कहकर निजलिंगप्पाजी ने इनकार किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि किसी भी सदस्य से भेंट नहीं की। उस रिपोर्ट के प्रकट होने में देरी का कारण बताते हुए, उन्होंने विवरण दिया कि 2 जनवरी को रिपोर्ट मिली, उसका मुद्रण 8 तारीख तक चला, इसकारण चुनाव के बाद उसे प्रकाशित किया गया। यह भी बताया कि मुख्यमंत्री के रूप में कार्यनिर्वाह में हनुमंतय्याजी सहकार देने के लिए मान गए, परंतु पिछले पाँच महीने में उसे पाने की परिस्थिति नहीं आ पड़ी।

निजलिंगप्पाजी ने पत्रकर्ताओं के सामने बयान दिया कि कांग्रेस की हार के कारण पक्ष के अंदरूनी झगडे और जातीयता रही, न कि बेलगाम की भाषा का विवाद। उनके लिए अभिमान की बात यह रही कि, पिछले पाँच महीने में सरकार ने नए राज्य की नींव डाली। 6 अप्रैल को, केंद्र के वीक्षक, के.पी. माधवन नायर की अध्यक्षता में कांग्रेस विधान पक्ष की सभा हुई। श्री अण्णाराव गणमुखी ने निजलिंगप्पाजी का नाम सूचित किया और रत्नम्मा माधवराव ने अनुमोदन किया तो निजलिंगप्पाजी अविरोध रूप में चुने गए। इस अविरोध चुनाव के पहले भी परदे के पीछे कार्य हो रहे थे। एस्. चेन्नय्या जी ने कहा कि एकता के लिए स्थापित चार जनों की समिति में वे भी एक सदस्य थे। पहले चार नाम सूचित किए गए थे – निजलिंगप्पा, मंजप्पा, टी. सुब्रह्मण्य और हनुमंतय्या। पहली सभा में कोई भी निर्णय नहीं लिया गया। दूसरी सभा में निजलिंगप्पाजी

का नाम अंतिम रूप में चुने जाने में के.सी. रेड्डी जी ने महत्वपूर्ण पात्र निभाया। 15 को अपने मंत्री मंडल को घोषित करने का भरोसा देने पर भी उन्होंने 16 के लिए आगे बढ़ाया। परंतु उस दिन भी नहीं हुआ। स्पष्ट था कि कोई अड़चन थी। अंत में 17 को अपने मंत्रीमंडल की वे घोषणा कर सके, वह भी 11 लोगों के बदले सिर्फ 8 लोगों के नाम प्रकट हुए और वे थे – एच.के. वीरण्ण गौडा, टी. मरियप्पा, एच.एस. रुद्रप्पा, आर. चेन्निगरामय्या, सी.एम. पुणच्चा, एम.पी. पाटील और मुहम्मद अली। इनमें मुहम्मद अली के सिवा बाकी सभी पिछले मंत्रीमंडल में थे। सूची की देरी का कारण देते हुए उन्होंने बताया कि मंत्रीमंडल में बुलाने पर कई मित्र, उसका परिशीलन करने लिए समय माँग रहे थे। उन सभी के नाम 18 को प्रकट करेंगे। इससे पहले वे 10 जनों का मंत्रीमंडल चाहते थे, परंतु सभी प्रदेशों को प्रातिनिध्य देना आवश्यक था, इसलिए 11 जन हुए; परंतु 11 शुभसंख्या नहीं है, तीन लोगों को उपमंत्री बनाएँगे और उनके नाम 18 को प्रकट करेंगे। परंतु 18 को फिर 19 को प्रकट करने को कहा। 19 को संपूर्ण सूची प्रकट हो गई। तीन नए मंत्री थे – बी. वैंकुंठ बाळिगा, वेंकटप्पा और आर.एम्. पाटील। और एक को मिलाकर बारह लोगों का मंत्रीमंडल रच सकते थे परंतु उस दिन बारह मंत्री तथा उपमंत्रियों के नाम प्रकट नहीं हुए। 26 के दिन तीन मंत्रियों के नाम प्रकट हुए, न कि बारह मंत्रियों के। उपमंत्री थे रामकृष्ण हेगडे, वीरेंद्र पाटील और ग्रेस टक्कर। पद ग्रहण करते ही निजलिंगप्पाजी अपनी सरकार के ध्येय व विचारों के बारे में सार्वजनिक सभाओं में घोषणा करने आए। उदाहरण के लिए स्पष्ट कहा कि उन्होंने सींचाई को प्रथम स्थान दिया था। 7-5-1957 को कुवेंपु की अध्यक्षता में धारवाड़ में हुए कन्नड़ साहित्य सम्मेलन का उदघाटन करते हुए, निजलिंगप्पाजी ने घोषणा की कि वे कन्नड़ भाषा व साहित्य को संपूर्ण रूप से समर्थन देंगे। बेळगाँव में आठवें कर्नाटक हरिजन परिषद् का उदघाटन करते हुए उन्होंने हरिजनों के उद्धार के प्रति अपनी बद्धता व्यक्त की।

संसदीय कार्यपालिका के सरल कार्यनिर्वाह के लिए प्रमुख नींव होती है– विधायी पक्ष तथा पक्ष के संगठन विभागों में सामरस्य। परंतु नए एम.पी.सी.सी. में निजलिंगप्पाजी के राजनीतिक प्रतिस्पर्धी, एस्. चेन्नय्याजी 10 जून 1957 के दिन अध्यक्ष चुने गए। निजलिंगप्पाजी के अभ्यर्थी एम्.वी. रामराव जी को 81 मत प्राप्त हुए थे तो, चेन्नय्याजी को 87 मत मिले। अतः एकमत का निर्धार

नहीं हो सका था। संगठनात्मक संस्कृति ऐसे स्तर तक पहुँच गई थी कि एकमत के बिना गुटबंदी के कारण अधिक खतरे की संभावना रही। चुनाव के बाद भी स्पर्धाएँ चलती रहीं। असल में एकमत के लिए प्रयत्न हो रहे थे। उसे संभव बनाने के लिए बाकी तीन स्पर्धालु– हळ्ळीकेरी गुदलेप्पाजी, के.वी. शंकरेगौडाजी तथा डी.एम्. सिद्दय्याजी ने अपने नामपत्र वापस ले लिये थे। इस प्रकार निजलिंगप्पाजी को कोई शुभ सूचना नहीं मिली थी। नशाबंदी के बारे में सरकार ने एक नीति की घोषणा की। 15-6-1957 के दिन अर्थमंत्री टी. मरियप्पाजी ने विधानसभा में घोषणा की कि सरकार नशाबंदी के लिए बद्ध है। उनकी दूसरी नीति की घोषणा यह थी कि मलेनाडु प्रदेश के विकास कार्य के लिए सरकार सहायता करेगी। नई सरकार के सामने एक प्रमुख समस्या यह थी, – सरकार के खर्चे के बारे में, राज्य के पाँच विभागों में समान वितरण। पुरानी मैसूर सरकार ने अत्यधिक आर्थिक सहायता ली है – यह भी एक शिकायत रही। वित्त मंत्री ने इस शिकायत का निराकरण करते हुए आश्वासन दिया कि सरकार सभी विभागों का बिना पक्षपात के विकास करने का प्रयत्न कर रही है। 19-7-1957 के दिन किए गए राज्यपाल के भाषण पर चर्चा के समय अपनी सरकार के विरुद्ध की गई टीका-टिप्पणियों के जवाब में निजलिंगप्पाजी ने अपना समर्थन करते हुए कहा कि अपनी सरकार ने कार्यनिर्वाह की अल्पावधि में उत्तम कार्य किया है। टी. मरियप्पाजी ने सरकार की एक और नीति का वक्तव्य दिया कि आगे चलकर सार्वजनिक रूप में 'लोन' द्वारा धनसंग्रह नहीं करेगी। परंतु जैसे आगे देख सकते हैं – सरकार ने आगे भी, सार्वजनिक 'लोन' द्वारा धन संग्रह किया। निजलिंगप्पाजी की सरकार ने कालेज विद्यार्थियों के प्रवेश के बारे में पुराने मैसूर में जो जाति संबंधी सरकार का आदेश था, उसे पूरे राज्य के लिए लागू करने के लिए पहले घोषणा की थी। शिक्षामंत्री वेंकटप्पाजी ने 23-7-1957 को विधानसभा में, फिर से इसका समर्थन किया।

जैसे पहले भी देखा गया है, संसदीय प्रजातंत्र में सरकार चलाने में एक दिक्कत यह है – विधान मंडल तथा शासन पक्ष के शासकीय विभागों के बीच सामरस्य को बनाये रखना। वैसे तो निजलिंगप्पाजी की सरकार के सामने भी यही समस्या थी। एम.पी.सी.सी. कार्यकारिणी समिति की सभा में इन दोनों विभागों के बीच सहकार का माँग के इल निर्णय लिया गया। अर्थात् वह सहकार था ही नहीं, अथवा सहकार होने पर भी वह तृप्तिकर नहीं था। 30-8-1957

को पत्रिकाओं में यह समाचार छपा कि सरकार चार करोड़ रूपयों का सार्वजनिक धन-संग्रह करने जा रही है। सरकार के सामने एक और नीति की घोषणा थी - पडोस के राज्यों का हल न हुआ सीमा विवाद। इस विवाद को हल करने के लिए आंध्र, केरल व मुंबई राज्यों के साथ उच्च स्तर पर बातचीत करने के बारे में, निजलिंगप्पाजी ने 4-9-1957 को पत्रिकागोष्ठी में घोषित किया। उन्होंने यह भी कहा कि उस महीने के अंत में, होनेवाले पश्चिम-वलय मंडली यह विचार हाथ में ले रही है। निजलिंगप्पाजी ने इस आरोप का निराकरण किया कि 'कर्नाटक प्रदेश कांग्रेस समिति' नाम के बदले 'मैसूर प्रदेश कांग्रेस समिति' नाम को ही आगे बढ़ाने के लिए ए.आइ.सी.सी. ने निर्णय किया है। उन्होंने उसी पत्रिकागोष्ठी में घोषित किया कि नई समिति का केंद्र कार्यालय बेंगलूर में होगा। वैसे देखा जाय तो, नाम के बारे में कोई भी प्रस्ताव ए.आइ.सी.सी. के सामने आया ही नहीं और यह विषय प्रदेश कांग्रेस समिति तक ही सीमित विषय है।

सभी विभागों के विकास के लिए समान आद्यता देने की अपनी धोषणा के अनुष्ठान के रूप में, सरकार ने यह निर्णय लिया कि, मुंबई कर्नाटक के लोगों की अनेक दिनों की माँग कि हुब्बळ्ळी में वैद्यकीय कालेज की स्थापना हो - इसे मान लिया जाय। 6-9-1957 को टी. मरियप्पाजी ने इस कालेज का उद्घाटन किया। इस समारोह के अध्यक्ष थे, स्वास्थ्य मंत्री आर्.एम्. पाटीलजी। मैसूर राज्य के 'ओड्डेर' (संगत्तराश) समुदाय के छठे सम्मेलन में भाषण देने के लिए मुख्यमंत्री जी अगले दिन धारवाड़ पहुँचे। उन्होंने आश्वासन दिया कि सरकार इस समुदाय को पिछडी जाति की घोषणा करते हुए उसके विकास के लिए पूरी सहायता करेगी। परंतु केवल सरकारी नौकरी पर ही पूरी तरह से वे निर्भर भी न रहे। शासन में सुधार की आवश्यकता को अच्छी तरह से जाननेवाली सरकारों में निजलिंगप्पाजी की सरकार भी एक है। इस कारण शासन पद्धति का अध्ययन कर योग्य सुधारों के बारे में सूचना देने के लिए सरकार ने 'एक-सदस्य समिति' बनाई। अपने शासनानुभव के लिए प्रसिद्ध श्री ए.डी. गौड़ाजी की 'एक-सदस्य समिति' बनायी गयी।

विधानसभा में कई बार राज्य के नाम को 'कर्नाटक' रखवाने के अनेक विफल प्रयत्न हुए। ए.जी. दोडमेटी जी ने इस विषय के बारे में खासगी निर्णय को 30 सितंबर 1957 के दिन, विधानसभा के सामने रखा। किंतु उसका कुछ नहीं हुआ। निजलिंगप्पाजी को एक छोटे आघात का सामना करना पड़ा कि

महाराजा ने दशहरे की परंपरागत जंबूसवारी को रद्द कर दिया। इस समस्या के लिए हल ढूँढने निजलिंगप्पाजी मैसूर दौडे। पहले ही जैसे देखा गया है राज्य के किसी भी मुख्यमंत्री को सतानेवाला प्रश्न होता है – पार्टी का भिन्नाभिप्राय और गुटबंदी। लौकिक विषयों के बारे में संत का मनोभाव रखनेवाले विनोबाजी सरकार के सुललित कार्यनिर्वाह के विषय में आंतरिक झगड़े और गुटबंदी को देखकर असंतुष्ट हो गए। बीदर में 12 अक्तूबर, 1957 के दिन अपने सार्वजनिक भाषण में उन्होंने मैसूर कांग्रेस के नेताओं के इन गुणों की आलोचना की। उसके बाद 14 को बेंगलूर बसवनगुडी के नेशनल कॉलेज के मैदान में भाषण देते हुए उन्होंने अपने भिन्नाभिप्रायों को दूर कर, राज्य की भलाई के लिए एकता से काम करने का उपदेश दिया। केवल भाषण ही न देते हुए उन्होंने एकता स्थापित करने के प्रयत्न भी किए। 16 अक्तूबर 1957 को इस विषय पर चर्चा करने हनुमंतय्याजी से सबेरे मिले और शाम को चेन्नय्याजी से मुलाकात की। इससे पहले ही तीसरे गुट (जैसे सोचा गया था) के नेता निजलिंगप्पाजी से मिले थे।

और एक प्रमुख नीति तय करना यह था कि सभी जिला-लोकल बोर्डों को रद्द कर केंद्र सरकार द्वारा नियमित बलवंतराय समिति द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार, तालूक-विकास मंडलों की रचना करना। स्थानीय संस्थाओं में बहुत ही निचले स्तर पर ग्रामपंचायत थे। इसप्रकार अनेक विषयों के बारे में, जहाँ तक हो सके शीघ्रगति में और आसक्ति से सामना करते हुए सरकार हल करती थी। केंद्र गृहमंत्री बी.एन्. दातार जी ने राज्य की दो दिन की भेंट के बाद, सरकार की महत्वपूर्ण दो साधनाओं – विविध व्यवस्थाओं के अंतर्गत शासन व कानूनों को एक रूप में लाने के बारे में अपनी खुशी व्यक्त की। परंतु कांग्रेस का अंदरूनी झगडा वैसा ही रहा। अक्तूबर 2, गाँधी जयंती के दिन हनुमंतय्याजी ने अपने सार्वजनिक भाषण में कहा कि राज्य कांग्रेस की गुटबंदी खतरनाक स्तर तक पहुँच गयी है और उसमें एकमत लाने के लिए विशेष रूप से उन्होंने विनोबाजी से विनती की है कि वे हस्तक्षेप कर उसका समाधान करें। परंतु सरकार का अभिप्राय था कि, उसका कार्यनिर्वाहण ठीक था। राज्य को भेंट की केंद्र मंत्रियों के अनुसार – उदाहरण के लिए श्री एस.के. डे ने बेंगलूर में बातचीत करते हुए कहा "समाज कल्याण कार्यक्रमों के अनुष्ठान में, राज्य तृप्तिपूर्वक कार्यनिर्वाह कर रहा है।" 9-11-1957 को पत्रिकागोष्ठी में

निजलिंगप्पाजी ने अपनी भावना व्यक्त की कि इसका निराकरण करना आवश्यक है कि राज्य में राजकीय मतभेद है। सूक्ष्म रूप से देखने पर शंका होती है कि उसकी बू को पहचान कर ही उन्होंने वैसा कहा होगा। देहली के एक समाचार पत्र से बात करते हुए उन्होंने इसका निराकरण किया कि, उनमें और राज्यपाल के बीच में मतभेद है। परंतु मान लिया कि 'जंबूसवारी' के बारे में थोड़ा मतभेद था, और यह भी बताया कि उसका हल भी हो चुका है। सरकार के रोजमर्रा के शासन में हस्तक्षेप न करने पर उन्होंने राज्यपाल की प्रशंसा की। वास्तव में उनकी सरकार के बचाव में खतरा आ गया था, जो आगे चलकर स्पष्ट हो गया। इसी बीच 'एम्.पी.सी.सी.' ने अपने अरसीकेरे के अधिवेशन में अपने नाम को 'के.पी.सी.सी.' में बदलने का निर्णय ले लिया। इस निर्णय की सूचना वी.टी. मागडी जी ने दी; वह एक गैर-सरकारी निर्णय था।

मैसूर सरकार और अन्य राज्य सरकारों के सामने, अत्यंत कठिन तथा प्रमुख समस्या पंचवार्षिक योजनाओं से रूपित, ध्येयों तक पहुँचने के लिए विकास कार्य रही है! दूसरे पंचवार्षिक योजना का अनुष्ठान, तृप्तिकर नहीं होने की आलोचना का जवाब देते हुए, वित्त मंत्री टी. मरीयप्पाजी ने भरोसा दिया कि, राज्य में विकास कार्य शीघ्रगति से किए जाएँगे। इस बीच केंद्र ने राज्य सरकार को सूचना दी कि विदेशी विनिमय संग्रह की कमी के कारण 'शरावती योजना' को तीसरे पंचवार्षिक योजना में शामिल किया जाय। परंतु राज्य सरकार ने निर्णय कर लिया कि उस योजना को पंचवार्षिक योजना की व्याप्ति के बाहर ही अनुष्ठान कर लिया जायगा। 14-12-1957 के पत्रकार सम्मेलन में, निजलिंगप्पाजी ने यह अभिप्राय व्यक्त किया कि, लगभग पचास करोड़ रूपयों की शरावती योजना को दूसरी पंचवार्षिक योजना की अवधि में कार्यगत करने से ही राज्य की प्रस्तुत विद्युत कमी दूर कर सकेंगे। उन्होंने कहा कि इस योजना के लिए विदेशी विनिमय की आवश्यकता न रहने के कारण, दूसरी पंचवार्षिक योजना में ही उसे शामिल कर सकते हैं। आगे चलकर केंद्र ने राज्य के लिए निश्चित किए गए अनुदान को, 34 करोड़ 94 लाख रूपयों से 23 करोड़ 20 लाख तक कम कर दिया। आश्वासन दिया कि यदि केंद्र सरकार की आर्थिक परिस्थिति सुधर जाय, तो राज्य की माँग को सहानुभूति से मुनः परिशीलन करेगी। योजना आयोग से कटा हुआ खर्चा अधिकतर जलविद्युत योजनाएँ तथा शिक्षाक्षेत्र से संबंधित था। आयोग से मिली टीम में मुख्यमंत्री निजलिंगप्पाजी

के साथ पूणच्चाजी, मरियप्पाजी, वीरण्णगौड़ाजी, एम.पी. पाटीलजी तथा वैकुंठ बाळिगाजी थे। आयोग ने एकीकरण के बाद की समस्याओं को दूर करने में, राज्य द्वारा किए गए प्रयत्नों की और परिणामकारी शासनयंत्र की स्थापना की रीति की खुले दिल से प्रशंसा की। 2-1-1958 की पत्रकार सम्मेलन में बात करते हए, निजलिंगप्पाजी ने व्यक्त किया कि, केंद्र द्वारा की गई आर्थिक कटौती के बाद भी, राज्य अपनी सभी योजनाओं का अनुष्ठान कर गुजरेगा। उसमें भी, शरावती योजना को छोड़ने का सवाल ही नहीं है। राज्य के लिए जितना हो सके उतना ज्यादा प्राप्त करने की आतुरता में मुख्यमंत्री जी ने 5-1-1958 को बेंगलूर में हुए केंद्र स्वास्थ्य मंडल के उद्घाटन समारोह का उपयोग करते हुए बेंगलूर में एक केंसर शोध संस्थान की स्थापना के लिए केंद्र से बिनती की। विशेष रूप से कन्नड़वाले जो थे केंद्र स्वास्थ्य मंत्री - डी.पी. करमरकरजी से प्रार्थना की। इसके साथ, कृषि में अधिक धन लगाकर खाद्य धान्य उत्पादन को बढ़ाने के लिए केंद्र से अधिक आर्थिक सहायता, ग्रामीण स्वास्थ्य सेवा सुधार, आदि के बारे में भी माँग की। एकीकरण आंदोलन का एक प्रमुख अंश था, कन्नड़ भाषा को योग्य स्थान देने के द्वारा उसका विकास करने की आवश्यकता। इसकारण, निजलिंगप्पाजी की सरकार ने उसे सरकार का प्रमुख कार्य है - इसे समझाने का प्रयत्न किया। 22-1-1958 को बेंगलूर में हुई पत्रकार सम्मेलन में, उन्होंने बताया कि कन्नड़ का विकास सरकार की बद्धता है और जल्दी ही कन्नड़ को राज्य की राजभाषा घोषित किया जाएगा।

4-2-1958 को शरावती योजना के उद्घाटन के लिए आए हुए, केंद्र जल संसाधन मंत्री एस.के. पाटील जी शरावती आए। 5-2-1958 को लिंगनमक्की में उन्होंने उसका उद्घाटन किया। वह देश में उस समय की सबसे बड़ी जलविद्युत योजना रही। सिंचाई और विद्युत उत्पादन के अलावा निजलिंगप्पा जी की सरकार की प्रमुख नीति रही – सामाजिक न्याय उसमें भी, समाज के पिछड़े व दुर्बल वर्ग को विशेष सुविधायें देना। 30 अप्रैल 1958 को इस तरह की असंतोषजनक साधना के बारे में विधानसभा में कांग्रेस और विरोध पक्ष के सदस्यों ने सरकार की आलोचना की। इन वर्गों की आर्थिक, शैक्षणिक तथा सामाजिक विकास के लिए सरकार जितना होना चाहिए था उतना कार्य नहीं करने की शिकायत सुनाई दी। पुराने मैसूर सरकार का जाति के विषय में आदेश मूलरूप में सामाजिक न्याय की ओर रखा कदम होने के कारण, बाकी प्रदेशों को भी यदि उसको लागू करे तो, शायद अच्छा होगा – समझकर सरकार ने 1-5- 1958 को विधानसभा

में, उसकी घोषणा की। इसके परिणामस्वरूप सरकारी नौकरी में 57% भाग को उस आदेश में बताए गए जातिवालों को, सुरक्षित रखना पड़ा। कालेजों में प्रवेश के बारे में भी, उसको जारी करने के बारे में सरकार सोचने लगी, परंतु वह भी कुछ कम प्रमाण में। पिछडे वर्ग की मुश्किलों के बारे में, अध्ययन कर रिपोर्ट देने और संविधानात्मक सुविधाओं की देखरेख के लिए शीघ्र ही एक समिति की रचना करने की एस.सी., एस.टी, कल्याण देखरेख मंत्री आर्. चेन्निगरामय्या ने 2-5-1958 को, विधानसभा में घोषण की। 4 व 5 तारीख को राष्ट्रीय विकास मंडल की सभा में भाग लेने के बाद निजलिंगप्पाजी देहली से लौटे। पत्रकार सम्मेलन में बात करते हुए उन्होंने बताया कि दूसरी योजना में शामिल न किए जाने पर भी, शरावती योजना आगे बढ़ रही है।

सत्तारूढ पक्ष-कांग्रेस में एक तूफान उठनेवाला था। वह था – निजलिंगप्पाजी को मुख्यमंत्री गद्दी से उतारने का षड्यंत्र। आंतरिक झगडे, बहुत ही बुरी हालत में पहुँच गए थे। भारतीय कांग्रेस समिति के सेक्रेटरी, श्रीमन् नारायणजी कांग्रेस सत्ताधारी पक्ष की समस्याओं को सुलझाने 7-5-1958 को बेंगलूर आए। उन्होंने निजलिंगप्पाजी तथा चेन्नय्याजी के साथ चर्चा की। चेन्नय्याजी के समूह ने असंतोषजनक कार्य करने की रीति के कारण, नायकत्व को बदलने के लिए दबाव डाला। निजलिंगप्पाजी के समूह ने प्रतिपादन किया कि सरकार संतोषजनक रीति से कार्य-निर्वाह कर रही है; साथ ही, यह समर्थन किया कि सिंचाई तथा एकीकरण के कार्यों में उसने अच्छी साधना की है। निजलिंगप्पाजी को पदच्युत करने की कसम खाए हुए चेन्नय्याजी के समूह ने कार्यसूची तैयार करने के लिए पाँच लोगों की समिति की रचना की थी। श्रीमन् नारायणजी, सबसे पहले के. हनुमंतय्याजी से मिले। दूसरे दिन 8-5-1958 को नायकत्व की समय्या को हल के लिए श्रीमन्नारायणजी की अध्यक्षता में कांग्रेस सत्ताधारी पक्ष ने सभा बुलाई। श्रीमन्नारायणजी बेंगलूर में ही थे। फिर भी, निजलिंगप्पाजी उनसे नहीं मिले। चर्चा के बीच में पक्ष की सभा में ही श्रीमन् नारायणजी ने समस्या का हल करना चाहा। इसी समय, निजलिंगप्पाजी ने इस्तीफा दे दी। स्वतंत्रता संग्राम में त्यागी, निजलिंगप्पाजी की समानता करनेवाले नायक को चुनने के लिए कई लोगों ने प्रयत्न किया। टी. सुब्रह्मण्यजी के नाम का परिशीलन हुआ। परंतु अचानक उत्तर कर्नाटक और हैदराबाद कर्नाटक के सदस्यों ने बी.डी. जत्ती जी का नाम सूचित किया जिसने स्पर्धा भी न की

थी। इसप्रकार वे पक्ष के नेता चुने गए। 8-5-1958 को श्रीमान्नारायणजी ने आइ.एन.सी. के अध्यक्ष, यू.एन्. देभरजी से फोन पर बात की। नए नेता बी.डी. जत्ती जी ने सदस्यों से विनती की कि, कांग्रेस के विचारों व कार्यक्रमों के अनुष्ठान में सहयोग दे। निजलिंगप्पाजी ने भरोसा दिया कि वे अपना संपूर्ण सहकार देंगे। उन्होंने पत्रकारों से बताया कि मुख्यमंत्री पद से उन्हें जो मुक्ति मिली उससे राष्ट्र स्तर पर विकास कार्य करने में आजादी मिली है। इसी बीच, ए.आइ.सी.सी. बैठक में भाग लेने, जत्ती जी देहली चले। मंत्री मंडल की रचना के बारे में कांग्रेस वरिष्ठों से बातचीत की। मई 12 अथवा 13 को वे बेंगलूर लौटनेवाले थे। इस प्रकार राजकीय प्रहसन का अंत हो गया। साथ ही, निजलिंगप्पाजी का अठारह महीनों का मुख्यमंत्री पद भी समाप्त हुआ। एकीकृत मैसूर के शासन तथा विकास कार्यों की जिम्मेदारी से पूर्ण, अठारह महीनों की अवधि की ओर मुड़कर देखने पर, कहा जा सकता है कि आलोचनाओं की तरफ ध्यान न देते हुए आंकने से उनकी साधना प्रभावपूर्ण रही। यदि अपने पक्ष के आंतरिक झगडों की पीड़ा न होती तो उस बेचारे मुख्यमंत्री की साधना और भी अधिक परिणामकारी हो सकती थी। आंतरिक रूप से उत्पन्न इस समस्या की तुलना में विपक्षों ने उनके लिए किसी भी प्रकार सवालों की सृष्टि नहीं की। उनके विरुद्ध अविश्वास निर्णय का मंडन करने विपक्षों के प्रयत्नों के बावजूद, वह विपक्ष का आए दिन का व्यवहार होगा, न कि उसके कारण, सरकार को आतंक की सृष्टि नहीं की। निजलिंगप्पाजी की सरकार की अत्यंत श्रेष्ठ साधना यह थी कि विविध ऐतिहासिक भूमिका तथा व्यवस्था के पाँच प्रदेश में एकरूपता लाने की कठिन प्रक्रिया का यशस्वी रूप से उन्होंने सामना किया। दूसरी महान् साधना यह थी कि राज्य की सर्वांगीण विकास के लिए उन्होंने उचित नींव डाली। सिंचाई योजनाओं को शुरू करने के कारण राज्य में, कृषि विकास कार्य सही मार्ग पर आगे बढ़ने लगा। विद्युत की कमी का सामना करनेवाले राज्य में सिंचाई योजना से लगे हुए जलविद्युत योजनाओं को अपनाने के कारण औद्योगिकरण के लिए भी संतोषजनक भूमिका भी तैयार हुई। तीसरा, अनसुलझा शासन सेवाओं की संयोजना को भी सरकार ने साध लिया। चौथा, भिन्नतावाली कानून व्यवस्था में एकरूपता साधना, सरकार को संभव हुआ। अंत में इसके जैसे परिणामकारी न होने पर भी पिछडे वर्गों के तथा एस.सी., एस्.टी. के कल्याण की ओर ध्यान देकर समाजिक न्याय की दिशा में कुछ दूर आगे बढ़ सके।

अठारह महिनों के अधिकार के बाद उन्हें उतारने पर भी निजलिंगप्पाजी के मुख्यमंत्री का स्थान समाप्त नहीं हुआ। चार लंबे वर्षों के बाद 1962 में वे फिर से मुख्यमंत्री बने। जो सीधे राजनीतिक अधिकार से दूर रहे, इन तीन-चार वर्षों की अवधि की समीक्षा करने तक फिर से, चुने जाने की कहानी रुक सकती है। पद या अधिकार निजलिंगप्पाजी को कभी मुख्य नहीं लगा था; उनके जीवन या व्यक्तित्व से परिचित प्रत्येक व्यक्ति इसे जानता है। यदि वह सेवा का माध्यम बन सकता था तो किसी भी पद को अपनाने के लिए वे सदा तैयार थे। परंतु मुख्यमंत्री की इन दो अवधियों के बीच का समय उन्होंने कैसे बिताया ? पहली बात, वे पक्ष का कार्य निभा सकते थे, और फिर लोगों की हित साधना के कार्य में लग सकते थे। अधिकारेतर कार्य लेकर – अर्थात् समिति या आयोगों के अध्यक्ष बनकर, राष्ट्र और राष्ट्र के स्तर पर क्रियाशील हो सकते थे। इसप्रकार आदर्श सार्वजनिक सेवा के लिए बद्ध निजलिंगप्पाजी जैसे नेताओं के लिए देश तथा समाज की सेवा करने के लिए अनेक मार्ग होते हैं। विधिवत् उनके इस्तीफे को 9-5-1958 को राज्यपाल ने जब मान लिया तो उनके व उनके अन्य मंत्रीमंडल का अधिकार समाप्त हो चुका था। परंतु जत्ती जी का मंत्रीमंडल बनने तक उन्हें पद पर रहने के लिए कहा गया था। जत्ती जी के 16-5-1958 को पद ग्रहण करने तक, निजलिंगप्पाजी नियमानुसार मुख्यमंत्री नहीं थे। प्रादेशिक मनोभाववाले निजलिंगप्पाजी, स्वतंत्र मनोवृत्तिवाले थे। इसकारण उनका, केंद्र नेतृत्व का विरोध पाना संभव था। इस वर्ष मई में इस लेखक को निजलिंगप्पाजी ने जो बताया उसके अनुसार उन दोनों के संबंध को हार्दिक नहीं कहा जा सकता था। फिर भी उसे विद्वेष भी नहीं कह सकते थे। नए नेता के रूप में जत्तीजी को चुनने पर नेहरू जी शायद खुश थे। देश के निर्माण के कठिन कार्य में नए खून की नई पीढ़ी के भाग लेने के स्तर पर उन्होंने जत्ती जी के चुने जाने का स्वागत किया। पिछले मंत्री मंडल के दो लोगों को जत्ती जी ने अपने मंत्री मंडल में ले लिया। अपने मंत्री मंडल में शामिल होने के लिए जत्तीजी ने निजलिंगप्पाजी को नहीं कहा। कहने पर भी, शायद निजलिंगप्पाजी नहीं मानते थे। इसके अलावा उनके निर्गमन से कोई भी नीति या विचार नहीं बदलते थे। क्योंकि पिछले ध्येय तथा कार्यक्रमों को जत्तीजी ने भी आगे बढ़ाया। निजलिंगप्पाजी हो या जत्तीजी, जो कोई मुख्यमंत्री बनता था उसे संविधानात्मक उदारता, योजनाबद्ध विकास तथा समाजवादी रीति के समाज निर्माण जैसे, बड़े नाम की सम्मिश्र आर्थिक नीतियों के सैद्धांतिक स्तर पर ही कार्य निर्वाह करना था।

निजलिंगप्पाजी 2-12-1958 को कांग्रेस सत्ताधारी पक्ष के कार्यकारिणी समिति के लिए चुने गये। समिति के बारह लोगों में वे भी एक रहे। पत्रिका में छपा कि राज्य की राजनीतिक परिस्थिति की चर्चा करने, नेहरू तथा देभर के आमंत्रण के मुताबिक मैसूर कांग्रेस नेता, केंद्र के नायकों से 13-12-1958 को मुलाकात करेंगे। एम्.पी.सी.सी. अध्यक्ष वीरण्णगौडा, पूर्व अध्यक्ष चेन्नय्या, जत्तीजी और निजलिंगप्पाजी – इन सभी को आमंत्रण भेजा गया था। 2-2-1959 को इंदिरा गाँधी आइ.एन.सी. के अध्यक्ष पद के लिए चुनी गईं। इस पद के लिए और जिनके नाम थे, वे रहे निजलिंगप्पाजी और राजस्थान के कुंभाराम आर्य। 8-2-1959 को अध्यक्ष के पद भार ग्रहण करने की संभावना थी। इंदिरा गाँधीजी ने सत्रह सदस्यों की कार्यकारिणी समिति को घोषित किया। पाँच नए लोगों में निजलिंगप्पाजी भी एक थे, नेहरू जी का नाम था ही नहीं। परंतु उन्हें शाश्वत आमंत्रित स्थान दिया गया था। देहली से लौटने के बाद निजलिंगप्पाजी और वीरण्ण गौडाजी ने 7-4-1959 को एक पत्रकार सम्मेलन में कहा कि राज्य में प्रारंभ की गई विविध औद्योगिक योजनाओं का जल्दी ही विकास होना चाहिए। उन योजनाओं में लोहे का कारखाना, तुमकूर का सिमेंट कारखाना और बेलगाँव का अल्यूमिनियम का कारखाना शामिल थे। मई 1959 को जत्ती सरकार ने सरकारी नौकरी में रिसर्व नीति को प्रकाशित किया। उसके अनुसार 57% पिछड़े वर्ग के लिए 15% एस्.सी. को तथा 3% एस्.टी के लिए रिसर्व थे। अर्थात् 75% रिसर्व और 25% मुक्त नौकरी थे। पिछडे वर्ग की नई सूची में लिंगायत और ओक्कलिग (किसान) शामिल थे। भारतीय राजनीतिक संस्कृति और संप्रदाय के अनुसार आदर्श जीवन बितानेवाले बोधकों के जैसे, नेता जनों को उपदेश देना चाहिए! कई प्रकरणों में वैसे उपदेश देनेवाले मुखिया के जीवन से उसे नैतिक मूल्य प्राप्त होता है। निजलिंगप्पाजी उसके लिए अपवाद नहीं थे। उसका यह एक उदाहरण है – 29-6-1959 को, बेंगलूर में हुए, मैसूर के पत्रकर्ताओं के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने कहा कि वृत्ति के बडप्पन को ऊँचा रखना चाहिए, और उन्नत वृत्ति पर सामर्थ्य को दिखाते हुए, नए विचारों को प्रारंभ करना चाहिए। धारवाड जिला राजनीतिक कांग्रेस समावेश का उद्घाटन करते हुए 31-5-1959 को, निजलिंगप्पाजी ने सहकार-कृषि का समर्थन देते हुए, नागपुर कांग्रेस अधिवेशन में लिए गए निर्णय को समर्थन दिया। उन्होंने कांग्रेस को एक परिशुद्ध सेवा संस्था कहकर उसका

वर्णन किया। उन्होंने कहा कि उसपर, देश निर्माण की महान् जिम्मेदारी है। इसलिए उसमें किसी भी स्वार्थी व्यक्ति के लिए कोई स्थान नहीं है; ऐसे व्यक्तियों को कांग्रेस से दूर रहना चाहिए। 09-6-1959 को, एक और जिम्मेदारी निजलिंगप्पाजी के ऊपर पड़ी। वह थी, स्वतंत्र रूप से सहकारी कृषि संघ की स्थापना करनेवालों को सरकार द्वारा, आर्थिक तथा अन्य किसी प्रकार की सहायता देने तथा तांत्रिक सलाह और मार्गदर्शन देने की दिशा में, योजनाओं को रूपित करने का एक कार्यनिर्वाहक समूह का अध्यक्ष पद। उस समूह के अन्य सदस्य थे – डॉ. रामसुभाग सिंह, डॉ. ए.यु. शुक्ल, सरदार गुरुभक्ष सिंह, वी.के.आर.वी. राव, बी.डी. पांडे, डॉ. जे. एस. पाटील, एम्. जाखीडे और एम्.पी. भार्गव। अगला ए.आइ.सी.सी. अधिवेशन बेंगूलर में होनेवाला था। सहज ही उसके संगठन की जिम्मेदारी एम्.पी.सी.सी. की थी। एम्.पी.सी.सी. के अध्यक्ष वीरण्ण गौड़ाजी ने पत्रकार सम्मेलन में घोषित किया कि इस अधिवेशन के लिए दान के रूप में धन संग्रह करने की कठिन जिम्मेदारी की, आर्थिक समिति के अध्यक्ष, होंगे निजलिंगप्पाजी। अपने सहज उत्साह से पक्ष के कर्तव्य को उठानेवाले निजलिगप्पाजी ने 18-7-1959 को जिला और मंडल कांग्रेस समिति के अध्यक्ष तथा उनके सेक्रेटरी और कांग्रेस कार्यकर्ताओं की सभा बेलगाम में बुलाकर भाषण दिया। उन्होंने भरोसा दिया कि पक्ष द्वारा सूचित सहकारी कृषि-संघों की स्थापना की योजना का व्यक्तिगत भूमि के मालिकत्व पर कोई परिणाम नहीं होगा। उसका उद्देश्य केवल खाद्योत्पादन को बढ़ाना है। उसके बाद एम्.पी.सी.सी. कार्यकारिणी समति में बात करते हुए, स्वार्थरहित होकर कार्य करने को कहा और कहा कांग्रेस मात्र ही सामान्य लोगों के जीवन स्तर को उत्तम बना सकता है। इसी बीच, पक्ष के अंदरूनी झगड़े तथा गुटबंदी के कारण जत्ती मंत्रीमंडल भी, निजलिंगप्पा मंत्रीमंडल के जैसे मुश्किल में पड़ा था। 08-8-1959 को, पत्रिकाओं में समाचार छपा कि जत्ती मंत्रीमंडल को उतारने के लिए अधिक संख्या में, एम.एल.ए. प्रयत्न कर रहे हैं। मंत्रीमंडल का पंद्रह महीनों का अस्तित्व अभी पूरा हुआ था। परंतु कांग्रेस शासकों की सभा के परिणामस्वरूप उस प्रस्ताव का अंत हुआ। हनुमंतय्याजी ने जत्ति मंत्रीमंडल की प्रशंसा की। परंतु एम.पी.सी.सी. अध्यक्ष वीरण्ण गौडाजी ने राज्य के कांग्रेस पक्ष और कांग्रेस सत्ताधारी पक्ष के बीच के भिन्नमत के बारे में बात की। उन्होंने कहा कि सरकार के कार्य पर परिणाम डालनेवाले, ऐसे मतभेद

का अंत होना चाहिए। आठ महिनों के बाद भी, मतभेद का अंत न हुआ। निजलिंगप्पाजी ने एम.पी.सी.सी. को जागृत करते हुए कहा कि इस मुश्किल को दूर किए बिना, राज्य में कांग्रेस पक्ष का कोई भविष्य नहीं है। सैद्धांतिक रूप में, जत्ती जी, वीरण्णगौडाजी, हनुमंतय्याजी और देवराज अरसु जी आदि सभी नेताओं ने ऐक्यता की आवश्यकता पर जोर डाला। एकता स्थापित करने के लिए 16-04-1960 को, सभी नेताओं को बेंगलूर में मिलकर भिन्नमत को दूर करने की प्रतीक्षा थी। ''कांग्रेस की एकता की संस्कृति के अनुसार, एम.पी.सी.सी. के अध्यक्ष और कार्यकारिणी समिति के सदस्यों का चुनाव सर्वानुमत से हो'' – सभा का यह उद्देश्य था। सभा के समाप्त होने पर निजलिंगप्पाजी भी जो बातचीत में शामिल थे, एकता की बातचीत से कोई प्रयोजन न निकला। चेन्नय्याजी के साथ उन्होंने करीब एक घंटे तक चर्चा की। परंतु कोई लाभ नहीं हुआ। निजलिंगप्पाजी, वीरण्णगौडाजी, चेन्नय्याजी और यू.एस. मल्यजी आदि को 17-04-1960 को बुलाकर, चर्चा करने के बाद एम.पी.सी.सी. कार्यकारिणी समिति के सदस्यों के चुनाव को मई पहले सप्ताह – प्रायः छः तक आगे बढाने का निर्णय हुआ। बेंगलूर से 05-5-1960 को निकली पत्रिका के वक्तव्य में, कहा गया कि 06-5-1960 को एम.पी.सी.सी. के अध्यक्ष और कार्यकारिणी समिति के सदस्यों का चुनाव होगा। वक्तव्य में, यह भी बताया गया कि, उनकी अधिकारावधि दो वर्ष की होगी। चुने जानेवाला समूह, महत्वपूर्ण था। क्योंकि, 1962 में होनेवाले चुनाव का सामना करने की जिम्मेदारी उस पर थी। बाकी कई छोटे मोटे, समूह के होने पर भी, मुख्यरूप से स्पर्धा दो गुटों के बीच होनेवाली थी। इनमें एक समूह एम.पी.सी.सी. की कार्यकारिणी समिति को नियंत्रित करता था। इन दोनों गुटों का सामर्थ्य, निश्चित रूप से समझना असंभव रहा। एक समूहवालों ने, अध्यक्ष पद के लिए हळ्ळीकेरी गुद्लेप्पा; के.वी. शंकरेगौडा, कोल्लूरु मल्लप्पा और नागप्पा आल्वा को सूचित किया; प्रतिस्पर्धी समूह ने एन.सी. नागय्या रेड्डी, और चेन्नय्या का नाम सूचित किया। कई लोगों ने निजलिंगप्पा और चेन्नय्या के नामों को मिलाया। चुनाव के बिना ही, सर्वानुमत से चुनने के लिए संधान हो रहे थे। 06-5-1960 को हुए चुनाव में निजलिंगप्पाजी, एम.पी.सी.सी. के अध्यक्ष पद के लिए बहुमत से चुने गए। मैदान में, दो ही थे – निजलिंगप्पाजी और एन.सी. नागय्यारेड्डी जी। निजलिंगप्पाजी को 121 मत प्राप्त हुए और एन.सी. रेड्डीजी को 85 मत मिले।

निजलिंगप्पाजी के विरोधी समूह के नेता एस. चेन्नय्याजी ने भगवान से प्रार्थना की कि मतभेद को भूलकर, सभी सदस्यों को साथ लेकर चलने के लिए, नए अध्यक्ष को सद्बुद्धि दे। अभिनंदन का जबाव देते हुए निजलिंगप्पाजी ने कहा कि अनेक समस्याओं का सामना करते हुए तथा दिन-ब-दिन बढ़ती हुई भिन्नता और भिन्नाभिप्रायवाले पक्ष की जिम्मेदारी उनके ऊपर है। अपने ध्येय व विचारों के बारे में 10-5-1960 को, पत्रिकाओं को विवरण देते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि, एकता मुख्य होने पर भी, वह तत्वों को तिलांजली देकर नहीं होनी चाहिए। उन्होंने दु:ख व्यक्त किया कि अधिकार और पदों के लिए तरसनेवाले, कुछ कांग्रेसी जन, पक्ष के अनेक क्रियात्मक कार्यक्रमों को भूल गए हैं। उन्होंने कहा कि राजनीति अब स्वकेंद्रित राजकारिणीयों के बीच केवल अधिकार के लिए होनेवाली स्पर्धा बन गई है। 24-6-1960 को पत्रिका प्रतिनिधियों के सवालों का जवाब देते हुए निजलिंगप्पाजी ने जत्ती सरकार को गिराने के प्रयत्नों के बारे में उठी अफवाहों का निराकरण किया। पालिटेक्निक की नींव रखते हुए, उन्होंने बात करते हुए, मंत्रीमंडल को 1962 को चुनावों तक आगे बढाने को मौका देना होगा, नहीं तो प्रचार कार्य कुंठित होगा – चेन्नयायाजी की इस वक्यव्य के बारे में निजलिंगप्पाजी ने आश्चर्य व्यक्त किया। इससे पहले निजलिंगप्पाजी ने माना था कि जत्ती मंत्रीमंडल और पक्ष के संगठन के विभागों के बीच का संबंध हार्दिक नहीं है। जब पत्रकर्त्ताओं ने इस अंश की ओर ध्यान देने के लिए कहा तो, उन्होंने कहा कि उनका वह वक्तव्य एक बहिरंग रहस्य है और सब जानते हैं कि पक्ष में आंतरिक गुट हैं। परंतु मैसूर में जो हो रहा है, वह वहाँ तक ही सीमित नहीं है, देश में सभी जगह यह हो रहा है। इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि पक्ष फिर से अपनी पुरानी बिमारी का शिकार हो गया है। पक्ष के संगठन विभाग और सत्ताधारी पक्ष के बीच के भिन्नमत उद्भूत मुश्किल को समझने के लिए पक्ष के अध्यक्ष संजीवरेड्डी जी को 23-7-1960 को बेंगलूर आने की अनिवार्यता उत्पन्न हो गई। वे जत्ती मंत्रीमंडल को बचाने के आतंक में थे। तीन विभिन्न गुट के लोग रेड्डीजी से मिले। ''जत्ती मंत्रीमंडल तृप्तिकर कार्यनिर्वाह नहीं कर रहा है'' – कहते हुए एक गुट ने असंतोषजनक शासन चलानेवाले कई मंत्रियों के नाम भी बताये। उन्होंने चाहा कि मंत्रीमंडल में बद़लाव करे अथवा कनिष्ठरूप में कुछ समझौता करे। दूसरे गुट ने जत्ती मंत्रीमंडल को सपोर्ट किया। इस गुटवालों ने शिकायत की कि आलोचना करनेवाले राजनीति प्रेरित

लोग हैं। उन्होंने मंत्रीमंडल में कोई बदलाव नहीं चाहा। तीसरे गुट का आरोप यह था कि एक समूह के लोगों के द्वारा पार्टी को अपनी मुट्ठी में रखने के कारण जिला स्तर का शासन बिगड गया है। रेड्डीजी अधिक कुछ न कर सके और उन्होंने कहा कि ''इस समस्या का हल स्थानीय पक्ष ही कर ले, हाइकमांड इसके बीच नहीं आएगा'' – 24-7-1960 को उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया। 24-7-1960 को जत्तीजी और निजलिंगप्पाजी की मुलाकात के बाद, अगस्त दूसरे हफ्ते सत्ताधारी पक्ष की सभा बुलाकर शासन संबंधी समस्याओं के बारे में चर्चा करने का निर्धार हुआ। निजलिंगप्पाजी ने सदस्यों से विनती की कि जत्ती सरकार के विरुद्ध अविश्वास निर्णय का कोई प्रयत्न कम से कम महाचुनाव तक कोई न करे। हनुमंतय्याजी भी, जत्ती मंत्रीमंडल के विरुद्ध थे। 31-7-1960 को उन्होंने अपने घर में पत्रकार सम्मेलन बुलाकर, एक समूहवालों को अर्थात् जत्ती मात्र के प्रतिनिधित्व के, जत्ती मंत्रीमडल का खंडन करते हुए, कहा कि मंत्रीमंडल के कुछ सदस्यों के विरुद्ध गंभीर आरोप है। उनका अभिप्राय था कि नया मंत्रीमंडल ही इस समस्या का समाधान है। 09-8-1960 को पत्रकार सम्मेलन में उन्होंने कहा कि निजलिंगप्पाजी की बातों के बारे में प्रतिक्रिया व्यक्त कर, झंझट में पड़ना वे नहीं चाहते। पत्रिका में वक्तव्य निकला कि पार्टी की मुश्किल को हल करने के लिए, एम.पी.सी.सी. का विशेष अधिवेशन 19-8-1960 को होगा। एक समूहवालों का अभिप्राय था कि जत्तीजी ही मुख्यमंत्री बने रहे, तो निजलिंगप्पाजी के समूहवालों ने आग्रह किया कि उन्हें पद से उतार दिया जाय। उनमें जत्ती मंत्रीमंडल में स्थान न पानेवाले, निजलिंगप्पाजी के समूह के कुछ लोग शामिल थे। निजलिंगप्पाजी की तरह अथवा जत्ती विरोधी गुट को हनुमंतय्याजी और कोल्लूरु मल्लप्पाजी का समर्थन था। दो दिनों तक सभा में हुई चर्चा में मंत्रियों के विरुद्ध किए गए आरोपों के परिशीलन के बाद, निर्णय हुआ कि उनमें कोई अर्थ नहीं है। 13-8-1960 की रात बहुत देर तक सभा चली। 14 को, जत्ती जी ने पत्रकार सम्मेलन में कहा कि विरोधी गुटों के बीच का संबंध, हार्दिक रूप से समाप्त हो गया है। जब पत्रिकावालों ने प्रस्ताव किया कि, हनुमंतय्याजी ने कहा है कि आरोपी मंत्रियों का दिया गया समाधान, तृप्तिकर नहीं है, तो उसके बारे में प्रतिक्रिया देने से जत्तीजी ने इनकार किया। परंतु झंझट को दूर करने में निजलिंगप्पाजी के पात्र की उन्होंने प्रशंसा की। 19-8-1960 को पत्रिका में बयान निकला कि, केंद्र नेताओं से मिलकर जत्ती मंत्रीमंडल के विरुद्ध अपना विचार व्यक्त करने के लिए जत्ती विरोधी दल देहली

जानेवाला है। 28-8-1960 को बताया गया कि 16-9-1960 को, मैसूर सत्ताधारी पक्ष के सदस्यों से नेहरूजी बात करनेवाले हैं। जत्ती जी को पत्र लिखकर नेहरूजी ने यह बताया था। इसी बीच बताया गया कि 27-8-1960 को भिन्नमतीय दल देहली जा रहा है। 30-8-1960 को नई दिल्ली से समाचार निकला कि, जत्ती नेतृत्व को बदलने के लिए केंद्र नायकत्व विरोध करता है। कांग्रेस अध्यक्ष संजीवरेड्डी जी ने बेंगलूर में, यह कहते हुए समर्थन किया कि, जत्ती जी को बदलने की आवश्यकता को वरिष्ठों ने माना नहीं और वे उन प्रयत्नों को भी नहीं मानते हैं।

16-9-1960 को नेहरूजी ने कांग्रेसवालों से बातचीत करते हुए, जत्तीजी को मंत्रीपद से उतारने के, भिन्नमतीयों के प्रयत्न का तीव्ररूप से खंडन किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि बारबार नेतृत्व के बदलाव के वे, विरोधी हैं। उन्होंने निर्णय किया कि, अधिकांश शासनात्मक विवरणों के संबंध में, जत्ती मंत्रीमंडल के विरुद्ध किए गए आरोप तुच्छ हैं। परंतु भिन्नमतीयों के कार्य बंद नहीं हुए। 10-10-1960 को पत्रिका में समाचार छपा कि, अधिक विशाल मंत्रीमंडल रचना के लिए सहायता करने को केंद्र नायकों से विनती करने, हनुमंतय्याजी के नेतृत्व के भिन्नमतीय लोग हवाई जहाज से देहली गए। निजलिंगप्पाजी और जत्ती जी 11-101960 की रात, जत्ती जी के घर में बैठकर, मतभेदों के बारे में एक घंटे तक चर्चा की। दोनों नेताओं ने बातचीत के बाद अपने रिपोर्ट अलग से कांग्रेस अध्यक्ष संजीवरेड्डी जी को भेजा। भिन्नमतीयों का दबाव यह था कि मंत्रीमंडल को बदल दे, अथवा जत्ती सरकार के विरुद्ध अविश्वास निर्णय का मंडन करने के लिए मौका मिले। 22-10-1960 की पत्रिका में छपा कि जत्ती जी ही मुख्यमंत्री बने रहे इसके पक्षवाला हाइकमांड, भिन्नमत की ओर ध्यान न देने के कारण भिन्नमतीयों के प्रयत्न विफल हो गए। 24-10-1960 को हनुमंतय्याजी ने घोषणा की कि, इस मुश्किल को दूर करने के लिए केवल मंत्रीमंडल को विस्तार करना ही उपाय नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि हाइकमांड इसके बारे में, मुक्तमन रखता है। मंत्रीमंडल के बदलाव के लिए जोर देनेवाले उत्तर प्रदेश, केरल और मैसूर – किसी भी राज्य में, वैसे करने के लिए ए.आइ.सी.सी. के राजपुर समावेश ने अपना विरोध व्यक्त किया। परंतु कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने पक्ष के आंतरिक झगडे की चर्चा नहीं की और ए.आइ.सी.सी. अधिवेशन 28-10-1960 को समाप्त हो गया। बहुप्रबल संसदीय

मंडली के लिए पाँच लोगों को चुनने के लिए पार्टी ने दो बार चुनाव किए। फिर भी चार लोगों को ही चुन सके। पाँचवे व्यक्ति को चुनने के लिए तीन-दो का बहुमत किसी को नहीं मिला। चुने गये चार व्यक्ति थे – 280 मत प्राप्त करनेवाले लालबहुदुर शास्त्रीजी, 240 मत पाये निजलिंगप्पाजी, 230 मत पाये वाई.बी. चव्हान और 229 मत प्राप्त एस.के. पाटील। परंतु निजलिंगप्पाजी ने पत्रकार सम्मेलन में कहा कि मैसूर कांग्रेस के झगडे के बारे में कोई भी जानकारी संसदीय मंडली से नहीं मिली है। उनका अभिप्राय था कि, मंत्रीमण्डल के बदलाव को मानने पर भी, मंत्रीमण्डल को स्थिर कर सकते हैं। 16-10-1960 को एम.पी.सी.सी. कार्यकारिणी समिति ने निर्णय करते हुए सूचना दी कि, जत्तीजी को इस्तीफा देना चाहिए, नहीं तो उनके विरुद्ध अविश्वास निर्णय मंडित किया जाएगा। निर्णय ने कहा कि, यदि जत्तीजी-मंत्रीमण्डल आगे बढ़ेगा तो वह पक्ष के लिए हानिकारक होगा। झगडे के बारे में निर्णय जत्तीजी ही लेंगे – इस प्रकार संसदीय मण्डल में निर्णय किया गया था। फिरभी एम.पी.सी.सी. का ऐसा निर्णय पक्ष के अनुशासन के स्तर को सूचित करता है। रिपोर्ट ने बताया कि भिन्नमतियों के विचारों को बताने के लिए, निजलिंगप्पाजी, नेहरू और रेड्डीजी से मिले। 17-11-1960 की इस मुलाकात में, नेहरूजी ने निजलिंगप्पाजी से स्पष्ट कह दिया कि, वे जत्ती-मंत्रीमण्डल के बदलाव के विरुद्ध हैं। कांग्रेस के इ.एस. प्रकाश ने एम.पी.सी.सी. के निर्णय को अन्यायपूर्ण और अवास्तविक कहते हुए उसकी आलोचना की। भारतीय तेल कंपनी के अध्यक्ष निजलिंगप्पाजी देहली जानेवाले थे। नेहरूजी और रेड्डीजी से मिलने के लिए उन्होंने इस संदर्भ का उपयोग किया। घोषणा की गयी कि, मैसूर के विषय की चर्चा करने के लिए कांग्रेस संसदीय मंडली 22-11-1960 को मिले। 30-11-1960 को पत्रिका में रिपोर्ट प्रकट हुई कि, संकट के समाधान के लिए जितनी जल्दी हो सके, एक बार और बातचीत करने के लिए कांग्रेस अध्यक्ष संजीवरेड्डी जी ने निजलिंगप्पाजी और जत्तीजी को आमंत्रित किया। जत्ती–मंत्रीमण्डल के विरुद्ध, एम.पी.सी.सी. द्वारा किए गए निर्णय के बारे में चर्चा करने के लिए निजलिंगप्पाजी 3-12-1960 को संजीवरेड्डीजी से मिले। रिपोर्ट प्रकट हुआ कि, जत्तीजी भी 4-12-1960 को देहली जाएँगे। उसके बाद चेन्नय्याजी भी रेड्डीजी से मिले। रिपोर्ट हुआ कि इन चर्चाओं के फलस्वरूप, रेड्डीजी ने मैसूर की समस्या को हल करने के लिए एक समझौता तैयार किया है।

कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के साथ मिलनेवाली संसदीय मण्डल को 17-12-1960 को मैसूर के प्रश्न को हाथ में लेना ही था। बेंगलूर आनेवाले रेड्डीजी ने 15-12-1960 को बताया कि मैसूर विषय के बारे में, अब निर्णय लेने के कारण, फिर से उसके बारे में चर्चा करने का प्रस्ताव संसदीय मण्डल के सामने नहीं है। अर्थात् 17 को होनेवाली सभा में, इसके बारे में संसदीय मण्डल चर्चा नहीं करेगा। 18-12-1960 को संसदीय मण्डल ने जत्ती जी को, मंत्रीमंडल विस्तार करने का अधिकार दिया। परंतु, 21-12-1960 को पत्रकार सम्मेलन में निजलिंगप्पाजी ने बताया कि मंत्रीमण्डल-विस्तरण, समस्या का समाधान नहीं है। उनके अनुसार मंत्रीमण्डल को बदलना ही एकैक समाधान है। उनकी प्रतिक्रिया संसदीय मण्डल के निर्णय के बारे में थी। उसी दिन निजलिंगप्पा के विरोधी दल के नायक चेन्नय्या जी ने दबाव डाला कि मण्डल के निर्णय के लिए सभी बद्ध रहे। उन्होंने कहा, नहीं तो पार्टी के नियम का उल्लंघन होगा।

घर में छोटी मोटी दुर्घटना का होना, शायद निजलिंगप्पाजी के लिए सहज था। 24-12-1960 की शाम एक दुर्घटना हुई और उनके घुटनपर चोट लगी। वे अपने पोते के साथ खेल रहे थे। पोते को कंपौंड से बाहर गिरते हुए देखकर, उसे बचाने दीवार को लांघते हुए वे गिर पड़े। एक महीने तक विश्राम लेने के लिए उन्हें बताया गया। दैहिक रूप से हमेशा क्रियाशील रहनेवाले व्यक्ति थे वे। व्यस्त होने पर भी हमेशा दैहिक रूप में उनके कार्यक्रम चलते ही रहे। कभी बंद नहीं थे। इसी बीच राजनीति में एक अजीब परिवर्तन हुआ। समाचार मिला कि भावनगर में होनेवाले कांग्रेस के 66 वे समावेश में, हैकमांड से चर्चा करने के बाद, जत्ती जी अपने मंत्रीमंडल का विस्तार करेंगे। जत्ती जी ने स्पष्ट किया कि, वे मंत्रीमंडल का विस्तार कर रहे हैं, परंतु, उसकी पुनःरचना नहीं। उन्होंने यह भी कहा कि एम.पी.सी.सी. अध्यक्ष निजलिंगप्पाजी के नियंत्रण का संगठन विभाग तथा अपने नायकत्व वाले अपने नियंत्रण के विधान मंडल पक्ष – इन दोनों के बीच के हार्दिक संबंध को पुनः स्थापित करने के लिए यह कदम है। संजीव रेड्डी जी ने जब निजलिंगप्पाजी को पार्टी के अत्युन्नत नीतिरूपण घटक - कांग्रेस कार्यकारी समिति के लिए नामकरण किया, तब पार्टी के संगठन में उनका स्थान मजबूत हुआ। पार्टी के चुनाव होनेवाले थे। 19-01-1961 को, एम.पी.सी.सी. ने एकमत से निर्णय लिया कि, एम्.पी.सी.सी. चुनाव-समिति और मंडलों की समिति के बीच के मतभेदों को निजलिंगप्पाजी और जत्ती जी

आपस में बातचीत कर निवारण कर ले। पक्ष के झगडे के समाधान के बारे में, निजलिंगप्पाजी और जत्तीजी 24-01-1961 को एकमत पर पहुँचे। उसके अनुसार, जत्तीजी को अपने मंत्रीमंडल में भिन्नमतीय चार व्यक्तियों को शामिल करना होगा। इन नामों को जत्तीजी को 25-01-1961 को घोषित किया। इसके अलावा, एम्.पी.सी.सी. चुनाव-समिति की अंतिम सूची के बारे में दोनों नेता में एकमत हुआ था। प्रत्याशा के अनुसार 15-01-1961 को जत्तीजी ने चार नए मंत्रियों के नाम घोषित किया। वे थे – एच.के. वीरण्णगौड़ा, बी.वी. बाळ्िगा, एच.एस्. रुद्रप्पा और वीरेंद्र पाटील। चुनाव-समिति में एम्.वी. रामराव, वेंकटरेड्डी हूली, एम्.वी. कृष्णप्पा, हळ्ळीकेरी गुद्लेप्पा, माली मरियप्पा, एस. श्रीरामरेड्डी और शंकर आळ्वा थे। यह कांग्रेस पार्टी की आंतरिक कहानी थी और बाहर विपक्ष दल, सक्रियरूप में मंत्रीमंडल विस्तरण, जाति गणना मात्र से हुआ है – कहते हुए, 27-02-1961 को, सभात्याग किया। एम.एल.सी. आंजनप्पाजी ने एक और कारण से इस विस्तार का विरोध किया। उन्होंने कहा कि यह शासनात्मक-मितव्यय नीति के विरुद्ध है। जब विपक्ष ने, जत्ती मंत्रीमंडल के विरुद्ध अविश्वास निर्णय का मंडन किया तो वह अत्यधिक बहुमत से गिर गया।

अधिकार से दूर रहकर भी निजलिंगप्पाजी एम.पी.सी.सी. अध्यक्ष के रूप में ही नहीं, राज्य और लोगों के हित के लिए बद्ध होकर एक सहज नेता के जैसे न्याय का समर्थन करते हुए, राज्यभर घूमते रहे। मडिकेरी में, 15-5-1961 को हुए चौथे मलेनाड़ अधिवेशन के अध्यक्ष पद से उन्होंने कहा कि सरकार को कूर्ग प्रदेश की तरफ उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। 15-5-1961 को, बेलगाँव के कांग्रेस कार्यकर्त्तों से कहा कि गाँधीजी का नाम जपते हुए या नेहरू जी का नाम लेते हुए, आगे नहीं बढ़ सकते; केवल भावनात्मकता काफी नहीं है। होसपेटे में, 29-5-1961 को हुई सार्वजनिक सभा में, उन्होंने बताया कि कांग्रेस त्याज्य पार्टी नहीं है।

प्रस्तुत पार्टी अनेक बुरी बिमारियों का शिकार होने पर भी, किस्मत से वैसे लोग कम संख्या में हैं, इसलिए अच्छे लोगों को त्याग करने के बारे में, पार्टी को नहीं सोचना चाहिए। पुजारी यदि बुरा है तो क्या मंदिर जाना ही छोड़ दे? 15-7-1961 को, घोषित हुआ कि निजलिंगप्पाजी के नेतृत्व में, जिस में जत्ती जी शाश्वत आमंत्रित राष्ट्रीय भावैक्य समिति की रचना हुई है। राज्य में अतिवृष्टि के कारण, नदियों में बाढ के कारण लोगों की जान व जायदादों की

जनरल तिम्मय्या जी के साथ डॉ. एस. निजलिंगप्पा जी

बडे प्रमाण में हानि हुई। एम.पी.सी.सी. के अध्यक्ष निजलिंगप्पाजी इससे बहुत दुःखी हुए। वरदा नदी के प्रवाह से संत्रस्त गाँवों के लोगों को सान्त्वना देकर, 25-7-1961 को निजलिंगप्पाजी हानि का अंदाज लगाने के लिए गए।

आगामी चुनावों के लिए अभ्यर्थियों को चुनने में पहले जैसे ही विवाद उत्पन्न हुए और उनके निवारण के लिए पक्ष के अध्यक्ष निजलिंगप्पाजी से कहा गया। कई जिलों में प्रचार की गई अभ्यर्थियों की सूचियों को अर्हता की परिगणना लिए वगैर, केवल गुटों के आधार पर होने के बारे में, 8-10-1961 को कई शिकायतें की गई। 13-10-1961 को एम.पी.सी.सी. के अध्यक्ष निजलिंगप्पाजी ने बेंगलूर जिला कांग्रेस समिति का विसर्जन करते हुए वेंकटप्पाजी के नेतृत्व में एक तात्कालिक समिति की रचना करने का ज्यादतर काम किया। इस कार्य के लिए कारण रहा, बेंगलूर जिला कांग्रेस समिति का चारों ओर फैला विवाद और उसके विरुद्ध आई शिकायतें। आवश्यकता पड़ने पर, निजलिंगप्पाजी कैसे कठिन निर्धार ले सकते हैं – इसका यह एक उदाहरण है। अर्थात् यह सूचित करता है कि कोई निजलिंगप्पाजी के सौजन्य को, उनका दौर्बल्य अथवा निष्क्रियता समझने की गलती न करे। यथा प्रकार उनके अत्यंत कठिन कार्य सही कार्य विधान में पर्यावसान हुआ। पक्ष की वरिष्ठ मंडली की पूर्वानुमति प्राप्त करके ही उन्होंने यह कार्य किया था। प्रत्याशित के अनुसार विसर्जित जिला समिति के अध्यक्ष, ए.वी. नरसिंह रेड्डी जी ने पत्रिका वक्तव्य द्वारा इस क्रिया को अन्यायपूर्ण, एकपक्षीय तथा पूर्वाग्रहपीडित कहते हुए, इसका खंडन किया। जत्तीजी ने इसके बारे में विषाद व्यक्त करते हुए कहा कि चुनावपूर्व के दिनों में ऐसा व्यवहार, पक्ष के अनैक्यता का कारण बन सकता है। संजीवरेड्डी जी को परिस्थिति का विवरण देते हुए उन्होंने कहा कि थोडा कम कठिन कारवाई वे ले सकते थे। बेंगलूर में 17-10-1961 हुई पत्रकार सम्मेलन में निजलिंगप्पाजी ने विवरण देते हुए आश्वासन दिया कि अभ्यर्थियों के चुनने में जो पक्षपात अथवा स्वहितासक्ति हुई, उसके बारे में वे नहीं जानते हैं, परंतु, अर्हता प्राप्त अभ्यर्थि मात्र ही टिकेट पायेंगे। जत्तीजी के गुट के प्रति ध्यान नहीं दिया गया है – जत्तीजी के इस कथन के प्रति वे प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहे थे। परंतु 31-10-1961 को जत्तीजी ने कहा कि अब अभ्यर्थियों के चुनाव को अनुकूलकर वातावरण की सृष्टि हुई है। परंतु उसके लिए जागरूकता से प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए निजलिंगप्पाजी ने कहा कि वह चुनाव केवल 60 से 70 प्रतिशत तक ही सीमित

है। कांग्रेस अभ्यर्थियों की सूची के बारे में चर्चा करने के लिए एम.पी.सी.सी. की सभा हुई। उस समय प्रकाश में आया कि चुनाव समिति में एकता नहीं है। स्पष्ट हुआ कि भिन्नाभिप्राय के कारण दो विभिन्न गुट हैं। मुख्य रूप में हासन, चिक्कमगळूर, बीदर, रायचूर, कोडगु और उत्तर कन्नड़ के अभ्यर्थियों को चुनने में, एक गुट में निजलिंगप्पा, एम.वी. रामराव, एम.वी. कृष्णप्पा, हळ्ळिकेरी गुद्लेप्पा और शंकर आळ्वा थे, तो विरोधी गुट में जत्ती जी, माली मरियप्पा, वेंकटरेड्डी हूली और श्रीरामरेड्डी थे। 1961 अक्तूबर 20 से, नवंबर 17 तक हुई सुदीर्घ चर्चा और संधान के बाद एम.पी.सी.सी. ने अभ्यर्थियों की सूची को अंतिम रूप दिया। विधानसभा के लिए 208 और लोकसभा के लिए 26 लोगों को समिति को चुनना था। फिर भी केवल 40% अभ्यर्थियों को अंतिम रूप से चुना गया। अंत में 19-11-1961 को, अंतिम सूची 24 दिनों की दीर्घकालीन बातचीत के बाद तैयार हुई। केवल 77 विधानसभा के और 8 लोकसभा के अभ्यर्थियों के बारे में एकमत संभव हुआ। बाकी सभी चौकाशी और एडजस्टमेंट के द्वारा चला। करमरकर दातार जी और गुरुमुखी जी के निश्चय के अनुसार, एम.पी.सी.सी, संसदीय मंडल की ओर गयी 08-12-1961 को देहली से वापस आने के बाद केंद्र संसदीय मंडल द्वारा मानी गई अंतिम सूची पर जत्तीजी ने तृप्ति व्यक्त की। उन्होंने कहा कि 'वह एकता का संकेत है, न कि पक्षपात भावना का है और बेंगलूर में जो एकता हो न सकी, वह देहली में संभव हो गयी।' अपने से और निजलिंगप्पाजी से लिए गए निर्धारों को मंडल ने समझा, इसलिए उन्होंने मंडल की प्रशंसा भी की। टिकट का झगडा खतम होने के बाद एम.पी.सी.सी. से उन्होंने कहा कि एकता, संयम, व बद्धता की रक्षा करे। धमकी भी दी कि, उनका उल्लंघन करनेवालों के लिए कांग्रेस में स्थान नहीं मिलेगा। यह भी कहा कि कांग्रेस में संख्या से ज्यादा, गुण को प्रधानता दी जाएगी। टिकट न मिलने पर कई लोग पक्ष छोड़ गए थे – इसके लिए उन्हें खेद हुआ था। जैसे प्रत्याशा की गयी थी कि टिकेट के ऋणात्मक परिणामस्वरूप पक्ष के अनेक सदस्य अतृप्त थे। कई लोगों ने तो अधिकृत सूची का खुले में तिरस्कार किया। टिकेट तिरस्कृत सौ कांग्रेसियों ने 06-01-1962 को, बेंगलूर में सभा बुलाकर, उसमें अधिकृत अभ्यर्थियों के विरुद्ध स्वतंत्र रूप से स्पर्धा करने का निर्णय किया। मद्रास उडल्यांड होटल में सभा हुई। मैसूर कांग्रेस मंत्री मंडल के सदस्य एस. करियप्पाजी अध्यक्ष बने थे। 11-01-1962 को निजलिंगप्पाजी

ने घोषणा की कि कांग्रेस अभ्यर्थियों की अधिकृत सूची नहीं बदली जाएगी। 17-01-1962 को देहली से निकले रिपोर्ट में बताया गया कि निजलिंगप्पाजी राज्य के मंत्रिमंडल के नए नेता बनने के बारे में वरिष्ठ मंडल ने सूचना नहीं दी है और इस विषय के बारे में, चुनाव के बाद निश्चय किया जाएगा। इस बीच, टिकेट से वंचित लोग अधिकृत अभ्यर्थियों के विरुद्ध अपना कार्य आगे बढ़ाते रहे।

कोलार जिले के चिंतामणी क्षेत्र में एम.सी. आंजनेयरेड्डी को वरिष्ठ मंडली ने अधिकृत अभ्यर्थी माना था। परंतु एम.पी.सी.सी. ने सीनप्पाजी को टिकेट दिया था। यह प्रदेश कांग्रेस का एक अपरूप, असभ्यता का उदाहरण था, न कि टिकेट से वंचित एक कांग्रेसी अधिकृत अभ्यर्थी के विरुद्ध स्पर्धा करने का असभ्य व्यवहार। सीनप्पाजी को अपने नामपत्र वापस लेने के लिए उन्हें मनाने ए.आइ.सी.सी. सचिव राजगोपालन ने निजलिंगप्पा से कहा; कि ऐसा न किया गया तो, ए.आइ.सी.सी., को एम.पी.सी.सी. के विरुद्ध कार्यवाही करना पड़ेगा। अधिकृत अभ्यर्थी के विरुद्ध स्पर्धा करनेवाले अभ्यर्थियों के विरुद्ध एम.पी.सी.सी. ने अनुशासनिक कारवाई लिया। निजलिंगप्पाजी ने 15-02-1962 को शिवमोग्गा में, प्रचार कार्य की शुरुवात की। 17-02-1962 को रिपोर्ट आया कि महाचुनाव के प्रचार का कार्य, मैसूर में 18-02-1962 को प्रारंभ होगा। राज्य में 1,12,54,254 लोग मतदाता थे। कुल 208 क्षेत्रों में 138 क्षेत्रों में विजय पाकर कांग्रेस ने स्पष्ट बहुमत पाया। परंतु निजलिंगप्पाजी होसदुर्ग क्षेत्र से हार गए। अनुमान लगाया कि इसका कारण, वैषम्यपूर्ण षड्यन्त्र है। अधिक स्थान पानेवाला दूसरा पक्ष था - पी.एस.पी। उसे 20 स्थान मिले। नए प्रारंभ हुए पक्ष - स्वतंत्र पक्ष को 9 स्थान, कम्यूनिस्ट पक्ष को 3 स्थान प्राप्त हुए। समाजवादी पार्टी को नाममात्र के लिए एक स्थान मिला। जनसंघ को कोई स्थान नहीं मिला। परंतु 37 स्वतंत्र अभ्यर्थी विजयी हुए।

नए मंत्रिंडल को जगह बनाने के लिए जत्ती मंत्रिमंडल ने 01-3-1962 को इस्तीफा दे दिया। सत्ताधारी पक्ष के नेता का चुनाव 07-3-1962 को होने की प्रतीक्षा रही। जैसे सब जानते थे - गुटबंदी के कारण विधानसभा के पक्ष के नेता के चुनाव में कुछ मुश्किल की प्रतीक्षा करते हुए, राष्ट्रीय कांग्रेस अध्यक्ष संजीवरेड्डी जी ने जत्तीजी और निजलिंगप्पाजी को बातचीत के लिए देहली बुलाया। इस बीच रिपोर्ट हुआ कि निजलिंगप्पाजी के पक्ष के लोग, उनके चुने जाने के

लिए कार्य चला रहे हैं, यदि चुने गए तो नेता बनने के लिए निजलिंगप्पाजी मान गए हैं। चुनाव में न चुने जाने की तांत्रिक मुश्किल का छः महिनों में, उपचुनाव में जीतने के द्वारा निवारण कर सकते थे। परंतु तब, हारे जाने की काली बिंदी, हमेशा के लिए रह जाती थी। उनके साथियों ने नायकत्त्व के लिए स्पर्धा करने के लिए उन्हें मौका देने के लिए दबाव डाला। साथ ही उन्होंने वादा किया कि उनकी हार, राजकीय षड्यंत्र का फल था; इसलिए नैतिक स्तर पर, वह हारे ही नहीं है। इस तर्क को जत्ती समूह ने नहीं माना। जत्ती और निजलिंगप्पाजी दोनों ने अपने नायकत्त्व की अर्हता का विवरण दिया। यह स्पष्ट था कि वरिष्ठ मंडली, निजलिंगप्पाजी को नेता बनना नहीं चाहती थी, जत्तीजी को ही वे नेता पद पर आगे बढाना चाहते थे। देहली से लौट ने के बाद निजलिंगप्पाजी ने कहा कि नायकत्त्व के लिए स्पर्धा करने, उन्हें यदि मौका नहीं दिया जाएगा तो कम से कम उनके चुने हुए व्यक्ति को स्पर्धा करने का मौका दिया जाय और उपचुनाव में उनके जीतकर आने तक वह व्यक्ति उनके लिए नायकत्त्व निभाएँगे। निजलिंगप्पाजी और जत्ती जी के बीच के नायकत्त्व की समस्या के परिहार के लिए, लालबहादूर शास्त्री जी 07-3-1962 को बेंगलूर आए। उन्होंने फिर बताया कि उनकी सूचना के अनुसार, निजलिंगप्पाजी स्पर्धा नहीं करेंगे। एकमत का चुनाव नहीं हो सका। शास्त्रीजी ने प्रत्येक सदस्य से मिलकर, अभिप्राय जानने के बाद, निजलिंगप्पाजी के पक्ष के अभ्यर्थी एस.आर. कंठीजी नेता के रूप में चुने गए। दोनों पक्षों के लोगों को लेकर मंत्रिमंडल की रचना करने के लिए वरिष्ठ मंडली ने कंठीजी को बताया। परंतु यह संभव न होने का भाव, कंठीजी को शायद रहा। सोचे गए 14 सचिव और 10 उपसचिवों में 9 सचिव और चार उपसचिवों की मंत्रीमंडल रचना कंठी जी से हुई। मंत्रिमंडल में मुख्यमंत्री के अलावा एम.वी. कृष्णप्पा, एम.वी. रामराव, आर. एम. पाटील, यशोधरम्मा दासप्पा, के. मल्लप्पा, डॉ. नागप्पा अल्वा, वीरेंद्र पाटील और बी. राचय्या सचिव बने। उपसचिव दोनों मुस्लिम थे – एच.आर. अब्दुल गफार और मक्सूद अलिखान।

कंठीजी को मंत्रिमण्डल रचना आसान नहीं था। इसका कारण था, वरिष्ठ मंडली द्वारा जत्तीजी के गुटवालों को मंत्रिमण्डल में शामिल करने के लिए कहना। इसी समय निजलिंगप्पाजी को उपचुनाव में बागलकोट क्षेत्र से स्पर्धा करने को सुसंभव करने के लिए, उस क्षेत्र के सदस्य, बी.टी. मुर्नाळजी को अपना इस्तीफा

सभाध्यक्ष को भेजना रिपोर्ट हुआ। बाकी पाँच अभ्यर्थियों ने भी अपना नामपत्र वापस लेने के कारण, निजलिंगप्पाजी बागलकोट क्षेत्र से सर्वानुमत द्वारा चुने गए। कंठीजी के मुख्यमंत्री होने पर यह मालूम था कि वह तात्कालिक है और निजलिंगप्पा के उपचुनाव में जीतकर आने पर, वे वह स्थान उनके लिए मुक्त कर देंगे। इसकारण, सार्वजनिकों ने उन्हें 'भरत' का नाम दिया। इसपर वे झिझक महसूस कर रहे थे। 08-5-1962 को उन्होंने बताया कि यह 'भरत' नामकरण मज़ाक के लिए है, कोई इसे गंभीररूप से न ले। तात्कालिक होने पर भी, वे पूर्णप्रमाण से मुख्यमंत्री का अधिकार चलाएँगे। उन्होंने यह बात विधानसभा में ही बतायी। यह भी कहा कि, अच्छे शासन और राज्य की सर्वांगीण विकास की दृष्टि से, नायकत्व बदल भी सकता है। 11-5-1962 को पत्रिकाओं में रिपोर्ट हुआ कि कंठीजी ने पदत्याग करने के बारे में अध्यक्ष रेड्डीजी को पत्र लिखा है। वैसा ही पत्र उन्होंने नेहरूजी और लाल बहादुर शस्त्रीजी को भी लिखा। उन्होंने उसमें स्पष्ट किया था कि अभी चुनाव में जीतकर आए हुए निजलिंगप्पाजी को सत्ताधारी पक्ष के नायक के रूप में चुने जाने का मौका देने के लिए उन्होंने ऐसा किया है। यह भी बताया कि निजलिंगप्पाजी को अपना नायक बनाना अनेक कांग्रेस शासक चाहते हैं, इसीलिए उनका यह निश्चय रहा। कंठीजी से नायकत्व की जिम्मेदारी निजलिंगप्पाजी जून के प्रारंभ में लेनेवाले थे। नायकत्व के बारे में वरिष्ठ मंडल से चर्चा करने के बाद, निजलिंगप्पाजी 16-5-1962 को देहली से मुंबई आए। कंठीजी ने निजलिंगप्पाजी के लिए जो उन्होंने इस्तीफा देने के बारे में लिखे हुए पत्र को नेहरूजी के जवाब मिलने के बारे में 16-5-1962 को प्रकाशित किया। परंतु, उस पत्र के विवरण देने से उन्होंने मना किया। निजलिंगप्पाजी ने 23-5-1962 को पत्रिकाओं को बताया कि नए नायक को चुनने, सत्ताधारी पक्ष महीने के अंत में मिलेगा; परंतु उससे पहले ही कंठीजी की इस्तीफा को औपचारिक रूप में स्वीकार करना था। 29-5-1962 को, होनेवाले संसदीय मंडल के सामने यह कर सकते थे। पक्ष की गुटबंदी के बारे में, सवाल उठे तो सिद्धांत अथवा विचारों के आधार पर गुट समझ सकते थे। परंतु, मैसूर कांग्रेस की गुटबंदी ने उत्तर दिया कि यह खंडन करने योग्य है। उनकी अपेक्षा थी कि ऐसे लोगों के विरुद्ध कठिन कारवायी की जाय। कर्नाटक जनता के मन को दुःखी करनेवाले एक अतिमुख्य विषय के बारे में निजलिंगप्पाजी ने नीति निरूपणपूर्ण बातें बताई। वह था महाराष्ट्र में,

गोवा शामिल होने का विचार। महाराष्ट्रवालों का तर्क था कि गोवा उनके राज्य का एक भाग है, क्योंकि कोंकणी मराठी भाषा की एक उपभाषा है। परंतु इस बात पर प्रसिद्ध कोंकणी भाषातज्ञ डॉ. कत्रेजी ने सवाल उठाया। यदि यह विलीन हो जाय तो, कन्नड़ भाषियों को दु:ख हो रहा था कि महाराष्ट्र, कारवार और बेळगाव को निगल लेगा। मुख्यमंत्री का अधिकार लेने से पहले ही निजलिंगप्पाजी ने इस नीति निरूपण को सामने रखते हुए तर्क किया कि भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक कारणों से गोवा को कर्नाटक में ही शामिल होना चाहिए। 28-5-1962 को, संसदीय मंडल ने, निजलिंगप्पाजी के नायकत्व को स्वीकृति दी। प्रतीक्षा थी कि 21-6-1962 को सबेरे 8-30 बजे, नए नायक का चुनाव रेसिडेन्सी में होकर निजलिंगप्पाजी चुने जायेंगे। कांग्रेस के नए अध्यक्ष संजीवय्या जी ने कार्यकारिणी समिति से निजलिंगप्पाजी का नाम निकाल दिया। 17-6-1962 को निजलिंगप्पाजी ने कहा कि विशाल स्तर पर वे 14 अथवा 15 लोगों के मंत्रिमण्डल की रचना करेंगे और उसमें कंठी मंत्रिमंडल के सभी लोगों को ले लेंगे। इसका स्वागत करते हुए जत्तीजी ने कहा कि सर्वसम्मति से नायक को चुनने में, उनका दल संपूर्ण रूप से सहकार देगा। चुनाव के पूर्वभावी रूप में कंठीजी सरकार ने 102 दिनों की अधिकारावधि के बाद 20-6-1962 को इस्तीफा दे दी। नायक को सर्वसम्मति से चुनने को समर्थन देने की जत्तीजी के विचार का कंठीजी ने स्वागत किया। 21-6-1962 को निजलिंगप्पाजी सत्तारूढ पक्ष के नायक के रूप में चुने गए। उसी दिन सवेरे 11-22 बजे, राज्यपाल मंगलदास पक्वासजी द्वारा मंत्रिमंडल ने प्रमाण वचन स्वीकार किया। कंठी मंत्रिमंडल के सभी मंत्री – एम.वी. कृष्णप्पा, एम.बी. रामराव, आर.एम. पाटील, यशोधरम्मा दासप्पा, के. मल्लप्पा, डॉ. नागप्पा आळ्वा, वीरेंद्र पाटील, बी. राचय्या आदि ने निजलिंगप्पाजी के साथ प्रमाण वचन स्वीकार किया। निजलिंगप्पाजी ने बताया कि एक हफ्ते में मंत्रिमंडल रचना पूर्ण होगी। पहले जैसे ही, निजलिंगप्पाजी ने राज्य के कृषि औद्योगिक विकास को और उसके लिए जरूरी विद्युत् विकास को आद्यता दी। 23-6-1962 को, दावणगेरे में अखिल मैसूर व्यापारियों के सम्मेलन में भाषण देते हुए, उन्होंने भरोसा दिया कि व्यापारी, नए उद्योगों की स्थापना करने में आगे आए तो उन्हें सरकार द्वारा अनेक रीति से सहायता प्राप्त होगी। भारत तैल कंपनी के अध्यक्ष के रूप में निजलिंगप्पाजी ने बिनती की कि, मंगळूर जैसे स्थानों में तैल

शुद्धीकरण-घटको की स्थापना की जाय। परंतु मुख्यमंत्री के रूप में उन्हें विकास कार्यों से ज्यादा, कई और प्रमुख समस्याओं का निवारण करना था। मंत्रिमंडल की रचना को पूरा करना था। उन्होंने 27-6-1962 को पत्रिकाओं को बताया कि केंद्र नायकों से चर्चा करने के बाद, वे सामरस्यपूर्ण सूची तैयार करेंगे। उन्होंने स्पष्ट किया कि कांग्रेस में भिन्नमतीय गुट नहीं है, केवल कुछ व्यक्ति ऐसे हैं। अफवाह था कि कुछ विरोध रहने के कारण, कडिदाळ मंजप्पा और जत्तीजी को मंत्रिमंडल में लेंगे नहीं। मंत्रिमंडल रचना की चर्चा करने, 28-6-1962 को वे नेहरूजी से मिले। बताया जा रहा था कि उनके मन में, अभी के दस मंत्रियों के साथ, पुराने मैसूर से दो और बाकी भागों से दो लोगों को शामिल करने का विचार था। बार बार सामने आनेवाले नाम थे, देवराज अरसु, जी. नारायण गौडा, रामकृष्ण हेगडे और एम.आर. पाटील। उसमें जत्ती का नाम नहीं था। परंतु उनका नाम शामिल करने के लिए वरिष्ठ मंडली दबाव डाल रही थी। 30-6-1962 को, बी.डी. जत्ती, देवराज अरसु, जी. नारायण गौड, रामकृष्ण हेगडे और के. पुट्टस्वामी को निजलिंगप्पाजी ने शामिल कर लिया। चार के बदले पाँच लोगों को लिया गया। फिर, ग्रेस टक्कर, जे.एच्. शामसुद्दीन, वाइ. रामचंद्र, के. प्रभाकर, मल्लिकार्जुन स्वामी, कोण्डज्जी बसप्पा, आलूर हनुमंतप्पा और दयानंद सागर इन आठ लोगों को 30-8-1962 को शामिल कर लिया उपमंत्री के रूप में। इसप्रकार 02-7-1962 को, मंत्रिमंडल का विस्तार हुआ। जी.बी. शंकरराव, एच्. एस्. बोरय्या को संसदीय सचिव बनाना, एक नया आविष्कार था। अतिमुख्य आर्थिक विभाग जत्तीजी को दिया गया। लग रहा था कि इसतरह दोनों दलों के बीच शांति स्थापना की जा रही थी।

सभी जगह, उसमें भी विकासशील देशों की सरकार के सामने प्रमुख समस्या होती है आर्थिक दिक्कत। भारत में तो राज्य सरकार, अपनी योजनाओं को कार्यरूप देने के लिए केंद्र सरकार की आर्थिक सहायता पर अवलम्बित रहती हैं। विकास कार्यों के लिए, धनसंग्रह के लिए सार्वजनिक सहायता पर अवलम्बित होना पड़ता है। 1-7-1962 को निजलिंगप्पाजी ने अपने भाषण में कहा कि सरकार के द्वारा सात करोड रूपये सार्वजनिक ऋण द्वारा, तेरह करोड़ रुपये, सरकारी उद्योगों के द्वारा संग्रह किया जाएगा। संसदीय प्रजातंत्र में विरोध पक्ष हमेशा विरोध जताते हुए, शासन करनेवाली पार्टी को एडी पर खडे रहने के लिए मजबूर करते हैं। परंतु, भारत में इसके साथ शासन पक्ष के आंतरिक

पंडित जवहरलाल नेहरू, राज्यपाल श्री पक्वास और श्री कृष्ण अय्यर के साथ डॉ. एस. निजलिंगप्पा जी

भिन्नमतियों का भी सामना करना पड़ता है। और एक प्रमुख नीति कन्नड़ भाषा साहित्य और संस्कृति को प्रोत्साह देना रही है। एकीकरण आंदोलन ही भाषा-संस्कृति की नींव पर होते हुए, भाषावार प्रांत रचना का कारण बना था तो यह सरकार पर विशिष्ट बद्धता बनी थी। यदि कोई उसे पूरा करनेवाला था तो वह निजलिंगप्पाजी थे! 21-7-1962 को उन्होंने कहा कि उनकी सरकार कन्नड़ भाषा की उन्नति के लिए प्रयत्न करेगी, इसकारण कन्नड़ भाषा के नाम पर कोई संघर्ष न करे। इस समय निजलिंगप्पाजी के सरकार को आहार की कमी का और राज्य में कई प्रदेशों में आपत्काल की परिस्थिति का सामना करना पड़ा। 31-8-1962 को निजलिंगप्पाजी ने बता दिया कि इस कठिन परिस्थिति का सामना करने के लिए, राज्य सरकार एक व्यापक योजना तैयार कर रही है। इसमें सिंचाई और कृषियोजना को प्रथम स्थान देकर, आहारोत्पादन की वृद्धि करना भी शामिल था। कृषि मंत्री नारायण गौडा ने 1-9-1962 को पत्रिकाओं के सामने कहा, हर साल 10 हजार कुएँ बनाकर आपत्काल परिहार कार्य किया जाएगा। निजलिंगप्पाजी मुख्यमंत्री होने के साथ, एम.पी.सी.सी. अध्यक्ष भी थे। चित्रदुर्ग में हुई एम.पी.सी.सी. सभा में उन्होंने अध्यक्ष पद को इस्तीफा दे दिया। नागप्पा आळ्वा, और रामकृष्ण हेगडे ने भी मंत्री होने के कारण सचिव स्थान से इस्तीफा दे दिया। आनेवाले दिसंबर में पक्ष का चुनाव होनेवाला था, तो तब तक तात्कालिक रूप में, निजलिंगप्पाजी के उत्तराधिकारी बनकर मोहम्मद अलि चुने गए। मुख्यमंत्री पद पर रहने तक निजलिंगप्पाजी को अपनी प्रिय-योजना शरावती जलविद्युत योजना के बारे में टीका टिप्पणी का सामना करना पड़ा। इसके बारे में सदन में, जब प्रस्ताव हुआ तो उन्होंने मान लिया कि टेंडर के संबंध में दो कांट्रेक्टरों को पचास लाख रुपए अधिक धन दिया गया था। विरोध पक्ष के नायक शिवप्पाजी ने इस घटना के बारे में अफवाह फैलने के कारण में जाँच करने के लिए एक मुक्त समिति की रचना की माँग की। पहले के जैसे निजलिंगप्पाजी ने अब भी कहा कि समिति की कोई आवश्यकता नहीं है, शिकायतें हो तो उनके पास जाकर उनका निवारण कर सकते हैं। उन्होंने विवरण दिया कि विवाद का संदर्भ है तो बीचौवल समिति की रचना के लिए समझौते में ही स्थान दिया गया है। उन्होंने स्पष्ट किया कि इस कारण अधिक धन दिया गया है। उन्होंने प्रकट किया कि सरकार ने आगे के समझौतों में इस मौके को रद्द करने का निर्णय किया है। परंतु इस विवरण से विरोधी पक्षवाले तृप्त नहीं थे।

सार्वजनिक अतृप्ति को जब आंदोलन, बंद, सत्याग्रह और हडताल द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है तो उनका सामना करना मुख्यमंत्री के कर्तव्य का एक भाग होता है। प्रजासत्तात्मक जीवन का वह एक विशेष गंध लेनेवाला एक अविभाज्य अंग है। निजलिंगप्पाजी की सरकार इससे अलग नहीं थी। सार्वजनिक अतृप्ति का इस प्रकार घोर रूप लेने की परिस्थिति को उन्हें निभाना पड़ा। उसमें वह सफल भी हो सके। सार्वजनिक दबावों के साथ, सरकार के विचार का समझौता करते हुए, यह साध्य हो सका। हुब्बळ्ळी में 17-9-1962 को हुई, व्यापारियों की सभा में, आहार पदार्थों के कर को न बढाने के लिए सरकार पर दबाव डालने पर, एक घटना हुई। कर्नाटक वाणिज्य और औद्योगिक संस्था ने 17-9-1962 को हुबली में 'बंद' का आचरण किया। प्रजातंत्र की व्यवस्था में, विरोध पक्ष ऐसे सन्निवेश का इन्तजार करता रहता है। इसका आत्यंतिक क्रम होता है, सरकार के विरुद्ध अविश्वास निर्णय का मंडन। विधान सभा के विरोध पक्ष के नायक शिवप्पाजी ने 21-9-1962 को निजलिंगप्पाजी की सरकार के विरुद्ध अविश्वास निर्णय का मंडन किया। निर्णय के लिए तांत्रिक रूप से, तीस सदस्यों का समर्थन होने के कारण सभाध्यक्ष ने निर्णय मंडन के लिए मौका दिया। सरकार की टीका के कारण थे – 1) शरावती योजना में हुए अव्यवहार व भ्रष्टाचार 2) कॉलेज की फी को अधिक बढाने के कारण विद्यार्थियों की मुसीबत, 3) अर्हता के बिना, पक्षपात से तीन मंत्रियों को संविधान बाहिर रीति से शामिल कर लेना, 4) भूसुधार को जारी करने में विफलता और 5) नित्योपयोगी वस्तुओं के दाम का बढ़ना। नशाबंदी विचार का परामर्श होने के समय 27-9-1962 को मुख्यमंत्री ने नशाबंदी के बारे में सरकार के विचार की सूचना दी। उन्होंने बताया कि हाल ही में, मुंबई में एक सरल विवरण दिया है। अविश्वास निर्णय के बारे में चर्चा होते हुए, निजलिंगप्पाजी ने जोर देते हुए कहा कि शरावती योजना के अनुष्ठान में, कोई भी अव्यवहार नहीं हुआ है। यह भी कहा कि क्योंकि, उन्होंने खुद इसकी जिम्मेदारी निभायी है, इस कारण न्यायिक जाँच की आवश्यकता नहीं है। यह भी कहा कि रचनात्मक टीकाओं के लिए स्वागत होने पर भी, गैर जिम्मेदार आरोपों के लिए जगह नहीं है। 5 को निजलिंगप्पाजी ने यह विचार व्यक्त किया कि केंद्र खींचाई मंत्री नंदाजी ने पत्रद्वारा बताया है कि देश की अत्यंत महान जलविद्युत योजना शरावती के कार्य का परामर्श करने के लिए योजना आयोग का एक विशेषज्ञ दल आनेवाला है। वहाँ

के कार्यों के कुंठित होने के बारे में और उसके विरुद्ध मिली आलोचना के बारे में विचार करने के लिए इस दल को बनाया गया था। सरकार ने शायद इसका स्वागत किया था। इसी बीच निजलिंगप्पाजी ने शिवमोग्गा जिले में यात्रा कर शरावती के कार्य का परिवीक्षण करने का निर्धार किया। योजना आयोग का दल 10-10-1962 को बेंगलूर से शरावती योजना स्थल चला। राज्य सिंचाई उपमंत्री जे.एच. शमसुद्दीन जी ने बताया कि योजना से निराश्रित लोगों की पुर्नआवास के लिए तीन करोड रुपये चाहिए। ध्यान देने की बात यह है कि इसी समय, चीनी-आक्रमण के कारण, भारत की समग्रता व आत्मगौरव को धक्का लगने का संदर्भ आ गया था। चीन ने अचानक स्पष्टीकरण दिए बिना, युद्ध को बंद किया। इसकारण, रक्षा-निधि के लिए धनसंग्रह करने की चिंता राज्य सरकार ने दिखाई। 10-12-1962 को, निजलिंगप्पाजी 60 वर्ष के हुए। परंतु उसके जोरशोर के आचरण के लिए उन्होंने मौका नहीं दिया। क्योंकि, उस वक्त चीनी आक्रमण के कारण देश में, एमर्जेन्सी लगी थी। 16-12-1962 को बेंगलूर में कार्यकर्त्ताओं से बात करते हुए उन्होंने कहा कि इस एमर्जेन्सी की परिस्थिति में सरकार को दुर्बल बनाने के किसी भी प्रयत्न को वे विफल करेंगे और नेहरूजी के नायकत्व में संपूर्ण भरोसा रखना होगा। राज्य की आंतरिक समस्याओं के बारे में बताते हुए, निजलिंगप्पाजी ने आवश्यक प्रमाण के विद्युत उत्पादन के बारे में सरकार की चिंता व्यक्त की। राज्य के विकास मंडल में 12-2-1963 को उन्होंने बताया कि विद्युत की कमी के कारण, राज्य औद्योगिक क्षेत्र में पीछे रह गया है। उन्होंने बताया कि राज्य के प्रत्येक गाँव तक विद्युत को पहुँचाना, उनकी सरकार का लक्ष्य है। 18-2-1963 को सत्ताधारी पक्ष के आयव्यय-अधिवेशन का उदघाटन करते हुए राज्यपाल ने कृषि और विद्युत क्षेत्रों की ओर सरकार जो प्रमुखता दे रही है, उसका उल्लेख किया। उन्होंने बताया कि इस नीति की दृष्टि से, काळी-जलविद्युत योजना के लिए पाँच करोड़ रुपयों की सहायता के लिए योजना आयोग से राज्य सरकार ने विनती की है। उन्होंने कहा कि सींचाई और जलविद्युत दोनों योजनाओं के लिए राज्य की नदियों के पानी के उपयोग का प्रामुख्य है, परंतु नदियों के विविध राज्यों में बहने के कारण, अंतरराज्य नदी के पानी के बंटवारे के विवादों से परिस्थिति मुश्किल हो रही है। आज तक शायद ये समस्यायें हल न हुई हैं। निजलिंगप्पाजी ने विधानसभा में भरोसा दिया कि कृष्णा और गोदावरी नदियों के पानी के राज्य

के हिस्से के हित की रक्षा करने को राज्य सरकार बद्ध है। श्री बी.डी. जत्तीजी तब अर्थमंत्री थे; उन्होंने राज्य के दूसरे आयव्यय पत्र का 01-3-1963 को मंडन किया। वह 40 लाख रुपयों की कमी का बजट था। शरावती की चिंता निजलिंगप्पाजी को निरंतर दुःख दे रही थी। कडिदाळ मंजप्पाजी ने 05-3-1963 को विधानसभा में फिर से उस विषय को उठाया। पार्टी के अंदर और बाहर के निजलिंगप्पाजी के राजकीय विरोधियों के लिए यह प्रश्न, एक अस्त्र बन गया था। मंजप्पाजी का यह तर्क रहा कि कई राजनीतिक व्यक्तियों ने शरावती योजना में कानूनबाहिर रीति से पैसा कमाया है और इस आरोप के बारे में सरकार आंकडों सहित खुलकर बताये। इसी बीच, विद्युत निगम के अध्यक्ष चेन्नय्याजी ने (कोलार जिले, इन्हें निजलिंगप्पाजी के प्रमुख राजकीय विरोधी, एस. चेन्नय्या समझने की गलती न करे) 06-3-1963 को पत्रकार सम्मेलन में कहा कि शरावती के प्रथम स्तर का काम समाप्त होनेवाला है, परंतु विद्युत उत्पादन के पहले प्रसारण तंतु और बांटने के स्थानों का निर्माण होना चाहिए, और उसके लिए धन देने के लिए सरकार से बिनती की।

केंद्र सरकार से कृष्णा तथा गोदावरी विषयों के बारे में चर्चा करने निजलिंगप्पा जी, वीरेंद्र पाटीलजी के साथ 11-3-1963 को देहली गये। सरकार की एक और प्रगतिपर योजना यह रही कि, गरीबों को मुफ्त में कानून की सहायता मिले। कानून सचिव रामरावजी ने विधानसभा में बताया कि इस विषय पर, उन्होंने एक योजना बनाई है। गोदावरी नदी के पानी के बंटवारे में राज्य को अन्याय हुआ है, अधिक पानी मिलना चाहिए था। सरकार पर धावा बोलने के लिए इससे विरोध पक्षावालों को एक और अस्त्र मिला। समाजवादी नायक तथा विधानसभा के विरोधी दल के नायक शिवप्पाजी ने ''राज्य को दिए गए पानी के प्रमाण से राज्य को अगले पन्द्रह वर्ष तक उन दो ही योजनाओं से तृप्त होना पड़ेगा'' कहते हुए, केंद्र और तद्वारा राज्य की आलोचना की। परंतु खंडन का दबाव केंद्र द्वारा आन्ध्र के लिए दिखाए गए पक्षपात पर रहा; न कि राज्य सरकार ने अधिक पानी प्राप्त करने के लिए प्रयत्न किया – इस पर राज्य के औद्योगिक व वाणिज्य विकास के बारे में सरकार सोच रही थी। इसके लिए यातायात की व्यवस्था अच्छी होनी थी। ''मेंगनीस की कच्ची वस्तु जापान को विक्रय करने का विचार सरकार का है और उससे प्राप्त धन से कारवार जैसे बंदरगाहों के विकास करने का उद्देश्य है'' – कहते हुए औद्योगिक मंत्री के. मल्लापाजी ने

फील्ड मार्शल जनरल के. एम. कारियप्पाजी के साथ डॉ. एस. निजलिंगप्पा जी

01-5-1963 को पत्रिकाओं में बताया। आज के जैसे, विदेशी बहुराष्ट्रीयों को देश की आर्थिक व्यवस्था को खुले रखने के पागलपन के शुरु होने के बहुत पहले ही, हमारी आर्थिकता को धक्का न लगाते हुए, सीमित मात्रा में, उसके लिए मौका देने के बारे में निजलिंगप्पाजी की सरकार सोच रही थी। उदाहरण के लिए, निजलिंगप्पाजी के मंत्री मंडल में विद्युत विभाग के उपमंत्री शमसुद्दीनजी ने 03-5-1963 को पत्रकार सम्मेलन में बताया कि जापान बृहत कंपनी, 'मिट्सुबुशी' काळी जलविद्युत योजना को तांत्रिक सूचना देने के लिए तैयार है। सरकार का अभिप्राय था कि औद्योगिक विकास करना, राज्य के विकास कार्यों का ही एक भाग है। अगले दिन निजलिंगप्पाजी ने बताया कि बीदर, हिरियूरु और एम.के. हुब्बळ्ळी में, तीन शक्कर कारखानों को प्रारंभ कर विविध प्रदेशों में संतुलन की रक्षा की जाएगी, साथ ही कार्यनिरत मंड्या और संकेश्वर के कारखानों का विस्तार किया जाएगा। मुख्यमंत्री को विकास को प्रमुखता देने और विकास की सहूलियतों का उपयोग करने के बारे में समझ थी। इसका उदाहरण है, तुंगभद्रा योजना का उपयोग, मैसूर सरकार के उद्देश्यित मात्रा में, उपयोग न करने के बारे में जो उन्होंने होसपेटे में 13-5-1963 को विषाद व्यक्त किया। उस जल से प्रतीक्षित आठ लाख एकड़ जमीन को उपयोग होने के बदले, केवल तीन लाख एकड़ जमीन का उपयोग हो रहा था। कृषि उत्पादन के लिए सरकार द्वारा रचित, उपसमिति के अध्यक्ष के रूप में वे इस कारण, योजना प्रदेश को देखने गये थे। उस उपसमिति के और सदस्य थे राजस्व मंत्री कृष्णप्पा, कृषि मंत्री नारायण गौड़ा, सहकार मंत्री रामकृष्ण हेगडे और छोटे सींचाई विभाग के उपमंत्री आलूरु हनुमंतप्पाजी। नदी जल पर राज्य के हकों के बारे में मुख्यमंत्री जी बहुत जागृत थे। पीने के पानी के उपयोग तक सीमित कृष्णा नदी के पानी का, सींचाई के लिए उपयोग करनेवाली मद्रास सरकार के बारे में 17-5-1963 को उन्होंने आलोचना की।

पार्टी की समस्याएँ सरकार तथा मुख्यमंत्री जी को तंग करती रहीं। हाल में हुए पार्टी के चुनावों में अवैध कार्य व भ्रष्टाचार हुए हैं – यह शिकायत करते हुए मैसूर के कई कांग्रेस नायकों ने कांग्रेस अध्यक्ष संजीवय्याजी से शिकायत की। उन्होंने दबाव डाला कि अब जो चुनाव हो गए हैं उन्हें रद्द कर उसके बारे में जाँच की जाय। इस पत्र पर हस्ताक्षर करनेवाले थे – एस्. चेन्नय्या, टी. सुब्रह्मण्य, कडिदाळ मंजप्पा, टी. मरियप्पा, बी. बसवलिंगप्पा, एच.एम. चेन्नबसप्पा, ए.जी.

रामचन्द्रराव, एच. सिद्धवीरप्पा और वेंकटरामय्या आदि। उस समय एम.पी.सी.सी. के अध्यक्ष थे, एस. चेन्नय्याजी। परंतु एम.पी.सी.सी. के अधिकृत वक्ताओं ने इस शिकायत का निराकरण करते हुए बताया कि कुल 226 क्षेत्रों में केवल छः क्षेत्रों में मंडल समिति की रचना नहीं हो सकी है। उन्होंने कहा, ग्राम स्तर पर पंचायती राज्य व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण करने के बारे में, निजलिंगप्पा-सरकार बद्ध है, उसके बारे में कोंडज्जी बसप्पा समिति को बनाना ही साक्षी है। जून 1963 के प्रारंभ में, उस समिति का रिपोर्ट मिला। ग्राम, तालूक व जिला स्तर पर, अधिकार को बांटने के लिए उसमें सिफारिश की गई थी। बड़े तालूकों के विभाजन की भी सिफारिश उसमें थी। हैदराबाद में 07-6-1963 को निजलिंगप्पाजी ने ही पत्रिकाओं को बताया कि राज्य के कांग्रेस चुनावों में कोई अवैध कार्य या भ्रष्टचार नहीं हुए हैं। परंतु उनके राजकीय दुश्मन, उनकी व उनकी सराकर की आलोचना करते ही रहे। अपने को सज्जन कहते हुए वे चुनावों को न्याययुत नहीं मानते थे। एस. चेन्नय्याजी और टी. सुब्रह्मण्यजी ने 07-6-1963 को पत्रकार सम्मेलन में बताया कि बेंगलूर में मिलकर चर्चा करना चाहते हैं। उन्होंने शिकायत की कि एक दल ने पक्ष में प्राबल्य साधते हुए, मतदाताओं की अवैध सूची तैयार कर अपने व्यक्ति को चुनाव-अधिकारी नियुक्त कर लिया है। इसी बीच 23-6-1963 को पक्ष के अध्यक्ष पद के लिए चुनाव होनेवाला था। एकमत अभ्यर्थी के लिए दो दलों में समझौता न होने के कारण चुनाव अनिवार्य बन गया। मोहमद अलीजी, कोल्लूरु मल्लप्पाजी और एच.एम. चेन्नबसप्पाजी के बीच में चुनाव होने की प्रतीक्षा थी। पहले के दो निजलिंगप्पाजी के पक्ष के थे। इसलिए, चाहते थे कि मोहमद अली या कोल्लूरु मल्लप्पाजी चुने जाएँ। एक और नाम था हळ्ळिकेरी गुद्लेप्पाजी। वे भी निजलिंगप्पाजी के पक्षवाले थे। एम.पी.सी.सी. में बहुमतवाले में निजलिंगप्पाजी के दल की जीत की प्रतीक्षा थी। वास्तव में मोहमद अली 201 मत प्राप्त कर चुने गए। उनके प्रतिस्पर्धी एच.एम. चेन्नबसप्पाजी को केवल 23 मत मिले। एच.एम. चेन्नबसप्पाजी की सहज प्रतिक्रिया थी कि चुनाव ठीक नहीं था।

सामान्यतः वैभव व दिखावे को पसंद न करनेवाले निजलिंगप्पाजी अच्छे उद्देश्यों के लिए उनके उपयोग के विरुद्ध नहीं थे। चीनी आक्रमण से जागृत रक्षप्रज्ञा के कारण, रक्षणानिधि के लिए, सोने के संग्रह का प्रचार जोरों से चला था। 02-7-1963 को वैभव से बिजापुर में समारंभ हुआ। उसमें निजलिंगप्पाजी

स्वातंत्र्योत्सव में भाषण देते हुए डॉ. एस. निजलिंगप्पा जी

और इन्दिरा गाँधी जी का सुवर्ण-तुलाभार हुआ। उस सुवर्ण को रक्षणानिधि को समर्पित किया गया। इन्दिराजी 108 पौंड थीं तो निजलिंगप्पाजी 162 पौंड थे। इस समारंभ के लिए आम जनता ने 15 लाख रुपयों का 1,18,526 ग्राम सुवर्ण का संग्रह किया था। इस समारंभ के अध्यक्ष आन्ध्र के मुख्यमंत्री संजीवरेड्डी जी थे। इस समारंभ के कुछ दिनों के बाद, उनके विरुद्ध राजकीय दुश्मनों ने एक और मिथ्याचार का अस्त्र छोड़ा। बेंगलूर में 05-7-1963 में हुई पत्रकार सम्मेलन में टी. सुब्रह्मण्य ने आरोप लगाया कि एम.पी.सी.सी. अध्यक्ष पद के लिए हुआ चुनाव अवैध है। हळ्ळीकेरी गुद्लेप्पा पर गुस्सा निकाला कि, विधान परिषद के सभापति होकर, संसदीय व्यवहार के विरुद्ध वे कांग्रेस पक्ष के राजकीय में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। शरावती योजना में कहे जानेवाले अवैध कार्य के साथ, इसको मिलाकर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया। टी. सुब्रह्मण्य, एस चेन्नय्या और एच.एम. चेन्नबसप्पाजी ने 05-7-1963 को चेन्नय्याजी के घर में पत्रकार सम्मेलन बुलाकर दबाव डाला कि योजना में हुए अवैध व भ्रष्टचार के बारे में एक न्यायिका जाँच या निष्पक्ष पूछताछ होनी चाहिए। कांग्रेस पक्ष के बाहर से भी, इसके लिए आक्रमण हुए। विरोधपक्ष के नायक एस. शिवप्पाजी ने 11-7-1963 को पत्रकारों से बात करते हुए ज़ोर डाला कि शरावती योजना के बारे में न्यायिका जाँच हो। उन्होंने विशेष विषाद व्यक्त किया कि इस बारे में निजलिंगप्पाजी ने विधानसभा में दिए गए भरोसों को पूरा नहीं किया है।

राष्ट्रीय स्तर पर कामराज जी द्वारा 'कामराज बम' नाम से प्रसिद्ध राजनीति योजना का धमाका हुआ। 10-8-1963 को देहली में हुए ए.आइ.सी.सी. ने इसे मान लिया। परंतु अफवाह फैली कि यह असल में नेहरूजी की योजना है और वह कामराज द्वारा जारी हो रही है। जो नहीं चाहिए उन लोगों को सरकार से दूर रखने की यह योजना है; उसका सार है कि वरिष्ठ नायक सरकार त्यागकर, पक्ष की सेवा में लगे रहे। इस योजना के अनुसार इस्तीफा देने के लिए अनेक मुख्यमंत्री तैयार हुए। 11-8-1963 को निजलिंगप्पाजी ने पत्रकार सम्मेलन में घोषणा की कि कामराज योजनानुसार वे भी इस्तीफा देने को तैयार हैं। उन्होंने कहा कि पार्टी तथा सरकार के कार्य दोनों को समान महत्त्व पहले से ही वे देते आए हैं तो यह उनके लिए आसान कार्य है। 15-8-1963 को स्वातंत्र्य दिनोत्सव के संदर्भ में आकाशवाणी द्वारा भाषण देते हुए उन्होंने आंतरिक झगडे भुलाकर, देश के हित के लिए, परिश्रम करने के लिए लोगों को आमंत्रण

दिया। उन्होंने कहा कि इससे देश बलवान् होगा और सुरक्षित रहेगा। कामराज योजना के बलिपशुओं के नाम 23-8-1963 को प्रकाशित किया गया। केंद्र मंत्रियों में – मोरारजी देसाई, जगजीवनराम, लालबहादुर शास्त्री, एस.के. पाटील, बी गोपालरेड्डी और डॉ.के.एल. श्री माली थे; मुख्यमंत्री थे – गुलाम मुहम्मद (जम्मू-कश्मीर), स्वयं कामराज, विजयानंद पाठक (ओडिसा), सी.बी. गुप्ता (उत्तर प्रदेश), विनोदानंद झा (बिहार) और बी.ए. मांडलोय (मध्यप्रदेश)। पत्रिकाओं ने अंदाजा लगाया कि वरिष्ठ मंडली निजलिंगप्पाजी के इस्तीफा को मानेगी।

निजलिंगप्पाजी ने अत्यंत प्रमुख कृषि उत्पादन के बारे में, अपनी बद्धता को कायम रखा। इसका उदाहरण है हावेरी में स्थानीय किसानों से बात करते हुए उन्होंने कहा कि किसान श्रम-कार्य करेंगे तो सराकर उनकी सहायता अवश्य करेगी। उन्होंने बताया कि राज्य में अकाल परिस्थति को रोकने के लिए सरकार एक व्यापक योजना तैयार कर रही है। कन्नड़ भाषा और संस्कृति के विकास के ध्येय को पूरा करने के वे प्रयत्न करते रहे। 05-9-1963 को विधानसभा में उन्होंने यह विचार अधिकृत भाषा से संबंधित मसौदे के बारे में इस प्रकार कहा। दावणगेरे में बात करते हुए जब उन्होंने घोषणा की कि ''राज्य में नए उद्योगों की स्थापना के लिए सरकार सहायता देगी तो, औद्योगिक व कृषि विकास – दोनों एक दूसरे के पूरक हैं'' –उनका यह विचार और दृढ़ हो गया। इसीबीच उनकी सरकार के विरुद्ध अविश्वास निर्णय मंडन की तैयारी विरोधी दल करने लगे। इसके बारे में चर्चा करने, 05-10-1963 को विधानसभा मान गई। 07-10-1963 को निर्णय का मंडन करते हुए विरोधी दल के नायक एस. शिवप्पाजी ने भ्रष्टाचार के आरोप पर शरावती योजना को केंद्रित कर, सरकार पर प्रहार किया। उनका अन्य आरोपों में प्रमुख रूप से, खादी मंडली के खर्चे थे। अविश्वास निर्णय विफल हो गया। केवल चार मत निर्णय के पक्ष में थे तो 115 मत विरोध में थे। बेलगांव में हनुमंतय्याजी ने 'नाडहब्ब' (प्रादेशिक त्यौहार) के समारंभ में भाषण देते हुए, कहा कि राज्य नायकत्व के छिद्र होने के बारे में चिन्तन किया जाय। उन्होंने कहा कि कन्नड़ लोगों के सभी क्षेत्रों में पिछडे रहने का कारण उनकी अनैकता और ईर्ष्या भाव है। शायद उनके मन में भी भावना थी कि वे भी इस परिस्थिति के भागी हैं।

1नवंबर 1963 को राज्योत्सव का संदेश देते हुए निजलिंगप्पाजी ने जनता से बिनती की कि देश की रक्षा के लिए बद्ध कर्नाटक को, देश के प्रथम दर्जे

का राज्य बनाने में उसकी सरकार की सहायता करे। ऐसे शुभ संदर्भ में भी वे शरावती के मिथ्यारोप से दूर नहीं रहे। शरावती योजना के बारे में, न्यायिक जाँच के असंभव होने के बारे में,उन्होंने पत्रकारों के सामने दृढ़ रहते हुए कहा कि सरकार, योजना के बारे में एक श्वेतपत्र प्रकाशित करने के लिए भी तैयार है और उसमें सारे विवरण होंगे। स्वतः उस विषय का अध्ययन करने के कारण, उन्हें इस जाँच की आवश्यकता नहीं लगी। उन्होंने शिकायत की कि यह आलोचना करनेवाले राजकीय प्रेरित हैं, उन्हें वास्तव का ज्ञान नहीं है। इस संदर्भ में पत्रकारों को उन्होंने बताया कि अगले वर्ष में शरावती योजना के लिए बाईस करोड रुपयों की सहायता देने की बिनती उन्होंने केंद्र सरकार से की। सरकार की कर नीति के बारे में उन्होंने बताया कि अभी जनता पर कर का बोझ अधिक होने के कारण अगले दो वर्षों तक कोई नया कर नहीं लगया जाएगा। 14-11-1963 को विधानसभा में उन्होंने फिर से प्रतिपादन किया कि, शरावती योजना के बारे में न्यायिक जाँच संभव नहीं है, उसके बारे में तीन हफ्तों में एक स्वेतपत्र प्रकाशित करने को सरकार तैयार है। परंतु, 19-12-1963 को धारवाड में पत्रकार सम्मेलन में अपने भाषण में दबाव डाला कि सार्वजनिकों के प्रबल रूप से जोर देने के कारण शरावती योजना की जाँच होनी ही चाहिए। संयोग से उसके दूसरे ही दिन, धारवाड में सार्वजनिक सभा में निजलिंगप्पाजी ने मज़ाक में कहा कि, शरावती के बारे में आलोचना करनेवाले अतृप्त राजकीय विरोधी ही हैं। उन्होंने पुनः कहा कि कांग्रेस मात्र को ही देश को विकास के पथ पर आगे ले जाने का कार्य सुसंभव है। मुख्यमंत्री ने अगले दो वर्ष तक नये कर नहीं लगाने की बात कहने पर भी 31-12-1963 को विधानसभा द्वारा अंगीकृत एक मसौदे में विकास कर और तालाबों व जलाशयों के पानी का उपयोग करनेवाले किसानों पर पानी का 'कर' लगाने का प्रस्ताव था।

04-01-1964 की रात सरकार को शांति-सुव्यवस्था की समस्या का सामना करना पड़ा। आधुनिक मुक्त तथा प्रजासत्तात्मक व्यवस्था की यह एक सामान्य परिस्थिति है। बेंगलूर परिवहन के नौकरों ने 'बंद' (हडताल) किया था। इस कारण सिटीमार्केट के पास भीड़ जमा हो ही गई थी। पुलिस के अनुसार भीड़ के बुरे बर्ताव के कारण, गोलीबार की परिस्थिति हुई। परिणामस्वरूप एक व्यक्ति मारा गया और एक गंभीर रूप से घायल हुआ।बार-बार होनेवाली शांति-सुव्यवस्था की समस्या के साथ, भ्रष्टाचार भी सामान्य रहा। परंतु उसका सामना

करने का, मुख्यमंत्री ने दृढ़ संकल्प किया था। भ्रष्टाचार पर नज़र रखकर, उसका नियंत्रण करने के लिए एक आयोग की रचना के बारे में सरकार सोच रही थी। अध्यक्ष कामराज नाडारजी ने फिर से निजलिंगप्पाजी को कांग्रेस कार्यकारी समिति का सदस्य बनाया; जो उनके राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान होने का प्रतीक था। कालेज के फीस को बढ़ाने के कारण, पुराने मैसूर प्रदेश में 33 दिनों का सुदीर्घ काल तक विद्यार्थी आंदोलन चला तो, शांति-सुव्यवस्था के नष्ट होने की हालत पैदा हो गई। उसका अध्ययन करने के लिए निजलिंगप्पाजी ने एक समिति की रचना करने के बारे में कहा और उसे सफलतापूर्वक निभाया तो, 15-01-1964 को आंदोलन समाप्त हो गया। भ्रष्टाचार के विरुद्ध अपने संघर्ष के रूप में उन्होंने विधानसौध के नौकरों का सम्मेलन किया और वहाँ उन्होंने सूचना दी कि रिश्वतखोरी एवं असमर्थता के लिए नौकरशाही को सजा देने के लिए आवश्यक कानून में सुधार करना होगा। सार्वजनिक क्षेत्रों के भ्रष्टाचार का सामना करने व भ्रष्ट अधिकारियों की जाँच करने के लिए 'एक सदस्य जागृत आयुक्त' की रचना द्वारा, राष्ट्र स्तर पर एक लड़ाई ही छेडी गयी। मैसूर उच्चन्यायालय के निवृत्त मुख्य न्यायाधीश निट्टूर श्रीनिवासराव जी, उसके प्रथम आयुक्त नियुक्त हुए।

निजलिंगप्पाजी के राजकीय शत्रु, विरोधी दल के नायक टी. सुब्रह्मण्य जी ने मैसूर में सार्वजनिक भाषण में घोषणा की कि सत्ताधारी कांग्रेस के विरुद्ध पर्याय कांग्रेस को प्रारंभ करेंगे। इस सभा में एस. चेन्नय्याजी, एच.एम. चेन्नबसप्पाजी ने भी भाषण दिया। उन्होंने आरोप सगाया कि आजकल कांग्रेस बहुत गंदी हो रही है। के. हनुमंतय्याजी ने कहा कि आनेवाले चुनावों में कांग्रेस की गंदगी दूर हो जाएगी। उन्होंने कहा कि नए व नए रक्त की नयी पीढ़ी के नायकत्व की आवश्यकता है, और उन्होंने सूचित किया कि नेहरूजी अधिकार त्यागकर सरकार के सलाहकार का कार्य निर्वाह करते हुए उदाहरण बनें। उन्होंने राज्य राजनीति में अपने पात्र के बारे में बताया कि उन्होंने उसके बारे में, स्पष्टिकरण किया है। इसलिए नए पक्ष रचना के उद्देश्यवाले सुब्रह्मण्य जैसों की सभा में नहीं आए। यह भी कहा कि निजलिंगप्पाजी के नायकत्व के बारे में अतृप्ति है, परंतु उस अतृप्ति का स्वरूप अभी स्पष्ट नहीं हुआ है। सारांश में आतुरता का निर्णय न लेते हुए, चालाकी दिखाई। धारवाड में, 02-01-1964 को राज्य सहकारी संघों को संबोधित करते हुए निजलिंगप्पाजी ने निर्णय किया

कि गरीबी, अज्ञान, बेरोजगारी और खिन्नता-हताश भाव ही भारत की समस्यायें हैं। शोषणरहित, भारत के नव समाज निर्माण के लिए सहकार-संघों का मार्ग ही सही है। उनके सहकर्मी सहकार मंत्री रामकृष्ण हेगडेजी ने जागृत किया कि सहकार संघों पर सरकार का नियंत्रण कम होना चाहिए, परंतु नियंत्रणरहित होना खतरनाक है। एक छोट-सी दुर्घटना के कारण, निजलिंगप्पाजी को निरंतर कार्यो से विश्राम मिला। 15-02-1964 को स्नान करते हुए फिसलकर गिरने के कारण उनके बाँए हाथ पर चोट लगी। अगले दस दिन के उनके कार्यक्रम रद्द हो गए। परंतु, उससे पहले ही अपने कार्य शुरू करते हुए, राज्य विकास मंडल की सभा में अपने वक्तव्य में सलाह दी कि अगले 15-20 वर्षों की अवधि के लिए विकास की नील नक्शा (blue-print) की रचना की जाय। राज्य कांग्रेस के अन्दरूनी झगडे ने, अपनी बलि ले ली। एम्.पी.सी.सी. ने अनिवार्य रूप से निर्णय लिया कि अपने स्थापकों में एक टी. सुब्रह्मण्यजी को पक्ष से निकाल दिया जाए। उस सभा की अध्यक्षता कांग्रेस अध्यक्ष मोहम्मद अली जी ने की थी। निजलिंगप्पाजी भी उसमें हाजिर थे। यह भी निर्णय किया गया कि अगली सभा में, एच.एम. चेन्नबसप्पाजी को निकाल दिया जाएगा।

02-3-1964 को जत्तीजी ने 1964-65 वर्ष के बजेट का मंडन किया। कोई नया कर नहीं लगाया गया था। और कमी को भी दूर किया गया था। वास्तव में, उसमें सात लाख रुपयों की बचत ही दिखाई गयी थी। इसी बीच श्री जयचामराजेंद्र ओडोयर जी को मद्रास राज्यपाल के रूप में भेजा गया। उनके स्थान पर जनरल श्री नागेशजी आए। अपने वचन के अनुसार 09-3-1964 को शरावती योजना के बारे में एक स्वेतपत्र का सरकार ने विधानसभा में मंडन किया। परंतु उससे आलोचक तृप्त नहीं हुए। उदाहरण के लिए कांग्रेस के निजलिंगप्पाजी के राजकीय दुश्मनों में एक अण्णाराव गणमुखी जी बरस पड़े कि ''योजना में काफी धन का अपव्यय होने के बारे में, श्वेतपत्र में ही सूचित हुआ है और शायद कंट्राक्टर ही योजना का निर्वहण कर रहे हैं।'' उन्होंने कहा कि सरकार व कंट्राक्टर दोनों ने मिलकर सार्वजनिक धन को लूटा है। एक और आलोचक जी. दुग्गप्पाजी ने सरकार पर बरसते हुए, व्यंग्य से वर्णन किया कि ''मुख्यमंत्री जी ने अपने ही जिले में अंधाधुंधा शासन किया है और वह बढ़ता ही जा रहा है।'' गणमुखीजी ने एक और आरोप पक्षपात का किया। वह था कि ''बिना समर्थन के, कंट्राक्टर रामय्याजी को 13 लाख रुपए देकर

उसी परिस्थिति के बाकी कंट्राक्टर बोरय्या व बसवराजय्या को निराकरण करते हुए सरकार ने पक्षपात दिखाया है।'' परंतु केंद्र सींचाई मंत्री के.एल. रावजी ने निजलिंगप्पाजी का समर्थन किया। उनका अभिप्राय था कि इसके बारे में किसी जाँच की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि राज्य सरकार ने खुद भ्रष्टाचार का तृप्तिकर परिशीलन किया है।

12-3-1964 को अपने आपको कांग्रेस सदाचार समिति कहलाते हुए, एक मंच ने शरावती योजना के श्वेतपत्र पर आधारित एक विमर्श को प्रकाशित किया। उस मंच का प्रतिपादन था कि ''योजना के बारे में हुए धन के अव्यवहार और अवैधिकता की सूचना, उस श्वेतपत्र में ही है। इसकारण न्यायिक जाँच की आवश्यकता है।'' मंच के वक्ता कहलानेवाले, एच.एम. चेन्नबसप्पाजी ने इस वक्तव्य को पत्रिकाओं में छपवाया। पत्रकार सम्मेलन में निजलिंगप्पाजी के सभी विरोधी हाज़िर थे। उनमें एस. चेन्नय्याजी, गणमुखीजी, मालीमरियप्पाजी और ए.जी. रामचन्द्रराव भी थे। विधानसभा के पक्षेतर सद्स्य सी.जे. मुक्कण्णप्पाजी ने 13-3-1964 को अपने पुराने तर्क का मंडन करते हुए कहा कि सरकार ने पुराने मैसूर की उपेक्षा की है इसलिए राज्य के दो भाग करना चाहिए। आज वही राग, पुराने मैसूरेतर भागवाले आलाप कर रहे हैं। 17-3-1964 को विरोधी दल के नायक एस. शिवप्पाजी ने विधानसभा में, निजलिंगप्पाजी की अस्वस्थता का उल्लेख किया और आग्रह किया कि उनके ठीक होने तक, मुख्यमंत्री की जिम्मेदारी किसी दूसरे को दे दे। पुराने मैसूर भाग के साथ अन्याय होने के तर्क को 17-3-1964 को वीरेंद्र पाटीलजी ने नकार दिया। मुंबई कर्नाटक के एकीकरण के नेता अन्नदायप्पा दोडमेटीजी ने राज्य विभाजन के बारे में मुक्कण्णप्पाजी की बात की आलोचना की। ''सींचाई योजनाओं के लिए करोडों रुपयों का खर्च करने पर भी, लोगों को इसका कोई उपयोग नहीं हुआ है '' – इस आलोचना के बारे में निजलिंगप्पाजी के कही बातों का जत्तीजी ने विधान परिषद् में पुनरुच्चारण किया। नयी सींचाई योजनाओं को प्रारंभ करने की मुश्किलों का विवरण दिया। स्वस्थ होकर आये, निजलिंगप्पाजी ने 25-3-1964 को विधान सभा में कहा कि आलमट्टी बाँध को अधूरा नहीं छोडेंगे। इसलिए उसके लिए सत्याग्रह करनेवालों से उन्होंने बिनती की कि सत्याग्रह को समाप्त करे। 25-3-1964 को निजलिंगप्पाजी ने कहा कि लोगों व शासकों को मिलकर, समृद्ध कर्नाटक के निर्माण के लिए परिश्रम करना चाहिए। उन्होंने राज्य विभाजन

की सलाह को पागलपन कहा। राज्य के न्याययुत हकों के लिए संघर्ष करने के लिए तैयार होकर भी निजलिंगप्पाजी ने पडोसी राज्यों के साथ सहयोग करने का सकारात्मक विचार रखा था। इसका एक निदर्शन है कि शरावती योजना से गोवा को 50,000 k.v. (किलोवाट) बिजली दी गई। गोवा के लेफ्टनेंट गवर्नर एम.आर. सचदेवजी ने इसके लिए निजलिंगप्पाजी को कृतज्ञता ज्ञापन की। कृषि विकास के अपने प्रयत्नों को बढ़ाते हुए, बेंगलूर के पास हेब्बाळ में कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना करने का निर्धार सरकार ने किया।

अपने प्रतिस्पर्धियों से अधिकार छीनने में असफल भिन्नमतीय कांग्रेस नायकों ने तार्किक निर्धार लिया। उन्होंने कांग्रेस त्यागकर, नए पक्ष की रचना का निश्चय किया। नया पक्ष चेन्नय्याजी, सुब्रह्मण्यजी और उनके समर्थकों द्वारा पंचायति और तालूक बोर्ड चुनावों में स्पर्धा करने अनुकूल होने के लिए 1965 को जनवरी अथवा फरवरी में प्रारंभ करने के बारे में पत्रिका में घोषित किया। इसके लिए भिन्नमतीय कांग्रेसवालों ने बताया कि शीघ्र ही बेंगलूर में सम्मेलन होगा। उनकी प्रमुख शिकायत थी कि मैसूर कांग्रेस और मैसूर सरकार निजिलंगप्पाजी के समर्थकों को ही मौका देती हैं। इस विषय को पार्टी के वरिष्ठों विशेष रूप से, अध्यक्ष कामराजजी के सामने रखने का निश्चय किया। त्रिवेंद्रम् में हुई 12-5-1964 की दक्षिणवलय मंडली की सभा में अपने भ्रष्टाचार विरोधी विचार के अनुसार, निजलिंगप्पाजी ने बताया कि देश के 'जागृत आयोग' के जैसे, राज्य जागृत आयोग की रचना शीघ्र ही करेंगे। 15 करोड़ 42 लाख रुपयों को खर्च कर निर्मित मंगलूर के सर्वऋतु बंदरगाह का 18-5-1964 को कामराजजी द्वारा उद्घाटन हुआ; यह निजलिंगप्पा सरकार का मुकुटप्राय था।

सत्रह वर्षों तक देश के प्रधानमंत्री होकर, नेहरूजी का देहली में 27-5-1964 को निधन हुआ। वे इतिहास में मिल गये। यह एक राष्ट्रीय आपदा ही था। उस दिन सवेरे अचानक अस्वस्थ होकर, दुपहर 2 बचे उनका देहांत हो गया। नेहरूजी का निधन, देश के प्रजातंत्र और राष्ट्रीयता के लिए एक अग्निपरीक्षा ही थी। कई संशयग्रस्त लोग पूछने लगे कि नेहरूजी के बाद कौन, कैसे वह स्थान कौन लेगा? विदेश में कई लोग भयग्रस्त हुए कि देश में राजकीय अस्थिरता हो सकती है, तो कई लोग आशा करते रहे कि ऐसा ही हो। परंतु भारत की उदारवादी प्रजासत्तात्मक व्यवस्था, मुश्किलों का सामना करते हुए ही, प्रबुद्ध रूप में आगे आई थी। इसकारण नायकत्व के सवाल का सामना

करने की दृढ़ता भी रखती थी। नेहरूजी के उत्तराधिकारी को चुनने में, कामराज जी ने महत्वपूर्ण पात्र निभाया। लालबहादुर शास्त्री जी देश के दूसरे प्रधानमंत्री बने। 09-6-1964 को उन्होंने प्रधानमंत्री के रूप में शपथ लिया। उनके मंत्रिमंडल में पूराने मंत्रिमंडल के सदस्यों के साथ दो नए सदस्य शामिल हुए – वे थे संजीवरेड्डी जी और इंदिरा गाँधीजी। कामराज योजना से मंत्रिमंडल से अलग हुए एस.के. पाटीलजी को फिर मंत्रिमंडल में लिया गया। केंद्र में हुए बदलाव से निजलिंगप्पाजी और केंद्र के संबंध में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। जो भी हुआ, वह यह कि अब निजलिंगप्पाजी और नेहरू जी के बीच की समस्याएँ दूर होकर संबंध और भी उत्तम होगया।

राज्य के अनेक भागों में अकाल आ पड़ा। आहार की तीव्र कमी को दूर करने, राज्य ने केंद्र से सहायता माँगी। 50,000 टन चावल और 50,000 टन गेहूँ की माँग, मैसूर सरकार ने 19-6-1964 को पेश की। उस समय निजलिंगप्पा सरकार के सामने आहार की कमी व आर्थिक मुश्किल की समस्याएँ थीं। निजलिंगप्पाजी ने विधान परिषद् में बताया कि सींचाई योजनाओं पर विकास 'कर' के 'उपकर' को शीघ्र ही लागू करेंगे। व्यापारी जन दाम बढ़ाने व सामानों छिपाकर रखने के द्वारा आहार की कमी के संदर्भ का दुरुपयोग कर रहे थे। व्यापारियों पर कठिन कारवाई करने पीछे न हटने का निर्णय घोषित करते हुए निजलिंगप्पाजी ने चेतावनी दी। ''ऐसी आहार की कमी की हालत में कृषिवलय की अनुकूलता के उद्देश्य से राजस्व भूमि पर 'उपकर' नहीं लगाया जाएगा'' इसकी घोषणा निजलिंगप्पाजी ने विधानसभा में की। व्यापारियों को दिए चेतावनी के निर्णय के अनुसार सरकार ने कठिन कारवाई अपनाई। दुरुपयोग करनेवाली दूकानों की चीनी वितरण की अनुमति को रद्द करते हुए, अपने निर्णय को कार्यरूप दिया। इन समस्याओं के अलावा, सरकार के विरोधी दल के भिन्नमतियों तथा कांग्रेसेतर विरोधी पक्षवालों की आलोचनाओं की रोज की समस्याओं का भी निजलिंगप्पाजी को सामना करना था। ''शरावती योजना तीव्रगति से आगे बढ़ने के कारण उस विषय पर न्यायिक अथवा कोई और जाँच की आवश्यकता नहीं है'' – इस प्रकार 15-7-1964 को विधानसभा में उन्होंने फिर से कहा। कांग्रेस सत्ताधारी पक्ष के दस सदस्यों ने निजलिंगप्पाजी और उनके कुछ सहोद्योगियों के विरुद्ध भ्रष्टाचार, घूसखोरी तथा अधिकार के दुरुपयोग के बारे में आरोप लगाया। उनके विरुद्ध 24 प्रसंगों के आरोपों को कांग्रेस अध्यक्ष कामराज जी

पूर्व राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन् और पूर्व राज्यपाल श्री जयचामराजेन्द्र ओडेयर के साथ निजलिंगप्पाजी

प्रधानमंत्री लालबहादुर शस्त्रीजी और गृहमंत्री गुलजारीलाल नंदाजी को पेश किया और इसकी जाँच के लिए जोर डाला। संयुक्त समाजवाजी पार्टी के नायक एच.वी. कामत जी ने बेंगलूर में 23-8-1964 के पत्रकार सम्मेलन में इसका समर्थन किया। उन्होंने घोषणा की कि यदि राज्य सरकार शरावती योजना के बारे में जाँच आयोग को नहीं बनाती तो उसके बारे में संसद में वे प्रश्न करेंगे। उन्होंने आश्चर्य व्यक्त किया कि केवल दो करोड़ खर्च करने पर, विधान सौध के निर्माण के बारे में जाँच करनेवाले, निजलिंगप्पाजी 100 करोड की योजना के बारे में क्यों आगेपीछे देख रहे हैं। परंतु निजलिंगप्पाजी ने अपना निर्धार नहीं बदला। 26-7-1964 को पत्रकार सम्मेलन में उन्होंने कहा कि दस शासक उनके और उनके सहोद्योगियों की जाँच कर रहे हैं। उन्होंने कहा सभी आरोपों का परिशीलन नहीं होने पर भी, अब तक की गई जाँच से विश्वास हो गया है कि सभी आरोप आधार रहित है और राजकीय प्रेरित है। उनके सहकर्मी कृष्णप्पाजी ने भी आरोपों को नकारा।

सीमाविवाद निजलिंगप्पाजी की सरकार को बहुत तंग कर रहा था, विशेष रूप से महाराष्ट्र के साथ। महाराष्ट्र के उत्साह के कारण 10-8-1964 को गृहमंत्री नंदाजी ने सीमविवाद की चर्चा के लिए निजलिंगप्पाजी और महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री वी.पी. नायकजी के बीच सभा का आयोजन किया था। करीब आठ घंटों तक चर्चा हुई। सभा के बाद पत्रकारों से बात करते हुए निजलिंगप्पाजी ने कहा कि एक दूसरे को समझने में इससे बहुत सहायता मिली है। नंदाजी ने कहा कि इस सभा के परिणाम के बारे में, वे प्रधानमंत्री जी को रिपोर्ट देंगे। इसी बीच कॉलेज फीस को बढ़ाने के विरोध में आंदोलन के कारण राज्य में कानून सुव्यवस्था की समस्या सामने आई। विद्यार्थी-आंदोलन को दबाने के लिए राज्य में 144 वीं विधि को जारी किया गया। सरकार इसमें प्रवेश नहीं कर सकी। परंतु फीस को थोडा कम करने के लिए उसने कालेजों के अनुदान को बढ़ाने का निश्चय किया। कर्नाटक विश्वविद्यालय के कालेजों के प्रिन्सिपल और प्रशासनिक मंडल के सदस्यों की सभा में, निजलिंगप्पाजी ने उक्त विषय को बताया। इसके परिणामस्वरूप उस प्रदेश के उपवास सत्याग्रह कर रहे छः विद्यार्थियों ने 28-8-1964 को रात 9 बजे, अपना आंदोलन समाप्त किया। परंतु 06-9-1964 को पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ कि मंडल ने फीस कम किया है। निजलिंगप्पाजी ने विद्यार्थियों से बिनती की कि वे आंदोलन समाप्त

करें। उत्तर कर्नाटक के कालेजों में कला और विज्ञान विभाग का 144 रुपयों का वार्षिक शुल्क था, वाणिज्य विभाग का 160 रुपये।

रिपोर्ट हुआ कि निजलिंगप्पाजी का अपने व अपने सह-मंत्रियों के बारे में विचार बदल गए हैं। उन्होंने वरिष्ठों से कहा कि वे अपने विरुद्ध कांग्रेस शासकों के आरोपों का सामना करने के लिए तैयार हैं। संसदीय मंडल का अभिप्राय था कि सरकार को सुगम रूप से प्रशासन चलाने के लिए ऐसी जाँच सहायक होगी। वरिष्ठ मंडली की आलोचना की प्रक्रिया यह थी कि पहले प्रधानमंत्री जी इसका परिशीलन करें, यदि उन्हें लगे कि उसमें सत्यांश है तो फिर सरकार एक जाँच आयोग की रचना करेगी। पंजाब के मुख्यमंत्री प्रतापसिंह कैरोंजी के विरुद्ध जब भ्रष्टाचार का आरोप लगाया गया था, तब वरिष्ठ मंडली ने इसी क्रम को अपनाया था। निजलिंगप्पाजी ने कहा कि वे इस जाँच का स्वागत करेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि आरोप बहुत ही तुच्छ होने के कारण, उनका वैयक्तिक अभिप्राय है कि जाँच की कोई आवश्यकता नहीं है। उसके बाद पत्रकार सम्मेलन में उन्होंने कहा कि उनके विरुद्ध भिन्नमतियों द्वारा किए गए आरोपों के बारे में अभी उन्होंने कोई विवरण नहीं दिया है, जल्द ही गृहमंत्री को उसे वे भेज देंगे। गुटबंदियों और मुख्यमंत्री के बीच के झगड़े के साथ एक और विषय शामिल हुआ वह था, पार्टी का संगठन और पार्टी और सरकार के बीच का संघर्ष। इसका परिशीलन करने के लिए एम.पी.सी.सी. ने एक समन्वय समिति की रचना की थी। 11-11-964 को हुई समिति की एक सभा में, निजलिंगप्पाजी और संसदीय मंडल के प्रतिनिधियों ने निर्णय लिया कि प्रमुख शासननीति और उनसे संबंधित शासन तथा उनके अनुष्ठान के बारे में एम.पी.सी.सी. को मार्गदर्शन देने का मौका होना चाहिए। जि.एल. नंदाजी ने 27-11-1964 को राज्यसभा में बताया कि निजलिंगप्पाजी ने अपने बारे में किए गए आरोपों का विवरण भेजा है। कर्नाटक के एक कांग्रेस लोकसभा सदस्य सी.आर. बसप्पाजी ने देहली में बताया कि निजलिंगप्पाजी के विरुद्ध किए गए आरोपों में यदि सच्चाई हो तो वे संसद सदस्यता से इस्तीफा देंगे। मैसूर के विरोधी दल के शासकों के एक आयोग ने एस. शिवप्पाजी के नेतृत्व में राष्ट्रपति राधाकृष्णन् जी से मिलकर, भ्रष्टाचार, पक्षपात और आरोपों के बारे में शासनात्मक जाँचों के विरुद्ध एक बिनती समर्पित की। उस बिनती पर 42 शासकों ने हस्ताक्षर किए थे। बेंगलूर में गुटबंद नायक

एस. चेन्नय्याजी ने 26-12-1964 को अपने भाषण में कहा कि निजलिंगप्पाजी और उनके सहकर्मियों के विरुद्ध किए गए आरोपों के बारे में केंद्र मंत्रिमंडल की एक उपसमिति परिशीलन करेगी, उसके सामने आरोप का जवाब देंगे।

राज्य के आर्थिक विकास में सहायता देने के किए निजलिंगप्पाजी और एम्.पी.सी.सी. ने बिनती की। जनवरी 1965 को निजलिंगप्पाजी ने केंद्र से राज्य के रेलवे सहूलियतों को बढ़ाने और मैसूर में पाँचवें इस्पात कारखाना स्थापित करने की अनुमति देने के लिए बिनती की। दुर्गापुर में हुए 69 वें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अधिवेशन में लिए गए निर्णय में, कृषि और ग्रामीण विकास के ध्येय का पृथक्करण को बदलने के विचार को बताया गया। ध्यान देने योग्य बात यह है कि कृषि और ग्रामीण विकास का यह ध्येय निजलिंगप्पाजी के पहले से प्रतिपादित विषय ही थे। भिन्नमतीय और विरोध पक्ष के सदस्यों ने मिलकर जो 'अखिल भ्रष्टाचार विरोधी संगठन' नामक राष्ट्र स्तर पर रचना की गयी संस्था ने जोर डाला कि निजलिंगप्पाजी और उनके सहकर्मियों के विरुद्ध किए गए आरोपों की न्यायिक जाँच की जाए। उस संस्था के सचिव ए.डी. मणीजी ने बेंगलूर में बताया कि "इस स्तर पर यदि शरावती योजना की जाँच होगी तो उसको दी गयी विदेशी मदद बंद हो सकती है" इस तर्क को वे मानेंगे नहीं। विरोध पक्ष के नायक एस. शिवप्पाजी ने 18-01-1965 को निजलिंगप्पाजी के मंत्रिमण्डल के विरुद्ध विधानसभा में वाक् समर चलाते हुए आग्रह किया कि मंत्रिमण्डल ने लोगों के विश्वास को खो दिया है इसलिए, तुरंत इस्तीफा देकर, चुनाव का सामना करना चाहिए। इसके विरुद्ध गृहमंत्री आर.एम. पाटीलजी ने विरोधपक्ष पर जोरदार शब्दों का युद्ध बरसाया कि एस.एस.पी. सदस्य उन्हें मंत्रिमण्डल में स्थान न मिलने के कारण, अविश्वास निर्णय का मंडन करने का प्रयत्न कर रहे हैं। निजलिंगप्पाजी ने विधानसभा को बताया कि अपने पर किए गए आरोपों के बारे में उन्होंने एक मुख्यमंत्री की हैसियत से नहीं, बल्कि वैयक्तिक स्तर पर जवाब भेजा है। उन्होंने फिर से कहा कि आरोप जाँच के लिए योग्य नहीं है। प्रत्याशा के अनुसार, अविश्वास निर्णय हार गया। सरकार की तरफ 171 मत और निर्णय के पक्ष में 29 मत प्राप्त हुए। निजलिंगप्पाजी ने सदन को कहा कि उन्होंने कभी मंत्रिमंडल में स्थान नहीं मांगा था। अपनी राजनीतिक प्राणाणिकता और निर्मत्सरता का प्रदर्शन किया। इस बीच राज्यपाल, जनरल श्रीनागेशजी के स्थान पर वी.वी. गिरिजी राज्यपाल बने।

टीकाओं से विचलित न होते हुए, शरावती योजना का कार्य आगे बढ़कर विद्युत उत्पादन के प्रथम स्तर का उद्घाटन केंद्र मंत्री श्री के.एल. रावजी द्वारा हुआ। 27-01-1965 को विधानसभा में, प्रश्नोत्तर समय में, बोलते हुए निजलिंगप्पाजी ने घोषित किया कि मंगळूर बंदरगाह के निर्माण के लिए अनेक राजनैतिक शक्तियों का विरोध है, फिर भी अपनी सरकार उसे कार्यगत करके ही रहेगी।अपने 62 वें जन्मदिन के समारोह में भाषण देते हुए 31-01-1965 को निजलिंगप्पाजी ने अपने आपको कांग्रेस का एक विनम्र सेवक बताया और कहा कि जब तक सामर्थ्य है, तब तक वे देश की उन्नति और पक्ष के विकास के लिए परिश्रम करेंगे।कामराजजी सभा के अध्यक्ष थे। आमंत्रित सज्जनों में निजलिंगप्पाजी के मित्र संजीवरेड्डी जी और अतुल्य घोषजी थे। हिन्दीतर प्रदेशों से आए हुए संजीव रेड्डी जी, निजलिंगप्पाजी और अतुल्य घोषजी ने कहा कि यदि उनके प्रदेशों में जबरदस्ती से हिन्दी भाषा को थोपा जाता है तो, देश की एकता भंग हो जाएगी।

गाँधीजी 'मद्य निषेध' नामक कार्यक्रम को पीछे छोड़कर गए थे। उसके लिए ऐतिहासिक व पारंपरिक तौर पर कांग्रेस बद्ध था। परंतु शासनात्मक व आर्थिक रूप से उसे जारी करना कठिन था। आदर्शवादी और वास्तववादी निजलिंगप्पाजी गाँधीवाद से भी बद्ध थे; उन्होंने 01-02-1965 को विधानसभा में बताया कि टेकचंद-समिति की सिफारिशों के आधार पर, मद्यनिरोध का पुनः परिशीलन होना चाहिए। उसी प्रकार हिन्दी भाषा के बारे में भी धीरे धीरे आगे बढ़ना चाहिए। उन्होंने केंद्र को सलाह दी कि हिन्दी में यू.पी.एस.सी. परीक्षा में उत्तर देने के बारे में और केंद्र से हिन्दी में व्यवहार करने के बारे में भी कम-से-कम पंद्रह वर्षों तक यथास्थिति ही रहनी चाहिए।

प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्रीजी ने 22-2-1965 को लोकसभा में बताया कि निजलिंगप्पाजी और उनके सहद्योगियों के विरुद्ध किए गए आरोपों के बारे में मंत्रिमंडल परिशीलन कर रहा है, इस कारण केंद्र की जाँच की आवश्यकता नहीं है। शरावती योजना में कहे जानेवाले भ्रष्टाचार व घूसखोरी के बारे में लिए गए इस निर्णय से, निजलिंगप्पाजी को तात्कालिक उपशमन मिला और योजना की प्रगति की तरफ ध्यान देने के लिए समय मिला। इस योजना का संपूर्ण खर्चा, देने के लिए मैसूर सरकार ने केंद्र से माँग रखी। परंतु संबंधित मंत्री के.एल. राव ने लोकसभा में कहा कि इसके लिए केंद्र नहीं मान सकता।

मैसूर के संसद सदस्य आर.जी. दुबेजी और सी.आर. बसप्पाजी ने प्रतिपादन किया कि योजना का कार्य अत्यंत कम खर्चे में किया गया है और यह बाकी राज्यों के भी अनुकूल होगा, इसलिए इस योजना का संपूर्ण खर्चा केंद्र को ही निभाना चाहिए। उसे किफायती योजना मानते हुए के.एल. रावजी ने स्पष्ट किया कि केंद्र उसे नहीं ले सकता है। उन्होंने कहा कि अबतक पचास करोड़ रुपये खर्च करनेवाली राज्य सरकार की ही, बाकी बाईस करोड़ रुपये खर्च करने की जिम्मेदारी है। परंतु सींचाई आवश्यकताओं के लिए राज्य सरकार केंद्र से मदद की इच्छा कर रही थी। नरगुंद में हुई किसान परिषद सभा के अध्यक्षपद से भाषण देते हुए निजलिंगप्पाजी ने आग्रह किया कि मैसूर राज्य, यहाँ की सींचाई सामर्थ्य के केवल 6% का ही उपयोग कर सका है; इसलिए, राज्य सींचाई सहूलियतों को बढ़ाने के लिए केंद्र सहायता करे।

सीमा विवाद के बारे में, निजलिंगप्पाजी और उनकी सरकार के सामने महाराष्ट्र से गोवा को शामिल करने की समस्या थी। मैसूर की सारी जनता उसके विरुद्ध थी। 15-3-1965 को मैसूर विधान-परिषद ने एक निर्णय लेते हुए, महाराष्ट्र से गोवा को शामिल करने के विचार का खंडन किया। शामिल करने की महाराष्ट्र की माँग को, पाप कहा गया। इससे पहले 12-3-1965 को गोवा विधानसभा के विरोध पक्ष ने शामिल करने के विचार का विरोध करनेवाले, निजलिंगप्पाजी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की थी। मैसूर विधानसभा ने 15-3-1965 को अपने निर्णय में, कहा कि गोवा में कम-से-कम, दस वर्ष तक यथास्थिति होनी चाहिए अथवा शामिल ही करना है तो अधिक हकवाले मैसूर में शामिल करना चाहिए। राज्य व राज्य सरकार जब अनेक समस्याओं का सामना कर रही थी तो भिन्नमतीय लोग, अपनी अगली योजनाओं के बारे में सिर खपा रहे थे। भविष्य की कार्ययोजना के बारे में, एक सभा करने के लिए 26-4-1965 को भिन्नमतीय कांग्रेसियों ने बताया । निजलिंगप्पाजी व उनके सहकर्मियों पर किए गए आरोपों को जब मंत्रिमण्डल उपसमिति ने निराधार कहकर निर्णय दिया तो, वे असंतुष्ट होगए। भूकर पर जब विधानसभा में 9-4-1965 को चर्चा हो रही थी, तभी विरोधपक्ष के नायकों ने अपना पहला अन्नसत्याग्रह किया। रिपोर्टों ने बताया कि इसके बारे में, सत्ताधारी पार्टी में ही मतभेद हैं। राज्य को एक प्रामाणिक, पारदर्शक और समर्थ प्रशासन देने के लिए भिन्नमतीय कांग्रेस नायकों ने, 28-4-1965 की सभा में, एक नयी पार्टी

की रचना करने का निर्णय लिया। इस सभा में भिन्नमतीय नायकों के अलावा विरोधी दल के कुछ लोगों, कुछ स्वतंत्र जनों ने भाग लिया था। सभा में टी. सुब्रह्मण्यजी ने महत्वपूर्ण पात्र निभाया। उसमें वीक्षक के रूप में केरल कांग्रेस नायक के.एम. जार्ज ने पाँच सहचरों के साथ भाग लिया था। इसके परिणाम स्वरूप मैसूर-राज्य नागरिकों की राजकीय सभा ने 29-4-1965 को नए पक्ष के ध्वज, नाम और ध्येयों के बारे में निर्णय लेने के लिए एक उपसमिति बनायी। उस उपसमिति में एस. चेन्नय्याजी, टी. सुब्रह्मण्यजी और अण्णाराव गणमुखी जी थे। अधिकाधिक प्रातिनिध्य देने के लिए और चार लोगों को लेने का अधिकार उपसमिति को दिया गया।

घोषित हो या अघोषित, अभी अभी पाकिस्तान और चीन के साथ हुए युद्धों के कारण, देश में रक्षाप्रज्ञा जागी है। रक्षा समस्याओं का सामना करने के लिए, मुख्यमंत्रियों की रक्षा-समिति की रचना करने में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इस समिति की एक सभा में भाग लेकर लौटने के बाद 08-5-1965 को निजलिंगप्पाजी ने बेंगलूर में, पत्रिकाओं को बताया कि रक्षा सामग्री और क्रमों के लिए हमारे देश को विदेशों पर निर्भर नहीं होना चाहिए। अपने राजकीय विरोधियों द्वारा बनाये गए, नए जनता पार्टी के बारे में प्रतिक्रिया देने से उन्होंने इनकार किया। परंतु उन्होंने कहा कि केवल पत्रिकाओं में उसके बारे में पढ़ा है। भारत के राज्यों के समान, अन्य राज्यों से आकर रहनेवाले लोगों की समस्या भी है। भारत में द्विपौरत्व पद्धति के न रहने पर भी, उसके राजकीय पर्याय, 'माटी के पुत्र' नाम की परिकल्पना आजकल प्रचलित हुई है। भाषा अल्पसंख्यक ज्यादा होने के राज्यों में मैसूर भी एक है। मैसूर की उदारता की परंपरा का पालन करनेवाले निजलिंगप्पाजी ने राज्य में, दूसरे राज्यों से आनेवालों का तथा अपनी अनन्यता की रक्षा करने का स्वागत किया। परंतु उन्होंने आशा की कि अन्य राज्यवाले राज्य के विकास में अपना योगदान दे। उन्होंने कारवार में हुए 45 वें कन्नड़ साहित्य सम्मेलन में जो यह बात कही, वह सांकेतिक थी। उन्होंने कहा कि केंद्र सरकार की आर्थिक मितव्यय की नीति के कारण राज्य को समस्याओं का सामना करना पड़ रहा। राज्य विकास मंडल में भाषण देते हुए उन्होंने वर्णन किया कि तीसरी योजना का फल प्रतीक्षा से कम प्राप्त हुआ है और इसका कारण है तीव्रतर आर्थिक समस्या। उन्होंने कहा कि "फिर भी उन्हें आर्थिक सहायता के लिए केंद्र से बिनती करनी है। मैसूर, गोवा आंध्र और

मदरास में चार इस्पात कारखानों की स्थापना करने के लिए और उससे विकास मूल के बारे में, अंतरराज्य झगडे कम होने के बारे में प्रधानमंत्रीजी को सलाह दी है।'' उन्होने कहा कि मैसूर में इस्पात कारखाने की स्थापना के लिए 'होसपेट' अत्यंत योग्य स्थान है। शरावती के दूसरे स्तर का उद्घाटन करते हुए, 20-6-1964 को निजलिंगप्पाजी ने जनता को आश्वासन दिया कि चौथी पंचवार्षिक योजना में 'काळी योजना' को शामिल किया जाएगा। राज्य की पांचवी पंचवार्षिक योजना के बारे में, पत्रिकाओं के सामने विवरण देते कहा कि वह 500 करोड़ रूपयों की विनम्र योजना है। उन्होंने कहा मैसूर संसाधनों की दृष्टि से समृद्ध होने पर भी, यहाँ का औद्योगिक विकास मंदगति से हो रहा है। उदाहरण के लिए असीम सिंचाई का सामर्थ्य होने पर भी, सिंचाई के लिए राज्य ने कम भूप्रमाण का उपयोग किया है, परंतु उनकी सरकार राज्य के विकास के लिए योग्य वातावरण का निर्माण कर रही है। पांचवें इस्पात करखाने की स्थापना का विषय, अंतरराज्य विवाद का विशेष रूप से मैसूर और आंध्र के बीच के विवाद का कारण बना है। आंग्लो-अमोरिकन विशेषज्ञों की मंडली ने अपने रिपोर्ट में पाँचवें इस्पात कारखाने के निर्माण के लिए विशाखपट्टण को योग्य कहकर सिफारिश की थी। अफवाह फैली थी कि मूल में जो 'होसपेट' का नाम था, उसे विशाखपट्टण के नाम से बदलनेवाले हैं। इससे इससे आश्चर्यचकित निजलिंगप्पाजी 'होसपेट' ही योग्य स्थान है कहकर अपना अभिप्राय जताते रहे। उन्होंने कहा कि यदि केंद्र अनुमति देता है तो, होसपेट में राज्य ही स्वयं इस्पात खारखाने की स्थापना करेगा। हैदराबाद में केंद्र के इस्पात मंत्री संजीवरेड्डीजी ने कहा कि चौथी योजना में केवल एक कारखाने की स्थापना का मौका होने पर भी, दूसरे यदि कोई कारखान स्थापित करना चाहते हैं तो, कर सकते हैं। इसकारण, आंध्र में कारखाना स्थापित होने के बारे में मैसूर, मदरास को चिंतित होने की आवश्यकता नहीं थी। पाँचवें इस्पात कारखाने की स्थापना न होने पर, होसपेट में 06-7-1965 को हड़ताल हुई।

महाराष्ट्र के दबाव में आकर, संसदीय मंडल ने गोवा विलीन के प्रश्न को दस वर्षो तक दूर रखने के अपने विचार को बदलकर, फिर से उसको सामने लाने का विचार किया तो, मैसूर के लिए यह एक सिरदर्द लगा। इसंसे गोवा के विरोधी दल के नायक, डॉ. सिक्वेरा भी चकित रह गए। विलीन की समस्या को बंदोड़कर जी से चर्चा करने के केंद्र के निर्णय का, मैसूर ने तीव्र रूप से

विरोध किया। पत्रिकाओं में छप गया कि इसके लिए निजलिंगप्पाजी की सरकार इस्तीफा देने भी संकोच नहीं करेगी। जब सचिव रामकृष्ण हेगडेजी ने केंद्र को औपचारिक रूप से बताया कि गोवा विलीन प्रश्न को फिर से आरंभ करने के लिए मैसूर का विरोध है तो प्रधानमंत्री जी ने बताया कि इसके बारे में संसदीय मंडल ने अभी कोई निर्णय नहीं लिया है। प्रधानमंत्री जी ने हेगडेजी को आश्वासन दिया कि इसके बारे में, वे अच्छी तरह से परिशीलन करेंगे। निजलिंगप्पाजी को चिंता यह थी कि केवल उनसे ही नहीं, महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री जी से भी इसके बारे में सलाह नहीं ली गयी है। इसके अलावा, गोवा के कांग्रेस अध्यक्ष, पुरुषोत्तम काकोडकर जी से भी नहीं पूछने की बात ने उन्हें चकित किया था। हुबळी में कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं से बात करते हुए निजलिंगप्पाजी ने इसके विवरण प्रकट करते हुए इस विषय के बारे में, जनमतगणना के लिए अपनी स्वीकृति की बात से इंकार किया।

निजलिंगप्पा विरोधी वलय में 31-7-1965 को, जनतापक्ष ने हुबळी में एक सभा करते हुए एस. चेन्नय्याजी को उसके प्रथम अध्यक्ष के रूप में चुना। साथ ही सत्रह लोगों की कार्यकारी समिति को भी चुना। उसमें टी. सुब्रह्मण्य, ए.जी. रामचंद्रराव, एन. राचय्या और बंडीगौडा आदि प्रमुख भिन्ननतीय नायक थे। केवल हनुमंतय्याजी बाहर रहनेवालों में स्पष्ट दिखाई देते थे। 04-8-1965 को निजलिंगप्पाजी की सरकार ने मद्यनिषेध के कानून को ढीला करते हुए चाहे कोई भी अनुमति, लेकर नियत प्रमाण में शराब (विदेशी) प्राप्त कर सकते हैं – इसप्रकार बदल कर अपने विचारों में बहुत बड़ा बदलाव प्रकट किया। सारे राज्य में शराब की दूकान खोलने के लिए सराकर ने अनुमति दे दी। प्रतीक्षा के अनुसार पुराने विचारों के हळ्ळीकेरी गुद्लेप्पाजी जैसे लोगों ने इस विचार को दुर्भाग्यपूर्ण कहा। शायद सरकार के सामनेवाली आर्थिक मुश्किल के कारण यह अनिवार्य था। हेगडे जी ने बताया कि चौथी योजना का सारा धन खत्म होकर, 1966-67 वें वर्ष के लिए केवल 47 करोड़ रुपये मिलेंगे; केंद्र से अधिक धन की प्रतीक्षा नहीं कर सकते। उदाहरण के लिए, आहार की कमी का सामना करने के लिए राज्य ने दस करोड़ रुपयों की सहायता माँगी तो, केंद्र ने एक ही करोड रुपए दे दिए। धैर्य न खोते हुए राज्य सरकार ने कहा कि 'अगले दो वर्षों में आहार के विषय में, वह स्वयंपूर्णता साधने की योजना तैयार करेगी।'

श्री रामकृष्ण हेगडे, श्री बी. डी. जत्ती और श्री आर. गुंडूराव के साथ डॉ. एस. निजलिंगप्पा जी

अखिल भारत कांग्रेस अधिवेशन में श्रीमती इंदिरा गांधी जी के साथ डॉ. एस. निजलिंगप्पा जी

मद्य-निषेध को छूट देने के कारण, पहली दुर्घटना यह हुई कि यशोधरा दासप्पा सरकार के निर्णय का विरोध करते हुए 27-12-1965 को इस्तीफा देकर मंत्रिमंडल से बाहर आ गई। मद्य-निषेध का विषय, पार्टी में समस्या का कारण बन गया। एम.पी.सी.सी. के अध्यक्ष मोहम्मद आली ने पत्रिकाओं को वक्तव्य दिया कि मद्य-निषेध के बारे में, सरकार के विचार की चर्चा करने एम.पी.सी.सी. की जल्दी ही सभा बुलाई जायेगी।

राष्ट्र को एक बहुत बड़ा आघात हुआ कि, 27-12-1965 को बड़े सवेरे 1-02 के समय, ताशकंद में प्रधानमंत्री लालबहादूर शास्त्री जी का निधन हुआ। इस प्रकार नए वर्ष का आरंभ आघात से हुआ। शायद दूसरी बार देश ने नायकत्व की समस्या को दूर करते हुए, दो वर्षों से भी कम अवधि में दूसरी बार जी.एल. नंदाजी काम चलाऊ प्रधानमंत्री के रूप में चुने गए। राज्य में मद्य निषेध के विचार की विरोध पक्षों ने आलोचना की। उनमें, जनसंघ के नायक जगन्नाथराव जोशी जी ने कहा कि कांग्रेस के सामने कोई तत्व ही नहीं है। देश के स्तर पर, प्रधानमंत्री पद की स्पर्धा, मोरारजी देसाई और इंदिरा गाँधी तक सीमित रही। निजलिंगप्पाजी आगे चलकर अपनी गलती के लिए विषाद से भर गए। उन्होंने इंदिराजी का समर्थन किया और उसका कारण, उन्होंने प्रधानमंत्री पद के चुनाव के दिन 18-01-1966 को बताया, – मैसूर के एम.पी.सी.सी. लोगों से वे बात कर रहे थे उन्होंने नंदा, चौहान और कामराज के नामों का भी परिशीलन किया। अंत में सभी मुख्यमंत्री इंदिरा जी की ओर झुके। मैसूर के संसद सदस्य हनुमंतय्याजी ने पूछा कि यदि मोरारजी नहीं चाहिए और इंदिराजी योग्य नहीं हैं तो तीसरे किसी और व्यक्ति के बारे में क्यों न सोचे? कुछ मैसूर के सदस्यों का अभिप्राय था कि देश की समस्याओं को निभाने का अनुभव न होने के कारण यदि इंदिराजी नहीं चाहिए, तो अधिक अनुभवी मोरारजी देसाई जी ही उत्तम अभ्यर्थी हैं। जो इंदिराजी को बनाना चाहते थे, कारण नहीं बताया हनुमंतय्या ने, अंदर की हकीकत बतादी। मैसूर सदस्यों में आधी-संख्या के सदस्य मात्र सभा में थे बाकी गाँव से बाहर गए थे। 18-01-1966 को निजलिंगप्पाजी ने बताया कि एक को छोड़कर, बाकी सभी ने इंदिराजी का समर्थन किया। उस एक व्यक्ति का नाम नहीं बताया। कोई भी अंदाजा लगा सकते थे कि वह व्यक्ति हनुमंतय्या ही थे।

इंदिराजी भारत के तीसरे प्रधानमंत्री के रूप में 19-01-1966 को चुनी गई। उन्हें 335 मत प्राप्त हुए तो मोरारजी को 196 मत मिले। 19-01-1966

के सबेरे 11-05 को कामराज जी की अध्यक्षता में, कांग्रेस संसदीय पक्ष की सभा हुई। जी.एल. नंदाजी ने इंदिराजी का नाम सूचित किया और संजीवरेड्डी जी ने उसका समर्थन किया। हनुमंतय्या ने मोरारजी का नाम सूचित किया, तुकाराम पालीवाल ने समर्थन किया। दोनों स्पर्धियों ने अपना मत नहीं चलाया; दो मत बेकार रहे; कुल 551 सदस्यों में 526 सदस्य हाज़िर थे। राज्यसभा के सदस्य इंदिरा गाँधी जी को तांत्रिक रूप से अर्हता प्राप्त थी; परंतु राजनीतिक पद्धति के अनुसार, प्रधानमंत्री बनने वाले व्यक्ति को लोकसभा का सदस्य होना होता है। उनके चुने जाने के बाद कामराज जी ने, पत्रिकाओं से बात करते हुए आशा व्यक्त की कि वे अत्युत्तम शासन निभायेंगी और उनका विचार ही कांग्रेस पक्ष का विचार होगा। अर्थात् विचार मध्य का होगा, न बायाँ न दाहिना। इस परिस्थिति से तृप्त न होते हुए हनुमंतय्या जी ने 21-01-1966 को चंडीगढ़ में कहा कि 'प्रबल हितासक्तियों ने पक्ष के प्रजासत्तात्मक भिन्नाभिप्राय का दमन कर दिया है।'

शास्त्री-मंत्रिमण्डल के बहुत-से सदस्यों के साथ इंदिराजी ने तीन नए व्यक्तियों को शामिल कर लिया – वे थे अशोक मेहता, जी.एस. पाठक और फकरुद्दीन अली अहमद। पिछले मंत्रिमण्डल के दो सदस्यों को छोड़ दिया गया – वे थे - ए.के. सेन और हुमायूं कबीर। जगजीवनराम जी पहले माने नहीं, फिर मंत्रिमण्डल में आने के लिए राजी हुए।

शुरु में, केंद्र के नए शासन के साथ निजलिंगप्पाजी का संबंध सौहार्द्रयुत तथा बिना किसी समस्या के था। वास्तव में बुजुर्ग कांग्रेस नायक के रूप में, इंदिरा गाँधी जी को प्रधानमंत्री बनाने के लिए भूमिका तैयार करनेवालों में वे भी एक थे।

अब वे अपने प्रदेश की पार्टी व बाहर के विरोधियों के राजनीतिक निर्वहण तक ही सीमित रह गए। राज्यपाल के भाषण पर हुई चर्चा में भाग लेते हुए विधानसभा में, स्वतंत्र सदस्य सी.जे. मुक्कण्णाजी ने अपने ही सचिवों के कारण मुख्यमंत्री जी जो मुश्किल का सामना कर रहे थे उसका समर्थ रीति से वर्णन किया। मुक्कण्णाजी ने आरोप लगाया कि ''मंत्रिमण्डल में सामरस्य है ही नहीं, मंत्री एकदूसरे के प्रति रक्तदाह से भरे हैं, केवल बातों में ही वे समय बरबाद कर रहे हैं – राज्य के विकास में उनकी देन शून्य मात्र है; राज्य की आहार और आर्थिक परिस्थिति मुश्किल में हैं।'' मद्य-निषेध के विषय में विवादात्मक

अभिप्रायों के बारे में निजलिंगप्पाजी ने पत्रिकाओं से बात करते हुए कहा कि "मद्य-निषेध के बारे में अबका विचार ही आगे बढ़ेगा और उसे न बदला जाएगा।" उसे दूसरी बार कब बदला जाएगा – इसका जवाब देने से उन्होंने इंकार किया। आर्थिक व राजस्व मंत्री रामकृष्ण हेगडे जी ने जवाब दिया कि उसे ढीला करने का सवाल ही नहीं है। निजलिंगप्पा-सरकार का एक प्रमुख लक्षण यह रहा कि, आदर्श को वास्तव की ओर झुकाना और आदर्श की सीमा का वास्तव के आधार पर गणना करना। इसका एक उदाहरण है – सहकार संस्थाओं के प्रति बद्धता होने पर भी, कठिन वस्तुस्थिति के कारण अनिवार्य हो तो, उसे छोड़ने के लिए भी तैयार थी। इसका उदाहरण है, सहकार संस्थाएँ, सहायक न होने पर, चरसा सिंचाई योजना को सरकार के नियंत्रण में देने, निजलिंगप्पाजी तैयार रहे। 02-3-1966 को हेगडेजी द्वारा मंडित 1966-67 वर्ष के राज्य के आयव्यय अंदाज में नए करों का प्रस्ताव नहीं था।

निजलिंगप्पाजी की कठोर निष्ठा, निःसंदेह रूप से सिंचाई और कृषि के लिए थी। परंतु आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण उनके हाथ बंधे थे। उन्होंने प्रधानमंत्री जी और के.एल. रावजी को पत्र लिखा कि राज्य के सामने आर्थिक कमी होने के कारण, कृष्णा-योजना को केंद्र की योजना के रूप में ले लिया जाय। बाकी सिंचाई योजनाओं के लिए तीन करोड़ रुपयों की सहायता माँगी। उनका विचार था कि बाहर से गण्यलोग राज्य में आकर बेंगलूर, मैसूर तथा अन्य प्रदेशों का सैर कर राज्य के समृद्ध होने की गलत अभिप्राय कर लेते हैं। परंतु वास्तव में यह एक गरीब राज्य है, पिछले पचास वर्षों में 1966 का वर्ष अत्यंत कठिन समय है; उन्हें बार बार केंद्र के पास जाकर मदद माँगना अनिवार्य हो गया था। राज्य की सिंचाई योजनाओं की ओर ध्यान देने की बिनती करने के उद्देश्य से अशोक मेहताजी से मिलने के लिए निजलिंगप्पाजी 10-3-1966 को देहली गए। केंद्र पर जोर डालने का उनका विचार था कि 100 करोड़ रुपयों के खर्च की ऊपरी कृष्णा योजना को केंद्र अपने हाथ में ले ले। योजना आयोग के उपाध्यक्ष अशोक मेहताजी ने 06-4-1966 को बेंगलूर आकर विधानसभा में भाषण देते हुए अभिप्राय व्यक्त किया कि, तीसरी योजना में राज्य की स्थिति उत्साहदायक नहीं है। उन्होंने माना कि केंद्र की आर्थिक सहायता मानने से भी कम थी। वास्तव में 90 करोड मान गए, परंतु केवल उसका एक तिहाई ही दिया था।

महत्त्वपूर्ण विकास कार्य कुंठित हुए थे; बेकार के अंतरराज्य सीमा विवादों में देश की शक्ति और समय व्यर्थ हो रहे थे। अपने राज्य की सीमा विषय के बारे में, अपने हक का प्रतिपादन करने के लिए महाराष्ट्र सरकार प्रयत्न कर रही थी। केंद्र पर उसका जोर चला, उसके परिणामस्वरूप केंद्र सरकार झुक गई। इंदिरा गाँधी जी ने 06-5-1966 को औरंगाबाद में भाषण देते हुए बताया कि, मैसूर महाराष्ट्र के बीच के सीमाविवाद के बारे में परिशीलन करने के लिए ए.आइ.सी.सी. एक उन्नत स्तर की समिति की रचना करेगा। उसकी प्रतिक्रिया करते हुए निजलिंगप्पा जी ने कहा कि यदि, समिति की रचना केवल मैसूर-महाराष्ट्र के संबंध में है तो वे उसके विरुद्ध हैं, सभी अंतरराज्य सीमाविवादों को उसके सामने रखा जाता है तो, उनका कोई विरोध नहीं है, यह भी कहा कि बदलाव छोटे मोटे हों, न कि प्रमुख। उदाहरण के लिए – भाषाधारित कुछ ग्रामों को विनिमय के लिए वे मान सकते थे।

इंदिरा गाँधीजी की बात का उन्होंने स्वागत किया कि ''गोवा के भविष्य का गोवा निवासी ही निर्णय करेंगे''। कर्नाटक में मैसूर-महाराष्ट्र के सीमाविवाद के लिए आयोग की रचना के विरुद्ध लोगों का आक्रोश बढ़ गया। एकीकरण समिति के अध्यक्ष ने हुबळी में कहा कि वे इसका पूर्णरूप से विरोध करते हैं। इस विषय पर, महाराष्ट्र के लोगों के द्वारा बार बार तंग करने पर इंदिरा गाँधीजी भी असंतुष्ट हुईं। इंदिराजी से मिलने गए हुए, मैसूर संसद सदस्यों को उन्होंने आश्वासन दिया कि 1967 के चुनावों से पहले, वे किसी आयोग या समिति की रचना नहीं करेंगीं। कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष कामराज जी ने भी मैसूर के सांसदों को इसी बात का आश्वासन दिया। इसी बीच, चुनाव आयोग ने निर्णय लिया कि महाचुनाव फरवरी 1967 को एक ही दिन में संपन्न होंगे।

कांग्रेस पार्टी में निजलिंगप्पाजी के व्यक्तित्व का सम्मान अक्षुण्ण था। मुंबई में हुई ए.आइ.सी.सी. बैठक में अठारह लोगों के हस्ताक्षर सहित एक पत्र पेश किया गया कि संसदीय मंडल में, रिक्त पाँच स्थानों में एक स्थान निजलिंगप्पाजी को दिया जाय। उन्होंने कहा कि त्याग, निःस्वार्थ की सेवा तथा व्यापक अनुभवोंके कारण निजलिंगप्पाजी इस स्थान के लिए योग्य व्यक्ति हैं। संसदीय मंडल के चुनावों में संजीवरेड्डी , संजीवय्या, सी.बी. गुप्त, हनुमंतय्या और अन्य बारह अभ्यर्थी लड़ रहे थे। परंतु कामराज की सलाह के अनुसार निजलिंगप्पाजी

इससे दूर रहे। कामराज जी का तर्क था कि 'दक्षिण को एक स्थान मिलेगा, रेड्डी और निजलिंगप्पा दोनों यदि स्पर्धा करे तो दोनों ही हार सकते हैं।'' कामराज जी की इच्छा थी कि निजलिंगप्पाजी स्पर्धा में भाग ले, परंतु रेड्डीजी ने पीछे हटने से इनकार किया। मुंबई के तीन दिनों के ए.आइ.सी.सी. बैठक में इंदिरा गाँधी ने निजलिंगप्पा और कामराज जी से सीमा विषय के बारे में चर्चा की। मैसूर-महाराष्ट्र तथा मैसूर-केरल के बीच के सीमाविवाद के निवारण के लिए कांग्रेस कार्यकारी समिति एक सदस्य आयोग की रचना करना चाहती है, तक्षण उसका विरोध न करने का मैसूर मंत्रीमंडल ने अपने 24-5-1966 की सभा में निर्णय लिया। परंतु एम.पी.सी.सी. ने उसका तिरस्कार किया। बुजुर्ग नेता हळ्ळीकेरी जी ने भी उसका विरोध किया। बेळगाम में निजलिंगप्पाजी ने जिला कांग्रेस समिति से कहा कि आयोग की कार्यव्याप्ति के बारे में अभी अंतिम निर्णय नहीं लिया गया है।

मैसूर राज्यभर में, आयोग रचना के विषय पर तीव्र विरोध व्यक्त हुआ। निजलिंगप्पाजी ने कहा कि जहाँ तक उनकी जानकारी है, महाचुनावों से पहले आयोग की रचना नहीं होगी। परंतु ऐसी बातों से राज्य के लोगों के आक्रोश का उपशमन नहीं हुआ। बेंगलूर मल्लेश्वर में 29-5-1966 को हुई एक युवा बैठक ने आलोचना की कि राज्य नायकत्व की सीमा-विवाद विषय में बिकरी हो रही है। उसके अध्यक्ष थे के. एल्. रामकृष्णजी और संगठक थे सी. पुट्टस्वामीजी। 02-6-1966 की बेलगांव की डी.सी.सी. सभा में क्रांतिकवि वाली चेन्नप्पाजी ने जोर डाला कि निजलिंगप्पाजी आयोग की रचना का विरोध करते हुए अपने मुख्यमंत्री के पद से इस्तीफा देकर आंदोलन का नायक बने। उन्होंने कहा कि एकीकरण के आंदोलन के नेता वे ही हैं तो उनको ही आंदोलन का नेतृत्व करना ठीक रहेगा। आंदोलन को संगठित करने के लिए बेळगांव के डी.सी.सी. ने वाली चेन्नप्पाजी के नेतृत्व में एक समिति की रचना की। सत्याग्रह 10-6-1966 को प्रारंभ होनेवाला था। 07-6-1966 को बेंगलूर के रवींद्र कलाक्षेत्र में हळ्ळीकेरी जी के 60वें जन्मदिन के समारंभ में अध्यक्षता करते हुए, निजलिंगप्पाजी ने कहा कि महाचुनाव के पहले आयोग की रचना का वे विरोध करते हैं। उन्होंने घोषणा की कि यदि रिपोर्ट महाराष्ट्र के पक्ष में हो तो, वे उसका पूर्णरूप से विरोध करेंगे और उसके विरोध का आंदोलन वे स्वयं करेंगे।

उन्होंने कहा कि केवल, छोटे मोटे समझौते का मौका रहे बेळगाव, कारवार, निप्पाणी और बाकी बडे शहरों की यथास्थिति की रक्षा हो, नहीं तो, वे उसका विरोध करेंगे। बेळगांव के कांग्रेस नायकों ने 08-6-1966 को कहा कि बार बार कहने पर भी केंद्र पर प्रभाव न डालनेवाले निजलिंगप्पाजी के विचारों के बारे में उन्हें तृप्ति नहीं है। उनके कहने के बावजूद भी आयोग रचना का प्रयत्न जारी रहा। उन्हें भय था कि आयोग, बड़े शहरों को महाराष्ट्र को दे देगा। उन्होंने दृढ़निश्चय किया कि जब तक केंद्र आयोग रचना के विचार को छोड़ेगा नहीं, तब तक उनका सत्याग्रह बंद नहीं होगा। सुळधाळ रेलवे स्टेशन में आंदोलन प्रारंभ हुआ। गांधीजी का आंदोलन भी यहीं से हुआ था, इसकारण से प्रख्यात इसी स्थान पर सत्याग्रह का आरंभ होना सांकेतिक था। दक्षिण बेळगांव के लोकसभा सदस्य एच.वी. कौजलगीजी ने, आयोग के विरोध में अपने संसद सदस्यत्व से इस्तीफा दे दिया। 10-6-1966 को करीब 126 सत्याग्रहियों का बंधन हुआ। पूना-बेंगलूर का ट्रेन रोका गया। आंदोलन फैलकर 11 को गोकाक में, 12 को रायबाग में भी प्रारंभ हुआ। जल्दी ही उत्तर कर्नाटक के अधिक प्रदेश इस आग में जलने लगे। यह आंदोलन किसी भी नायक के विरुद्ध नहीं है – इसे स्पष्ट करने के लिए वाली जी ने स्पष्ट रूप से कहा कि निजलिंगप्पाजी को इस सत्याग्रह के नायक के रूप में मानने के कारण यह उनके विरोध में नहीं है। राज्य का अधिकृत कांग्रेस, सत्याग्रह के बारे में दुविधा में पड़ गया। एम.पी.सी.सी. अध्यक्ष, मोहमद आली ने 22-6-1966 को देहली में बताया कि प्रस्तुत आंदोलन का एम.पी.सी.सी. से कोई भी संबंध नहीं है। उन्होंने मान लिया कि वह कुछ डी.सी.सी यों का कार्य है। बढ़ते हुए आंदोलन का शायद देहली और प्रधानमंत्री जी पर कुछ प्रभाव पड़ा होगा। इसलिए कांग्रेस अध्यक्ष कामराजजी ने बताया कि एक सदस्य आयोग की रचना के विषय का पुनःपरिशीलन करने के लिए वे तैयार हैं। एम.पी.सी.सी. के साथ हुई सभा में वे प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहे थे। इस विषय पर चर्चा करने के लिए एम.पी.सी.सी. ने 25-6-1966 को बेंगलूर में सभा बुलाई। जून 1966 तक सत्याग्रह ने उग्ररूप धारण किया, 27-6-1966 को हरिहर व दावणगेरे में लोगों की भीड़ के नियंत्रण के लिए पुलिस ने गोली चलाई। हरिहर के गोलि चलने से प्रकाश नामक व्यक्ति की मृत्यु हो गई। निजलिंगप्पाजी ने सत्याग्रहियों से बिनती की कि ''कर्नाटक के लोगों की इच्छा को केंद्र ने समझ लिया है; इसलिए सत्याग्रह को समाप्त

किया जाय।'' उन्होंने कहा कि 05-7-1966 को होनेवाली कांग्रेस कार्यकारी समिति की चर्चा में वे कर्नाटक के विषय को समझाएँगे। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की सभा के पिछले दिन 04-7-1966 को मैसूर कांग्रेस के एक विशेष प्रतिनिधिमंडल ने प्रधान मंत्री से भेंटकर मैसूर के विचार का विवरण दिया। इस मंडल में जत्तीजी, हळ्ळीकेरीजी, अप्पण्णगौडाजी (बेळगांव के डी.सी.सी. अध्यक्ष) और कोल्लूरु मल्लप्पाजी थे। इससे एक दिन पहले, निजलिंगप्पाजी ने सत्याग्रहियों से बिनती की कि कांग्रेस कार्यकारी समिति, इस विषय का पुन: परिशीलन करेगी; इसलिए सत्याग्रह बंद करे। 05-7-1966 को कांग्रेस कार्यकारी सभा ने इस समस्या को मैसूर और महाराष्ट्र के मुख्यमंत्रियों को सौंपा और उन्हें सूचना दी कि अगले दो महिनों के अंदर आयोग की व्याप्ति के बारे में एक निर्णय पर पहुँचे। यदि मुख्यमंत्री समझौता नहीं कर सके तो, अगले कार्यवाही के लिए यह बात कांग्रेस कार्यकारी समिति के परिशीलन के लिए वापस जाएगी। यह कांग्रेस कार्यकारी समिति द्वारा अपनी पिछली बात का उल्लंघन होगा; इसलिए, इस पर चौहान जी ने आक्षेप व्यक्त किया। 12-7-1966 को हुबळी में हुए अखिल कन्नड़ भाषियों के सम्मेलन ने आयोग के विचार का तिरस्कार किया। इस झगड़े के बीच, एम.पी.सी.सी. प्रतिनिधियों को चुनने के लिए दावणगेरे में चुनाव हुए। सात स्थानों के लिए पूर्ववत् निजलिंगप्पाजी के पक्ष और विरोधी गुटों में स्पर्धा हो रही थी। इस चुनाव में सातों स्थान निजलिंगप्पाजी के गुट को प्राप्त हुए। भिन्नमतीय नायक कोल्लूर मल्लप्पाजी ने आरोप लगाया कि चुनाव न्याययुत रीति से नहीं हुए। आनेवाले महाचुनाव पर, एम.पी.सी.सी. ने ध्यान लगाया। निजलिंगप्पाजी ने बताया कि अभ्यर्थियों को निष्पक्षपात रूप से अर्हता के आधार पर चुना जाएगा और इससे गुटबंदी समाप्त हो जाएगी। एच.के. वीरण्ण गौडा जी ने शिकायत की कि दावणगेरे के पार्टी के चुनाव में प्रभाव और अधिकार का दुरुपयोग हुआ है। मैसूर-महाराष्ट्र के सीमाविवाद निवारण के बारे में, आयोग की रचना का मैसूर विधानसभा के कांग्रेसेतर सदस्यों ने विरोध किया। निजलिंगप्पाजी ने स्पष्ट किया कि ''केवल थोड़े बहुत समझौते के लिए मौका होगा और कारवार, निप्पाणी और बेळगाव जैसे बडे शहर, यथास्थिति में रहेंगे, इसके बारे में कोई बात ही नहीं है।'' निजलिंगप्पाजी के पारंपरिक समर्थकों में हळ्ळीकेरीजी और दोड्डमेटीजी ने आयोग के मूलभूत विचार का ही विरोध किया।

उद्देशित आयोग की कार्यव्याप्ति की चर्चा करने के लिए मैसूर और महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री 07-8-1966 को, बेंगलूर में मिले। बाद में हुए पत्रकार सम्मेलन में उन्होंने बताया कि परस्पर विचार और उन राज्यों की परिस्थिति के बारे में, समझने के लिए यह मुलाकात सहायक हुई। इस समय निजलिंगप्पाजी के सहज सौजन्य को प्रतिबिम्बित करने की एक छोटी घटना हुई। उसके जीवितकाल में ही उनकी काँसे की प्रतिमा की स्थापना करने के विचार का उन्होंने मूर्खता और पागलपन कहते हुए, उसका खंडन किया और इस विचार को वहीं समाप्त करने को कहा।

निजलिंगप्पाजी और वी.पी. नायक जी की दूसरी मुलाकात 05-9-1966 को नागपुर में हुई; वह भी नीरस रही। यह तीसरी मुलाकात इसलिए रद्द हो गई, क्योंकि अचानक निजलिंगप्पाजी अस्वस्थ होगए। और वैद्यों ने उन्हों चार-पाँच दिन विश्राम करने को कहा। 24-9-1966 तक, दोनों इस निर्णय पर पहुँच चुके थे कि इस मुलाकात से कोई भी प्रयोजन नहीं होगा। यह विषय फिर से कार्यकारिणी समिति के आंगन में पहुँचा। कार्यकारिणी समिति ने एकपक्षीय रूप से, केंद्र से बिनती की कि मैसूर-महाराष्ट्र और मैसूर-केरल की सीमाविवाद का परिशीलन करने के लिए एकव्यक्ति-आयोग की रचना करे। संबंधित पार्टियों के साथ समालोचना कर, यह निर्धार लिया गया कि अपनी व्याप्ति का निर्णय, आयोग ही कर ले। 17-10-1966 को केंद्र ने घोषित किया कि सीमाविवाद की रिपोर्ट देने के लिए न्यायमूर्ति मेहरचंद महाजन जी के एक सदस्य-आयोग की रचना की गई है। इस विचार का दोनों मुख्यमंत्रियों ने स्वागत किया। हनुमंतय्याजी ने लोकसभा में आरोप लगाया कि केंद्र ने महाराष्ट्र के प्रभाव के सामने झुककर अपना निर्धार बदल दिया है। गोवा विलीन के बारे में हुई चर्चा में वे बोल रहे थे। उन्होंने आक्षेप लगाया कि न्याय और निष्पक्षता को भूलकर केंद्र ने, लोगों की इच्छा के विरुद्ध, महाराष्ट्र की इच्छानुसार विलीन के विषय को लेकर अपने पिछले निर्णय को दूर फेंक दिया है। उन्होंने जोर डाला कि विलीनता के बारे में जनाभिप्राय का संग्रह करते हुए, मतदाताओं की सूची में, हेरफेर करने का मौका न देने के प्रति जागरूक रहे। उसमें भी ध्यान रहे कि बंदोडकर को बीच में न आने दे। विलीनता के लिए जनाभिप्राय संग्रह को लोकसभा ने 01-12-1966 को अपनी मान्यता दी। 03-12-1966 को राष्ट्रपतिजी ने बंदोड़कर की इस्तीफा स्वीकार किया और गोवा विधानसभा का विसर्जन किया।

जनाभिप्राय संग्रह के लिए भूमिका तैयार करने के लिए यह सब हुआ। 1967 जनवरी मध्य में, जनाभिप्राय संग्रह कार्य होने के बारे में मुख्य चुनाव अधिकारी ने बताया।

केंद्र कानून मंत्री पाठक जी ने लोकसभा में बताया कि महाचुनाव 1967 के फरवरी 15 और 21 के बीच में होंगे। 10-12-1966 को साठ वर्ष पूरा कर, निजलिंगप्पाजी ने अपने पुराने क्षेत्र बागलकोट क्षेत्र से चुनाव में स्पर्धा करने की अपनी इच्छा व्यक्त की।

निजलिंगप्पाजी के शासनकाल में, राज्य को एक और विश्वविद्यालय प्राप्त हुआ; वह था बेंगलूर विश्वविद्यालय। 10-12-1966 को उसका उद्घाटन करते हुए उन्होंने इच्छा व्यक्त की कि वह केंद्र विश्वविद्यालय बन जाय। परंतु वह हुआ ही नहीं।

अपने पैंसठवें जन्मदिन पर उन्होंने राज्य की जनता को एक विशेष संदेश दिया; उन्होंने कहा कि ''देश को खूब मेहनत करना चाहिए; वही आर्थिक विकास की कुंजी है।'' अपने बारे में बताते हुए उन्होंने कहा कि ''मैंने सामान्य व्यक्ति के रूप में जन्मा, सामान्य के रूप में बड़ा हुआ और सामान्य के रूप में जी रहा हूँ।'' उन्होंने इच्छा व्यक्त की कि 'देश और समाज की सेवा करने के लिए वे दीर्घकाल तक जीना चाहते हैं।' अपने जीवन के एक रहस्य को उन्होंने बताया कि सोने से पहले वे काव्य पढ़ते हैं।

चुनावों का समय निकट आने पर, राज्य और राजकीय पार्टियों के चुनावपूर्व कार्यक्रम में लगे रहे। एम.पी.सी.सी. ने लोकसभा और विधानसभा के अभ्यर्थियों की सूची 12-12-1966 को प्रकाशित किया। उसमें कई नये चेहरे थे, पुराने कई लोगों को टिकट नहीं दिए गए। एस.वी. श्रीनिवासराव और सरोजिनी महिषी को लोकसभा टिकट और डॉ. नागप्पा आळ्वा को विधानसभा टिकट निराकरण किया गया था। परंतु अभी पाँच क्षेत्रों के लिए अभ्यर्थियों को अंतिम नहीं करने के कारण, सूची अपूर्ण थी। सूची को प्रकट कर पत्रकार सम्मेलन में एम.पी.सी.सी. के अध्यक्ष मोहमद अली के स्थान पर निजलिंगप्पाजी ने बताया कि आधे अभ्यर्थी नए हैं। यहाँ प्रमुख अंश यह था कि युवजनों को वरीयता दी गई थी। उन्होंने कहा कि चुनावों का अर्थ है उत्साह! परंतु, उससे राज्य के विकासकार्य कुंठित नहीं होने चाहिए। उन्होंने कहा कि शरावती का तीसरे स्तर

का कार्य 1966 दिसंबर अथवा 1967 जनवरी में प्रारंभ होकर, चौथा स्तर एक-दो महीनों के बाद शुरू होगा। केंद्र संसदीय मंडल ने चुनाव क्षेत्र में राज्य कांग्रेस की सिफारिश को उपेक्षा कर सरोजिनी महिषीजी को उत्तर धारवाड लोकसभा क्षेत्र के स्थान का टिकट दिया।

1966 के दिसंबर में अपने मुख्यमंत्रीपद की तीसरी अवधि के अंत में, निजलिंगप्पाजी ने विकास तथा आर्थिक आदर्शों के चिंतनों को बताने के लिए सार्वजनिक सभाओं का उपयोग किया। उदाहरण के लिए, निप्पाणी कालेज के नामकरण संदर्भ में भाषण देते हुए उन्होंने अभिप्राय व्यक्त किया कि विकासकार्य में व्यक्ति को अधिमान्यता देनी चाहिए, सामाजिक विकास की नींव का अर्थ है, व्यक्ति का विकास। 02-01-1967 को उद्योगपतियों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि यदि बाहरवाले उद्योगों की स्थापना करना चाहे तो, सरकार उनकी सहायता करेगी। उनका वैयक्तिक विचार शक्तिशाली उदार, आर्थिक नीति का होने पर भी, एक कांग्रेसवाले के रूप में वे पार्टी के आदर्श – मिश्र आर्थिक नीति अर्थात् आर्थिक विकास की प्रक्रिया में वे सरकार और बाजार के एक दूसरे के लिए पूरक होने के लिए बद्ध रहे। उनका अभिप्राय था कि कृषि तथा उद्योग के विकास में संतुलन होना चाहिए। बाहरवालों को राज्य में, उद्योग की स्थापना के लिए मौका दे तो, कहीं भाषावार राज्यों के स्वयंकेंद्रित विचार के ध्यान के आशय का भंग न हो, इस विचार से निजलिंगप्पाजी ने मुंबई उद्योगपतियों से बात करते हुए, मान लिया कि वे भाषावार राज्य रचना के तीव्र प्रतिपादक होने पर भी अब उसका पुनः परिशीलन करने का समय आ गया है। क्षुद्र आंतरिक वैषम्य तथा झगडें रूपी अवांछित उपउत्पन्नों के कारण बनते हुए, भाषावार प्रांतों के बारे में अतृप्ति हो रही थी। ''मिट्टी की संतान'' इस विचार से लगे रहने पर उन्हें विरोध था। उन्होंने घोषणा की कि भारत और उसके संसाधन किसी भी राज्य के हों, भारतीयों के हैं।

गोवा विलीन के बारे में 16-01-1967 को जनाभिप्राय संग्रह का कार्य हुआ। 80% से भी अधिक मतदान हुआ। अंतिम परिणाम के प्रकट होने से पहले ही, 16-01-1967 को विलीनवादियों को हारने का विचार सच लगा तो उसके प्रतिपादक, महाराष्ट्रवादी गोमांतक पक्ष ने हार माल ली। अंतिम निर्णय में, विलीन के विरोध को 1,72,291 मत, और पक्ष को 1,38,170 मत प्राप्त थे। विलीनवादियों की हार से, निजलिंगप्पाजी और कर्नाटक ने चैन की साँस

ली। परिणाम का स्वागत करते हुए निजलिंगप्पाजी ने कहा कि विलीन विरोधियों को कर्नाटक ने नैतिक समर्थन मात्र दिया था।

इसबीच, राज्य के महाचुनावों में कांग्रेस ने बहुसंख्यक पार्टी के रूप में निकलने पर भी, 1962 के चुनावों से कम स्थान प्राप्त कर लिया था। धारवाड़ जिले के शिग्गांव क्षेत्र से निजलिंगप्पाजी अविरोध चुने गए। अभी और तीन क्षेत्रों – बागलकोट, हडगली और रायबाग से उन्होंने नामपत्र भरा था। कुल 294 स्थानों में कांग्रेस को 124 स्थान मिले थे; उसके समीप प्रतिस्पर्धी पी.एस.पी. को केवल बीस स्थान मिले थे। उसके बाद का स्थान - 18 स्थान स्वतंत्र पक्ष को प्राप्त थे; भिन्नमतियों के - जनता पक्ष को केवल 9 स्थानों से तृप्त होना पड़ा, जनसंघ ने अपना स्तर सुधारते हुए चार स्थान पाये तो एस.एस.पी. को 6, एम.इ.एस. को 5 स्थान मिले। सी.पी.एम. ने खाता ही नहीं खोला। परंतु सी.पी.आई को एक स्थान मिला। स्वतंत्र अभ्यर्थियों में तीस व्यक्ति जीत गए। कांग्रेस पक्ष को अगले पाँच वर्ष तक शासन करने के लिए आदेश देते हुए मतदाताओं को कृतज्ञता अर्पित करने के लिए 24-02-1967 को उन्होंने पत्रिकाओं में वक्तव्य दिया, और आशा व्यक्त की कि इस अवधि में राज्य की समस्याओं को समाधान प्राप्त हो जाएगा। ''कांग्रेस के कम स्थान पाने के लिए आंतरिक झगडा ही कारण है'' – बताते हुए उन्होंने कहा कि परिणाम पक्ष के आंतरिक झगडे सामरस्यहीनता, अनुशासनहीनता और बद्धता न होने के विरुद्ध, जागरूकता के प्रति ध्यान देना होगा। लोकसभा में पक्ष को पिछले चुनाव से भी कम स्थान मिले। परंतु 27 में 18 स्थान जीतकर मजबूत स्थिति में रहा। राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस ने अल्प बहुमत पाया; यह पिछले चुनाव के परिणाम की तुलना में अति कम रहा।

निजलिंगप्पाजी कांग्रेस सत्ताधारी पक्ष के नायक के रूप में, 02-3-1967 को अविरोध रीति से, चौथी बार चुने गए और 12-3-1967 को अपने मंत्री मण्डल को घोषित किया। उसमें 14 मंत्री और 8 उपमंत्री थे। एस.आर. कंठी, बी.डी. जत्ती, एम.वी. रामराव, आर.एम्. पाटील, वीरेंद्र पाटील, बी. राचय्या, रामकृष्ण हेगडे, के. पुट्टस्वामी, डी. देवराज अरसु, सी. नारायण गौड़ा, मोहमद आली, के.वी. शंकरेगौड़ा और पी.एम. नाडगौडा थे। पुराने दल के एम.वी. कृष्णप्पा, लोकसभा के लिए चुने गए थे। नागप्पा आळ्वा हार गए थे, के. मल्लप्पा

का निधन हो गया था। और यशोधरम्मा दासप्पा ने इस्तीफा दे दिया था। उपसचिव थे – वै रामकृष्णा, दयानंद सागर, अब्दुल गफार, ए.पी. अप्पण्णा, एच.सी. बोरय्या, जी.बी. शंकरराव और आलूर हनुमंतप्पा। हनुमंतय्याजी, मुरारजी देसाई जी के स्थान पर शासन-सुधारण-आयोग में अध्यक्ष बनकर राष्ट्रस्तर पर पहुँचे थे। 24-3-1967 को मंडन किए गए राज्य-आयव्यय में, मद्य निषेध को ढीला करने के बारे में प्रगट किया गया– इससे चार करोड़ रुपयों के 'आय' की निरीक्षा की गई। चालती में जो राजकर पद्धति थी उसे छोड़ने के कारण, 6-7 करोड़ रुपयों का 'आय' कम हुआ। कुलमिलाकर दो करोड रुपयों की कमी थी। जी.एस. पाठकजी को राज्य के राज्यपाल स्थान पर नियुक्त किया गया।

मैसूर के नेताओं ने 'महाजन आयोग' से बिनती की कि यथास्थिति की रक्षा करे। 02-5-1967 को विधानसभा को कुछ समय के लिए स्थगित करने पर और उसका कारण बताने पर एक छोटी समस्या उत्पन्न हुई। 02-5-1967 से तीन दिनों के लिए सदन के कार्यकलापों को रोकने के कारण वह स्थगित स्थिति पर पहुँचा। जनता पक्ष के सदस्य, के. एच. पाटीलजी ने 05-5-1967 को निजलिंगप्पाजी के विरुद्ध, आलोचना करते हुए आरोप लगाया कि दो तारीख के दिन जो हुआ उसे छिपाकर, सत्य को उन्होंने सदन को नहीं बताया है; उन्होंने दबाव डाला कि राज्य की आर्थिक स्थिति का विवरण देना चाहिए। दूसरे दिन विरोधी दलों ने आरोप लगाया कि निजलिंगप्पाजी के कहने के अनुसार सदन को स्थगित करने का कारण, आर्थिक समस्या न होकर, शासक दल की आंतरिक समस्या है। कुछ हद तक यह था कि राज्य तीव्र आर्थिक संकष्ट का सामना कर रहा था। रामकृष्ण हेगडे जी ने 26-6-1967 को, सदन में बताया कि पिछले मई में उन्होंने जो आयव्यय का मंडन किया था – वह तात्कालिक था, अब केंद्र ने दो करोड रुपये अधिक देने के कारण, आयव्यय में, थोडा बहुत बदलाव किया गया है। निजलिंगप्पाजी ने आर्थिक संकट के बारे में, 02-5-1967 को एक दीर्घ भाषण दिया था –''जैसे हम सब जानते हैं, मैसूर को अनेक संकटों का सामना करना है। मैसूर की विशिष्ट परिस्थिति की ओर ध्यान रखकर मैं अधिक धन की सहायता देने के लिए केंद्र सरकार और योजना-आयोग के साथ चर्चा कर रहा हूँ........., परंतु वे कह रहे हैं कि धन सहायता देना मुश्किल है। मेरा डर है कि और कम न कर दे....... परिस्थिति कहाँ तक पहुँचेगी – पता नहीं। मैं सोच रहा हूँ, जितनी लंबी चादर उतना ही पैर

कैसे पसारे ? यह भी पता नहीं कि बिस्तर कैसा है और पैरों की हालत कैसी है ?......यदि पैसे कम मिले तो, हमारी आद्यताओं को पुनःरूपित कैसे करेंगे ?......मेरा प्रबल विचार है कि कृषि और सिंचाई को प्रथम आद्यता हो और फिर विद्युत उत्पादन को स्थान दे। केवल चार महिनों के लिए ही, आयव्यय का अंगीकार हुआ है, इसलिए उस धन को खर्च कर सकते हैं। बाकी आठ महीनों के लिए हमारे पास अधिक धन नहीं बचा रहेगा। नायक बने रहने के लिए मैं उत्साहित नहीं हूँ....... मुझे कभी नहीं लगा है कि वह जीवन का एक बड़ा आकर्षण है।''

गंभीर स्वरूप के आर्थिक संकट को निभाने के लिए सरकार ने कुछ पदों को रद्द करते हुए, बाकी स्थानों पर अभी भर्ती न करने का निर्णय लिया। एस.एस.पी सदस्य रहकर अब कांग्रेस में दल बदले हुए एक सदस्य ने सरकार के निर्धारों की प्रशंसा करते हुए जब वे विरोधपक्ष में थे, तब की गई आलोचना के विरुद्ध बात की तो विधानसभा में कोलाहल उत्पन्न हुआ। उस सदस्य का नाम था बसवण्णेप्पा। सरकार की आलोचना करने के हर मौके का फायदा विरोध पक्ष उठाता था। 01-8-1967 को एस. गोपाल गौड़ा जी ने निजलिंगप्पाजी के विरुद्ध विधानसभा के विशेषाधिकार-भंग के बारे में बताया। उन्होंने दिल्ली में बताया कि 12 विधानसभा सदस्य विरोधी दल से कांग्रेस में आ गये हैं और सदन में पार्टी का बल 140 हो गया है। फिर 08-8-1967 को भी आर्थिक संकट का सामना करते समय, शासकों के वेतन को बढ़ाने के सरकार के प्रस्ताव की विरोधी दल ने आलोचना की। सराकर को 'जन विरोधी' कहा गया। 01-9-1967 से मद्य निषेध को संपूर्ण रूप से निकालने के सरकार के निर्धार को जब 23-8-1967 के घोषित किया गया तो, आर्थिक संकट का और अधिक होना स्पष्ट होगया। सरकार ने घोषणा की कि मद्य निषेध को 01-9-1967 से पूर्णरूप से निकाल दिया जाएगा।

इसी बीच, 30-9-1967 को निजलिंगप्पाजी ने घोषणा की कि 'महाजन आयोग के रिपोर्ट को, संबंधित सभी लोग मानकर मैसूर-महाराष्ट्र के बीच के सीमाविवाद को शाश्वत रूप से दूर कर दे।' उन्होंने कहा कि जितना चाहते थे उतना प्राप्त न होने पर भी, अंतरराज्य स्नेह-संबंध के कारण वे उसे मान रहे हैं। यह सच था कि रिपोर्ट में मैसूर के विचार को, अधिकतर माना गया था।

ग्राम को 'घटक' कहने के पाटस्कर सूत्र का तिरस्कार करते हुए आयोग ने, कारवार, बेलगांव और कई नगरों पर महाराष्ट्र के हक के तर्क का भी तिरस्कार किया है। साथ ही, कोंकणी भाषा के बारे में महाराष्ट्र के विचार का भी उसने तिरस्कार किया। उसने प्रतिपादन किया कि ग्राम घटक न बनकर, ग्रामों का समुदाय, घटक बने। परंतु महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री, वी.पी. नायक ने 18-10-1967 को इस महाजन रिपोर्ट का तिरस्कार किया। 10-11-1967 को कांग्रेस अध्यक्ष, कामराजजी ने बताया कि दोनों पक्षवाले इस रिपोर्ट के लिए बद्ध हों। महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री के विरोध के बारे में उन्होंने आश्चर्य व्यक्त किया। 1967 नवंबर के मध्यभाग में कामराज जी के उत्तराधिकारी के रूप में कांग्रेस अध्यक्ष को चुनने के लिए दौड़धूप होने लगी। अगले अध्यक्ष के चुनने में सक्रिय भाग लेने के लिए पक्ष के वरिष्ठ नायक निजलिंगप्पाजी से बिनती करना अनिवार्य था। 17-11-1967 को बेंगलूर में निजलिंगप्पाजी ने बताया कि इस स्थान के लिए इंदिराजी की कोई इच्छा नहीं है। अचानक दिल्ली में अफवाह फैली कि, उस पद को मानने के लिए निजलिंगप्पाजी पर दबाव डाला जा रहा है। 26-11-1967 को नई दिल्ली में प्रकाशित हुआ कि इसके लिए निजलिंगप्पाजी सर्वमान्य व्यक्ति हैं। परंतु उसी वक्तव्य में यह भी बताया गया था कि अपने राज्य के विकास पर ध्यान देते रहने से, निजलिंगप्पाजी को इस पद के लिए मोह नहीं है। 30-11-1967 को कांग्रेस अध्यक्ष स्थान के लिए के. हनुमंतय्याजी ने नामपत्र भर दिया। अभ्यार्थी के रूप में एक.के. पाटील और मोहनधारिया भी बिंबित थे। 01-12-1967 को दिल्ली के एक रिपोर्ट में बताया गया कि कामराजजी ने अपने उत्तराधिकारी बनने के लिए निजलिंगप्पाजी को मनाया है और इंदिराजी ने भी इसे माना है। निजलिंगप्पाजी को अध्यक्ष बनने के लिए कैसे मनाया गया – इस रहस्य को पत्रिकाओं ने प्रकाशित किया। 30-12-1967 को जब उनपर मानने के लिए दबाव डाला गया तो वे दुविधा में पड़े थे। उसी रात को प्रधानमंत्री के निवास में, जो सभा हुई उसमें अनेक बुजुर्ग नेता हाज़िर थे, उनमें थे – एस.के. पाटील, ब्रह्मानंद रेड्डी, जगजीवनराम, सत्यनारायण सिन्हा, फकरुद्दीन अली अहमद, दिनेश सिंह और वी.बी. राजु। शायद, न बुलाने के कारण कामराज जी नहीं आये थे। परंतु अधीरात के समय उन्हें बुला भेजा गया। निजलिंगप्पाजी को अध्यक्ष बनने, मनाने में इंदिरा गाँधी जी और एस.के. पाटील जी ने निर्णायक पात्र लिया था। परंतु इस लेखक से

व्यक्तिगत रूप में बात करते हुए, निजलिंगप्पाजी ने बताया कि निर्णायक प्रभाव उनके मित्र कामराज जी का ही रहा। जो भी हो, पत्रिकाओं का कथन था कि यदि निजलिंगप्पाजी मैसूर राजनीति को छोड़ देंगे तो अनेक समस्याएँ उद्‌भव हो सकती हैं – इसलिए निराकरण करते हुए उन पर दबाव नहीं डाला। इसका एक उपाय था कि दोनों स्थानों को वे निभा लें। परंतु कामराज जी ने इसे नहीं माना। कामराज जी के विफल होने के बाद, इंदिराजी और एस.के. पाटील ने उन्हें मना ही लिया।

निजलिंगप्पाजी ने 02-12-1967 को बेळगांव में पत्रकार सम्मेलन में बताया कि वे, कांग्रेस अध्यक्ष बनकर सामान्य जनता के कष्ट को दूर करने का कार्य करेंगे। उन्होंने भरोसा दिया कि मैसूर में उनके उत्तराधिकारी एकमत से चुने जायेंगे। 07-12-1967 को ए.आइ.सी.सी. के चुनावाधिकारी सादिक आली जी ने औपचारिक रूप से बताया कि कांग्रेस अध्यक्ष पद के लिए निजलिंगप्पाजी चुने गए। भारत राष्ट्रीय कांग्रेस का 71 वाँ अधिवेशन हैदराबाद के लाल बहादुर नगर में 10-01-1968 को प्रारंभ हुआ। उसके अध्यक्ष पद से निजलिंगप्पाजी ने कहा कि कांग्रेस मात्र ही देश को आगे बढ़ा सकती है। आगे यह भी कहा कि कांग्रेस को नवचैतन्य भरना है। 17-01-1968 को निजलिंगप्पाजी ने अपनी कार्यकारिणी समिति की घोषणा की। इंदिरा गाँधीजी, जगजीवनराम जी, मोरारजी देसाई जी, फकरुद्दीन अली अहमद जी, उमाशंकर दीक्षित जी, शंकरदयाल शर्मा जी, चौहान जी, के.पी. अब्राह्म जी, एस.के. पाटीलजी, अतुल्य घोषजी और एम.वी. रामराव को निजलिंगप्पाजी ने नामित किया।

उनकी मातृभूमि बेंगलूर में, हिन्दी के बारे में तूफ़ान उठ रहा था। विद्यार्थियों के हिन्दी-विरोधी आंदोलन ने 23-01-1968 को बेंगलूर में उग्र स्वरूप धारण किया और पुलिस की गोली चली। उसमें दो विद्यार्थी शहीद हुए। निजलिंगप्पाजी अब दो घोडों पर सवार थे। राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस में नवचेतना भरने के लिए सात लोगों की समिति की रचना 30-01-1968 को की। उसके सदस्य थे – एस.के. पाटील, सी. सुब्रह्मण्यं, कमलापति त्रिपाठी, टी.ओं. बावा, एस.एन्. मिश्रा, शरतचंद्र सिन्हा और टी. मण्यन्। एम.वी. रामराव प्रथम महासचिव नियुक्त हुए। अपने दो पदों पर स्थित होने की आलोचनाओं के लिए 21-02-1968

को विधानसभा में जवाब देते हुए उन्होंने कहा कि उसके लिए कोई संविधानात्मक बाधा नहीं है। परंतु 15-3-1968 को पत्रकारों से उन्होंने कहा कि राज्य की परिस्थिति जब तृप्तिकर होगी तो, वे मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे देंगे। इसी बीच दिल्ली के पत्रिका रिपोर्टों ने बताया कि मुख्यमंत्री पद का त्याग करने के लिए निजलिंगप्पाजी पर दबाव आ सकते हैं। निजलिंगप्पाजी ने पत्रकारों से बताया यदि उनकी आवश्यकता नहीं होगी, तो वे कांग्रेस अध्यक्ष स्थान को छोड़ देगें। उनकी बातों से यह स्पष्ट नहीं हुआ कि क्या वे अपने दूसरे पद का त्याग करने के लिए तैयार थे या नहीं। एक और पत्रिका रिपोर्ट ने बताया कि उनके साथी चाहते हैं कि निजलिंगप्पाजी मुख्यमंत्री बने रहें, इस कारण उसे छोड़ना कठिन है। परंतु 12-4-1968 को निजलिंगप्पाजी ने मुख्यमंत्री पद त्याग करने की सूचना दी। बेंगलूर में अमेचूर नाटक संस्था के शिलान्यास के समारोह में, भाषण देते हुए उन्होंने यह बात बताई। 17-4-1968 को विधानसभा में उन्होंने कहा कि वे मुख्यमंत्री पद का त्याग करेंगे। 30-4-1968 को बेंगलूर में उन्होंने बताया उनके उत्तराधिकारी का चुनाव होगा। अंत में 25-5-1968 को निजलिंगप्पाजी ने राज्य कांग्रेस शासक दल के नायकत्व और मुख्यमंत्री पद से इस्तीफा दे दिया। 23-5-1968 को, वीरेंद्र पाटील जी कांग्रेस शासक दल के नायक के रूप में अविरोध रूप में चुने गए और निजलिंगप्पाजी के उत्तराधिकारी बनकर अधिकार स्वीकार किया। उन्होंने पाटीलजी को मंत्री स्थान के लिए चुनकर सिद्ध किया था और अब वे ही उत्तराधिकारी बने तो उन्हें तृप्ति मिली होगी। जत्तीजी ने उनका नाम सूचित किया और गुद्लेप्पाजी ने उसका अनुमोदन किया। नया मंत्रिमण्डल पहलेवाले से अधिक बड़ा था और तीन स्तरों का था – मंत्री, राज्यमंत्री, उपमंत्री। पाटीलजी के मंत्रिमण्डल में 12 मंत्री 5 राज्यमंत्री, 11 उपमंत्री थे। ए.पी. अप्पाण्णा और एन.पी. सोगी – ये दोनों उपमंत्री चालीस के दशक के अंत में मद्रास क्रिश्चियन कालेज में इस लेखक के विद्यार्थी थे।

मैसूर के बाद कर्नाटक के मुख्यमंत्री के रूप में, दीर्घकाल तक – 1956 नवंबर 1 से 13-5-1968 तक, सेवा का निजलिंगप्पाजी के मुख्यमंत्री जीवन का अध्याय समाप्त होगया। कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में और कांग्रेस पार्टी के ऐतिहासिक विभाजन में उनका पात्र और उसके दुष्परिणामों के बारे में अगले

अध्याय में सविस्तार बताया जाएगा। परंतु उनके मुख्यमंत्री पद की अवधि का विश्लेषणात्मक व्याख्यान और मूल्यांकन न करके उनके मुख्यमंत्रित्व के बारे में एक ही बार निरूपण को समाप्त करना ठीक नहीं होगा। सैद्धांतिक भूमिका में संक्षेप में ही सही विश्लेषण करना आवश्यक है।

निजलिंगप्पाजी के मुख्यमंत्रित्व का मूल्य समझने की भूमिका के लिए आवश्यक तात्विक चौखट को तैयार करने के लिए हमें इस अध्याय के प्रारंभ की ओर लौटना होगा। परंतु वास्तविक परिशीलन से पहले किसी भी राज्य का किसी भी समय का, एक मुख्यमंत्री भारत में क्या-क्या साध सकता है – इसका मापदंड रूपित करना आवश्यक है।

पहले मापदंड के रूप में संविधान में, बताए गए मुख्यमंत्री के अधिकार, कार्यव्याप्ति और उस व्यक्ति के मुख्यमंत्री बनने की भूमिका इन सब पर ध्यान देना होगा। साथ ही, संविधान मुख्यमंत्री के स्थान को परिभाषित करता है कि वह राज्य ऐसे अनेक घटकों के गुट का एक भाग होता है। इसलिए केंद्र और अन्य राज्यों के साथ अधिकार व संसाधनों में भागीदारी होता है। इसकारण, मुख्यमंत्री को तीव्र संसाधनों की कमी के दबाव में कार्य निर्वाह करना पड़ता है। उसे केंद्र की आर्थिक सहायता पर निर्भर होना पड़ता है। साथ ही योजना के विचार अधिक प्रमाण के संसाधन और अधिकार केंद्रीकरण के अधीन रहते हैं। आजकल कई वर्षों से, राज्य केंद्र से कुछ हद तक, स्वायत्तता प्राप्त करने पर भी स्पष्ट है कि अधिकार, सामान्यतः केंद्र की ओर ही ज्यादा झुका रहता है। जैसे अब तक देखा गया है, निजलिंगप्पाजी को बार बार आर्थिक सहायता के लिए केंद्र पहुँचना पड़ता था अथवा उन्हीं के शब्दों में कहना हो तो, भिक्षापात्र लेकर केंद्र के सामने खड़ा रहना पड़ता था! दूसरी कठिनाई, संरचनात्मक थी जो संसदीय व्यवस्था में सरकार का उदार प्रजासत्तात्मक स्वरूप होता है। पार्टी संरचना, दुर्बल और आंतरिक गुटबंदी का शिकार होनेवाली होती है, अधिकार संभालने के बाद यह बढ़ती ही जाती है। इसकारण मुख्यमंत्री के शक्ति सामर्थ्य का बहुभाग पक्ष निर्वहण में ही व्यर्थ हो जाता है। अब तक हमने देखा है कि निजलिंगप्पाजी की प्रमुख राजकीय समस्या, आंतरिक झगडा थी, न कि विरोधी दल का सामना करना। परंतु परिस्थिति अब थोड़ी बदल गई है। किसी भी पार्टी का अपने ही बल पर अधिकार पाना संभव न रहकर, मिलीजुली सरकार की रचना अनिवार्य हो गयी है। परंतु निजलिंगप्पाजी के समय में, विरोधी दल

अत्यंत दुर्बल होकर किसी भी तरह का भय न दिखाने तक क्षुद्र होगया था। शासक दल का आंतरिक झगडा, कभी भी समाप्त न होनेवाला था। क्योंकि वह किसी भी नीति, विचार अथवा आदर्श के लिए नहीं हो रहा था। झगड़े, व्यक्तिगत सीमा के थे, गुट सभी खोखले थे, मौका पाते ही अधिकार पाने के प्रयत्न करनेवाले नायक के चारों ओर लोगों का समूह था। कभी कभी भिन्नमतियों की मुकीबतें असली नहीं रही, वे सब हमेशा व्यक्तिगत थी; निजलिंगप्पाजी ने इन समस्याओं को जिस तरह निभाया, उसे देखने पर मानना पड़ेगा कि उन्होंने सफल रीति से निभाया।

राज्य के मुख्य प्रशासक के रूप में, निजलिंगप्पाजी को प्रशासनात्मक और सार्वजनिक स्तरों पर कार्य निभाना था। प्रायः राजनीतिक निर्वहण में वे कनिष्ठ परिणामकारी रहे; इसका भागशः कारण रहा राजकीय परिस्थितियों की निगूढ़ता और भागशः उनके व्यक्तित्व का स्वरूप। वे बहुत ही सौजन्य के व्यक्ति होने के कारण, कठिन परिस्थितियों का सामना करना उनके लिए कठिन रहा। एकीकरण और कांग्रेस के विभाजन जैसी मुश्किलों को निभाने पर भी, उन्हें कठिनतर परिस्थितियों का सामना करना आसान न था। कालेज-फीस को बढ़ना, गोवा विलीन और सीमाविवाद जैसी परिस्थितियों में उन्होंने कानून व्यवस्था को तृप्तिकर रूप से निभाया। उस वक्त, उनकी सहनशीलता और आत्मनियंत्रण भरे स्वभाव ने उनकी सहायता की। प्रशासनात्मक स्तर के बारे में कहे, तो समस्याओं का हमारा विश्लेषण, सीधा नहीं होता है। वह जो भी हो अपने शासनाधिकारी और नौकरों के साथ व्यवहार करते हुए, कोई मुश्किल नहीं हुई – यह निषेधात्मक रूप से ही कहना पड़ेगा। कम से कम सरकार की कार्यनीति के अनुष्ठान का बोझ उठानेवाले अधिकारी वर्ग से अर्थात् सरकारी सचिवों के स्तर पर उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। अपने सहकर्मी मंत्रियों के साथ वे समानों में श्रेष्ठ माने गए थे। मुख्यमंत्री की अपनी अवधि में वे उनके बारे में सार्वजनिक अभिप्राय था कि वे शुचित्व के व्यक्ति हैं। उनका व्यक्तित्व, सच में चुंबक व्यक्तित्व नहीं था। परंतु उनमें अधिकार को प्रजासत्तात्मक रूप से बाँटना, पारदर्शिकता विनय और अधिकार तथा धन कमाने का लालच न होना, सरलता जैसे दृढ़नायकत्व के श्रेष्ठ गुण थे। ये गुण, सार्वजनिकों में भावावेश उत्पन्न न कर सकने पर भी उनको नायक के रूप में, मानने को तैयार करने के लिए काफी थे। दूसरा, शासन सभा में, शासकदल के नायक के रूप में

उन्हें प्रजासत्तात्मक रीति से कार्य निर्वाह करना था। सारांश में, ऐसा कोई भी उदाहरण नहीं है कि वे कभी शासकों के साथ,दर्प अथवा अहंकार का प्रदर्शन करते रहे हो। शासन सभा के प्रकाशित रिपोर्टों को पढ़ने पर कोई भी समझ सकते हैं कि वे एक कुशल संसदीय खिलाडी थे। यहाँ भी ध्यान देने योग्य अंश हैं, उनकी प्रामाणिकता जहाँ कोई दिखावा नहीं था। शब्दों के जादूगर होते हुए भी वे मंत्री , शासक, अधिकारी - सभी के साथ सत्य बोलते थे।

ऊपर का विश्लेषण, उनकी साधनाओं पर आधारित है। परंतु मुख्यमंत्री के रूप में उनकी साधना, सरकार के विचारों को कार्य रूप देने पर निर्भर रहती है। आगे आए मुख्यमंत्रियों से तुलना करने पर, लगता है कि यहाँ भी उनकी साधना अप्रतिम रही। धारणाओं के अनुष्ठान के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण की अनुकूलता के लिए उनके मुख्यमंत्री होने की दो अवधियों – पहली अवधि नवंबर 1 से मई 8,1958 तक की अल्पावधि और दूसरी 1962 मई से 1968 मई तक की – का परिशीलन करना होगा। नए मैसूर राज्य के स्थापित होने की पहली अवधि में, उनके निर्वहण का पहला कार्य था – पाँच विविध शासनाधीन प्रदेशों के भेदों का,– किसी को भी अन्याय न करते हुए – दूर कर, यथास्थिति में समरूप लाने के, एकीकरणोत्तर सवाल का जो उन्होंने सामना किया। इसके अलावा कठिन कार्य था – भावनात्मक एकीकरण–साधना। पिछले चार दशकों की अवधि में राज्य सुभद्र जो है, इसकी बुनियाद रखनेवाले मुख्यमंत्रियों में उनको श्रेय जाता है। पड़ोसी आन्ध्रा और महाराष्ट्र में जो प्रत्येक राज्य के लिए आंदोलन हुए, वैसा यहाँ कुछ नहीं हुआ। उनकी देन को शाश्वत बनानेवाला दूसरा सैद्धांतिक कार्य, कृषि और सिंचाई क्षेत्रों का है। कृषि, सिंचाई और विद्युत उत्पादनों के लिए सहायक शरावती योजना, उनकी साधना का उत्तुंग शिखर है। उसमें कोई गैर कानूनी प्रमाणित होने पर भी, वे कनिष्ठ प्रमाण के हैं। और किसी ने भी निजलिंगप्पाजी पर व्यक्तिगत दोषारोप नहीं किया है। उन्नत राजकीय स्थानों का भ्रष्टाचार निजलिंगप्पोत्तर समय का है। अब उनकी दूसरी अवधि के बारे में – यहाँ भी उन्होंने जो अपनी पहली अवधिं में प्रारंभ किए कार्यों को आगे बढ़ाया और यहाँ सबसे प्रमुख है, निजलिंगप्पाजी की राज्य के औद्योगिक और शैक्षणिक क्षेत्रों को दी गई देन। राज्य की राजनीति को छोड़कर राष्ट्र राजनीति को जानने के बारे में, उन्होंने स्वयं इस लेखक के साथ और अन्य लोगों के साथ किए संवादों में विषाद व्यक्त किया है। उनकी दृष्टि में, इसका

कारण था कि वे अनेक सिंचाई और जलविद्युत योजनाओं को पूरा नहीं कर सके। सामाजिक न्याय तथा समाज कल्याण विषयों के बारे में, उनकी देन सच में ही ध्यान देने योग्य है। कानून की मुश्किलें होने पर भी उन्होंने पिछड़े वर्ग और एस.सी., एस.टी. की स्थिति को सुधारने के कार्य किए। परंतु उन्होंने उन वर्गों को चेतावनी भी दी कि उनका विकास आत्यंतिक रूप में उन्हीं के हाथों में है।

इस जीवन चरित्रकार से खासगी रूप में बात करते हुए उन्होंने विनयपूर्वक कहा कि उनकी दो प्रमुख साधना हैं – शरावती योजना और वृद्ध गरीब अनाथों के लिए पेन्शन योजना। उनके विनय को अलग रखकर यदि देखें तो, राज्य के विकास और समृद्धि के लिए उनसे की गई साधनाओं की शृंखला को ही हम देख सकते हैं। इस सूची को देखने पर, निजलिंगप्पाजी जैसे उनके प्रथम-बड़े जीवन चरित्रकार प्रो. जवरेगौडा जी के वर्णन के अनुसार – निर्विवाद रूप से प्रमाणित होता है कि वे आधुनिक कर्नाटक के महान शिल्पी थे। 1956 में, नए राज्य के मुख्यमंत्री का अधिकार स्वीकार करते ही, अगले वर्ष के मई तक– उन्होंने शरावती जलविद्युत योजना की नींव डाली; और सभी रुकावटों, मुश्किलों के बीच, छः वर्षों की कम अवधि में ही उसे पूरा करके दिखाया। उसमें उन्होंने व्यक्तिगत आसक्ति के कारण निर्वाह किया। उन्हें मालूम था कि राज्य में अधिक संख्यक लोग कृषिक हैं, तो उन्हें सिंचाई योजनाएँ, गरीबी दूर करने व बेरोजगारी के निवारण के लिए अत्यंत आवश्यक है। वास्तव में, वे पूरे राष्ट्र में ही अधिक दूरदर्शी मुख्यमंत्री थे। नारायणपुर के ऊपर कृष्णा योजना और आलमट्टी बाँध–योजनाओं को प्रारंभ कर श्री लाल बहादूर शास्त्री जी से शिलान्यास कराया। इन्होंने ही मलप्रभा योजना का शिलान्यास भी इंदिराजी से कराया। घटप्रभा, हेमावती, हारंगी और कबिनी आदि योजनाओं में भी उन्हीं का परिश्रम था। इन योजनाओं के कारण कर्नाटक की जनता को अत्यधिक सहूलियत मिली। साथ ही उन्होंने वन-विकास योजना को भी महत्व दिया।

बेंगलूर नगर के लोगों को पीने का पानी देने का उनका प्रयत्न कावेरी योजना के रूप में सफल हुआ। पीने के पानी की समस्या का निवारण करने की उनकी पालिसी से मंगळूर, मैसूर, बेळगांव, बळ्ळारी और चित्रदुर्ग शहरों ने भी उपयोग पाया। कृषि विकास का उनका सपना, कभी भी औद्योगिक विकास

के लिए घातक नहीं था। हुबळ्ळी, मैसूर और राज्य के अन्य शहरों में, छोटे व बड़े उद्योगों के विकास के लिए अनेक सहूलियतें दीं। राज्य में अल्यूमिनियम इलेक्ट्रानिक् और रेयान उद्योगों को उनकी सरकार ने ही सबसे पहले प्रारंभ किया। उनके मुख्यमंत्री की अवधि में राज्य के विविध स्थानों में चीनी के कारखानों की स्थापना हुई। कर्नाटक के उत्कृष्ट तंत्रज्ञान-राजनीतिज्ञ की जन्म शताब्दी के नाम पर, विश्वेश्वरय्या औद्योगिक और तांत्रिक वस्तु संग्रहालय की स्थापना में उनका ही प्रमुख पात्र रहा। उद्योगों की स्थापना कर, राज्य को विकास-पथ पर आगे ले जाने के लिए, उन्होंने मुंबई से धनी लोगों को आमंत्रित किया। भू-सुधारणा कार्य में डॉ. बी.डी. जत्तीजी के नेतृत्व में रचित समिति द्वारा सूचित मार्ग पर आगे बढ़ते हुए, उनकी सरकार अनेक बदलाव लाई। इससे अनेक भूहीन परिवारों को सहूलियतें प्राप्त हुईं। अनेक ग्रामों में स्कूलों की स्थापना, पीने के पानी की सहूलियत और सड़कों के निर्माण आदि करते हुए। उन्होंने ग्रामीण कर्नाटक के विकास की ओर भी ध्यान दिया। राजनीतिक संत्रस्तों व अनाथ वृद्धों को 'निवृत्ति-वेतन' को मंजूर करने में उनका महत्वपूर्ण पात्र था। उस समय वयोवृद्धों को निवृत्ति वेतन मंजूर करने का नियम लानेवाला राज्य और पूरे देश में कर्नाटक ही पहला था। दूसरी जातिवालों के घरों के बीच में, हरिजनों को घर बनाकर देने के द्वारा उन्होंने अस्पृश्यता-निवारण का प्रयत्न किया। राज्य के शैक्षणिक विकास में उनकी देन ध्यान देने योग्य है। उनकी अधिकारावधि में बेंगलूर विश्वविद्यालय और हेब्बाळ में कृषि विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। उन्नत शिक्षा के साथ ही, प्राथमिक और प्रौढ़ शिक्षा को भी उन्होंने महत्व दिया। विश्वविद्यालय की शिक्षा के, प्राथमिक व प्रौढ शिक्षा की ओर आद्यता लानेवाले देश के कुछ ही मुख्यमंत्रियों में वे एक हैं। उनकी मुख्यमंत्री की अवधि में हुबळी, दावणगेरे, बेळगांव, गुलबर्गा, बळ्ळारी, बेंगलूर (सेंट जॉन्स) और मणिपाल में वैद्यकीय कालेजों की स्थापना हुई। कन्नड़ भाषा, साहित्य और संस्कृति के विकास पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। लेखकों व कलाकारों को मासिक-निवृत्तिवेतन देने की पद्धति को उन्होंने शुरू किया।

सबसे अधिक प्रशासनिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक आयामों में, विविध प्रदेशों में जो भिन्नता थी, उसका निवारण करते हुए कर्नाटक में भावैक्यता को रूपित कर, उसे एक विशिष्ट अनन्यता देने में उनकी देन अमूल्य है। उसमें प्रमुख है कानून, और उसमें पट्टेदारी की व्यवस्था में, समरूप

साधते हुए उन्होंने ही कर्नाटक को एक बनाया। महाराष्ट्र और बाकी पडोसी राज्यों के साथ जो सीमाविवाद था, उसका कुशलतापूर्वक निर्वाह करते हुए, राज्य की भौगोलिक समग्रता की रक्षा करने में उन्होंने महत्वपूर्ण पात्र निभाया। सौजन्यतापूर्ण होते हुए वे दृढ़ता से भरे थे। इसकारण लेन-देन के विचार का अनुसरण करके भी मूलभूत विषयों के लिए वे राजी नहीं होनेवाले थे। इस विषय में उनका पूर्णरूप से गाँधी मार्ग था। वेंकटप्पा कला गैलरी, निम्हान्स, किड्वाई स्मारक अस्पताल और क्रिकेट स्टेडियम – ये सब उन्हीं की साधनाएँ हैं। कई रुकावटों के बीच में ही, प्रायः देश के अत्यंत श्रेष्ठ स्टेडियम का निर्माण हुआ। भारत की संस्कृति और सभ्यता के बारे में उनकी बद्धता के कारण, बेंगलूर में 'भारतीय विद्याभवन' की शाखा की स्थापना के लिए उन्होंने उदारता से भूमि दे दी।

कर्नाटक के प्रथम मुख्यमंत्री के रूप में अन्य साधनाओं में चुनी हुई साधनाओं की सूची यह है – बडे पैमाने में 'कुदुरेमुख आइरन ओर योजना' केंद्र की सहायता न पाते हुए विफल छोटी कार-निर्माण योजना; तिबेतियन निराश्रितों को उत्तर कन्नड़ जिले का मुंडगोड़ ग्राम तथा मैसूर जिले के पिरियापट्टन तालूक में पुनर्वसति के लिए भूमि देना। सूची अभी लंबी हो सकती है परंतु, प्रथम मुख्यमंत्री के रूप में और आधुनिक कर्नाटक राज्य के शिल्पी के रूप में उनकी महान् साधना के प्रदर्शन के लिए इतना काफी है।

संक्षेप में, मुख्यमंत्री के रूप में उनकी साधनाओं का कोई भी वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन उन्हें कर्नाटक के अत्यंत श्रेष्ठ मुख्यमंत्री ही नहीं, भारत के एक श्रेष्ठ व्यक्तित्व के रूप में मानने को बाध्य करता है।

6. कांग्रेस–विभाजन और उसके बाद

आधुनिक भारत के राजकीय इतिहास में उसमें भी, उत्तर उपनिवेश काल के, कांग्रेस विभाजन के केंद्र के पात्र के बारे में, किसी भी विवाद का होना संभव नहीं है। राजनीतिक संरचना में और ब्रिटिश नियंत्रण के प्रारंभ से भी, आधुनिक भारत में क्रियाशील और गहरे समाजिक-आर्थिक तथा सांस्कृतिक प्रक्रियाओं से उसका संबंध – इनके स्वरूप को पहचानने में कठिन समस्या है। परंतु नागरिक समाजों के गहरे, कभी कभी समाधान न पानेवाली मुश्किलों में फँसने के कारण, कोई भी स्वसामर्थ्य न पाते हुए, राजनीति नागरिक समाज के कंट्रोल में न होकर, अधिकतर स्वायत्त, अधिकार केंद्रित उत्तर उपनिवेशवादी देशों में आधुनिक उदार, औद्योगीकृत पूंजीपति व्यवस्थावाले पश्चिमी देशों के समान, बदलने का संभव ही अधिक है। उसका कारण उपनिवेशकालीन और उत्तर उपनिवेशकालीन भारतीय राजकीय प्रक्रियायें उदार पूंजीवादी पश्चिमी देशों के जैसे परिमित संरचनात्मक स्तर से भी बहुत गहरे प्रामुख्यता को पाना है। इस कारण, इस परिप्रेक्ष्य में 1969 के कांग्रेस विभाजन को राजनीतिक घटना से अधिक मानना संभव होता है। उस संकीर्ण ऐतिहासिक नाटक में निजलिंगप्पाजी का नेता बनने के लिए अप्रतीक्षित ऐतिहासिक संदर्भ ही कारण बनता है। परंतु हमें समझना चाहिए कि वह एकदम से हुआ न मानकर संबंधित ऐतिहासिक घटनाओं से उद्भूत एक स्फोटक्रिया समझना चाहिए। इसलिए इससे संबंधित दृश्यावली का सामने रखना अनिवार्य होता है।

यह सच होने पर भी कि इंदिरा गाँधीजी और निजलिंगप्पाजी इन दो व्यक्तियों से संबंधित एक दृढ़ वैयक्तिक या वैयक्तिक आचरणों का विस्तृत व गहरी व्यक्तियेतर शक्तियों के ऐतिहासिक संदर्भों में रखकर परिशीलन करना होगा। और यह पीढ़ियों के बीच के संघर्ष का व्यक्तरूप था। 1960 तक और जो 1947 के बाद, उपनिवेश की समाप्ति के बाद पैदा होनेवालों को, राष्ट्रीयता व आदर्शों से भरे गाँधी सिद्धांत व अनुष्ठानविहीन परिसरों में पलनेवालों को अपने सामर्थ्य का प्रदर्शन करने का संदर्भ निर्मित हुआ था।

जो भी हो, ब्रिटिशो के विरुद्ध गाँधीजी द्वारा, लोगों में भरे स्वार्थत्याग और राष्ट्रीयबद्धता जैसे उन्नत आदर्शों का परिवेश दूर होकर 1947 के बाद की पीढ़ी को – रश्दी के शब्दों में, मध्यरात्री के बच्चों को – दिखाई नहीं देता था। इससे भी अधिक रहे मोहभंग और सिनिकता (चिढ़चिढ़ाहट), पिछले गाँधीजी के समय के नैतिक आदर्शवाले नेता, अधिकार के नशे में आज अधिकारलोलुप राजनेता के रूप में परिवर्तित हो गए थे। कांग्रेस पक्ष ने ही राष्ट्रीय मनोभाव को उभरनेवाला पक्ष न रहकर पूर्णरूप से बदलकर, नया अवतार लिया था। पटेल, नेहरू जैसे महानुभाव जो स्वातंत्र्यवीर के रूप में महान थे, तार्किक व कानूनबद्ध रूप में, अधिकार राजनीति में फँस गए थे। परंतु गाँधीजी के तीव्र प्रभाव के कारण वे अधिकारदाही पशु नहीं बने थे। इस आदर्श-पतन की आलोचना करने से पहले, ध्यान देना चाहिए कि वह एक ऐतिहासिक प्रक्रिया रही। गाँधीजी के मांत्रिक युग से आए निजलिंगप्पाजी जैसे लोग, उन्नत-मानवतावादी, उदार प्रजासत्तात्मक व्यवस्था की कानूनबद्ध सांस्थिक परिधि में आदर्श और वास्तव के बीच के संतुलन के लिए, संघर्ष करनेवाले मानवीय आचरण में निरत रहे। परंतु इस पीढी के बहुत लोगों ने इस संतुलन की प्रक्रिया में स्वयं अधिकार के जाल में फँसकर, गाँधीजी के आदर्शवाद को संपूर्णरूप से हवा में उड़ा दिया। सारांश में – कनिष्ट रूप में, भागशः सिंडिकेट और उसके विरोधी पक्षवालों के बीच का यह संघर्ष, पीढ़ियों के बीच का संघर्ष ही था। इतिहास का यह व्यंग्य था कि गाँधीजी के आदर्शों को हवा में उड़ानेवाले, गाँधीकाल की पीढ़ी के विरुद्ध, गाँधीजीयोत्तर पीढ़ी ही विरोध कर रही थी। इस कारण, उत्तर उपनिवेश का एक देश, आदर्श व वास्तव के बीच, एक न्यायोचित संतुलन के लिए होनेवाली प्रक्रिया के भाग के रूप में, इस विभाजन को देखना चाहिए; न कि दूसरे दृष्टिकोण से। इस तरह, इस प्रक्रिया में, लोलक का एक सीमा से दूसरी सीमा तक जाकर – अर्थात् आदर्श से वास्तव तक और वास्तव से फिर आदर्श की ओर लौटने की रीति को देखकर आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है। इस ऐतिहासिक अंतर दृष्टि को ग्रहण करना है, न कि अपने इष्टनिष्ट के अनुसार इंदिरा गाँधी या सिंडिकेट की टीका करने के जिह्वाचापल्य से। यह सच है कि इन दोनों के बारे में हमें स्पष्ट विचार करना चाहिए; फिर भी उसे व्यापक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में रखकर तेज करना होगा। तभी, इस महानाटक के पात्रों को न्याय दिलाना संभव होगा।

अब हम, दृढ़ ऐतिहासिक घटनाओं की ओर ध्यान देते हुए, ऊपर निरूपित तात्विक भूमिका में उसका विश्लेषण करने का प्रयत्न करेंगे। निजलिंगप्पाजी हमेशा स्थानीय जनता और उनकी भलाई के लिए बद्ध एक दृढ़ प्रदेशिक नेता होने पर भी वे देश के राजनीतिक जीवन तथा नेताओं के साथ सदा काफी संपर्क में रहते थे। वे संविधान रचना सभा के सदस्य रहे; संसद सदस्य रहे; कई बुजुर्ग नेताओं के साथ, उनमें भी सरदार पटेलजी के साथ बराबर पत्र-व्यवहार रखते हुए, निकट संपर्क में रहकर मार्गदर्शन पाते थे। परंतु नेहरूजी के साथ निकटता न रखते थे; उनकी भावना थी कि नेहरूजी को ग्रामीण भारत की समझ या ज्ञान कम है। उनका विश्वास था कि पटेलजी और अधिक उत्तम प्रधानमंत्री बन सकते थे। परंतु इसका मतलब यह नहीं कि नेहरूजी के वैयक्तिक गुण-स्वाभाव के बारे में, उनकी आकर्षकता प्रामाणिकता तथा उनके राष्ट्रीय मनोभाव के बारे में उन्हें गौरव नहीं था। यही दूरी नेहरूजी ने भी निजलिंगप्पाजी से रखी थी। दूरी थी मगर कडवाहट नहीं। यह और उनकी गहरी प्रादेशिक बद्धता ने निजलिंगप्पाजी को, देश-राजनीति से दूर रहने के लिए मजबूर किया था। राष्ट्रराजनीति के जंगल में उनका पहला प्रवास था – जब चीनी आक्रमण से नेहरूजी हताश हुए और वे बीमार पड़े – करीब 1963 से अनेक बुजुर्ग कांग्रेस नेता एक जुट हुए, फिर उसने 'सिंडिकेट' नाम पाया और नेहरूजी के बाद, समस्याओं का सामना करना पड़ा तब से। शुरू में इस समूह में, अतुल्य घोष, निजलिंगप्पा, संजीवरेड्डी, श्रीनिवास मल्य और कामराज नाडार थे। वे सभी दक्षिण भारत के पुण्यक्षेत्र तिरुपति में – वेंकटेश्वर के दर्शन के बहाने, नेहरूजी के अस्वस्थताकी भूमिका में उद्‌भत होनेवाली अनिश्चितता और देश के भविष्य के बारे में चर्चा करने के लिए रहस्य में, इकट्ठे हुए थे। इसके अलावा, उस समय फरूकाबाद अमरोह और राजकोट में हुए उपचुनावों में कांग्रेस की साधना अच्छी नहीं थी, मोरारजी से रूपित स्वर्ण नियंत्रण और अनिवार्य जमा योजनाओं के कारण, पक्ष और सरकार की लोकप्रियता घट रही थी। उनका तंत्र यह था कि पक्ष को अपने वश में लेकर, उसे अपने विचारानुसार सही मार्ग पर ले जाना चाहिए। उनके सामने तुर्त कार्यथा कांग्रेस पक्ष को जितनी जल्दी हो सके, एक नए समर्थ नेता को ढूँढना। उन्होंने सोचा कि नेहरूजी का स्वास्थ्य गिरते जाने के कारण, कोई भी जो पक्ष का अध्यक्ष बनेगा उसे अभी भविष्य में उद्भूत होनेवाले उत्तराधिकारी को चुनने में, प्रधान पात्र लेने लायक हो। उन्होंने

श्री कामराज नाडर और श्री लालबहादुर शास्त्रीजी के साथ डॉ. एस. निजलिंगप्पा जी

निर्णय किया कि नेहरूजी को लाल बहादूर शास्त्रीजी ही योग्य व्यक्ति के रूप में मान्य है। मोरारजी हठी स्वभाव के थे, वे जल्दी समझौते नहीं करनेवाले थे; इसकारण वे सूक्त नहीं थे। यदि शास्त्रीजी न माने तो किसी दूसरे व्यक्ति को लाने के लिए निजलिंगप्पाजी को बताया गया। शास्त्री जी के पर्याय बनने के लिए, उन सभी ने कामराज को मनाया। उन्होंने सोचा कि पक्ष को सिंडिकेट के वश में रखने के लिए यह योग्य व्यवस्था है। उन्हें तर्क करना था कि इंदिरा गाँधी को दूर रखने के लिए वे मोरारजी को दूर रख रहे हैं। परंतु शास्त्रीजी के विरुद्ध, स्पर्धा करने मोरारजी तैयार हो गए। मोरारजी के बारे में अफवाह फैलाई गई कि वे नेहरूजी को मान्य नहीं हैं। नेहरूजी शास्त्रीजी के नाम के विरुद्ध नहीं थे। परंतु उन्होंने कामराज को ही उस स्थान की जिम्मेदारी लेने की सूचना दी। नेहरूजी ने ही जो उन्हें पसंद नहीं, उन्हें अधिकार से दूर रखने के लिए कामराज का उपयोग कर कामराज सूत्र-तंत्र को रूपित किया था। तिरुपति में मिले लोगों के अलावा सिंडिकेट के बाकी सदस्य थे एस.के. पाटील और बिजू पटनायक। परंतु वह एक सुसंबद्ध घटक न होकर, प्रमुखों के समूह के अलावा उसकी सीमाएँ स्पष्ट नहीं थी।

नेहरूजी की मृत्यु अचानक हो गई तो पक्ष के सहकर्मियों में घबराहट उत्पन्न हो गई तो फिर से सिंडिकेट क्रियाशील हो गया। उत्तराधिकारी नाटक में 1964 में उसे फिर से, प्रमुख पात्र लेना पड़ा। अस्थायी प्रधानमंत्री के रूप में जी.एल. नंदा जी ने शपथ ग्रहण किया। अब सवाल था कि नेहरूजी के बाद कौन? शास्त्रीजी और मोरारजी के बीच गेंद उछलती रही। अंत में शास्त्रीजी जीत गए। उसका कारण था कि वे जिद्दी मोरारजी से सरल थे। शास्त्रीजी के मंत्रिमण्डल में शामिल मोरारजी को दूसरा स्थान भी नहीं मिला, वह नंदाजी को मिला। शास्त्रीजी ने इंदिरा गाँधीजी को भी मंत्रि मण्डल में शामिल कर लिया। परंतु उन्हीं की इच्छानुसार, साधारण वार्ता और प्रसार विभाग दिया गया। शास्त्रीजी की दूर ताश्कंद में अचानक मृत्यु हुई तो तीसरी बार उत्तराधिकारी मोरारजी के बदले इंदिरागाँधी जी को चुनने में सिंडिकेट ने फिर से महत्वपूर्ण पात्र निभाया। इसके लिए भी वही कारण था कि उन्हें निभाना सरल होगा। सिंडिकेट के सदस्यत्व के कारण निजलिंगप्पाजी दूर देहली में रहे तो, बेंगलूर से दूर हो गए थे। यह दूरी उनको समझ में नहीं आई थी। पहले झिझकने पर भी राज्य से बाहर उनकी जड़े फैलकर, देहली के तंत्र में तैर रही थीं। वीरेंद्र

पाटील जी रामकृष्ण हेगडे जी और गुरुपाद स्वामीजी आदि उनके मित्रों ने पहले सांगली में तय होकर फिर बदलकर हैदराबाद में होनेवाले 71 वें कांग्रेस सभा में अध्यक्ष न बनने की सलाह दी। विध्वंसक रूपी कोइना भूकंप के कारण, स्थान में बदलाव हुआ था। अब हम निजलिंगप्पाजी के अध्यक्ष भाषण पर गौर करेंगे। उसमें देश की राजनीतिक समस्याओं के बारे में उनका चिंतन तथा आगे चलकर, देश की राजनीति में लेनेवाले अधिक महत्वपूर्ण पात्र की सूचना प्राप्त होती है। निजलिंगप्पाजी के अध्यक्ष बनने में इंदिरा गाँधीजी की आसक्ति के बारे में आधार मिलते हैं। प्रायः इसका कारण सिंडिकेट ने जिस कारण से, इंदिरा गाँधीजी को प्रधानमंत्री पद के लिए चुना था, वही –अर्थात् जैसे वे चाहने वैसे, काम करवा सकते हैं। इंदिरा गाँधीजी के विषय में, सिंडिकेट और निजलिंगप्पाजी जैसे बहक गए थे, वैसे ही निजलिंगप्पाजी के विषय में इंदिराजी बहक गई थीं।

निजलिंगप्पाजी ने अपने भाषण के आरंभ में कहा कि पिछले बीस वर्षों में काफी प्रगति साधने पर भी पार्टी और सरकार में बहुत ही अतृप्ति रह गई है। हाल के चुनावों में कांग्रेस की हार की ओर उन्होंने ध्यान दिलाया। उन्होंने कहा कि विमर्शात्मक अंतर्वीक्षण करते हुए तत्द्वारा देश की जो गरीबी, बेरोजगारी, बिमारियाँ और अनक्षरता जैसी मूलभूत समस्याएँ हैं, उनके समाधान के आत्मविश्वास को बढ़ा लेना चाहिए। यह भी कहा कि पिछले दो दशकों से कांग्रेस ही शासन करने के कारण, साधनाएँ तथा विफलताएँ दोनों में उसकी जिम्मेदारी है। अभी राजनीतिक परिस्थिति बदल गई है। अनेक राज्यों में, कांग्रेसेतर सरकार ज्यादातर संयुक्तरंग के जैसी सम्मिश्र सरकार के रूप में, अधिकार चला रही हैं। इन सम्मिश्र सरकारों की अल्पकालीन अवधि, यह दिखती है कि ये कांग्रेस के लिए समर्थ पर्याय नहीं हो सकती हैं। इसके पीछे स्वहितासक्त राजनीतिज्ञों का कांग्रेस विरोधी विचार काम करता है।

कांग्रेसेतर सरकार के राज्यों में कानून की स्थिति बिगड़ गई है। इसकारण कानून टूटकर हिंसाचार फैल रहा है। इससे भारत की समग्रता टूट रही है। भाषा की समस्या के बारे में बात करते हुए उन्होंने हिन्दी और हिन्दीतर वर्गो से कहा कि नेहरूजी के समय में रूपित विचारों के अनुसार एक संतुलित कार्यक्रम बनाए। सभी राज्यों से उन्होंने बिनती की कि, सीमाविवाद, पानी का बँटवारा जैसी अंतरराज्य समस्याओं का लेन-देन के आधार पर समाधान ढूँढ

ले। चीनी आक्रमण, पाकिस्तान युद्ध और अकाल के कारण धन की घाटे की स्थिति और आहार की कमी आ गयी है। देश की दुस्थिति की ओर ध्यान दिलाते हुए, उन्होंने अभिप्राय व्यक्त किया कि, कृषि क्षेत्र में थोडा विकास हुआ है। इसका कारण है 'हरित-क्रांति'। इससे कृषि उत्पादन अधिक होकर ग्रामीण ओर सामान्य जनता का जीवन सुखी होगा। खाद, पानी अच्छे बीज आदि से कृषि क्षेत्र में अधिक धन लगाने के लिए कहा। उन्होंने अधिक धन न देनेवाले, दूसरे क्षेत्र जैसे बैंकों के ऋण देने के क्षेत्र की ओर भी ध्यान दिलाया। परंतु बहुत मुख्य क्षेत्र है –कृषि, अर्थ व्यवस्था का जीवद्रव्य है जलयोजना, उन्होंने कहा कि जलनिर्वहण की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। इन शुद्ध आर्थिक प्रयत्नों को, भूसुधार और पंचायत राज्य व्यवस्था को क्रांतिकारी समाजिक राजनीतिक बदलावों से बलिष्ठ बनाने को कहा। औद्योगिक क्षेत्र के बारे में कहना हो तो बड़े उद्योगों की स्थापना होनी चाहिए। परंतु यह 'दैत्यता का पागलपन' मार्केट से ज्यादा मूलभूत रूप में, कच्ची सामग्री और पानी के औद्योगिक वितरण और विकेंद्रीकरण से हानि होगी। श्रम के क्षेत्र के संबंध में श्रमिकों की न्याययुत माँगों को पूरा करना चाहिए फिर भी उसके गैरजिम्मेदारी और निषेधात्मक विचारों को दबाना होगा। छोटे व गृह-उद्योगों को अधिक आद्यता देनी होगी। इससे, सभी स्तरों में, काफी रोजगारों की सृष्टि होगी। सामाजिक न्याय के बारे में, एस.सी., एस.टी. वर्गों की स्थिति में सुधार की ओर भी अधिक आसक्ति दिखानी है। अब, विदेश नीति पर उनका अभिप्राय था कि नेहरूजी के विचारों का अनुसरण करना चाहिए। इन शब्दों के द्वारा उन्होंने नेहरूजी को गौरवार्पण किया –"हमारी संस्कृति के अत्युत्तम उदाहरण स्वरूप जगत की राजनीति के अत्यंत समर्थ अध्येता और सार्वकालिक श्रेष्ठ राजनेताओं में एक, नेहरूजी हमारे लिए अमूल्य अनुभव छोड़ गए हैं। चीन के बारे में निजलिंगप्पाजी ने शांतिप्रिय चीनी लोग और सर्वाधिकारी चीनी लोग – इस तरह का भेद करते हुए कहा – "सर्वाधिकारी विचार तथा विस्तरणादाही कम्युनिस्ट पक्ष के नायकत्व अपने स्वार्थहित के लिए कम्युनिष्ट सिद्धांत को ही बदल रहा है।" उन्होंने आशय व्यक्त किया कि न्यायबद्धता, सौहार्द्रता पर आधारित संबंध बढ़ना चाहिए। उन्होंने कहा कि पाकिस्तान के बारे में भी हमारे विचार वैसे ही होने चाहिए। भारत के तटस्थ राष्ट्र होने पर भी उसकी तरफ सहायहस्त देनेवाले, अमेरिका और रूस राष्ट्रों को उन्होंने

कृतज्ञता अर्पित की। जो भी हो, विदेशी सहायता अल्प होती है; इसलिए, स्वसहाय और स्वावलंबन ही हमारा अंतिम ध्येय है। उसके बाद उन्होंने, परिवार नियोजन की प्रामुख्यता पर जोर डाला। उन्होंने फिर कहा कि ब्रिटिशों के शासन के बाद, देश के पूरे शासन तंत्र का गंभीर परामर्श होना चाहिए। क्या वह हमारे आदर्श, प्रजातंत्र और कल्याणराज्य की परिकल्पना के अनुसार है? विकास योजनाओं में, लोगों को शामिल करने का प्रश्न भी मुख्य है। कांग्रेस द्वारा अंगीकृत और प्रजासत्तात्मक तत्व – व्यक्ति घनिष्टता और सामाजिक न्याय पर आधारित, सबसे प्रमख ध्येय – ''प्रजासत्तात्मक समाजवाद'' की समीक्षा करें तो तीव्र निराशा होती है। इन परिकल्पनाओं के बारे में, अधिक स्पष्टता और अनुष्ठान देश के सभी पार्टियों से होना चाहिए। इस दिशा में कांग्रेस द्वारा प्रतिपादित दस अंशों के कार्यक्रमों का, जनता के प्रज्ञापूर्वक सहयोग से ही अनुष्ठान हो सकता है। कांग्रेस पर अधिक जिम्मेदारी है। क्योंकि वही एक ऐसा पार्टी है जिसकी जड़ें संगठनात्मक हैं और उसकी परंपरा महान है। इस संदर्भ में गाँधीजी का स्मरण करते हुए, उन्होंने कहा – गाँधीजी के दिखाये मार्ग – सत्य और अहिंसा को अपनी वृत्ति और आचरण में लागू करते हुए, हमें छोटे सहकर्मियों पर, पुनःदर्शन करने में प्रभाव डालना चाहिए।

निजलिंगप्पाजी ने केंद्र-राज्य के संबंधों पर अपनी बातें रखीं। उन्होंने ठीक तरह से पहचाना कि अलग-अलग पार्टियों के केंद्र और राज्य में शासन करने के कारण, इस विषय को नया अर्थ प्राप्त हुआ है। राज्यों को अधिक स्वायत्तता और संसाधनों को देते हुए, उन्हें अधिक जिम्मेदारी देने का समय आ गया है। साथ ही केंद्र विरोधी विचार पर, जागरूकता से ध्यान देना होगा और उसको राजकीय अस्त्र बनाने पर रोक लगाना होगा। कार्ययोग्य संगठनात्मक प्रज्ञावाले व्यक्ति होने के नाते, उनका आशय था कि कांग्रेस को उत्तम निर्वहण व कार्यक्षमता से भर दे। सबसे मुख्य बात है कि आमजनता को शिक्षित बना दे, उन्हें समझाना होगा कि कर्म का मतलब भाग्य नहीं, वह सृजनशील कार्यतत्परता है। फिर उन्होंने युवावर्ग के देश के विकास में पात्र का विश्लेषण किया। उन्होंने कहा कि विविध स्तरों की विभिन्न सरकारों के बीच उत्तम सहकार की आवश्यकता है। कांग्रेस पर भरोसा और भारत की जनता पर विश्वास – इनके द्वारा आशावाद को अपने गहरे चिंतन से सुव्यवस्थित, व्यापक विचार को अभिव्यक्त करते हुए अपना भाषण समाप्त किया।

प्रधानमंत्री के रूप में, इंदिरागाँधी और कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में निजलिंगप्पाजी इनके बीच का रिश्ता, किसी भी समय पर समस्यात्मक होना अनिवार्य था। इसके लिए, उनके व्यक्तित्वों और सैद्धांतिक भिन्नता के साथ साथ, संसदीय व्यवस्था के अंतर्गत, संसद और पार्टी इनके बीच के संबंध की अस्पष्टता और संघर्ष ही कारण थे। इस समस्या के लिए कोई संरचनात्मक समाधान मुमकिन नहीं था। केवल वैयक्तिक स्तर पर समझौता मात्र हो सकता था। समस्या यह थी कि पार्टी के अभ्यर्थी के रूप में, चुने गए प्रधानमंत्री को पार्टी के लिए जिम्मेदार रहना होगा अथवा पार्टी से देश ही मुख्य है, उनकी इस दृष्टि के कारण पूरा देश ही जिम्मेदारी से रहे। नेहरूजी को भी, पुरुषोत्तमदास टंडनजी के कारण, यह समस्या सामने आई थी। निजलिंगप्पाजी और इंदिरागाँधी जी के सामने भी यही समस्या थी। इसे वास्तव में ही एक सहज समस्या के रूप में देखना पड़ता है। इन दोनों के बीच का संबंध किस स्तर पर कडुआ हुआ – इसकी ओर उंगली दिखाना मुश्किल है। इसलिए समय समय पर हुई घटनाओं की भूमिका में, उनका परिशीलन करना होगा। 1968 अगस्त में, जब रूस ने चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण किया तब निजलिंगप्पाजी तथा अतुलघोषजी, अशोक मेहताजी, सी.बी. गुप्ताजी और गुरुपादस्वामीजी जैसे उनके अन्य उदारवादी तथा प्रजासत्तात्मक समाजवादी मित्रों ने यू.एस.एस.आर का इंदिरा गाँधीजी के रूस समर्थक विचार का उपेक्षा करते हुए खंड़न किया। परंतु ऐसे मतभेदों का जल्दी ही वैक्तिक स्तर तक पहुँचने का खतरा रहता है। इसके अलावा जैसे देखा गया है, उन दोनों के बीच, पीढी के अंतर की भिन्नता भी कार्यशील रही। प्रधानमंत्री अब अपने चारों ओर युवाओं को इकट्ठा कर रही थी। परंतु इस संदर्भ में कांग्रेस वरिष्ठों के पीछे, स्वातंत्र्य संघर्ष काल से साथ रहनेवाले बुजुर्गों का शामिल होना संभव था। साथ ही, सरकार में भ्रष्टाचार के बढ़ने के विषय में और अधिकार पाने के लिए पक्ष के सदस्य अंदर ही अंदर प्रयत्न कर रहे थे सो, इस विषय में प्रधानमंत्रीजी पक्ष के अध्यक्ष के जैसे कठिन निर्धार नहीं ले सकती थीं।

कांग्रेस पक्ष के अध्यक्ष के रूप में, निजलिंगप्पाजी बडे ही प्रज्ञावान कार्यकर्ता थे। अपने कर्तव्य का निष्ठा से निर्वाह करने के मनोभाव के थे। सामने आए, छोटे छोटे विषयों का भी सूक्ष्मता से परिशीलन करते थे। पार्टी और सार्वजनिक क्षेत्र में, दिन ब दिन नैतिक स्तर को गिरते देखकर और पुराने

गाँधीजी के आदर्शों से दूर जाते देखकर उन्हें आघात हो रहा था। देहली का उनका घर, सबके लिए खुला था। लोगों के आते-जाते, वह एक सार्वजनिक मंच ही बन गया था। अपने साथ संपर्क रखनेवाले लोगों के विषय में और अपने बारे में भी वे अनुशासित थे। सबेरे जल्दी उठकर, आठ बजे से सामन्यतः रात के दस बजे तक अपने कार्य में तल्लीन रहते थे। कभी कभी यह आधीरात तक भी चलता रहता था। उनका जलपान, दो पहर का खाना और रात का खाना भी, इन्हीं कामों के बीच चलता रहता था। इस तरह उनके खासगी जीवन और सार्वजनिक जीवन में ज्यादा अंतर नहीं था। केवल चुनाव कार्य और अधिकार ग्रहण की वेदी बनकर मंदगति में सामने आती हुई, पार्टी की संगठनात्मक समस्याएँ उन्हें शिथिल बना रही थीं। गाँधावादी निष्ठा के निजलिंगप्पाजी जैसे व्यक्तियों के लिए यह पीडादायक अनुभव था। हमारे राष्ट्र के सार्वजनिक और राजनीतिक जीवन की नैतिकता के गिरते जाने के प्रसंगों के विवरणों से, उनकी दिनचर्या भरी ही। यदि, देश के भ्रष्टाचार और नैतिक पतन के इतिहास की पुनःरचना का प्रसंग आए तो उनकी दिनचरी का उपयोग होगा।

इसी बीच इंदिरा गाँधीजी और उनके बीच के अभिप्राय भेद बढ़ रहे थे। सिंडिकेट कहलानेवाले, समूह के वरिष्ठ नेता अतुल्य घोष, एस.के. पाटील, कामराज नाडार और संजीवरेड्डीजी की बातों पर ध्यान न देते हुए, दिनेश सिंह जैसे संशयास्पद व्यवहारवाले लोगों में उनके अधिक विश्वास दिखाने पर, उन्हें बुरा लगता था। इस संदर्भ में निजलिंगप्पाजी, इंदिरा गाँधीजी के बदले उनके चारों ओर के मित्रमण्डल पर आक्षेप करने पर आतुर थे। यदि स्वयं सुधार कर, अपने सहकर्मियों पर विश्वास रखते हुए वस्तुनिष्ठता और निष्पक्षता का शासन करे तो, उन्हें सभी तरह से समर्थन देने का आश्वासन दिया।

कुछ राज्यों में, 1969 के प्रारंभ में, चुनाव होनेवाले थे। यथा प्रकार सभी को चुनाव का ज्वर चढ़ा। पार्टी में अचानक प्राण संचार शुरू हुआ। इसी संदर्भ में, राजनीतिक लोगों व मतदाताओं के कठोर मुखों के दर्शन होते हैं। कांग्रेस को अंदरूनी झगड़े, इंदिरा गाँधीजी और मोरार्जी देसाई जी के समर्थकों के अलग अलग गुट बन गए; और सबके कठोर मुखों के दर्शन होने लगे। परंतु, आसपास के, इन विद्यमानों से दूर रहकर, अध्यक्षजी ने अपनी मूलभूत बद्धता – देश और उसकी रक्षा और प्रगति की ओर मात्र ध्यान देने के बारे में ही

सोचा। पहले जो गाँधीवादी थे, अबजो गाँधी विरोधी कार्यों में लगे रहे तो निजलिंगप्पाजी को बड़ा ही आघात लगा होगा। विरुद्ध गुटों के बीच में से जाने का कठिन कार्य था उनका। सिंडेकेट के मित्रमण्डल और इंदिरा गाँधीजी के गुटों के बीच में से दोनों को अन्याय न होने की रीति में उन्हें असिधाराव्रत चलाना था। इस सूक्ष्म कार्य में, अपने सहज निष्पक्ष गुण, चेहरे पर मुस्कुराहट के द्वारा व्यक्त होता हुआ, सौजन्यपूर्ण, अनाक्रमणकारी उनका व्यवहार और असीम सहनशक्ति इनके कारण, निजलिंगप्पाजी दृढ़ रह सकते थे। इस प्रकार अपनी पार्टी को या खुद को, कोई नुकसान न होने की रीति में वे अपनी अध्यक्षता के प्रथम वर्ष को पूरा कर सके। शुद्ध वैयक्तिक और व्यक्तिगत स्तर पर, इस अवधि में, निजलिंगप्पाजी पर अधिक विशाल अंतर्राष्ट्रीय प्रभाव पड़ा। इससे उनका व्यक्तित्व परिपक्व हुआ। इसके साथ ही, कांग्रेस अध्यक्षता की अवधि में अपने देश व देश की जनता को वे और गहराई से समझ सके। इस समय उन्हें चुनाव का बढ़ता हुआ खर्चा दुःखी कर रहा था। उन्हें दुःख हो रहा था कि इससे भ्रष्टाचार अधिक होगा और वह राजकारण के अपराधीकरण में सहायक होगा। इसका घोर परिणाम यह होगा कि, बुद्धिजीवी और सज्जनों के चुनाव में भाग न लेने की परिस्थिति उत्पन्न होगी। निजलिंगप्पाजी ने देखा कि धन और राजनीति में अनैतिक संबंध हो जाएगा। कांग्रेस इन सभी का केंद्र बन गया था। गाँधीजी के आदर्शों से दिन ब दिन वह दूर होता जा रहा था। कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में, उन्हें काफी यात्रा करनी पड़ती थी तो हिन्दी भाषिक क्षेत्रों में उन्हें भाषा की समस्या का सामना करना पड़ता था। हिन्दी में प्रारंभ कर वे, अंग्रेजी में भाषण देते थे, फिर उसे हिन्दी में अनुवाद किया जाता था। इसी बीच राजनैतिक रूप में, इंदिरा गाँधीजी अपने सामर्थ्य को बढ़ा रही थी। अपने युवा सहचरों को ट्रेनिंग दे रही थीं, इससे उनके कहने पर सिंडिकेट के विरुद्ध बल प्रदर्शन करना संभव हुआ। लोग व पत्रिकाएँ उनके युवा सहचरों को 'यंग टर्क्स' कहने लगे। उनमें प्रमुख थे – मोरारजी के विरुद्ध राज्यसभा में कठोर आलोचना करनेवाले, चंद्रशेखरजी। संदेह होता था कि शायद, इनकी आलोचना के पीछे इंदिराजी का हाथ होगा। इस विषय में, जब कांग्रेस संसद सदस्यों की सभा हुई तो, उसमें इंदिराजी की गैर हाजिरी, इस संदेह का समर्थन कर रही थी। जब विषाद व्यक्त करने के लिए सभा ने चंद्रशेखर को पूछने का निर्णय किया तो, इंदिरा गाँधीजी ने खुले में ही, चन्द्रशेखरजी का समर्थन किया।

ऊपर से छोटे लगनेवाली ऐसी घटनाएँ बढ़ती गईं। सिंडिकेट सहज ही घबरा गया। 13-3-1969 की रात को, उस समय लोकसभा के सभाध्यक्ष संजीव रेड्डी, निजलिंगप्पा, डी.सी. शर्मा, कामराज, एक.के. पाटील और अतुल्य घोष सभी, रेड्डी जी के घर में मिले; रेड्डी जी ने उन सबको न्योता दिया था। उन सभी ने देश तथा पक्ष के विद्यमानों के बारे में चर्चा की। उन्होंने निर्णय लिया कि यदि आवश्यक हो तो, देश की सुभद्रता की दृष्टि से सरकार को बदलने का प्रयत्न करें; कनिष्ट रूप से वरिष्ठों के नायकत्त्व को नष्ट करनेवाली इंदिराजी पर नज़र रखे। देश भर में, होती हुई घटनाओं के लिए वे चिंतित रहे। डी.पी. मिश्रा द्वारा मध्यप्रदेश में हो रहे षड्यंत्र का निजलिंगप्पाजी ने संपूर्ण विरोध व्यक्त किया। शासक दल के नायकत्व के लिए स्पर्धा कर चुनाव में सफल हुए, वी.सी. शुक्लजी के प्रति वे असंतुष्ट थे। तेलंगाणा आंदोलन के हिंसात्मक रूप लेने के बारे में, ब्रह्मानंद रेड्डी जी ने रिपोर्ट किया था। निजलिंगप्पाजी को विशेष रूप से तंग करनेवाला विषय था कि तेलंगाना आंदोलन से स्फूर्ति पाकर दो दो कर्नाटक के निर्माण के लिए प्रयत्न होना। मध्यप्रदेश के नेता होने में असफल मिश्राजी हताश होकर, अपने विरोधियों के खोखलेपन को सामने लाने के लिए अविश्वास निर्णय को मंडन करने के प्रयत्नों को समर्थन करने वाले कांग्रेस अध्यक्ष निजलिंगप्पाजी के विरुद्ध बदला लेने के लिए तैयार हो गए थे। केंद्र के ढीलापन के कारण राज्य के नायकों को अंदरूनी झगड़ा करने के लिए प्रेरणा मिल रही थी। देश में शासक दल और राजनीतिज्ञों की संस्कृति पूर्णरूप से बिगड़ रही थी। राजनीति और राजनीतिक दलों का लाभदायक रूप में उपयोग करने के प्रयत्न हो रहे थे। स्ववैभवीकरण की इस नई संस्कृति के लोगों के लिए, निजलिंगप्पाजी बहुत बडा रोडा बन गए थे। इसलिए वे सभी उनके बारे में, बुरा प्रचार करने के लिए तैयार हुए। सदा वास्तववादी निजलिंगप्पाजी ने, अपनी डायरी में इस प्रकार प्रतिक्रिया व्यक्त की है – ''इंदिरा गाँधीजी को प्रधानमंत्री स्थान से उतारना कोई कठिन काम नहीं है। परंतु उनके स्थान पर कौन आएगा ? इसमें कोई संदेह नहीं है कि यदि, उन्हें उतारेंगे तो वे कांग्रेस का विभाजन कर देंगी! इससे अनायकत्व हो जाएगा। इसलिए, बडों को सहनशील होकर रहना है।''

1969 मई में, फरीदाबाद में हुई कांग्रेस सभा, बहुत महत्वपूर्ण और याद रखने लायक घटना है। 1969 अप्रैल 24 को सभी अध्यक्ष और सचिव देहली

में इकट्ठे हुए। कांग्रेस पार्टी की पुनर्ररचना के रिपोर्ट के बारे में, चर्चा करने के लिए वे सभी मिले थे। केवल आधे घंटे के लिए बात करने के लिए आई हुई इंदिराजी, बीच में ही उठकर बाहर चली गईं। वह चाहती थी कि अध्यक्षजी उनकी बातें मान ले। परंतु निजलिंगप्पाजी ने कुछ अलग ही सोचा। उनका मानना था कि प्रधानमंत्री जी से चर्चा करना, अध्यक्ष की मर्जी का विषय है। परंतु उसे प्रधानमंत्री तक लाने का संदर्भ ही नहीं आया।

शाम चार बजे निजलिंगप्पाजी अपने लोगों के साथ, फरीदाबाद चले। रास्ते भर में तालियों से उनका स्वागत हुआ। 72 की सभा की सूचना देनेवाले स्वागत कमानों को लगाया गया था। उनके रहने के लिए व्यवस्थित बंगले में आने तक, छः बज गया था। फिर रात 7-30 को सभा में, विषय नियामक समिति में और खुले अधिवेशन में चर्चा करने के विषयों के बारे में, कार्यकारिणी समिति ने परिशीलन किया। दूसरे दिन सवेरे आठ बजे अध्यक्षजी ने 'राष्ट्रध्वज' फहराया। विषय नियामक समितियों की रचना जब हो रही थी तो, सबेरे 9-30 को होनेवाली सभा के लिए निर्मित सभागार के किसी कोने से, 'आग आग' का चित्कार सुनाई दिया। अध्यक्ष और कार्यकारिणी समिति के सदस्यों की कुर्सियों के पीछे आग लगी थी जो पूरे सभागार में फैलने लगी। सारी जगह में खलबली मच गई। अध्यक्ष सहित सभी सुरक्षा के लिए भागने लगे। सभागार का तीन चौथाई भाग जलकर काला पड़ गया था। स्थान पर जल्दी ही अग्निशामक दल पहुँचा और धैर्य देते हुए सहायता करने लगा। इस घटना से स्तंभित होकर, स्वागत समिति के अध्यक्ष, बंसीलालजी ने जले हुए भाग की पुनर्रचना करने के लिए कोशिश करते हुए, दूसरे दिन शाम तक नए सभागार का निर्माण करने में सफल हुए। 27 को विषय नियामक समितियों, विविध उपसमितियों द्वारा सिद्ध किए गए रिपोर्ट और कांग्रेस का पुनःसंगठन तथा देश की राजकीय परिस्थिति के बारे में हुए निर्णय – इन सभी के बारे में कांग्रेस ने चर्चा की। इंदिरा गाँधीजी और मोरारजी देसाई जी ने ऐसे भाषण दिये जैसे चर्चास्पर्धा में भाग ले रहे हो। शाम छः बजे निजलिंगप्पाजी ने अपना अध्यक्ष-भाषण पढ़ा। यह भाषण, उनके 71 वें में किए गए भाषण के सारांश के जैसा था। साथ ही समग्रता का भंग होने जैसे लगने पर भी उन्होंने भाषावार प्रांत रचना के बारे में, विमर्शात्मक रूप में बात करते हुए, उन्हें रद्दकर, आर्थिक मानदंड के आधार पर पुनःरचना करने की सूचना दी। उन्होंने कहा कि प्रशासकों में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार के लिए लाइसेंस पद्धति ही कारण है।

उनका अभिप्राय था कि नियंत्रणों को कम कर देना चाहिए। मिली जुली सरकार की आलोचना करते हुए, उन्होंने कहा कि वे कभी स्थिरता नहीं ला सकते। यदि वे अनिवार्य हो तो ? उन्होंने कहा कि देश के लिए अथवा उन्हें वे अब प्रस्तुत न लगने पर भी, जो अभी हैं, वे मिली जुली सरकार आगे की हालत के लिए निदर्शन जैसे हैं। यह सच है कि आज वह एक महत्वपूर्ण सवाल है। इस कारण बदले हुए राजनीतिक संदर्भ में, उसमें बदलाव करना आवश्यक है। वे हमेशा सार्वजनिक जीवन में, युवकों के पात्र के बारे में चिंता करते थे। उन्होंने युवकों को देश की जिम्मेदारी समझने व लेने के लिए कहा। निजलिंगप्पाजी के भाषण की चर्चा करते हुए के.डी. माळवीयजी, मोहनधारियाजी, चंद्रशेखरजी तथा उनके समान मनवाले ने उनकी औद्योगिक नीति की आलोचना की। उसे उन्होंने 'प्रतिगामी' कहा। यह स्पष्ट था कि इंदिराजी का समर्थन उन्होंने किया। इसी कारण, यंगटर्कों ने समाजवाद का समर्थन किया। उनके 'आयत-समाजवाद' को अध्यक्ष ने विडंबना कर, स्वदेशी समाजवाद का समर्थन कर लिया। पार्टी ने जब, सारे चुनावों को स्थगित करने का निर्णय लिया तो निजलिंगप्पाजी को अनिवार्य रूप से, एक और वर्ष के लिए अध्यक्ष बने रहना पड़ा।

03-5-1969 को अपने ऑफीस में काम करते हुए, निजलिंगप्पाजी को एक आघातकारी खबर सुननी पड़ी। वह था, भारत के राष्ट्रपतिजी के निधन का समाचार। कुछ दिनों से, जाकिर हुसेन जी अस्वस्थ थे। परंतु उन्होंने पिछले और आगे आए हुए राष्ट्रपतियों के जैसे देश के खर्चे पर विदेश जाकर इलाज नहीं करवाया। उनके पार्थिव शरीर की समाधि से पहले ही उनके उत्तराधिकारी के बारे में, राजधानी में अफवारें फैलीं। जगजीवनराम या संजीवय्या अथवा जयप्रकाश नारायण जी को अगले राष्ट्रपति के रूप में, इंदिराजी द्वारा चुने जाने की अफवाह फैली। इस संबंध में, किसी ने निजलिंगप्पाजी का नाम भी सूचित किया। कामराज को भी आसक्ति थी, परंतु किसी और द्वारा सूचित की जाने की प्रतीक्षा से, वे मौन रहे। संविधानात्मक कारण से अस्थायी राष्ट्रपति बने वी.वी. गिरिजी ने भी आसक्ति दिखाई। इतना ही नहीं, गिरिजी ने निजलिंगप्पाजी से इस बारे में बात भी की। परंतु निजलिंगप्पाजी का विचार था इतने नामों में , इतने बड़े पद का चुनाव केवल अर्हता पर होना चाहिए, इसलिए इसके बारे में आतुरता न दिखाई। उन्हें विदेश यात्रा पर जाना था, सोचा यात्रा से लौटने पर

इस पर सोचेंगे। 15-5-1969 को जब उन्होंने इंदिराजी के सामने इसके बारे में कहा तो, इंदिराजी ने मुँह फुलाकर दूसरी ओर बात बदल दी। कांग्रेस पक्ष के उधार के बारे में, जब निजलिंगप्पाजी ने बात शुरू की तो, उन्होंने असहनीय होकर कहा ''वह पक्ष के खजांची एस.के. पाटील से संबंधित विषय है''। इंदिरा गाँधीजी व निजलिंगप्पाजी के बीच में, अनबन होना स्पष्ट हो गया था। इस विषय को उन्हें, राजबहादुरजी और बलराम भगतजी ने बताया। निजलिंगप्पाजी ने सोचा था कि, स्नेह संबंध को बढ़ाने के लिए तथा विविध संस्कृतियों को जानने के लिए विदेश यात्रा करना, कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में उनका कर्तव्य है। 1968 में, उन्होंने जपान देश की यात्रा, नौ दिन के लिए सफल रीति से यात्रा की थी। अब 18-5-1969 से, यूरोप की यात्रा करने के बारे में सोचा था। अपनी यात्रा में, वे 'बैरूत नगर' वहाँ के पिरामिडों के स्वरूप, नील नदी की योजना, बेलग्रेड शहर तथा रोम की कला की संपत्ति से अत्यधिक प्रभावित हो गए। इस मौके का फायदा उन्होंने उठाकर 'नासेर' और 'टिटो' से मुलाकात की। उन्होंने परस्पर आसक्ति के विषयों की चर्चा की। वियेन्ना, बान, लंडन, बर्लिन आदि योरोप के प्रमुख शहरों की यात्रा की, इस संदर्भ में, नृत्यनाटक और बिथोवन संगीत के आनंद का अनुभव किया। उन्हें अद्‌भुत स्वागत मिला। इंग्लेंड में उन्होने केंब्रिज और आक्सफर्ड की प्रशांतता की खुशी का अनुभव किया। भारतीयों के घरों में 'इड़ली', 'दोसा' जैसे भारतीय शाकाहारी चीजों को खाने का मौका मिला। ये चीजें न मिलीं तो फलाहार का सेवन करते थे। दिन में एक ही बार भोजन करने की पद्धति अपना ली। रात में केवल, फल और दूध लेते थे। इस संतोषदायक व शैक्षणिक यात्रा के बाद, 16-7-1969 को भारत लौटे। उनके लौटने तक यहाँ समस्याएँ उत्पन्न हो गई थीं।

कांग्रेस के विभजन के बारे में विश्लेषण और व्याख्यान करने से पहले, प्राप्त शुद्ध, वास्तव प्रसंगों के आधार पर घटनावलियों का कालक्रम निरूपण करना होगा। इसके दीर्घकालीन परिणाम जो भी हो, जाकिर हुसेन जी के निधन के कारण अनिवार्य हुए राष्ट्रपति के चुनाव पर उसका तत्क्षण परिणाम हुआ – इसमें कोई संदेह नहीं है। परंतु फरीदाबाद की बैठक में प्रकट हुए सिंडिकेट और इंदिराजी के बीच की दूरी अधिक होने के कारण, सिंडिकेट शायद, उन्हें अधिकार से उतार दे, इस भय से इंदिरा गाँधीजी नए साथियों को ढूँढने लगी। वे सी पी आइ और राज्यों के प्रदेशिक पक्षों के साथ मैत्री की बात सोचने

लगी। केरल में उन्होंने मुस्लिम लीग के साथ, तमिलनाडु में डी एम के के साथ, पंजाब में अकालियों के साथ, उडिसा में जनकांग्रेस के साथ और गुजरात में स्वतंत्र पक्ष के साथ स्नेह बढ़ाया। यह सिर्फ अवसरवादी व्यवस्था थी, अधिकार की भागीदारी के आधार पर। समझना होगा कि यह सिर्फ अधिकार में रहने का तंत्र था। यह व्यक्ति राजनीति की हितासक्ति के साथ होने पर भी केवल अवसारवादी, तत्वरहित राजनीति कहकर उसकी आलोचना करनी पड़ेगी। यहाँ सवाल यह उठता है कि फिर क्या, उनके राजकीय विरोधी अधिक तत्वनिष्ठ और उदार थे? निजलिंगप्पाजी को सचमें, राजनीतिक अवसारवादी तत्वरहित राजनीति करनेवाला नहीं कह सकते, परंतु सिंडिकेट के सभी सदस्यों के बारे में यह बात नहीं कह सकते। यहाँ केवल सरल नैतिक मूल्यांकन का सवाल नहीं है। यह अधिकार का खेल है और हाब्सियन जंगल में संघर्ष जैसा राजनीति को वास्तव दृष्टि से देखने का सवाल है। इस दृष्टिकोण से निजलिंगप्पाजी को एक बेचारा राजनितिज्ञ मान सकते हैं। परंतु गाँधीजी के आदर्श पर चलनेवाले, उनके जैसे व्यक्ति को यह बिना नैतिकता का राजकारण योग्य नहीं है। केवल अधिकार के लिए स्पर्धा - विचारवीली इंदिराजी के दृष्टि से देखने पर समर्थन पाने के लिए, व्यवस्थित राजनीतिक मैत्री करने के तथा अपने अधिकार व स्थानमान के लिए आड़े आनेवालों का विनाश करने में वह निरत रहीं। इसकारण अपनी बात माननेवाले व्यक्ति को भारत के राष्ट्रपति बनाने के लिए वह आतुर थी, इस विषय में आश्चर्य नहीं।

ऐसे राजनीतिक संघर्ष और कुटिल तंत्रों की भूमिका में कांग्रेस पार्टी का बेंगलूर सम्मेलन जुलै 1969 को प्रारंभ हुआ। सभा में यंगट्रर्को ने अपनी दृष्टि के प्रगतिशील तथा समाजवादी कार्यक्रमों का मंडन किया। उन्होंने बैंकों के राष्ट्रीकरण के लिए दबाव डाला। इंदिराजी, कार्यकारिणी समिति के पहले दिन गैरहाज़िर रहीं। सी. सुब्रह्मण्यं और सादिक अली द्वारा तैयार किए गए आर्थिक निर्णय के प्रारूप के बारे में जो चर्चा हो रही थी, बिना किसी सूचना के अचानक मध्यप्रवेश करके फक्रुद्दीन अली अहमदजी ने इंदिरा गाँधीजी द्वारा तैयार की गई चार पन्नों की टिप्पणी का मंडन किया। यह अचानक क्रमबद्ध नहीं था। क्योंकि, वह फक्रुद्दीन अली जी को लिखा गया चार पन्नों का वैयक्तिक पत्र था, न कि पार्टी के अध्यक्ष अथवा सचिव को लिखा हुआ नहीं था। शीघ्र आर्थिक प्रगति, साथ ही बैंकों के राष्ट्रीकरण को अनिवार्य-प्रतिपादन करना उसका मुख्य

उद्देश्य था। 10 तारीख को जब आर्थिक निर्णय के प्रारूप पर चर्चा हो रही थी तो इंदिराजी हाज़िर हुईं। उनके और एस.के. पाटीलजी के मध्य सीधा सवाल-जवाब हुए। समिति का स्पष्ट रूप में विभाजन हुआ – चौहान, जगजीवनराम, कामराज, सुब्रह्मण्यं और राम सुभाग सिंह के समर्थन का इंदिरा गाँधीजी का एक गुट और मोरारजी, सी.बी. गुप्ता, एस.के. पाटील तथा अतुल्य घोष के समर्थन का निजलिंगप्पाजी का दूसरा गुट। इंदिराजी के वैयक्तिक उद्देश्य तथा आकांक्षा कुछ भी हो, एक स्तर पर सैद्धांतिक, भिन्नाभिप्राय के रूप में उसकी गणना करनी होगी। इसकारण, कांग्रेस विभजन के बारे में सैद्धांतिकेतर विश्लेषण किये गए अतुल्य घोष जी की "भारत का राष्ट्रीय कांग्रेस का विभाजन" (जयंती प्रकाशक, कल्कत्ता, 1970 - रू. 5/–) पुस्तक में की गई चर्चा, तथा निजलिंगप्पाजी की सविस्तार भूमिका, इन्हें गंभीर संदेहों के बिना मान नहीं सकते। इतिहास के सभी सैद्धांतिक विवादों के वैयक्तिक उद्देश्य और महत्वाकांक्षाओं के कारण अभिप्राय देना आसान नहीं है। ऐसा ही इस विभजन में हुआ। निजलिंगप्पाजी और सिंडिकेट को, राष्ट्रपति स्थान के लिए संजीवरेड्डी जी का नाम सूचित करने की इच्छा थी। बहुत पहले ही उन्होंने, इसके बारे में अपना अभिप्राय बना लिया था। सहज ही इंदिराजी को भी इसका पता था। 12 जुलाई 1969 की, संसदीय व्यवहार-समिति की सभा में, चार-दो मतों से संजीवरेड्डी जी को राष्ट्रपति पद के लिए अधिकृत अभ्यर्थी माना गया। इंदिराजी के अभ्यर्थी जगजीवनराम इस स्पर्धा में जीत न सके। मोरारजी, चौहान, कामराज और एस.के. पाटीलजी ने रेड्डी जी को मत दिए। केवल इंदिरा गाँधी और फकरुद्दीन अली अहमद ने जगजीवनराम को वोट दिए। निजलिंगप्पाजी और जगजीवनराम मतदान से दूर रहे। अच्छी विचारवादी इंदिराजी ने, गाँधीजी जन्मशताब्दी के वर्ष में, जगजीवनराम जैसे हरिजन को भारत के राष्ट्रपति न बनाने के लिए तथा इससे, देश के राजकीय जीवन पर होनेवाले परिणामों के बारे में, सिंडिकेट को जागरूक किया। अफवाह होने पर भी निजलिंगप्पाजी, मोरारजी और कामराज जी भी वह पद चाहते थे, परंतु इसके लिए कोई आधार नहीं था।

दूसरे दिन गिरीजी ने अपने तात्कालिक निवासस्थान, राष्ट्रपति भवन से घोषित किया कि वे भी, उस पद के लिए स्पर्धा में भाग लेंगे। कांग्रेस अध्यक्ष निजलिंगप्पाजी ने अधिकृत घोषणा की कि संजीवरेड्डी जी कांग्रेस अभ्यर्थी हैं। इसकारण चुनाव अनिवार्य हो गया। इसी बीच, अपने स्पर्धी को चुनाव के लिए

खड़ा करने के बारे में विरोधपक्ष चिंतन करने लगे। इंदिराजी ने पत्रिकाओं को बताया कि अपने आंतरिक अभिप्राय जो भी हो, वे शासक दल के निर्णय से बद्ध होंगी। सिंडिकेट को समाप्त करने के पहले कदम के रूप में उन्होंने बैंकों के राष्ट्रीकरण के विरुद्ध होने के कारण पर, मोरारजी देसाई जी को आर्थिक विभाग से मुक्तकर खुद उसकी जिम्मेदारी ले ली। इससे मोरारजी का क्रोधित होना सहज ही था। दोनों के बीच में, क्रोध भरे पत्रों का विनिमय हुआ। 1 को, इंदिराजी ने मोरारजी से कहा कि वे इस्तीफा न देकर कोई भी दूसरा विभाग ले ले। मोरारजी ने आरोप लगाया कि बैंक के राष्ट्रीकरण के बारे में, उनका अभिप्राय जाने बिना ही, इंदिराजी ने उद्देश्यपूर्वक एकपक्षीय निर्णय लिया है। मोरारजी ने इस्तीफा देते हुए संसद में विवरण दिया कि इस अपमान के विरुद्ध वे मंत्रिमंडल को छोड़कर जाना ही बेहतर मानते हैं।

सिंडिकेट के सदस्यों ने दृढ़ निश्चय किया कि रेड्डीजी को राष्ट्रपति बना दे। इससे उनके चुने व्यक्ति के, उस स्थान पर रहने से, उन्हें अधिक राजनीतिक प्रभाव प्राप्त होगा। इस लक्ष्य को साधने के लिए आवश्यक जो भी क्रम थे लेने के लिए वे तैयार हुए। मोरारजी के बारे में होते हुए विवाद को वे बढ़ाना नहीं चाहते थे। विरोध की अपेक्षा वे राजी करना चाहते थे। निजलिंगप्पाजी ने इंदिराजी से मिलकर पार्टी के हित की दृष्टि से, मोरारजी को पहले के विभाग को ही देने के लिए मनाने का प्रयत्न किया। इस बात से सिंडिकेट की दुर्बलता और असहायकता को समझकर, इंदिराजी झुकने के लिए तैयार नहीं हुई। इसके व्यतिरिक्त में, इस संदर्भ का अपने विरोधियों को नष्ट करने के लिए उपयोग करने का सदावकाश समझा। अपने तंत्र के लिए तुरंत अपने आर्थिक कार्यक्रमों का अनुष्ठान करना प्रारंभ किया। इस तंत्र का एक अंश था – अपने विरोधियों को आश्चर्यचकित कर देना, अपने तंत्रों के बारे में, सार्वजनिकों में कुतूहल व आश्चर्य भर देना तथा पक्ष के युवकों में हर्षोल्लास भर देना। इसे एक समग्र कार्ययोजना के रूप में उन्होंने तैयार किया उनके आर्थिक कार्यक्रमों के लिए संसद की मान्यता प्राप्त हुई। अपनी योजनाओं का विरोध हुआ तो उनके नियंत्रण में रही, कार्यकारी समिति से दूर रहने की उन्होंने सिंडिकेट को धमकी दी। किसी भी अतिरेक से, पक्ष की एकता के नष्ट होने के भय से कार्यकारिणी समिति ने मान लिया। राष्ट्रपति पद के अभ्यर्थी के बारे में, एक निर्णय लेते हुए कार्यकारिणी समिति ने कांग्रेस संसदीय पक्ष की सामान्य सभा में, प्रधानमंत्री

जी और कांग्रेस अध्यक्ष ने सूचना दी कि अधिकृत अभ्यर्थी रेड्डीजी को अपना समर्थन दे दे। इंदिरा गाँधीजी ने रेड्डीजी के नामपत्र पर अधिकृत रूप में हस्ताक्षर किया था। ऐसी मुश्किलों की परिस्थिति में, दोनों दल चुप रहकर मौके का इंतजार कर रहे थे। वह तो अधिकार के लिए एक खुला युद्ध ही था। उसके बाकी आयाम तात्कालिक रूप से पीछे हट गए। राजकीय अफवाहें गहरी होती चलीं। एक उदाहरण कि राष्ट्रपति-चुनाव के बाद, सिंडिकेट पर्याय सरकार को अधिकार पर लायेगा। यह अफवाह भी फैली कि इंदिराजी ने कम्युनिस्टों से हाथ मिलाया है। इस युद्ध में पहली विजय के रूप में, उपराष्ट्रपति और सभाध्यक्ष स्थानों के लिए अपने अभ्यर्थी जी. ए. पाठक और जी.एस. धिल्लों के बारे में, कांग्रेस संसदीय समिति की मान्यता प्राप्त करना था। कांग्रेस के अधिकृत अभ्यर्थी को ही राष्ट्रपति के रूप में चुने जाने के लिए दृढ़ निर्धार करते हुए, निजलिंगप्पाजी सैद्धांतिक रूप में, कांग्रेस पक्ष के विरोधी जनसंघ और स्वतंत्र पक्ष के समर्थन पाने में, पीछे नहीं हटे। ये पार्टियाँ सामान्यतः प्रतिगामी और संप्रदायशरण होने के लिए प्रसिद्ध हैं, इसपर ध्यान देना होगा। इन पार्टियों से समालोचना कर, उनका समर्थन पाने के लिए निजलिंगप्पाजी ने अत्यधिक प्रयत्न किए। पक्ष में ही अधिकृत अभ्यर्थी के विरोध में काफी प्रमाण में होने का अनुमान ही इसका कारण था। अपने को 'स्वतंत्र अभ्यर्थी' घोषित करते हुए गिरी ने कम्युनिस्ट तथा मुस्लिम लीग की सहायता माँगी। सबसे अधिक उन्होंने मतदाता से बिनती की कि वे 'आत्मप्रज्ञा' की बात मान ले। उन्होंने सोचा कि यदि इंदिराजी निराधिकार की आशा की तार्किकता से प्रेरित हो तो, कांग्रेस पार्टी के विरोधी 'वामपंथीय' गुट को पुराने लोगों से मुक्त करने के लिए यह एक अच्छा मौका है। यंगटर्को ने सोचा कि गिरी जी की जीत से इंदिराजी के राजकीयाधिकार की स्थापना होती है तो, वह प्रजासत्तात्मक, समाजवादी विचार की जीत होगी। निजलिंगप्पाजी को 'प्रगति विरोधी' कहते हुए उनपर बट्टा लगाने में संकोच नहीं किया। उनपर, यह विशेषण लगाना अत्यंत सरल रहा। 'आत्मप्रज्ञा' की परिकल्पना का उन्होंने अधिक उपयोग किया। उनमें से एक अरोरा जी से निजलिंगप्पाजी ने अपने पक्षविरोधीकार्यों को समझाने के लिए कहा। जगजीवनराम जी और फकरुद्दीन अली जी ने निजलिंगप्पाजी को पत्र लिखकर दबाव डाला कि वे कांग्रेस पक्ष के विचारों के विरुद्ध होना ही नहीं, बैंक राष्ट्रीकरण पर सवाल उठाते हुए, न्यायालय तक गए हुए जनसंघ और स्वतंत्र पक्ष के समर्थन से

अध्यक्ष जी ने जो सहयोग माँगा, उसका विवरण दे। निजलिंगप्पाजी ने जवाब लिखकर बताया कि उन्होंने केवल कांग्रेस सलहाकार समिति की सूचना पर व्यवहार किया, इंदिराजी को पद से उतारने का उनका कोई उद्देश्य नहीं है। और कांग्रेस ने अपनी सैद्धांतिकता को त्यागा नहीं है; देश के हित की दृष्टि से, दूसरी पार्टियों की सहायता माँगने में कोई गलती नहीं की है। सभी कांग्रेस संसदसदस्यों, कांग्रेस एम.एल.ए., डी.सी.सी. अध्यक्षों को, कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में पत्र लिखते हुए उन्होंने कहा कि वे सब कांग्रेस के अधिकृत अभ्यर्थी, संजीवरोड्डी जी को समर्थन दे। यंग टर्को द्वारा प्रतिपादित 'आत्मप्रज्ञा' के मत का उन्होंने खुले रूप से खण्डन किया और रेड्डीजी के प्रति समर्थन माँगने के लिए वे सदस्यों से मिले।

चुनाव के तीन दिन पहले भी इंदिरागाँधी जी ने पक्ष के अधिकृत अभ्यर्थी के बारे में एक शब्द भी नहीं कहा। उनका 'किचन केबिनट' युद्ध की कचहरी जैसे काम करने लगा। फकरुद्दीन अली जी और जगजीवन रामजी ने निजलिंगप्पाजी को 13-8-1969 को एक और पत्र लिखकर पहले पत्र के आरोपों का पुनरुच्चारण किया। ''जाकीर हुसेन जी ने जब राष्ट्रपति पद के लिए स्पर्धा की थी तो इंदिरागाँधी जी ने विरोधी दल का समर्थन माँगा था'' – निजलिंगप्पाजी के इस तर्क के विरोध में उनका प्रतिवाद यह था कि ''तब कांग्रेस के अधिकृत अभ्यर्थी के विरुद्ध, विरोधी दल के प्रतिस्पर्धी का नाम सूचित करने से पहले, सभी पार्टी मिलकर एक मत के अभ्यर्थी को चुनने की संभावना के बारे में, परिशीलन करने के लिए, इंदिरागाँधी जी ने वैसे किया था!'' अपने ही अभ्यर्थी के बारे में, जब विरोधी दल ने निर्णय किया तो, इंदिरा जी उनसे मिली नहीं। तब कांग्रेस अध्यक्ष कामराज नाडार जी ने भी जो अब निजलिंगप्पाजी कर रहे हैं, वैसा नहीं किया। निजलिंगप्पाजी असली हालत समझ गए कि, प्रधान मंत्री जी, कांग्रेस के अधिकृत अभ्यर्थी के विरुद्ध काम कर रहे हैं। घटनाओं का पुनरावलोकन करने पर, यह स्पष्ट होता है कि इंदिरा जी पक्षके नियमों को लांघकर बर्ताव कर रही थीं, इतना ही नहीं, राजनीतिक शतरंज-खेल में, वे इंदिरा जी की बराबरी नहीं कर सकते।

कांग्रेस अध्यक्ष और प्रधानमंत्री के बीच के पत्र व्यवहार के बारे में, हम बाद में परिशीलन करेंगे। अंत तक चुप रहकर इंदिराजी ने अंतिम क्षण पर घोषणा की कि, ''पक्ष के आदेश को लांघकर, अपनी 'आत्मप्रज्ञा' के अनुसार

मत देने का, हर एक को हक है।'' परिस्थिति का विश्लेषण करते हुए, बुजुर्ग विरोधी दल के नेता अटल बिहारी वाजपेयी जी ने कहा ''इंदिरागाँधी जी का व्यवहार, लज्जास्पद है, जगत के प्रजासत्तात्मक देशों के इतिहास में, ऐसा व्यवहार कभी न देखा था, न सुना गया है!'' अधिकृत अभ्यर्थी को समर्थन देने के लिए, निजलिंगप्पाजी ने इंदिराजी से बिनती की, पर निष्फल हुए। कांग्रेस के संसदीय दल ने 14 अगस्त 1969 को, निर्णय लेते हुए, यह सूचना दी कि, कांग्रेस के सभी लोग, रेड्डी जी को ही मत दें। लेकिन इंदिरागाँधी जी ने तर्क किया कि, यह सर्वानुमत का नहीं, बहुमत का निर्णय है। दोनों तरफ अतिरेक, स्तर पर थे, इसलिए पार्टी के विभजन की सूचना दिखाई दे रही थी। दोनों दल प्रजातंत्र का ही जप कर रहे थे। कांग्रेस अध्यक्ष ने सोचा कि, यह परिस्थिति प्रजातंत्र के नष्ट होने की सूचना है तो प्रधानमंत्री ने इसे प्रजासत्ता की विजय मानी।

वि. वि. गिरी, चुनाव में जीत गए। उसका मतलब यह हुआ कि, प्रधानमंत्री की जीत हुई और कांग्रेस अध्यक्ष की हार। इंदिरागाँधी जी का राजकीय भविष्य उज्ज्वल होने के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे। निजलिंगप्पाजी और उनके सहकर्मियों की ऐतिहासिक हार हुई। निजलिंगप्पाजी समझ गए कि सिंडिकेट, इंदिरागाँधी जी के राजकीय हमले का सामना करने की स्थिति में नहीं है। वि.वी. गिरी जी को अभिनंदन समर्पित करनेवाले पहले व्यक्तियों में वे भी थे। यह एक अच्छा मौका रहा। अपनी पत्रिका वक्तव्य में उन्होंने गिरीजी को, सभी भारतीयों के गौरव पात्र व्यक्ति कहा, परंतु अधिकृत अभ्यर्थी के विरुद्ध मत देनेवाले पार्टी के सदस्य कर्तव्यभ्रष्टता के कलंक से दूर नहीं होंगे। पक्ष के अभ्यर्थी के विरुद्ध मत देनेवालों पर कारवाई के लिए सिंडिकेट के लोग चिल्लाने लगे, परंतु, इंदिरा गाँधी जी ने वर्णन किया कि यह प्रजातंत्र, समाजवाद तथा धर्मनिरपेक्षता की विजय है। पार्टी के विरोधी गुट ने सोचा कि, उनके नायकत्व में, सब एक होंगे। पद का त्याग कर, चुनाव लड़ने के लिए उनसे कहकर बाद में अध्यक्षीय चुनाव में, उनके विरुद्ध लज्जाहीन कार्य करनेवाली इंदिराजी के बर्ताव का, रेड्डीजी ने खुले रूप से खंडन किया। 24 जुलाई 1969 को खासगी रूप में, इंदिराजी से मिलकर, अपना समर्थन व्यक्त करने के बाद ही, वास्तव में बेचारे रेड्डीजी ने अपना नामपत्र दिया था। पहले संपूर्ण समर्थन व्यक्त कर, फिर पीठ पर छुरा भोंकनेवाले, जगजीवनराम जी के बारे में भी उनका मन खट्टा हुआ। प्रजासत्तात्मक

बर्ताव, उद्देश्य तथा आदर्शों के बारे में, अपनी बद्धता का पुनरुच्चारण करते हुए, कांग्रेस अध्यक्ष ने पक्ष की अनुशासनहीनता पर कठिन कारवाई करने की बात कही। इस तरफ उनके विरोधी इंदिरागाँधी जी, कांग्रेस एम.पी. लोगों से मिलकर, अध्यक्ष चुनाव में अपने बर्ताव का समर्थन करती गईं। अपने बर्ताव के बारे में, जगजीवनराम जी और फकरुद्दीन अली जी से पूछा गया तो उन्होंने पार्टी के अध्यक्ष की कड़ी निंदा की। दोनों विरोधी गुटों को एक करने का प्रयत्न भी किया गया। इसके प्रमुख थे चौव्हान जी। निजलिंगप्पाजी और इंदिराजी की मुलाकात करवाने के लिए वे आतुर थे। कांग्रेस के टूटकर, दुर्बल होने की इन्तजार करनेवाले कम्युनिस्टों ने इंदिराजी का खुलकर समर्थन किया। देश की सुव्यवस्था को नष्ट करने के प्रयत्न करनेवाले, कम्युनिस्टों के प्रति निजलिंगप्पा जी क्रोध से भर गए। इंदिरागाँधी जी अपने प्रतिनिधियों के द्वारा देशभर में, निजलिंगप्पाजी के विरुद्ध आलोचना की बौछार करने लगी कि, पार्टी यदि टूटेगी तो, वे जिम्मेदार नहीं होंगी, परंतु, पार्टी को अपनी मुट्ठी में रखनेवाले ही जिम्मेदार होंगे।

कुछ एम.पी. लोगों ने, इंदिरागाँधी जी और उनके समर्थकों को पार्टी के सदस्यत्व से बाहर करने के लिए दबाव डाला। यह धमकी भी दी कि, संसदीय व्यवहार के विभाग को पत्र लिखकर, पार्टी के आदेश को लांघकर वे संसद में पार्टी के विरुद्ध मत देंगे। यह भी कहा कि, यदि अनिवार्य हो तो सदन के विसर्जन की सिफारिश भी करेंगे। पार्टी के वामपंथी दल तथा तीव्रवादियों ने धमकी दी कि, इंदिरागाँधी जी के विरुद्ध, कांग्रेस संसदीय पक्ष में, यदि अविश्वास निर्णय मंडित करने का दुःसाहस कोई करे तो पक्ष के कचहरी के सामने बृहत विरोध होगा; इससे राजधानी युद्धभूमि बन जायेगा और हिंसाचार होने से कानून व्यवस्था बिगड जायेगी। किनारे पर बैठे चौव्हान जी ने, समझाया कि एक योग्य प्रगतिशील व्यक्ति का नाम सूचित किये बिना इंदिरागाँधी जी को निकाल नहीं सकते। नहीं तो पार्टी को लोगों की सहानुभूति और समर्थन नहीं मिलेंगे। अबतक अफवाह फैलीं कि, सिंडिकेट (इंदिरागाँधी जी के स्थान पर) पर्याय रूप में, चौव्हान जी का नाम ही सूचित करेगा।

24 अगस्त 1969 की बैठक में, निजलिंगप्पाजी ने अध्यक्ष चुनाव के संदर्भ में अन्य पार्टियों का समर्थन माँगने की अनिवार्य भूमिका के बारे में विस्तार से बताया। जगजीवनराम जी और फकरुद्दीन अली जी ने सभा में सूचना दी कि अभी भी, परिस्थिति सुधार कर काम बना सकते हैं। उन्होंने कहा कि, आवेश

में न आकर निर्भावुक रीति से, परिशीलन करे। बुजुर्गों ने कहा कि, अपनी भूल के लिए माफी माँगे कि, इंदिरागाँधी और उनके समर्थकों के विरुद्ध कठिन कारवाई के लिए वे तैयार नहीं। परंतु चौव्हान जी की कुशलमति, निजलिंगप्पाजी के सौजन्य और इंदिरा जी के समझौते की इच्छा के कारण, जोरशोर से प्रारंभ हुई सभा, बाद में शांत रीति से चली। पार्टी की एकता और सुरक्षा के बारे में, सर्वानुमत से निर्णय लिया गया।

निजलिंगप्पाजी ने दीर्घ निश्वास लिया कि पुराना अध्याय समाप्त हो गया। इस परिणाम से प्रसन्न होकर इंदिरा गाँधी जी, इसे अपनी ही विजय मानकर खुश हो गईं। यह निर्णय हो गया था कि पार्टी के अध्यक्ष तथा प्रधानमंत्री, अधिकार केंद्र के प्रतिस्पर्धी न होकर, विशाल भावना के निरूपण की जिम्मेदारी अध्यक्ष की होगी। प्रधानमंत्री उसके लिए बद्ध होते हैं, और देश के आंतरिक, विदेश नीति विचार के बारे में, प्रधानमंत्री की विशेष जिम्मेदारी को समझना होगा। सबसे मुख्य बात यह कि, अपने कर्तव्य क्षेत्र की सीमा को गौरव देना है। इस खुशी को जाहिर करने के लिए, इंदिराजी ने दावत समारोह करना चाहा; परंतु वह पूरा न हो सका। पिछले दो महिनों में अनेक लगातार हुए कार्यक्रमों के कारण, निजलिंगप्पाजी को रक्त छाप की समस्या हुई। अस्वस्थ निजलिंगप्पाजी से मिलने के लिए, उनकी हालत पूछने के लिए, इंदिराजी स्वयं आ गईं।

कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की विजय से उत्तेजित इंदिराजी के समर्थक, सीधी तरह से और तंत्रों द्वारा, सिंडिकेट का सर्वनाश करने लगे। कार्यकारिणी समिति के, इंदिराजी के गुट के दबाव के सामने, झुकने से संगठन के निष्ठावान समर्थक असंतुष्ट हो गए। सिंडिकेट का मतलब, 'कुछही असहायक बुजुर्ग नेताओं का समूह' कहलाने के स्तर तक गिर गया। इस समय तक, निजलिंगप्पाजी भी दैहिक और मानसिक रूप से थक गए थे। इससे, एस.के. पाटील जी और अतुल्य घोषजी भी आसक्ति खो चुके थे। कामराज भी निष्क्रियता से थक गए थे। मोरारजी तो, अकेले और निस्सहायक हो गए थे। चव्हान जी अकेले ही परिस्थिति का फायदा उठाते हुए, अपनी दाल गलाने की चाणाक्षता दिखा रहे थे। उपाध्यक्ष स्थान के लिए निजलिंगप्पाजी, जि.एस. पाठकजी के समर्थन का कार्य करते रहे। 'विभूतिपूजा और प्रजातंत्र एक साथ नहीं रह सकते' – बेंगलूर में यह कहने के कारण, निजलिंगप्पाजी इंदिराजी के समर्थकों के क्रोध का कारण बने। वे इंदिराजी के बारे में, जागरूकता के साथ धीरे धीरे

आगे बढ़ने लगे। उसका कारण था कि, पार्टी का विभजन न हो। वास्तव में, उनका अभिप्राय था कि, पार्टी का हित ही देश का हित है। उनका अचल विश्वास था कि, केवल कांग्रेस पार्टी ही देश की भलाई में आसक्ति रखती है। इससे इंदिरा गाँधी को बहुत लाभ हुआ। उन्होंने अपने उपयोग के अनुसार परिस्थिति का लाभ उठाया। 29 अगस्त 1969 की कांग्रेस संसदीय पार्टी की सभा में भाषण देते हुए, इंदिराजी ने घोषणा की कि, 'प्रजासत्तात्मक समाजवाद में विश्वास रखनेवाले किसी भी पार्टी के हरएक व्यक्ति को कांग्रेस पार्टी में शामिल होने का मुक्त रूप से स्वागत है।' इंदिराजी को निजलिंगप्पाजी के बारे में मुख्य शिकायत थी कि, उन्होंने कांग्रेस पार्टी में, कम्युनिस्टों को प्रवेश करने का मौका दिया है। 04-9-1969 को बेंगूलर में पत्रिकागोष्ठी में उन्होंने यही बात बताई। यह भी जोड़ दिया कि, अंदर से कांग्रेस का सर्वनाश करने का उद्देश्य रखकर, प्रवेश न कर, सच में, प्रजासत्तात्मक समाजवाद में विश्वास रखते हैं तो, उनके कांग्रेस में आने से उनकी कोई एतराज नहीं होगा। अपने सुदीर्घ भाषण में, अपने सैद्धांतिक सारांश को उन्होंने पेश किया। अपने भाषण में कहा कि, वे अमरीका के साम्राज्यवादी, पूंजीवादी पार्टी में अथवा रूस के कम्युनिसम के पक्ष में नहीं है। उनका आदर्श – भारतीय इतिहास तथा संस्कृतियों और लोगों की आशाओं के लिए, योग्य भारतीय समाजवाद ही है। गरीबों के प्रति सहानुभूति दिखाने में, वे किसी से कम नहीं हैं। सार्वत्रिक मानव कल्याण और सुख-संतोष ही उनका आदर्श है; संपत्ति का कुछ लोगों के हाथों में केंद्रीकृत होने के लिए, उनका विरोध है; उनका विश्वास है कि हर एक व्यक्ति यदि उत्पादक कायक में निरत होगा तो, देश का विकास अपने आप हो जाएगा; उदार प्रजातंत्र के पार्टी पर उनका अचल विश्वास है; इसलिए इसके विरोधी सभी पार्टी त्याग दे। केवल घोषणाओं से कुछ हासिल नहीं होगा। खासगी और सार्वजनिक क्षेत्रों के बीच के स्वस्थ स्पर्धात्मक कार्यों से ही दक्षता बढ़ती है। अंत में कहा कि प्रजातंत्र, समाजवाद तथा धर्मनिरपेक्षता से बद्ध, नई पार्टी का वे स्वागत करेंगी। परंतु वैयक्तिक रूप से उन्होंने अंततक कांग्रेस में ही रहने की घोषणा की। मोरारजी की इस्तीफे के कारण उद्भव हुई परिस्थिति के बारे में सोचने के लिए, कांग्रेस अध्यक्ष तथा प्रधानमंत्री जी, 8 सितंबर, 1969 को मिले। दीर्घकाल के बाद उनकी वह खासगी मुलाकात होने के कारण, सीधे गंभीर विषयों की चर्चा शुरू नहीं की; बदले में कुशल मंगल की बातें हुईं। पार्टी के हित की दृष्टि से,

निजलिंगप्पाजी समझौते का रास्ता ढूँढ रहे थे तो, इंदिरा गाँधी जी के लोग, शीतल समर का अंत करने के लिए तैयार नहीं थे। मोरारजी, हर स्तर पर सरकार की नीति की आलोचना ही करते रहने के कारण, परिस्थिति बिगड़ गई थी। इसी बीच चव्हान जी खुले रूप में, इंदिराजी का समर्थन कर रहे थे। महाराष्ट्र की पी.सी.सी. द्वारा संगठित की गई विचारगोष्ठी में, 18-9-1969 को उन्होंने इंदिरा गाँधी जी को अपना समर्थन घोषित किया। वे आलोचना करने लगे कि, अध्यक्ष चुनाव के लिए अधिकृत कांग्रेस अभ्यर्थी के बारे में, लिया गया निर्णय बहुत ही आतुरता में हुआ है। इस कारण, इंदिराजी और उनके लोग दिन ब दिन प्रबल होते चले गए और विशेष चुनाव के लिए हस्ताक्षर-संग्रह-आंदोलन करना चाहा। उनका उद्देश्य, निजलिंगप्पाजी को अध्यक्ष पद से निकालकर, इंदिराजी के लिए अनुकूल, किसी व्यक्ति को वहाँ बिठाना था। इस संदर्भ में, कांग्रेस पार्टी को अनेक समस्याएँ तंग कर रही थीं। तमिलनाडु कांग्रेस के आंतरिक झगडों के कारण से सी. सुब्रह्मण्यजी को पी.सी.सी. अध्यक्ष पद से इस्तीफा देना पड़ा। निजलिंगप्पाजी को बताया गया कि, पी.सी.सी. के अध्यक्ष पद के बल से कार्यकारिणी समिति के सदस्य होने के कारण, उन्होंने अपना स्थान, अपने आप खो दिया। उत्तर प्रदेश और आंध्र के पी.सी.सी. अध्यक्ष कमलापति त्रिपाठी और काकनी वेंकटरत्नम् जी के अपने अपने राज्य मंत्रिमण्डल में शामिल होने के कारण, उन्हें अपना स्थान त्यागना पड़ा। शंकरदयाल शर्मा जी ने कांग्रेस अध्यक्ष पर दबाव डालने का प्रयत्न किया कि, संदर्भ के कारण सदस्यों के अपने स्थान खोने पर, अधिकृत मोहर लगा दे। अब यह स्पष्ट हुआ कि इन तांत्रिक, खाली स्थानों को अपनाने के लिए, निजलिंगप्पाजी पर दबाव डालने के द्वारा, शंकरदयाल शर्मा जी उनके विरुद्ध खेल रचा रहे थे। वैसे देखा जाय तो, जगजीवनराम और इंदिराजी के लोगों ने मिलकर, 08-10-1969 को, पत्र लिखकर इसे एक बड़ा विषय बनाया था। उनका तर्क यह था कि, दो दशकों के पहले कार्यकारिणी समिति द्वारा किए गए निर्णय के अनुसार, अब सुब्रह्मण्यजी को कार्यकारिणी समिति के सदस्यत्वं से निकाल दे तो पार्टी की प्रस्तुत मुश्किल पार्टी की एकता के लिए, आघातकारी सिद्ध होगी। उनका दबाव यह था कि शीघ्र ही कार्यकारिणी समिति तथा ए.आइ.सी.सी. की सभा बुलाकर, इस विषय की चर्चा की जाय। और कार्यकारिणी समिति के उनके सदस्यत्व को अमानत में रखा जाय।

उसके दूसरे ही दिन, उसका जवाब देते हुए, अपना वैयक्तिक आक्रोश व्यक्त किया कि, उनके न किए कार्य के लिए उन्हें जिम्मेदार ठहराया जा रहा है। उन्होंने बताया कि, सुब्रह्मण्यजी को कोई पत्र नहीं लिखा है; इंदिराजी और उनके पाँच सहचर वास्तवांश न जानते हुए, आरोप लगा रहे हैं। तथा वे, नियमानुसार ही कार्य करते आए हैं। दो दशकों के पहले, कार्यकारिणी समिति ने निर्णय लिया था; उसे वापस नहीं लिया गया है – इसलिए नियम असिंधु नहीं होगा। इसप्रकार उन्होंने नियमबद्धता का प्रदर्शन किया है।'' उन्होंने उन लोगों का मज़ाक किया कि, ''क्या उनपर आरोप लगानेवालों को, इस सिद्धांत पर विश्वास है कि समय बीतने पर, नियम दूर हो जायेंगे।'' निजलिंगप्पाजी के इन विचारों के लिए, वकील के रूप में उनका अनुभव तथा कानून के अनुसार ही व्यवहार की, प्रजातंत्र की बद्धता ही कारण बने। विषय के कानूनात्मक स्वरूप तथा नैतिकता कुछ भी हो, वे सब निजलिंगप्पाजी के विरुद्ध की गई चाल थीं। सिंडिकेट के विरुद्ध, अपने समर में इंदिराजी ने अपने लिए संभव सभी अस्त्रों का प्रयोग किया। 1969 अक्तूबर 15 को, उन्होंने अपने मंत्रिमण्डल के दो मंत्री जो निजलिंगप्पाजी के समर्थक थे – गुरुपादस्वामी और जगन्नाथ पहाडिया जी को पत्र लिखकर इस्तीफा देने के लिए दबाव डाला। इसपर, निजलिंगप्पाजी की प्रतिक्रिया असाधारण सहनशीलता से भरी थी। उन्होंने कहा कि, ''किसी को भी, अपने मंत्रिमण्डल में रखना या निकालना, प्रधानमंत्री की विवेचना पर निर्भर होगा, इसमें पार्टी दखलंदाजी नहीं करेगा।'' इंदिराजी और उनके सहचर लगातार सिंडिकेट पर आरोप लगाते हुए, घूम रहे थे। इसी समय, इंदिराजी और निजलिंगप्पाजी को मिलाने के व्यर्थ प्रयत्न हुए। निजलिंगप्पाजी के मित्र वीरेंद्र पाटीलजी ने भी इसमें प्रवेश करना चाहा तो, उनके निजलिंगप्पाजी के निकट होने के कारण इंदिराजी उनपर संदेह करने लगीं। वे अच्छी तरह जानती थीं, निजलिंगप्पाजी को दबाने का एक ही मार्ग उन्हें कांग्रेस अध्यक्ष पद से नीचे उतार देना ही है और इससे उन्हें भी सुरक्षा मिलेगी। इस तंत्र का प्रयोग करने के लिए सुब्रह्मण्यम का प्रकरण उन्हें उपयुक्त लगा।

बेंगलूर कांग्रेस सभा के बाद के विद्यमानों का उल्लेख करते हुए, निजलिंगप्पाजी ने 28-10-1969 को, एक पत्र लिखकर उसमें प्रतिपादन किया कि, कांग्रेस के विभाजन के लिए, इंदिराजी ही पूर्णरूप से जिम्मेदार हैं। उस पत्र का सारांश यहा है – ''कार्यकारिणी समिति के सदस्यों पर विशेष सभा

करने का दबाव डालने के लिए, अध्यक्ष के विरुद्ध अफवाहें फैलाने का ऐसा प्रसंग कभी कांग्रेस के इतिहास में नहीं हुआ है। नीति अथवा कार्यक्रम के विषयों में भिन्नाभिप्राय होने पर भी, कार्यकारिणी समिति कभी भी अपनी स्नेहपरता तथा सहकार मनोभावों से दूर नहीं हुई थी। अपनी सज्जनता तथा सत्यपरता की कनिष्ट इज्जत को भूलकर, इंदिराजी ने उनके नाम पर बट्टा लगाने के लिए, ऐसे वैसे झूठे आरोप लगाए। अध्यक्ष के चुनाव के तीन महिने पहले ही उन्होंने पक्ष के अभ्यर्थी का नाम सूचित किया था; किन्तु, इंदिराजी अनसुनाकर मौन रहीं। अधिकृत अभ्यर्थी के हार जाने पर, उन्होंने प्राथमिक विषाद व्यक्त करने का कनिष्ट औपचारिक सौजन्य भी नहीं दिखाया। इसके ऊपर, गिरी जी की जीत, अपनी ही जीत कहते हुए चलीं। ऐसी बातें, प्रजातंत्र में कभी नहीं हुई हैं। अध्यक्ष-चुनावों के बाद, खासगी तथा सार्वजनिक नैतिकता की दृष्टि से उनका व्यवहार असह्य लगता है। 'आत्मप्रज्ञा-मत' नाम की उनकी असिंधु परिकल्पना के कारण, कम्युनिस्ट और मुस्लिम लोगों से समर्थन पाए हुए अभ्यर्थी को विजय मिली। उनके व्यवहार के कारण, कांग्रेस पक्ष की सुरक्षा और उसके बारे में जो सद्भावना थी, यह सब नष्ट होते हुए, अपना कर्तव्य न निभाने की स्थिति आई है। अध्यक्ष चुनाव के बाद, पार्टी ने एक एकमत निर्णय लिया। परंतु एकमत को न साधने का कारण, नियमों के अनुसार, उसके निर्णयों पर बद्ध नहीं होना है। हमने पक्ष के किसी नियम का उल्लंघन नहीं किया है। परंतु उन्होंने ही आजतक अपनी सरकार के अधिकार का दुरुपयोग किया है। उनका व्यवहार उन्हें अधिकार पर बिठाये पार्टी के सभी प्रजासत्तात्मक उत्तरदायित्व को हवा में उड़ानेवाले, उद्देश्यपूर्वक तथा स्वयमाधिकार का ही है। अपने अधिकार तथा स्थान के लिए कारणीभूत पार्टी की, उन्होंने संपूर्ण रूप में उपेक्षा की है। सांस्थिक जीवन पर वे मनमानी कर रही हैं। सद्व्यवहार तथा नियमों की उपेक्षा करने के संदर्भ का निर्माण किया है। वे कहती तो हैं कि, गुटबंदी व आंतरिक झगडों के वे विरुद्ध हैं। सिंडिकेट को ही वे 'गुट' कहती हैं। परंतु वास्तव में 'सिंडिकेट' क्या है? 1965 में शास्त्रीजी को 1967 में इंदिराजी को प्रधानमंत्री पद के लिए चुनने वाले पार्टी के वरिष्ठ नायकों के लिए, पत्रिकावालों से प्रयुक्त शब्द है वह। उस समय उन्हें, सिंडिकेट प्रतिगामी समूह नहीं लगा। वह पूंजीपति का पक्ष लेनेवाला भी नहीं लगा। परंतु अब, वरिष्ठ नायक, प्रगति पर कानूनों के लिए विशेष रूप से बैंक राष्ट्रीकरण के लिए विरुद्ध है – इस तरह गलतप्रचार

कर रही हैं। खुद को 'गरीबों के हितैषी' कहकर प्रचार कर रही है; परंतु कहीं भी यह नहीं कहती हैं कि यह कांग्रेस की नीति है। ऐसा चित्र दे रही है कि, बैंक राष्ट्रीकरण के लिए, वही एकैक कारण हैं। परंतु वह भूल गई हैं कि उनसे बहुत पहले ही कामराज जी, चौहानजी और अतुल्य घोष जी ने बैंक राष्ट्रीकरण के लिए बहुत परिश्रम किया था। अपने को प्रगतिशील तथा क्रांतिकारी नायिका के रूप में चित्रित करने के लिए, प्रयत्न कर रही हैं। परंतु वास्तव में, उनकी प्रगतिशील विचारधारा का अर्थ है, स्वयंनिष्ठा और खुद के वैभवीकरण का सामर्थ्य। प्रजासत्तात्मक पद्धतियों के अनुसार, चलनेवालों को उनके साथी, प्रतिगामी के रूप में गणना करने का निर्णय कर लिया है। अपने व्यक्तिगत व्यवहार तथा सरकार का विरोध करनेवालों को वे धीरे धीरे दूर करते आई हैं।

इंदिरा गाँधी जी जहाँ भी जाती हैं, यह कहती है कि, वे गुटबंधी के विरुद्ध हैं, और उनके कांग्रेस अध्यक्ष को लिखे गए पत्र में कार्यकारिणी के छः सदस्यों के हस्ताक्षर हैं। उनके अनुयायी, ढिंढोरा पीटते हैं कि, उनकी नायिका किसी भी संस्था से महान हैं। उनके मंत्रिमण्डल के मंत्री न्याययुत तथा प्रजासत्तात्मक रीति से चुने गए लोगों के विरुद्ध, नंगा करने की धृष्ठता दिखा रहे हैं। अपनी बात न माननेवाली सरकारों को अस्थिर बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। कांग्रेस को चुनाव में हराने के लिए कम्युनिस्ट, मुस्लिम लीग और डी.एम.के. की मदद से वे चाल चला रहे हैं। अपने प्रशंसकों के पाप व अपराधों को क्षमा करने के लिए तैयार हैं। ऐसे लोग आय कर देने से मुक्त हैं, उन्हें किसी को भी अपनी जायदाद की घोषणा नहीं करना पड़ती। इतना ही नहीं, पक्ष के लिए, उनके द्वारा संग्रह की गई निधि का लेखा-जोखा भी देना नहीं पड़ता। निजलिंगप्पाजी ने परिभाषित किया कि, प्रजातंत्र का मतलब सामूहिक शासन होता है। उन्होंने पत्र में इंदिराजी से कहा कि, ''इस पत्र को लिखते हुए उन्हें बहुत ही दुःख होता है, कई दिनों की हिचकिचाहट और आंतरिक दुःख के बाद लिख रहे हैं। परंतु कर्तव्यप्रज्ञा के साथ, यह कार्य करके वे इस विषय को इंदिराजी के ध्यान तक, इसे ला रहे हैं। कांग्रेस पक्ष के विचार जो दृढ़ता और प्रजासत्तात्मक उत्तरदायित्वों को समर्थन देने को उन्होंने अपना कर्तव्य माना है, इसके अलावा, पत्र लिखने में, उनका कोई दुरुद्देश्य नहीं है। उन्होंने प्रार्थना की कि, लिखने के पीछे के मनोभाव को समझ लें, अपनी गलतियों को सुधार कर, पक्ष की एकता, देश की हित और सांस्थिक कार्यशीलता को महत्व देने में कोई समझौता

नहीं करना होगा। ''सामान्यतः मृदुभाषी, मुस्कराते रहनेवाले, स्नेहपूर्ण, मुग्ध व्यक्ति निजलिंगप्पाजी, समय आने पर, अपनी दृढ़ता दिखा सकते हैं'' इस बात के लिए यह पत्र उदाहरण है। परंतु विरोधियों के चातुर्य की राजनीति की वे समानता नहीं कर सकते थे। यह सच ही है न कि, निजलिंगप्पाजी के विश्वास युक्त तत्व-आदर्शों की राजनीति, चालों व तंत्रों पर अवलंबित ऐसी राजनीति के बीच, जीवित रहने के लिए संभव संदर्भ इतिहास में कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता।

कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक 2 नवंबर 1969 को होनेवाली थी; उससे पहले निजलिंगप्पाजी ने, सुब्रह्मण्यं और फकरुद्दीन अली अहमद जी को सदस्यत्व से निकाल दिया। कइयों ने जो इसका सहज ही व्याख्यान किया कि, अपने साथियों को मंत्रिमण्डल से बाहर निकालने के लिए, निजलिंगप्पाजी का प्रतिकार था। इसी बीच, नियमित संख्या में, सदस्यों की सही के साथ पत्र देने पर भी, ए.आइ.सी.सी. को न बुलाने पर, इंदिरा गाँधी जी और उनके साथी निजलिंगप्पाजी पर क्रोधित हुए। उन्होंने 22, 23 दिसंबर, 1969 को, देहली में स्वयं एकपक्षीय रूप में, ए.आइ.सी.सी. को बुलाने का निर्धार किया। परंतु उससे पहले, कार्यकारी समिति का विभजन हो गया। एक समूह ने निजलिंगप्पाजी की अध्यक्षता में पक्ष की कचहरी में सभा बुलाई तो दूसरा, प्रधानमंत्री के घर में उनकी अध्यक्षता में, सभा बुलाई। गुजरात पी.सी.सी. के आश्रय में, होनेवाली ए.आइ.सी.सी. सभा में भी इंदिराजी के गुट के निजलिंगप्पाजी के विरुद्ध अविश्वास निर्णय को मंडित करने के संदेह के कारण से निजलिंगप्पाजी के समूह ने निर्णय लिया कि, उस समूह के द्वारा बुलाई गई ए.आइ.सी.सी. अनावश्यक है। सुब्रह्मण्यं और फक्रुद्दीन अली अहमद जी को कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सदस्यत्व से दूर करने के बारे में, इंदिराजी समूह की सभा ने निर्णय ले लिया। उसने सिंडिकेट के विरुद्ध आरोप लगाया कि, इंदिराजी के दल के दो सदस्यों को निकालने के द्वारा, कार्यकारिणी समिति में बहुमत साधने के लिए ऐसा किया गया है। इंदिरा गाँधी गुट की सभा, किसी भी अडचन के बिना हुई तो कांग्रेस कचहरी में जमा हुई, इंदिराजी के पक्ष के समूह ने, निजलिंगप्पाजी के कांग्रेस कचहरी में, अडचन डालने का प्रयत्न किया। निजलिंगप्पाजी की कार पर हमला कर, उन्हें बाहर निकालकर, उनपर हमला करने का प्रयत्न किया। अश्लील शब्दों से उनकी निंदा की तो, पुलिस उन्हें सुरक्षित रूप से

पक्ष की कचहरी में लाई। कई पत्रिकाओं की रिपोर्ट ने बताया कि यह सब गुंडागर्दी सरदारजी के गूंडा समूह द्वारा हो गया। अतुल्य घोष और दूसरे वरिष्ठ नेताओं को भी ऐसे ही खींचा गया। इस कारण, सभा पुलिस की रक्षा में हुई। सरकार के आंतरिक राजनीतिक व्यवहार, अर्थव्यवस्था और विदेशी विचारों का तिरस्कार करते हुए, निर्णय लिए गए। यह भी निर्धार लिया गया कि, इंदिराजी के विरुद्ध 'अनुशासनिक कारवाई' किया जाय और उनके बदले कांग्रेस संसदीय पक्ष को, दूसरे किसी नए नायक को चुन लेना चाहिए। एक सदस्य के.सी. अब्राहमजी, पहले इंदिराजी के समूह की सभा में हाजिर हुए फिर, निजलिंगप्पाजी के समूह की सभा में हाजिर हुए। इसके परिणामस्वरूप अविभाजित कार्यकारिणी समिति के 21 सदस्यों में 11 सदस्य निजलिंगप्पाजी के गुट में, 10 सदस्य, इंदिराजी के गुट में हो गए। चौरासी वर्ष पुराने और स्वातंत्र्य के बाद भी यथास्थिति की रक्षा करते हुए, राष्ट्रीयता और एकता के संकेत के स्वरूप का भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 2 नवंबर 1969 को, विभजित हो गया। उसके इतिहास का यह काला दिन था। कांग्रेस संसाधन का केंद्र होने के कारण, इंदिराजी ने उसे अपने वश में करना चाहा। उनकी कृति और बातों से यह व्यक्त हुआ कि वे सिंडिकेट के साथ 'राजी' होने के लिए तैयार नहीं थीं। ''उन्हें पदच्युत करने के लिए, सिंडिकेट प्रयत्न कर रहा है'' – इस अफवाह को ही उन्होंने अपनी पूँजी बनाना चाहा। परिस्थिति पर ध्यान देने वाले, अनेक लोगों के अभिप्राय में, प्रधानमंत्री का परिणामकारी रूप में सामना करने के संसाधन सिंडिकेट के पास नहीं थे। इसके अलावा, संप्रदायशरण मूल्यों से चिपके हुए, उसके नेतागण इंदिराजी के स्तर तक गिरकर, लड़ने के लिए तैयार नहीं थे।

अपने पिछले पत्र का जवाब न पाकर, निजलिंगप्पाजी ने 03-11-1969 को प्रधानमंत्री को एक और पत्र लिखा। उस पत्र का सारांश है : ''उसमें अपने पिछले पत्र में, उनकी कार्य करने की रीति से कांग्रेस की एकता और प्रजातंत्र के लिए उससे मारक होने की आलोचना के बारे में, याद दिलाई थी। उसमें उन्होंने, बिनती की थी कि, वक्रता और चालों का रास्ता छोड़कर, मुक्तता, पारदर्शकता और सद्भावना को अपनाये। विषाद भी व्यक्त किया था कि, पत्र को जवाब देने का प्राथमिक सौजन्य भी उन्होंने नहीं दिखाया। शायद उनसे मिलने के लिए, समय का अभाव होगा। न्याययुत रूप से रचित, कार्यकारी समिति की सभा का बहिष्कार करते हुए, उन्होंने कुछ सदस्यों का नायकत्व

अपनाया था। इतना ही नहीं, न्याययुत समिति के विरुद्ध उन्होंने, समानांतर सभा की थी। 1969 दिसंबर, 22 और 23 को हुई सभा में निर्णय लिया गया था कि, 'उन्हें अध्यक्ष पद से उतारने के लिए ए.आइ.सी.सी. बुलाया जाय।' ये सब समाचार उन्हें पत्रिकाओं द्वारा मालूम हुए थे। उनके आचरण को अक्षम्य कहा। उन्होंने कहा कि, ''पक्ष संविधान का उल्लघंन अपराध होगा; उसका परिणाम खतरनाक होगा और उससे पार्टी की और एकता नष्ट होगी।'' कांग्रेसवाले ही निर्धार करें कि, इस महान् संस्था के आदर्श-तत्त्व तथा एकता के लिए कौन खतरनाक हो सकते हैं। इसके अलावा, वे सार्वजनिकों के लिए जिम्मेदार होंगे। उन्होंने बताया कि, ''सार्वजनिक समदृष्टि से इसका परिशीलन कर, परिस्थिति को समझने को सहकारी होने के लिए वे 28 अक्तूबर, 1969 को लिखे गए पत्र को पत्रिकाओं में प्रकाशित करेंगे।''

इस पत्र के लिए इंदिरा गाँधी के जवाब का सारांश इस प्रकार है – ''उन्होंने सूचित किया कि, उनके पिछले पत्र में प्रस्तावित अनेक विषयों के बारे में, चिंतन करने के लिए समय की जरूरत के कारण,उनका जवाब देने में देर हो गई।''

प्रजातंत्र तथा समाजवाद को पक्ष के ध्येय मानकर, उसे बलवान बनाने के उद्देश्य से यदि निजलिंगप्पाजी पार्टी के विभाजन को रोकने का प्रयत्न करते हैं तो, सुब्रह्मण्यं और फकरुद्दीन अली अहमद जी को निकालना एक अलग ही कहानी बताता है। पार्टी के संविधान के अनुसार ऐसे निर्णय लेने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। पक्ष के संविधान को जैसे उन्होंने समझा है; अपनी इच्छानुसार अधिकारियों को निकालने का उन्हें अधिकार होने पर भी, उनके दो वर्षों की अवधि को पूरा करने तक, कार्यकारिणी समिति के सदस्यों को छूने का भी उन्हें कोई अधिकार नहीं है। इसलिए, यह स्पष्ट है कि, उन्होंने पार्टी के संविधान का उल्लंघन किया है। उन्होंने यह सवाल सामने रखा था कि क्या, अपने द्वारा नियुक्त मंत्रिमंडल के सदस्यों को निकालने का जैसे, प्रधानमंत्री का अधिकार होता है, वैसे ही, अपने द्वारा नामकरण किए गए लोगों के सदस्यत्व को रद्द करने का अधिकार पार्टी के अध्यक्ष को प्राप्त है? परंतु यह कोई योग्य सवाल नहीं है। क्योंकि, प्रधानमंत्री के अधिकार और कार्यव्याप्ति के बारे में, भारत के संविधान में स्पष्ट निरूपण है। उसी तरह, इंदिरा गाँधी जी का अभिप्राय था कि पक्ष के अध्यक्ष की अधिकार व्याप्ति को पक्ष के संविधान द्वारा निरूपित

होता है। इसलिए, पार्टी के अध्यक्ष और प्रधानमंत्री – दोनों को एक ही तरह से तोलना ठीक नहीं है। दोनों के सूक्ष्म अंतर को दिखाते हुए उन्होंने तर्क किया कि, ''जिस प्रकार अध्यक्ष, शंकरदयाल शर्माजी को सचिव स्थान से निकालने का अधिकार रखते हैं, इसी प्रकार कार्यकारिणी समिति के सदस्यों को निकालने का अधिकार नहीं रखते।'' इसलिए, निजलिंगप्पाजी ने वैयक्तिक इच्छानुसार पक्ष के संविधान का अतिक्रमण किया है। और कहा कि ''उनसे तर्क करना व्यर्थ है, इसी कारण से उन्होंने पहले जवाब नहीं लिखा। उनका पत्र, पत्रिकाओं में प्रकाशित किया जा रहा है तो अब इंदिराजी जवाब दे रही हैं।'' अब उन्होंने बताया कि अध्यक्ष के चुनाव के बारे में अबतक काफी चर्चाएँ हो चुकी हैं। जो भी हो, अब वह अध्याय समाप्त हो चुका है। अभ्यर्थी के बारे में एकमत के लिए, उन्होंने अध्यक्ष से अभ्यर्थियों की लिस्ट माँगी थी। परंतु उसके बदले, बेंगलूर की सभा में अधिक चर्चा के बिना, अभ्यर्थी के बारे में निर्धार ही लिया गया। और वह निर्धार जल्दबाजी में किया गया था। यही आगे की अनेक समस्याओं के लिए कारण बन गया। इस प्रकार अध्यक्ष के अभ्यर्थी के बारे में लिया गया निर्धार राजकीय अप्रबुद्धता के अलावा कुछ नहीं है। वास्तव में गिरी जी एक स्वतंत्र अभ्यर्थी हैं। कम्युनिस्ट और मुस्लिम लीग ने उनका समर्थन किया और उन्हें, और गुटों का भी समर्थन प्राप्त हुआ। उनकी विजय से हमारा या हमारे साथियों का कोई संबंध नहीं है! उन्होंने दृढ़ विश्वास से कहा कि, इससे उन्हें कोई वैयक्तिक लाभ नहीं है। केवल कांग्रेस का बलवान होने में तथा समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता को बद्धता पाने में ही उनकी आसक्ति है। इन आदर्शों के विरुद्ध काम करनेवाली शक्तियों को नष्ट करने में सहाकार के लिए मात्र उन्होंने निजलिंगप्पाजी से विनती की थी। उस उद्देश्य के लिए ही, कांग्रेस के कई लोगों ने विशेष ए.आइ.सी.सी. अधिवेशन के लिए मांग की है। ऐसी मांग को पूरा करना पार्टी के बुजुर्गों का कर्तव्य है। पार्टी के आदर्श का समर्थन न करनेवाले प्रजाप्रभुत्ववादी कहलाने के लिए योग्य नहीं हैं। ऐसे लोग, पक्ष की एकता की रक्षा करने का सामर्थ्य नहीं रखते।

तत्कालीन परिस्थिति में उनकी बातों पर ध्यान देने के लिए उन्होंने निजलिंगप्पाजी से बिनती की थी। कांग्रेस के सामने जो मुश्किल है, वह देश की मुश्किल है। जनता के सामने रखे गए विकास के ध्येयों ने नए सवालों को सामने रखा है। फरीदाबाद के अधिवेशन में माने गए कार्यक्रम और अध्यक्ष के

भाषण में सूचित विचारों में बड़ा ही अंतर है। बेंगलूर अधिवेशन ने इस अंतर को और बढ़ा दिया है। इन सभी समस्याओं तथा विषयों के बारे में, उनके लिखे नोट के आधार पर योग्य रीति से उल्लेख कर सकते थे। परंतु दुर्भाग्य से उन टिप्पणियों के आधार पर निर्णय का मंडन करने की बात कहकर, मोरारजी ने अपने भाषण में उनकी सलाहों की पूर्ण रूप से उपेक्षा की। बैंक राष्ट्रीकरण के संबंध में पार्टी द्वारा सम्मति प्राप्त विचार का अनुष्ठान करने के लिए किए गए प्रयत्नों ने परिस्थिति को खराब किया था। उनको जारी करना केवल सरकार का कर्तव्य नहीं है; पार्टी के नायकों व सरकार के बीच के सहकार से ही उसे जारी करना संभव हो सकता है। प्रस्तुत समस्या का निवारण नहीं करेंगे तो, देश को खतरे का सामना करना पड़ेगा। इसलिए उन्होंने कहा कि, 'प्रजातंत्र के हित की दृष्टि से इन सभी समस्याओं को ए.आइ.सी.सी. के सामने रखना ठीक होगा।' उन्होंने अध्यक्ष से सम्मानपूर्वक बिनती की कि सारे तंत्रोपायों को छोड़कर,वे जो ए.आइ.सी.सी. की सभा बुलाना चाहते हैं, उसका अध्यक्ष बनकर सदस्यों को अपने अभिप्राय व्यक्त करने का मौका दे दे। अंतिम निर्धार बहुमत पर निर्भर होता है। यदि, ए.आइ.सी.सी. को बुलाना वे तांत्रिक रूप से ठीक नहीं समझते तो, वे खुद अधिवेशन बुला सकते हैं। इस पत्र को लिखने के तीन चार दिनों बाद, परिस्थिति का विवरण देने के लिए खुला पत्र प्रकाशित किया। उसमें इंदिराजी ने बताया कि पार्टी के समान देश भी मुश्किल का सामना कर रहा है। यह मत समझना कि यह केवल संसद और पार्टी के बीच का मतभेद है। उससे भी गहरा कारण यह है कि कांग्रेस के विचार तथा ध्येयों के बारे में मूलभूत मतभेद है। कांग्रेस में ही एक तरफ, एक गुट समाजवाद, सामाजिक बदलाव, आंतरिक प्रजातंत्र और मुक्त चर्चा के पक्ष में है; इसके विरुद्ध दूसरे गुटने यथास्थितिवाद, संप्रदायशरणता, बिना किसी चर्चा के निर्णयों के पार्टीवालों का समर्थन पाया है। दूसरा गुट बदलाव के बारे में, बड़ी बड़ी बातें करता है; परंतु उसके अनुष्ठान के विषय आने पर, वह पीछे हटकर कांग्रेस के क्रांतिकारी कार्यक्रमों व योजनाओं में बाधा डाल देता है। ऐसा गुट आज ही नहीं पैदा हुआ है; वास्तव में पिछले बाईस वर्षों से वैसा गुट है। यह गुट मेरे पिताजी के परिणामकारी सामाजिक बदलाव के प्रयत्नों को व्यवस्थित रूप से बाधा डालता आया है। मेरे पिताजी और महात्मा गाँधीजी द्वारा रूपित कांग्रेस मात्र ही, अहिंसात्मक सामाजिक स्थित्यंतर ला सकता है। इसे न कर सकने पर, कांग्रेस

में रहने से क्या फायदा? आजादी के बाद, वरिष्ठ नेताओं ने प्रशासन की जिम्मेदारी उठाई, दूसरों की हितासक्ति को तीव्र ध्यान दिया; खुद को जनसेवक होने की बात भूलकर, स्वयं को कांग्रेस समझकर, घूमने लगे। पार्टी में अपने स्थान को सुदृढ़ कर लेने के लिए प्रामाणिक व बद्धतापूर्ण कार्यकर्तों को पार्टी से निकाल दिया। उनकी अधिकार लालसा और दुराशा के कारण अच्छे कांग्रेसी पक्ष को छोड़कर चले गए; या राजनीति से निवृत्ति ले ली। इतना ही नहीं, युवा जनता के नये खून से भरकर, पार्टी के पुनरुज्जीवन को करनेवाले हितासक्त ये झूठे सदस्यों को पार्टी में लेकर उनकी सहायता से पार्टी का अधिकार पाते हुए, सरकार के विचारों को अपनी इच्छानुसार बदलने के उद्देश्य से कार्य करने लगे। उन्होंने और उनके मित्रों ने जो ए.आइ.सी.सी. बुलाया है, इसका उद्देश्य इन समस्याओं पर मुक्त रूप से चर्चा करने के लिए मंच का निर्माण करना है। देश को स्वातंत्र्य दिलाते हुए, नई सामाजिक व्यवस्था की रचना का वादा करनेवाली यह महान राष्ट्रीय संस्था विभजित नहीं होना चाहिए। इसी कारण से हमने इस पत्र के साथ, परिशिष्ट के रूप में, निजलिंगप्पाजी और अपने बीच के तथा फक्रुद्दीन अली अहमद, और सुब्रह्मण्यं और निजलिंगप्पाजी के पत्र व्यवहार को भी लगा दिया है। इस पत्रव्यवहार से ही किसी भी ठीक चर्चा के बिना बहुसंख्यात सदस्यों के मनोभाव की उपेक्षा साबित होती है।

उसके बाद वे कुछ मुख्यमंत्रियों के बीच हुए विचार-विनिमय के बारे में, उल्लेख करती हैं। उनकी चर्चा अभी चलती रहती है तो निजलिंगप्पाजी इंदिरा गाँधी जी के व्यवहार के बारे में विवरण मांगते हैं। इसके बाद भी इंदिराजी उनसे मिली थीं। के.सी. अब्राहम् और वीरेंद्र पाटील जी की सलाह पर उनसे इंदिराजी ने चर्चा की थी और कहा था कि निजलिंगप्पाजी के वैयक्तिक गुणों के प्रति उनमें आदर-सम्मान है। ए.आइ.सी.सी. को बुलाने का उद्देश्य – सिर्फ अध्यक्ष के चुनाव के बारे में बात करने के लिए है। निजलिंगप्पाजी ने – "यह मेरे विरुद्ध अविश्वास निर्णय मंडन करने के लिए षड्यंत्र है" – कहकर, विश्लेषित किया था। इंदिराजी ने सूचना दी थी कि " पी.सी.सी. स्तर के ऊपर के पदाधिकारियों को चुनाव द्वारा ही, चुनना चाहिए" और उन्होंने सलाह दी थी कि ऐसे चुनावों के पहले मतदाताओं की सूची का परिष्कार करना होगा। परंतु निजलिंगप्पाजी ने कहा कि 'अभी जो मतदाताओं की सूची है, उसी प्रकार चुनाव हो'। इसके बारे में वे निर्दिष्ट नहीं थे। उन्होंने इतना ही कहा कि, 'इसके बारे

में, एक लिखित बिनती दे तो उसे कार्यकारिणी समिति के सामने रखा जाएगा।' उन्होंने यह स्पष्ट नहीं किया था कि इस विषय का पूर्ण रूप से कार्यकारिणी समिति परिशीलन करेगी या जो कहा गया है उसका परिशीलन करेंगे। इंदिराजी ने या निजलिंगप्पाजी ने, इंदिराजी के व्यवहार पर विवरण के पत्र के बारे में उल्लेख नहीं किया। इंदिराजी ने कहा कि उनके और दूसरों के बारे में, 'अनुशासनिक कारवाई' करने के उनके विचार के बारे में विश्वसनीय मूलों से मालूम हुआ है। और कहा कि ऐसे नगण्य विषयों को भूलकर, देश जिसका सामना कर रहा है, उस गंभीर परिस्थिति के बारे में सोचना चाहिए। जनता की हताशा तथा उनकी कई आकांक्षाओं, सपनों व भरोसों की ओर उन्हें ध्यान देना पड़ा। उनका अभिप्राय था कि जनता की राजकीय प्रज्ञा तेज हो रही है। उनकी आज की और आगे की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर, कार्यक्रम बनाना अनिवार्य है। कांग्रेस को नई हवा के लिए द्वार खोलने होंगे। नए समूहों के साथ संबंध बढ़ाना चाहिए, विशेष रूप से नई शक्ति का पोषण करना होगा; तांत्रिक तथा वैज्ञानिक ज्ञान और परिणतियों का पूर्ण रूप से उपयोग करना चाहिए; नीति निरूपण तथा कार्यक्रम को रूपित करने में, बुद्धिजीवियों की सहायता लेनी चाहिए; सभी वर्गों के लोगों में आत्मविश्वास बढ़ाने की तरफ प्रयत्न हों। इन विषयों के बारे में राष्ट्रीय स्तर पर चर्चाएँ हों।

आज के गुटों के झगडों के दो मूल कारण हैं। एक कानून से संबंध रखता है तो दूसरा संविधान से संबंधित है। निजलिंगप्पाजी और उनके बीच के पत्र व्यवहार ने इनकी पूर्ण रूप से चर्चा की है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि ये सब वास्तव में हैं। परंतु इनसे भी एक महत्वपूर्ण विषय है – ''क्या बडे. बड़े त्याग करते हुए, कांग्रेस का निर्माण करनेवालों को उसकी दिशा व विचारों का निर्धार करना चाहिए, अथवा पक्ष को अपनी मुट्ठी में रखनेवाले, कुछ प्रभावशाली नायकों की इच्छानुसार वह चले? दर्पवाले नियंत्रण और सहज प्रजातंत्र – इनका संघर्ष हमेशा होता ही रहता है। परंतु अब तो उसने बडी समस्या का रूप ले लिया था। कांग्रेस का ध्येय– समाजिक, आर्थिक बदलाव द्वारा सामाजिक क्रांति लाना था। परंतु अपने ध्येयों को साकार करने के सामर्थ्य को पक्ष ने खो लिया है। उसमें अब गौरवपूर्ण ध्वनि नहीं है। कार्यशील होने की शक्ति नहीं है, पहले का आत्मविश्वास नहीं है। सामान्य कांग्रेस कार्यकर्ता को बोलने का स्वातंत्र्य नहीं है।

पार्टी के अनेक मूल निर्जीव हो गए हैं। आजका संघर्ष जैसा भी हो, अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कांग्रेस जनता के लिए क्या कर सकता है। पार्टी को जो साधना है, उसे प्रजातंत्र और समाजवाद के बारे में बद्धता के साथ करना है। ये दोनों परस्पर पूरक हैं और समान महत्व के हैं। सैद्धांतिक रूप से इन दोनों को, विशाल स्तर का कांग्रेस मात्र ही साध सकता है। लोगों को समाजवाद के लिए तैयार करना है। समाजवाद का अर्थ, केवल कानून बनाना नहीं है, केवल चुनाव के समय में कांग्रेस जागृत हो, काफी नहीं है। लोगों के मन में कांग्रेस के ध्येयों को सदा हरा रखने के लिए निरंतर संघर्ष करना, आवश्यक है। बड़े पैमाने में राजनीतिक शिक्षण कार्यक्रम करना अनिवार्य है। राजकीय सामर्थ्यों का समर्थन करने के लिए एक बड़े सामाजिक समूह का निर्माण करना है। ऐसे समूहों की सहायता के बिना, चुनावों का सामना करना असंभव है।

इंदिराजी ने माना था कि सरकार एक संगठन के रूप में जो कांग्रेस पार्टी है उसका एक अंग है। यदि पार्टी जीवित रहकर कार्यशील हो तो, सरकार भी अपनी जिम्मेदारियों के बारे में जागरूक रहती है। पार्टी के चैतन्य और सामर्थ्य सरकार के कानून तथा कार्यों में प्रतिबिंबित होते हैं। इसलिए पार्टी की प्रामुख्यता की उपेक्षा नहीं की जा सकती। देहली में होनेवाली ए.आइ.सी.सी. का भी उद्देश्य यही है कि उसे प्रजासत्तात्मक क्रियाशीलता का एक समर्थ साधन बनाना। इंदिराजी की प्रतीक्षा यह है कि यह अधिवेशन, पार्टी में नए चैतन्य लाएगा और वह प्रगतिशील मार्ग में लोगों को साथ लेकर चलेगा। सब की प्रतीक्षा भी यही है; बाकी की कोई गिनती नहीं है।

इस पत्र में इंदिराजी की होशियारी व राजनीतिक कौशल दिखाई देते हैं। इस पत्र के कुछ विचारों के कारण, उनपर आक्षेप नहीं किया जा सकता। उनमें से कुछ को सत्य मानना ही पड़ता है। उदाहरण के लिए 1969 के चुनावों के बाद जो कांग्रेस की हार हुई, यह साबित करती है कि पार्टी के लिए, नया चैतन्य तथा कायकल्प की आवश्यकता है। उसके लिए संगठनात्मक तेजी भी आवश्यक थी। और सबसे अधिक उसके, उत्साह और नया खून चाहिए थे। यह सब सच है। निजलिंगप्पाजी ने भी कई विषयों पर आक्षेप उठाने पर भी, उनमें कुछ बातों को माना होगा। परंतु उन दोनों में मूलभूत भिन्नता तो थी ही। परंपरागत कानून-संस्कृति में पले-बढ़े निजलिंगप्पाजी नियमावलियों के लिए कटिबद्ध थे। अक्षरशः बिना किसी झिझक से। परंतु इंदिराजी, नियमों के पीछे के मनोभाव

को जैसा समझती उसी को महत्व देते हुए, नियमों को दूर रखने के लिए भी तैयार थीं। इसके अलावा, तात्विक रूप से ही क्यों न हो, वे सैद्धांतिकता के हित के लिए नियमों को भूलने के लिए भी तैयार थीं। परंतु यह निजलिंगप्पाजी के मूल विचार के विरुद्ध था। दूसरा अंश यह रहा – अनुमानातीत रूप से सुलझने में संभव न होने पर भी उनकी अपनी बातों व व्यवहार में प्रामाणिकता। कोई भी सवाल कर सकते थे कि इंदिराजी की क्रांतिकारिता, समाजवाद और प्रगतिशीलता क्या उनकी अपनी स्वहित साधना के लिए प्रयुक्त अस्त्र थे ? यह प्रश्न कोई भी कर सकते थे। निजलिंगप्पाजी ने यही किया। निजलिंगप्पाजी ने और सिंडिकेट ने, प्रामाणिकता से विश्वास किया था कि इंदिराजी, मूलभूत से एक मौकापरस्त व्यक्ति हैं और उनकी बातें व व्यवहार में गहरा अंतर है। सरल शब्दों में कहना हो तो उन्होंने इंदिराजी को दगाबाज, कुतंत्री और विश्वास करने के लिए नालायक व्यक्ति माना था। यह एक कठिन ऐतिहासिक सवाल है। क्योंकि इतिहास के विश्लेषण में, वैयक्तिक तथा सार्वजनिक और अवसरवादी तथा सैद्धांतिक आकांक्षाएँ अटूट रूप से मिली रहती हैं। परंतु यह एक सामान्य विषय मात्र है, उसका यहाँ उल्लेख करना इंदिराजी के समर्थन करने की उनकी राजनीति को अपराधमुक्त करना नहीं है। बाद के कार्यों के समर्थन से सिंडिकेट वास्तव में काल-विहीन मनोभाव से दूर था। उसी प्रकार इंदिराजी ने उनके अन्य उद्देश्य कुछ भी हो, सभी बुजुर्गों ने समर्थ रीति से समझ लिया।

अब घटनावली का निरूपण आगे बढ़ायेंगे। अध्यक्ष के चुनाव में अधिकृत अभ्यर्थी के विरुद्ध, दोनों गुटों के पुरानी बातों को भूलने के लिए कार्यकारिणी समिति की एकता के निर्णय के पहले, कार्यकारिणी समिति से पदच्युत हुए, फकरुद्दीन अली अहमद जी ने निजलिंगप्पाजी को 1नवंबर 1969 को पत्र लिखकर बिनती की कि उनकी पदच्युति न्यायपूर्ण नहीं; उन्हें फिर से सदस्य बना लें। पार्टी के अध्यक्ष के रूप में, निजलिंगप्पाजी ने प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर कहा कि ''कार्यकारिणी समिति सभा को नियमबाहिर रूप से बुलाया गया है और इस व्यवहार का विवरण दिया जाय।'' उसके जवाब में प्रधानमंत्री जी ने निजलिंगप्पाजी को पत्र लिखकर आग्रह किया कि तुरंत ए.आइ.सी.सी. सभा बुलाकर वे अपना बहुमत साबित करे। निजलिंगप्पाजी की अध्यक्षता में हुई कार्यकारिणी समिति की सभा में उनके विरुद्ध किए गए निर्णय का समर्थन करनेवाले रामसुभगसिंहजी को अपने मंत्रिमंडल से निकाल दिया। उलझन भरी

अफवाहों से वातावरण भर गया। उनमें ''संसद का विसर्जन कर, नई तरह से चुनाव होंगे'' कहकर इंदिराजी के साथियों द्वारा फैलाई गई अफवाह थी सहज ही, इस अफवाह से संसद-सदस्य चिंता में पड़ गए। इससे अधिक किनारे पर स्थित संसद-सदस्य व शासक दुःखी हो गए। वे सब चुनाव से बचने के लिए इंदिराजी की ओर हो गये। वीरेंद्र पाटील जी इस छेद को संवारने के लिए संधी कार्य करने लगे। संजीवरड्डी जी को राष्ट्रपति के अभ्यर्थी के रूप में सूचना करनेवाली संसदीय सभा में ही उन्होंने अंतिम निर्धार से पहले प्रधानमंत्री जी से चर्चा करने के लिए पाटील जी से कहा था। पाटीलजी ने देहली में प्रधानमंत्री जी से मिलने पर, संदेश में कहा था कि ''राजनीतिक स्थिरता या विनाश का वे सामना कर रही हैं।'' इंदिराजी ने तर्क किया था कि राष्ट्रपति अभ्यर्थी को चुनने में सरकार चलानेवाले प्रधानमंत्री की इच्छा ही अंतिम होनी चाहिए। क्योंकि, राष्ट्रपति भवन में उन्हें ही इस व्यक्ति के साथ बार-बार सहकार के साथ चलना पड़ता है। इसके अलावा उन्होंने यह भी कहा था कि यदि रेड्डी जी के बदले निजलिंगप्पाजी ही राष्ट्रपति स्थान के लिए स्पर्धा करते वे संतोष के साथ उनका समर्थन करती थीं। इससे पक्ष का विभजन न होगा– सोचकर, पाटील जी ने अपने राजकीय गुरु निजलिंगप्पाजी के सामने विषय को रखा। परंतु निजलिंगप्पाजी ने पुराने खोखले नैतिक विचार से कहा था फिर इस संदर्भ में रेड्डी जी का हाथ छोड़ना अनैतिक होगा, नैतिक तत्वों के लिए वे अधिकार व स्थान छोड़ने के लिए तैयार थे। जो भी हो, राष्ट्रपति चुनाव के बाद की परिस्थिति में पाटील जी शांतिदूत बनकर कार्य करने के लिए तैयार हुए। दोनों नायकों से मिलकर पक्ष की हितदृष्टि से अपने अपन मतभेद भूलने के लिए कहा। इंदिरागाँधी जी द्वारा आयोजित भोजन में निजलिंगप्पाजी ने इंदिराजी से मिलकर दोनों पार्टी के लिए मान्य समानांशों पर समझौता करने के लिए कहा। भोजन कार्यक्रम ठीक तरह से हुआ। परंतु समझौता नहीं हुआ। विवादित विषय के बारे में संधान के लिए दोनों तैयार नहीं थे। निजलिंगप्पाजी ने अपने घर भोजनकूट के लिए इंदिराजी को बुलाया। वे मान गईं। परंतु आखिरी घड़ी में काम के दबाव का कारण देकर नहीं आईं। वीरेंद्र पाटील जी ने समझा कि 'शायद इसका कारण सरकार में रहे उनके सहकर्मियों तथा कुछ कम्यूनिष्ट समर्थक मित्रों की सलाह हो सकता है। पक्ष के विभाजन को रोकने के लिए, परदे के पीछे अनेक प्रयत्न हुए। इंदिराजी के निजी मित्र दिनेशसिंह जी का भी प्रयत्न रहा। उन्होंने मैसूर

के लोकसभा सदस्य एम्.वी. राजशेखरन जी को आमंत्रित कर उन्हें संधानकार के रूप में भेजने को सोचा। क्योंकि राजशेखरन जी, निजलिंगप्पाजी के दमाद थे। उनसे इंदिराजी ने कहलाया कि अभी देश बहुत सी समस्याओं का सामना कर रहा है, इसलिए, उन्हें बहुत ही होशियार रहना चाहिए। अभी तो पक्ष को विभाजन होने से बचाना है और यदि वे चाहें तो वह कार्य कर सकते हैं। इंदिराजी की मोरारजी से नहीं बनती, प्रधानमंत्री जी ने संदेश भेजा कि ''यदि निजलिंगप्पाजी उनका साथ छोड़ दें तो उन्हें वे अर्थ मंत्री बनाने के साथ उपप्रधानमंत्री भी बनायेंगे।'' परंतु दामाद अपने ससुरजी का स्वभाव जानते थे; इसलिए उन्होंने इसके बीच आना नहीं चाहा। निजलिंगप्पाजी कभी भी अपना वादा नहीं तोड़ते थे, फिर भी, उन्होंने कहा कि यह संदेश उनतक पहुँचा देंगे। राजशेखरन जी ने जैसे ही वह बात शुरू की तो, निजलिंगप्पाजी बड़े ही क्रोधित हो गए। परंतु दिनेशसिंह जी से मिलने के विवरण सुनकर थोडे ठंड़े हो गए। राष्ट्रपति के चुनाव के समय में भी, दिनेशसिंह जी ने ऐसी ही सलाह दी थी। निजलिंगप्पाजी ने तब भी जवाब दिया था कि ''क्योंकि वे पार्टी के अध्यक्ष हैं, राष्ट्रपति स्थान की आशा करना योग्य नहीं होगा। उनका कार्य उस पद के लिए अभ्यर्थी को ढूँढना है न कि स्वयं अभ्यर्थी बनना।'' उपप्रधानमंत्री स्थान के बारे में दिनेशसिंह जी ने वीरेंद्र पाटील जी से चर्चा की; और शायद उन्होंने निजलिंगप्पाजी से यह बात की। प्रधानमंत्री जी को जब मालूम हो गया कि किसी भी लालच से निजलिंगप्पाजी मानेंगे नहीं तो उन्होंने, अपना खुला पत्र प्रकाशित किया। उनके 03-11-1969 के पत्र को निजलिंगप्पाजी ने 11-11-1969 को जवाब भेजा। उस पत्र का मुख्यांश यहाँ संक्षेप में उल्लिखित किया जायेगा।

''पहली बात यह है कि पार्टी की दुःस्थिति पर प्रधानमंत्री ने कोई आसक्ति नहीं दिखाई; अपने गलत रास्ते से हटने की कोई सूचना उन्होंने नहीं दी। उस दिशा में कोई कोशिश भी नहीं की। उनके तथा उनके सहचरों द्वारा उठाए गए, संशयों का निवारण करने के बदले, उन्होंने अर्धसत्य और विवादात्मक तर्क का आश्रय लेते हुए, वास्तविकता को छिपाया। उन्होंने सोचा कि इंदिरागाँधी जी सत्य तथा ऊहापोह के बीच के अंतर को झूठों से छिपाने का प्रयत्न कर रही हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि उन्होंने सुब्रह्मण्यम् जी को कार्यकारिणी समिति से बाहर नहीं किया और पी.सी.सी. से बाहर आकर, उन्होंने अपने सदस्यत्व को खो लिया। दूसरे ने सभाओं में हाज़िर न होकर और उसका तिरस्कार

कर, कार्यकारिणी समिति के अपने सदस्यत्व को खो लिया। पार्टी के समूचे इतिहास में सादिक अली जी के जैसे पार्टी के अध्यक्ष की ऐसी निंदा नहीं की है। इस तरह की 'अनुशासनहीनता' व विद्रोह के लिए उचित दंड देना ही होगा। क्या पार्टी का नियम नहीं है कि मंत्री पार्टी के अध्यक्ष स्थान या सचिव स्थान नहीं ले सकता है? इस नियम के अनुसार ही, कमलापति त्रिपाठी जी, वेंकटरामन् जी और ए.पी. शर्मा जी को पार्टी के अपने स्थान को खोना पड़ा था। इससे पहले भी पार्टी ने इस नियम का पालन किया है। एकता के निर्णय के बाद भी, उनके सहचरों के जैसे उन्होंने व्यवहार नहीं किया है। पटना में जगजीवनराम जी की बातें, मुंबई कांग्रेस के बारे में, इंदिराजी की आलोचना, फकरुद्दीन अली अहमद जी का पत्रिका वक्तव्य – ये सभी उनके एकता निर्णय के सत्व के विरुद्ध व्यवहार के उदाहरण हैं। इंदिराजी ने जो कहा कि ''पार्टी के अभ्यर्थी के चुने जाने तक, उन्होंने निर्धार नहीं किया था'' इसका निजलिंगप्पाजी ने निराकरण किया। उन्होंने याद दिलाया कि ''1969 मई, जून महीनों में ही, उन्होंने इंदिराजी से इसके बारे में उल्लेख किया था। परंतु कभी भी वे चर्चा के लिए नहीं आईं। बेंगलूर की संसदीय पक्ष की सभा के शुरू होने के दो घंटे पहले तक इंदिराजी ने अपने मन की बात नहीं बताई थी। उन्हें अपनी ही पार्टी पर विश्वास नहीं था। इसलिए विरोधी दल वालों के साथ उन्होंने चर्चा की; गिरीजी की विजय के लिए काम नहीं करने के बारे में, कसम खाकर कहने के लिए क्या वे तैयार हैं? ''कई सदस्यों ने ए.आइ.सी.सी. अधिवेशन को बुलाने के लिए जो मांग की उसका निराकरण संविधान बाहिर है? – इंदिराजी के इस तर्क का जवाब देते हुए, उन्होंने कहा कि ''कांग्रेस अध्यक्ष, पार्टी से चुने होते हैं न कि ए.आइ.सी.सी. से।'' उन्होंने पूछा कि ''इस मांग के लिए उन्होंने हस्ताक्षर-संग्रह कैसे किया?'' यह अधिकार के दुरुपयोग से हुआ है, डरा-धमकाकर और धोखे से। अब सवाल उठता है कि ''सभी हस्ताक्षर परिपूर्ण होने पर भी, किसी संघटन का एक विभाग दूसरे विभाग के अधिकार पर इस तरह क्या दुराक्रमण कर सकता है?'' इंदिराजी ने पूछा है कि ''अहमदाबाद के झगडे तथा असम, तेलंगाणा और चंडीगढ़ की प्रतिशोधों के बारे में उन्होंने क्या किया है? परंतु यह सब इंदिराजी के प्रशासन के वैफल्य के कारण ही हुआ न? उनकी दृष्टि में शायद, ये प्रतिशोध उन्हें अधिकार में रखने के लिए ही होगा। अहमदाबाद के कौमी-झगडों में मोरारजी के पात्र के बारे में उन्हें

पता जरूर होगा। उन्होंने आरोप लगाया कि अनुशासनहीनता को छिपाने के लिए वे आदर्श-सिद्धांत के तर्क के आवरण से अपने को बचाने का प्रयत्न कर रही हैं। फरीदाबाद के उनका भाषण पार्टी के ध्येय व नीति के विरोध में नहीं है। समाजवादी आदर्श की सरकार दूसरों से कम आबद्ध नहीं हैं। उन्होंने कहा कि एक कांग्रेसवाला होकर तथा मैसूर के मुख्यमंत्री होकर उन्होंने इसे दिखाया है। उन्होंने सामर्थ्य और उत्पादकता की तरफ ध्यान न देते हुए, इंदिराजी केवल सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तरण पर ही विश्वास करती है – इस पर सवाल उठाया। बैंक राष्ट्रीकरण के बारे में भी यदि आवश्यक हो तो उसका समर्थन करने की बात जो मोरारजी ने कही, वह दाखिल हुई है। इसलिए, निजलिंगप्पाजी ने निर्णय लिया कि एक सर्वाधिकारी के जैसे संपूर्ण रूप से मुट्ठी में कर लेना ही इंदिराजी का एकमेव ध्येय है। वैसे देखा जाय तो, बीसवी सदी में सभी सर्वाधिकारियों ने समाजवाद का मुखौटा पहन लिया है। इंदिराजी ने एस.के. पाटील जी पर आरोप लगाया था कि उन्होंने अपने द्वारा संग्रह की गई निधि का योग्य लेखाजोखा नहीं दिया है, इसका पाटील जी ने ही जवाब दिया है। उन्होंने कहा कि इंदिराजी के सहचरों ने जो निधि-संग्रह किया, क्या उसका ठीक लेखाजोखा दिया है? यह निर्णय हो गया है कि मंत्रियों को अपने द्वारा संग्रह की गई निधि का लेखाजोखा देना चाहिए। वे जानती होंगी कि मंत्रियों तथा शसकों को अपनी जायदाद का विवरण पार्टी की कचहरी को खुले से देना होगा। उन्होंने सवाल किया कि क्या उन सभी ने, नियमों और निर्णयों का पालन किया है? उन्होंने इंदिराजी पर आरोप लगाया कि वे बड़ी विभूतियों की पूजा और सर्वाधिकार जैसे अपने ऊपर लगे आरोपों के बारे में लघुमनोभाव रखती हैं। उन्होंने विषाद व्यक्त किया कि जो प्रजासत्तात्मक संस्थाओं तथा प्रक्रियाओं का निरंकुशाधिकार पाने के लिए दुरुपयोग किया जा रहा है, यह देश की त्रासदी है। रिश्वत व हिंसा के द्वारा, विरोध को दबाया जा रहा है; सार्वधिकारी विचारों को न्याययुत बनाने के लिए अपने सहचरों द्वारा प्रचार, जोरशोर से किया जा रहा है। उन्होंने पुन:बताया कि ऐसे व्यवहार का नियंत्रण कर असली समाजवाद और प्रजातंत्र की रक्षा करना कांग्रेस का कर्तव्य है।

दोनों के बीच के पत्र व्यवहार को देखने से, किसी को भी लगेगा कि इन दोनों के बीच की भिन्नताएँ मूलभूत हैं। और उन्हें जोड़ना संभव नहीं है। मोरारजी, सादिक अली और एस.के. पाटील जी द्वारा तैयार किए गए तीनों निर्णयों को

मुख्यमंत्री द्वारा प्रचार किए गए, चारों राजीसूत्रों का परिशीलन करने के लिए कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की सभा 11 और 12 नवंबर, 1969 को हुई। इंदिरागाँधी जी और दूसरों के विरुद्ध किए गए आरोपों को वापस लेने के राजीसूत्रों को निजलिंगप्पाजी ने नहीं माना। उन्होंने कहा कि वैसा किया जाय तो, उसका मतलब होगा कि उनकी अनुशासनहीनता और खुले आंदोलन को मान लिया गया। प्रधानमंत्री जी के व्यवहार से देश और पार्टी को हानि पहुँचाने के कारण, अध्यक्ष चुनाव के बाद में अनुशासनहीनता के बढ़ने के कारण, प्रधानमंत्री तथा उनके अनुयायियों ने एकता निर्णय की बातें व मनोभाव – दोनों का उल्लंघन किया है; पार्टी के अध्यक्ष के विरुद्ध किए गए 'हस्ताक्षर' ने संधिसूत्रों को नष्ट किया है; सभी अधिकारों को अपने हाथ में रखने के लिए वे प्रयत्न कर रही हैं; इस प्रकार वे देश को विनाश की ओर ले जा रही है; इस कारण से विषादके साथ - समिति प्रधानमंत्री जी का पार्टी के प्राथमिक सदस्यत्व से हटाया जाना अनिवार्य मानती है। इसके परिणामस्वरूप वे तांत्रिक रूप से, कांग्रेस संसदीय पार्टी की नायिका का स्थान भी खोती हैं। कार्यकारिणी समिति ने, संसदीय पार्टी को सूचना दी कि जितनी जल्दी हो सके, नए नेता चुन ले। इंदिरागाँधी के सहचरों ने कांग्रेस कार्यालय में जमा होकर, उनको हटाने के निर्णय को वापस लेने के लिए आग्रह किया। उनमें प्राय: अधिकांश लोग भाडे के टट्टू थे; उन्होंने अपनी बात मनवाने के लिए, अध्यक्ष पर घेरा डाला; निजलिंगप्पाजी को यह सब सहना पड़ा। इस परिस्थिति का फायदा उठाते हुए इंदिराजी ने 12 दिसंबर 1969 को अपने नयी पार्टी की कार्यकारिणी समिति की सभा बुलाई; पुरानी कार्यकारिणी समिति के निर्णय को परिशीलन कर, निर्णय लिया गया कि प्रधानमंत्री को प्राथमिक सदस्यत्व से हटाना संविधानबाहिर है और गैरजिम्मेदार व्यवहार है। प्रधानमंत्री, संसदीय पार्टी द्वारा, नियमानुसार चुने हुए नायक होते हैं; वे पूरे देश को प्रतिनिधित्व करती हैं। इसलिए मुट्ठीभर लोगों को उन्हें हटाने का कोई अधिकार नहीं है। ए.आइ.सी.सी. बैठक को बुलाने के लिए जो उन्होंने पूछा था, उसके बाद यह निर्णय लिया जा सकता था। निजलिंगप्पाजी का गुट पार्टी के संविधान के विरुद्ध चल रहा है; इंदिरागाँधीजी देश की प्रतीक्षा व आकांक्षाओं की प्रतीक हैं; इसलिए संसदीय दल मात्र को उन्हें निकालने का अधिकार है; प्रजासत्तात्मक रीति से जनता द्वारा चुने गए नायकों को पदच्युत करने का सिंडिकेट का प्रयत्न दुरहंकार से भरा हुआ है। वास्तव में कुछ बूढ़े, सर्वाधिकार दिखा रहे हैं, उनका

व्यवहार, फासिस्ट स्वरूप का है! इसलिए 1969 नवंबर, 22 और 23 की उनकी, देहली की सभा महत्वपूर्ण है; और इस कारण से सभी कांग्रेसवालों को उसमें भाग लेना होगा।'' इस निर्णय को एकमत से माना गया।

13 नवंबर 1969 को संसद भवन के केंद्र सभागार में, कांग्रेस संसदीय दल की सभी हुई। इंदिरागाँधीजी अध्यक्ष पद पर थीं। प्रधानमंत्री पर विश्वास को दुहराने के लिए ही विशेष रूप से सभा हो रही थी। उसी समय, इंदिराजी के उत्तराधिकारी को चुनने के लिए निजलिंगप्पाजी के गुट के, करीब साठ-सत्तर सदस्य मोरारजी के निवास में मिले थे। उन्होंने रामसुभागसिंह जी को संसदीय पार्टी के नायक के रूप में चुना। निजलिंगप्पाजी ने कांग्रेस के सभी सदस्यों को पत्र लिखकर, सूचना दी थी कि, इंदिराजी के गुट द्वारा बुलाई गई 22 नवंबर की देहली की सभा में हाज़िर न हो। उन्होंने कहा कि पार्टी का विनाश करनेवालों ने यह सभा बुलाई है। उस पत्र में उन्होंने याद दिलाई थी कि निरंकुश धारणा के कारण उन्हें इंदिराजी को पार्टी के प्राथमिक सदस्यत्व से निकालना पड़ा। उन्होंने बताया कि इंदिराजी ने बैक राष्ट्रीकरण को अपना विचार बताया, परंतु 1947 से ही वह विचार कांग्रेस में था। कांग्रेस ने राष्ट्रीकरण को अपनी नीति का एक भाग माना है। और कहा कि परिशीलन करे कि क्या बैंक राष्ट्रीकरण से गरीबी कम हुई है। अपने को समाजवादी कहलानेवाली इंदिराजी का व्यवहार निर्लज्जतापूर्ण है। अपने प्रजातंत्र विरोधी व्यवहार तथा सभी अधिकारों को अपने वश में रखने के प्रयत्नों के कारण कांग्रेस को अपने सुदीर्घ इतिहास में अत्यंत प्रक्षुब्ध समस्या का सामना करने की परिस्थिति अब आ पड़ी है। 22 नवंबर 1969 की गैर कानूनी सभा का बहिष्कार करने के लिए कहते हुए उन्होंने अपने पत्र को समाप्त किया था। जिस किसी ने भी, किसी भी कारण से जो पार्टी छोड़कर गए थे, उन्हें वापस आने के लिए इंदिराजी ने बिनती की थी। दूसरे पार्टी में गए हुए अनेकों को यह बिनती आकर्षक लगी। इसी बीच, इंदिराजी ने अपने घर के सामने भीड़ इकट्ठा कर - ''गरीबी हटाओ'', ''समाजवाद'' व्यक्ति स्वातंत्र्य, प्रजातंत्र इत्यादि बड़े बड़े विषयों पर भाषण देने की लोकप्रिय रीति को अपनाया। 16 नवंबर 1969 को अस्तित्व में आए हुए, नये संसदीय दल इंदिरागाँधीजी को बहुमत लाने के लिए काफी नहीं था। इसलिए उन्हें विरोधी गुटों, तथा शासक व स्वतंत्र सदस्यों की सहायता मांगनी पड़ी। कम्युनिस्ट तथा डी.एम.के. ने उन्हें समर्थन दिया। 52 संसद सदस्यों के साथ

निजलिंगप्पाजी का समूह संसद में, विरोधपक्ष की जगह पर बैठा। उसके नायक थे रामसुभग सिंहजी। देहली में शुरू हुआ विभाजन, क्रमेण दूसरे राज्यों में फैला। इसके परिणामस्वरूप राजनीतिक ध्रुवीकरण, अनिश्चितता और अस्थिरता घर कर गए। कांग्रेस के दोनों समूह, लगातार झगड़ा करते रहे।

22 नवंबर, 1969 का कांग्रेस अधिवेशन एक वैभवपूर्ण, महा उत्सव बना। हाट बाट अधिकार, और लोकप्रियता के संगम के रूप में वह प्रधानमंत्री के विरोधी, उसमें भी सिंडिकेट के सदस्यों के हृदय में कंपन भर रहा था। सी. सुब्रह्मण्यं अस्थायी अध्यक्ष बने। टी.टी. कृष्णमाचारी जी ने राष्ट्रध्वज फहराते हुए घोषणा की कि ''पार्टी से इंदिराजी को हटाना प्रजातंत्र को दी गयी, बहुत बडी चोट है। नेहरू परिवार के बिना कांग्रेस गरीब होगा'' इस प्रकार कहते हुए, उन्होंने वंश शासन का पुनः प्रतिपादन किया। इंदिराजी ने अपने भाषण में घोषित किया कि ''कांग्रेस के सिद्धांत व आदर्शों में विश्वास रखनेवाले सभी लोगों के लिए पार्टी का दरवाजा हमेशा खुला रहेगा।'' उन्होंने विषाद व्यक्त किया कि वहाँ जमा हुआ जन सागर कांग्रेस पार्टी के तत्व और ध्येयों के बारे में बद्धता का प्रतीक है। देश के कल्याण तथा पार्टी की एकता के लिए सर्वत्याग करने की मनःस्थिति लेकर सभा से बाहर जाना चाहिए। उन सभी का लक्ष्य पार्टी के हित की रक्षा और जनता का कल्याण है। क्रोध को छोड़कर, देश की सेवा की अपनी प्रतिज्ञा का पुनरुच्चारण करने के लिए उन्होंने अपने सहचरों से कहा। 'व्यक्ति से पार्टी महान है'' – इसे समझकर सभी गुटबंदी छोड़ दें। कांग्रेस की नीतियों व कार्यक्रमों को पूर्णरूप से जारी न करने की जिम्मेदारी को सरकार अपने ऊपर ले ले। इस विफलता का कारण यह है कि ''सरकार में ही उन नीतियों का और कार्यक्रमों का विरोध करनेवाले लोग मौजूद हैं।'' यह मोरारजी को उद्देश्य कर, कही गई कडवी बात थी। अपने सदस्यों को अभिप्राय व्यक्त करने के लिए मौका न देनेवाली पार्टी जीवित रहकर भी मुर्दे सी जैसा ही है। ''आदर्शों के समान, उन्हें साकार करना भी मुख्य है'' – गाँधीजी व नेहरूजी की इस बात को याद रखना चाहिए। नए सवालों का सामना करने का सामर्थ्य न रखनेवाले लोग पार्टी के उच्च पदों को खो लेंगे।''

अच्छे वक्ता इंदिराजी, निजलिंगप्पाजी और उनके सहचरों के नाम लेते समय को पूरा करने से पहले उद्देश्यपूर्वक हिचकी लगी। शब्दों को टटोलने का

बहाना किया और आँखों से आँसू पोंछ लिए। अपने को कांग्रेस से हटाने के विषय का उल्लेख करनेवाले वाक्य को कंपित ध्वनि में कहकर, भाषण समाप्त किया।

जैसे पहले ही कृष्णमाचारीजी ने कहा है कि वाक् कौशल रखनेवाली इंदिराजी ने कहा कि उन्हें पार्टी से कोई बाहर नहीं कर सकते। हमारे रास्ते के बीच में कोई नहीं आ सकता। सरकार के बाहर हो या अंदर – सबका ध्येय एक ही है – 'आदर्शसाधना!' उसे साकार करने के लिए परिश्रम करना होगा। केवल दृढ़ निर्धार के साथ धैर्य और विश्वास रखनेवाले ही कांग्रेस को नई चेतना देते हुए नया प्रकाश लाकर, उसे नए सवालों को यशस्वी रूप में जारी करने के लिए समर्थ बना सकते हैं। तब पार्टी को नया जीवन प्राप्त होगा। एकता के नामपर कांग्रेस के दरवाजों को बंद न करने के लिए उन्होंने चेतावनी दी। छोटे मोटे झगडों में, अपनी शक्ति को व्यर्थ न करे। एकता, मित्रता, आदर्श तथा ध्येयों के लिए हमेशा द्वार खुले रहें। उनके ध्येय व उद्देश्यों का विरोध करनेवालों के लिए द्वार बंद करें। वे कोई भी क्यों न हों। उसी तरह, उनके उद्देश्य व ध्येयों के समर्थकों का स्वागत करना चाहिए। कई लोग आरोप लगा रहे हैं कि मैं कम्युनिस्ट बनने का प्रयत्न कर रही हूँ। यह महिला कम्युनिस्ट या समाजवाद के समर्थन को क्यों इनकार करे? समर्थन देना या न देना उनकी मर्जी है। उन्होंने कहा कि वह, कम्युनिस्टों के हिंसामार्ग की विरोधी है। अधिवेशन के दूसरे दिन अपनी आर्थिक नीतियों का विवरण दिया – ''वह प्रगतिशील है और उसका ध्येय गरीबी का निर्मूलन करना है; धनिकों को और धन कमाने का मौका न देते हुए, सभी को समान मौका देना ही हमारी इच्छा है। पिछडे लोगों को आगे आने का मौका देना ही, हमारा ध्येय है। बैंक राष्ट्रीकरण का एकैक उद्देश्य है, गरीबों को ऋणदाताओं की मुट्ठी से बचाना। ऋण की सुविधाओं को बढ़ाने के द्वारा, बैंकों को किसान और छोटे उद्योगवालों की उत्पादकता को बढ़ा देना चाहिए। इससे बेकारी का निवारण भी होगा। जल्दी ही भूसुधारण जारी न किया तो वर्गकलह आरंभ होगा। हमारी नीति में ध्यान देने की दूसरी समस्या यह है कि बच्चों की पौष्टिकता और स्वास्थ्य। टैक्स की चोरी, हमारे सामने तीसरी समस्या है। सारांश में राजकीय प्रजातंत्र के चौखट में ही समाजवाद का अनुष्ठान करना है; इसका मतलब है, सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तारण। सार्वजनिक क्षेत्र, खासगी क्षेत्र और सरकार के सहकार से आर्थिक प्रगति साधनी

है। श्रमिकों का न्यूनतम वेतन निश्चित करना चाहिए। शीघ्र विकास के लिए हरिजनों को मौका देना होगा। इस विचार और बद्धता को शामिल करते हुए अधिवेशन ने, आर्थिक नीति को अंगीकार किया।

उसी दिन इंदिराजी की कार्यकारिणी समिति ने, निजलिंगप्पाजी और ग्यारह सहचरों को प्राथमिक सदस्यत्व से हटाकर, इंदिराजी के हटाने के आदेश को रद्द कर दिया। यह सब निरंकुशाधिकार के हाथों से प्रजातंत्र को बचाने के नाम पर किया गया। परंतु सब सरल नहीं था। नई कार्यकारिणी समिति के लिए सदस्यों को चुनते वक्त, मुश्किलें आईं। प्रधानमंत्री जी के विश्वसनीय सी. सुब्रह्मण्यं जी द्वारा चुने हुए लोगों को सदस्यों के रूप में लिया गया। कई युवकों को शामिल करना और कई कम्युनिस्टों को चुने जाने – समिति में स्थान न पाये वरिष्ठ नायकों में अतृप्ति भर दी। नई इंदिरा-कांग्रेस में भी, पुराने कांग्रेस में महत्त्व पानेवाले जैसे कौमवाद, प्रादेशिकता और मौकापरस्ती ने स्थान पाया। मूल कांग्रेस का प्रतिनिधित्व करनेवाले निजलिंगप्पाजी ने इसका सामना किया। उन्होंने कहा की अलग हुए गुट को मुझे हटाने का कोई अधिकार नहीं। दोनों समूह झगड़ने लगे। कांग्रेस संगठन का मात्र विभाजन ही नहीं हुआ, वह अनायकत्व के स्तर तक पहुँच गया। रातों रात दाखलों को पुरानी कांग्रेस कचहरी से नई कांग्रेस कचहरी को पहुँचाया गया। शांति भंग के आरोप पर कई नौकरों को कैद किया गया। वरिष्ठ नायकों ने पुलिस से सुरक्षा की मांग की। इस सबके लिए इंदिरा कांग्रेस का आक्रमणकारी व्यवहार कारण था। पुरानी कांग्रेस कचहरी को वश में करने के लिए इंदिरा कांग्रेस हिंसात्मक मार्ग को अपनाने में भी नहीं झिझकी। पहले किए गए निर्धार के अनुसार, पुरानी कांग्रेस अथवा संगठन-कांग्रेस ने 19 से 22 नवबंर 1969 तक अहमदाबाद में अपना अधिवेशन किया। वहाँ करीब 25 हजार लोग हाज़िर थे। नायकों ने संतृप्ति की साँस ली कि करीब 400 ए.आइ.सी.सी. के सदस्य हाज़िर थे। इंदिरा गाँधीजी के निरंकुश मनोभाव, कुतंत्र और विभूतिपूजा का खंडन करते हुए, आगे की अपनी बातों का निजलिंगप्पाजी ने रूख बनाया। दूसरे नायकों ने भी टीका की कि इंदिरा गाँधीजी कम्युनिस्ट व कोमवादियों की कठपुतली बनी है। निजलिंगप्पाजी ने बताया कि 25 अगस्त 1969 के एकता निर्णय के निर्धार के अनुसार पार्टी के हित की रक्षा की दृष्टि से इंदिरागाँधीजी पर कानून कारवाई नहीं की गयी। परंतु पार्टी की एकता के लिए पार्टी के नियम को तोड़ने की अपराधप्रज्ञा से उन्हें 25

की रातभर, उन्हें नींद नहीं आई। उन्होंने प्रधानमंत्री के प्रचार कौशल्य की व्यंग्यभरी प्रशंसा करते हुए, मज़ाक किया कि गोबेल (Goebells) को भी उनसे बहुत कुछ सीखना चाहिए। उन्होंने आरोप भी लगाया कि उन्हें इंदिराजी के रूस की ओर झुकाव का संदेह है, उसका कारण, कम्युनिस्टों का समर्थन पाना-तंत्र है। और आगे कहा कि गाँधीजी के जन्म शतमानोत्सव के वर्ष में ही कांग्रेस का विभजन होने पर उन्हें अत्यंत दुःख हुआ है; इस विभाजन के लिए इंदिराजी ही जिम्मेदार हैं। इंदिराजी ने ए.आइ.सी.सी. अधिवेशन बुलाने के लिए जो कहा था उसका एकमात्र उद्देश्य उन्हें अध्यक्ष स्थान से निकालना था। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि उन्हें कभी भी स्थान या पद का मोह नहीं है। उन्हें बुलाने के कारण और मित्रों की माँग के दबाव के कारण, वे सामने खड़े हैं; खुले में अनुशासनहीनता और दूसरों के अधिकार को हड़पने के तंत्र को वे कभी सह नहीं सकते। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने – सार्वजनिक-खासगी क्षेत्रों के बीच का झगड़ा, वैज्ञानिक संशोधन, सहकार-संघ, कृषि-उद्योग, भू-सुधार, परिशिष्ट जाति-वर्गों का विकास, तटस्थ नीति, समाजो-आर्थिक-सुधार, निरक्षरता पर युद्ध, परिवार-कल्याण योजना, प्रजातंत्र की रक्षा और समाजवाद आदि के बारे में सविस्तार विश्लेषण किया। सभासदों से बिनती की कि कांग्रेस-क्रांति को गाँवों तक पहुँचाना चाहिए।

संगठन कांग्रेस की सभा के समाप्त होते ही नयी कांग्रेस अथवा शीघ्र पाये नाम इंदिरा कांग्रेस ने, अपने ए.आइ.सी.सी के अधिवेशन को मुंबई में 16 से 29 दिसंबर तक चलाया। उसके अध्यक्ष थे जगजीवनरामजी। उन्होंने अपने भाषण में इंदिरागाँधीजी के मुख्य आशयों का उल्लेख किया और कहा कि उनके द्वारा जनता की नई आशाएँ और प्रतीक्षा को बिम्बित करनेवाले ध्येय रूपित हों। प्रगति के विरोधियों से जागरूक रहने के लिए कहा। उनका अनुकरण करते हुए बाकी नेताओं ने सामाजिक न्याय को शामिल करने के लिए मृदुभाव से भाषण दिया। स्पष्ट किया कि उनके विचार संकुचित हैं और ऊपर के लोगों को नीचे न गिराते हुए, नीचेवालों को ऊपर उठाना ही उनका आशय है। इंदिराजी ने सभासदों को आश्वासन दिया कि सामाजिक न्याय के अनुसार ही कानून रूपित होंगे। उनके विचार कम्युनिस्ट समर्थक हैं – इस आरोप का निराकरण करते हुए, उन्होंने कहा कि ‘‘उनकी विदेश नीति चैतन्यभरी होगी और बदलती हुई अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति के लिए लागू होने की तरह होगी। कई कम्युनिस्ट

उनके पार्टी में शामिल होने के आरोप का उल्लेख करते हुए उन्होंने समाजवादी लोगों के उनके पक्ष में आने में कोई गलती नहीं '' इसका समर्थन किया। जगजीवनरामजी ने अपने अध्यक्ष-भाषण में घोषणा की कि मुंबई अधिवेशन ने देश के इतिहास में एक नए युग की शुरूवात की है। इन सभी बाहरी व्यवहारों के पीछे, यंगटर्क और वरिष्ठों अथवा वामपंथी और नरमपंधी के गुटों के बीच झगडा चल रहा था। इंदिरागाँधीजी ने चतुराई से इन सबको निभाया। नए कांग्रेस ने स्पष्ट रूप से एक नई संस्कृति का बीज बोया था। परंतु जल्दी ही ये सभी घोषणाएँ, सिर्फ घोषणाएँ बनकर रह गईं तथा यह स्पष्ट हो गया कि उनका गंभीर रूप से अनुष्ठान हुआ ही नहीं।

अधिकतर वास्तव तथा ऐतिहासिक कांग्रेस के विभाजन के इस निरूपण का कुछ सामान्य और विश्लेषणात्मक व्याख्यान होना चाहिए। पहला पार्टी का यह विभाजन, पहली बार नहीं हुआ था, पार्टी के दीर्घ इतिहास में कई बार विभाजन हुए। 1907 में ही तीव्रगामियों व मंदगामियों के बीच झगडा था; इसके केंद्र में तिलकजी थे। 1922 में नए संविधानात्मक सुधारों की भूमिका में चुनावों में भाग लेने का विषय पर कांग्रेस से, स्वराज पार्टी अलग हो गया। परंतु बाद में गाँधीजी, चित्तरंजनदास और मोतीलाल नेहरूजी में समझौता होने के कारण, स्वराज पार्टी फिर से, मूलसंस्था में वापस शामिल हो गया। 1939 में जब सुभाषचंद्र बोसजी कांग्रेस-अध्यक्ष चुने गए तो पार्टी टूटने के कगार पर आ पहुँचा था। 1951 में नेहरूजी और टंडनजी के बीच के मतभेद के कारण विभजन की परिस्थिति आई थी। स्वातंत्र्य संग्राम के एकछत्र के नीचे एक हुए–सैद्धांतिक रूप से एक न हुए –समूह, कांग्रेस से बाहर आगए। पहले कम्युनिस्ट फिर समाजवादी लोग बाहर आए। फिर भी यह विभाजन पहले विभाजनों से गुणात्मक रूप से विभिन्न रहा। क्योंकि इस विभाजन से पार्टी सभी स्तरों में पूरी तरह से अलग होकर परस्पर दूर होकर सैद्धांतिक स्तर से दो पक्षों के रूप में ध्रुवीकृत हो गए। इस दृष्टि से देखने पर वंश परंपरा का शासन, अधिकार-दंभ और सांस्थिक अपकार्य जैसे पक्ष की प्रमुख वाहिनीयों को निजलिंगप्पाजी ने सफल रूप में प्रतिरोध किया। यह एक ऐतिहासिक व्यंग्य ही था कि यह प्रतिरोध एक मृदुभाषी, सौजन्यशील, संतुलित मनोभाववाले और शांतिप्रिय के रूप में मशदूर, व्यक्ति द्वारा हुआ। अपने आदर्शों व तत्वों की प्रतिबद्धता के कारण निजलिंगप्पाजी यह कर सके। यह सब उन्होंने अपने पारिवारिक भूमिका,

प्रादेशिक संस्कृति और धार्मिक विश्वासों से पाया था। सबसे ज्यादा, अधिकार व स्थान -सम्मान के प्रति उनकी उपेक्षा और सहज संकोच स्वभाव ही इंदिराजी की राजनीतिक कुशलता और तंत्रों के विरुद्ध उनके प्रबल अस्त्र बन गए। परंतु उनके बारे में भी, वैयक्तिक रूप से सद्भावना न होने पर भी निजलिंगप्पाजी हमेशा अच्छी बातें करते थे। दूसरा, उत्तर उपनिवेशवादी भारत के इतिहास में इस घटना का क्या अर्थ लगाये? एक तरफ उसे व्यक्ति की आकांक्षा और राजकीय नैतिकता के बीच का झगड़े के रूप में पहचान सकते हैं। इंदिरा गाँधीजी वैयक्तिक महत्वाकांक्षा की प्रतीक थीं; उनके सभी व्यवहार अधिकार व स्थान-सम्मान के लिए ही तेज़ थे। निजलिंगप्पाजी तो गाँधीजी की संस्कृति और उदारता की संकीर्णता के बीच में भी उदार प्रजासत्तात्मक मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते थे। इस व्याख्यान के अनुसार निजलिंगप्पाजी, गाँधीजी की स्वदेशी-संस्कृति और नेहरूजी के परिष्कृत समाजवाद के अच्छे मिश्रण से निकली सिद्धांतबद्धता और राजकीय संस्कृति के संदेशवाहक के रूप में सामने आते हैं। समाजवाद और उदार प्रजासत्तात्मकता के मिश्रण से बने कांग्रेस की सैद्धांतिकता में इंदिरा गाँधीजी सैद्धांतिक रूप से समाजवाद के भाग को ज्यादा महत्व देने का मनोभाव रखती थीं। एक अर्थ में, अपने समाजवाद के लिए रुकावट माननेवाले उदारवाद के विरुद्ध नेहरूजी के धीमे स्वर में व्यक्त करते हुए विरोध को ही इंदिराजी आगे बढ़ा रही थीं। दूसरे अर्थ में उसे निजलिंगप्पाजी के समाजवाद के विरुद्ध संघर्ष कह सकते हैं। और एक अर्थ में उसे पीढ़ियों के बीच की भिन्नता को केंद्र में रखनेवाला संघर्ष मान सकते हैं। वास्तव में यहाँ तीन पीढ़ियों का संगम था - निजलिंगप्पाजी की पीढ़ी, इंदिराजी की पीढ़ी और स्वातंत्र्य के बाद पैदा होनेवालों की पीढ़ी। उनके पिताजी की पीढ़ी और रश्दी के शब्दों में मध्यरात्री के बच्चों की पीढ़ी के बीच पुल बनने के लिए इंदिराजी प्रायः योग्य व्यक्ति रहीं। यहाँ निर्दिष्ट घटनायें प्रमुख नहीं हुई; स्पष्ट न होनेवाली कार्यशैली, सांस्कृतिक परिवेश और मूल्यों का बदलना इत्यादि। 1947 के बाद के कांग्रेस पार्टी की आत्मनिष्ठा का मूल्यप्रतिपादन, आदर्शवाद के बारे में एक तरह की चिढ़ और शुद्ध अवसरवादों को बहुत परिणामकारी रूप में इंदिराजी प्रतिनिधित्व कर सकती थीं। परंतु पहले के उदार तथा आदर्श व्यक्तियों को अधिकार और पदों का तथा ऐहिक समृद्धि का पीछा करते हुए जाते देखना, बीच की पीढ़ी का बहुत ही दुःख का विषय था। अंत में, दूर खड़े होकर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से देखने

पर इस संघर्ष को लेकर उपनिवेशवादी राष्ट्रीय आंदोलन, चुनाव प्रधान राजनीतिक पार्टियों के रूप में बदलने की प्रक्रिया का भाग बनाने के स्वरूप के रूप में देख सकते हैं। इस प्रक्रिया में आदर्शों को डूबते हुए, अधिकारग्रहण के ध्येय स्पष्ट होते हुए हम देख सकते हैं। स्वातंत्र्य के बाद पाकिस्तान में मुस्लिम लीग की हालत भी ऐसी ही हो गई। परंतु भारत में राष्ट्रीय कांग्रेस प्रायः अपने लेनेदेने तथा वैविध्य से भरे इतिहास के कारण यह बदलाव कुछ समय के बाद आया। नेहरूजी का व्यक्तित्व और राजकीय प्रभाव ने विकास प्रक्रिया को धीमी कर दिया होगा। यह धारा उनकी पुत्री इंदिराजी तक बहकर, उस प्रक्रिया का उन्हें ही प्रतिनिधित्व करना पड़ा। और एक दृष्टि से उसे दुबारा आदर्शीकरण की प्रक्रिया के रूप में देख सकते हैं। उदाहरण है यंग टर्क्स, वे स्पष्ट रूप में सैद्धांतिक जीवी हैं। सारांशतः यह विभाजन, उत्तर उपनिवेशवादी भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण घटना के रूप में पर्वकाल बन गया। उनके रीति से 1990 में राजनीति का अपराधीकरण, उदार व्यवहार की कमी, प्रजासत्तात्मक मूल्यों का गिरना इत्यादि राजकीय बिमारियाँ कांग्रेस-विभाजन रूपी ऐतिहासिक प्रक्रिया के कारण शुरू हुए फल हैं। परंतु इस विश्लेषण का उपयोग इंदिरागाँधीजी के वैयक्तिक तथा राजकीय आदर्शों की उपेक्षा करने के लिए नहीं करना चाहिए। एक ऊहात्मक प्रश्न से इस चर्चा को समाप्त कर सकते हैं – ''क्या इस विभाजन से बच सकते थे?'' इतिहास के सभी प्रश्नों के जैसे इसका भी, एक से अधिक जवाब तैयार कर सकते हैं। उसमें भाग लेनेवाले पात्रधारी दूसरे कोई होते तो, इससे सच में बच सकते थे। इस दृष्टि से देखने पर निजलिंगप्पाजी के वैयक्तिक तथा राजकीय गुण और उनके मूल्य प्रतिपादन, इतने जबरदस्त थे कि विभाजन अनिवार्य होकर ही रह जाता। सैद्धांतिक रूप से, नैतिकता से उनका यदि अधिक समझौते का स्वभाव होता तो वे इंदिराजी से मौके के अनुसार संधान कर लेते थे, पार्टी का विभाजन नहीं होता। वास्तव में व्यंग्य यह है कि पीछे मुडकर देखें तो निजलिंगप्पाजी की बात मानने को वे तैयार थीं। क्योंकि उनके वास्तविक शत्रु थे मोरारजी और अन्य लोग। परंतु निजलिंगप्पाजी दूसरी तरह के राजनीति में निरत रहे। वह है, उदार प्रजातंत्र, सांस्थिक अनुशासन और नियमबद्ध व्यवहारों के साथ वे राजी करने के लिए तैयार नहीं थे। यदि इंदिरागाँधी जी विभिन्न होतीं – अर्थात् स्वहित से अधिक देश के हित को प्रमुख माननेवाली राजनीतिज्ञ होतीं तो विभाजन नहीं होता। निजलिंगप्पाजी ही पार्टी के अध्यक्ष

होते तथा इंदिराजी प्रधानमंत्री होते ग्रीक त्रासद नाटक के अंश, सन्निवेश में ही अंतर्निहित होते तो परिस्थिति के परिणामस्वरूप निरंतर संरचनात्मक विभाजन का कारण बन जाता। अंत में एक सवाल और है – ''क्या निजलिंगप्पाजी पार्टी के सफल अध्यक्ष थे ?'' पार्टी का बचना मात्र सरल प्रतिभा होती, तब उन्हें पार्टी के अध्यक्ष के रूप में असफल हुए मान सकते हैं। क्योंकि उसके विभाजन के लिए वे ही कारण बने! यह परिस्थिति ऐसी थी कि सोचना चाहिए कि पार्टी की एकता और बचाव के लिए कोई भी कीमत चुकाना बड़ा नहीं लगता। तब निजलिंगप्पाजी पर ही आक्षेप लगा सकते थे। परंतु वर्णित कहानी को देखने पर एकता साधने के लिए निजलिंगप्पाजी कोई भी बड़ी कीमत चुकाने को तैयार थे। परंतु अध्यक्ष के रूप में, उन्हें लगा कि अपने सुदीर्घ इतिहास में रक्षा करते आए सभी मूल्यों को हवा में उड़ा देने की बड़ी कीमत वे मांग रहे हैं। यह एक क्लासिक हॉबसन छापल था। कौन कह सकेगा कि उन्होंने जो भी किया वह गलत था? सिंडिकेट के उनके अन्य मित्र - कामराज जी को छोड़कर - उनसे तिरस्कृत मार्ग का ही अनुसरण कर अपने इतिहास और संप्रदाय को त्यागकर पार्टी की एकता को साधने के लिए, प्रधानमंत्री से हाथ मिलाते थे। ठीक व्याख्या करे तो निजलिंगप्पाजी एक दुरंत नायक बने। परंतु वे सफल अध्यक्ष थे या नहीं, यह प्रश्न उनके बारे में उठता ही नहीं। पार्टी के इतिहास में ऐसे संदर्भ में किसी और अध्यक्ष को ऐसे भयानक तथा संकीर्ण प्रमाण के सन्निवेश का सामना करनेवाली परिस्थिति हमने नहीं देखी है। वैसे असंभव ऐतिहासिक परिस्थिति में वे अच्छे व्यक्ति, श्रेष्ठ राजनेता के रूप में निकले, इसपर कोई सवाल नहीं उठा सकते।

शुरू से ही निजलिंगप्पाजी को पार्टी में अथवा सरकार में राष्ट्रीय स्तर पर राजनीति में प्रवेश करने की इच्छा नहीं थी। न चाहते हुए भी उन्हें पार्टी का अध्यक्ष बनना पड़ा। कुछ लोग कहेंगे कि वह ठीक ही था। जब उनकी पार्टी बड़ी ही मुश्किल में पड़ी तो वे इस्तीफा देने के लिए सोचते थे; इतना ही नहीं राजनीति से ही अवकाश ग्रहण करना चाहते थे। परंतु सोचकर कि यह पलायनवाद होगा, चुप रहे। वे बड़े ही आदर्शवादी थे – भ्रष्टाचार, अनुशासन-हीनता और अन्याय जैसी बुराइयों को दूरकर, पार्टी का शुद्धीकरण करना चाहते थे। उन्हें सचमें ही किसी अधिकार या स्थान का व्यामोह नहीं रहा। परंतु, इंदिराजी की नई कार्यशैली के बराबर खड़े नहीं हो सके। कांग्रेस पार्टी को

अपनी 'खासगी' वस्तु माननेवाली इंदिराजी लोगों को कांग्रेस की ओर खींचने में सफल हो गईं। नए कांग्रेस को आगे बढ़ानेवाला केंद्र मनोभाव रहा, सार्वभौम नायिका के प्रति निष्ठा। इसकारण, व्याप्ति की संकुचितता तथा संसाधन की कुंठित परिस्थति में निजलिंगप्पाजी को अपनी पार्टी को देखना पड़ा। परंतु वे धैर्य नहीं खो बैठे। इसके बदले, पुराने कांग्रेस को पुनःरूपित करने और शक्तिशाली बनाने के प्रयत्न में लगे। इंदिरा कांग्रेस की कमियों और दोषों का प्रचार करने के लिए वे भारत भर घूमने लगे। देशभर में वे किसी भी गाँव में, दो या तीन दिनों से ज्यादा नहीं रुके। उत्साह व खुशी से पूर्ण स्वागत को देखकर वे खुश थे। कई बार एरपोर्ट से ही, उनका वैभवपूर्ण जुलूस निकलता था। उनके वाहन फूलों के हारों से भर जाता था। साथ ही वाद्यवृंद साथ चलता था। जहाँ भी जाते उनका एक ही संदेश होता था कि दुःस्थिति से पार करने का एक ही उपाय है और वह है गाँधीजी के मार्ग का अनुसरण करना। उनके भाषणों में तत्कालीन सरकार की आलोचना, गाँधीजी के उपदेश और पार्टी के नियमपालन के लिए बिनती –शामिल रहते थे। अपने संदर्शकों के साथ घंटों तक वे बैठते थे। सामान्यतः आधी रात तक संदर्शन चलते थे। दो उद्देश्यों को सामने रखकर वे यात्रा करते थे। पहला था – सार्वजनिकों में विमर्शात्मक दृष्टिकोण बढ़ाना और सांस्थिक संरचना को ठीक करना। यह बहुत ही श्रमपूर्ण कार्य था; कभी कभी खाना खाने के लिए भी समय नहीं मिलता था।

उत्तर भारत के भागों में कहीं कहीं, इंदिराजी के समर्थकों के शामिल होने के कारण काले झंडे के प्रदर्शन का सामना करना पड़ता था। गुप्तचर उनका पीछा करते हुए उनके चाल-चलन पर निगरानी रखते थे। ऐसे लोगों के साथ इंदिराजी का सतत संपर्क रहता था। कहना जरूरी नहीं है कि गुप्तचरों की बातें सुनकर वे बहुत खुश हो जाती थीं। अपनी राजकीयशक्ति बढ़ाने के लिए संगठनात्मक कांग्रेस अथवा कांग्रेस (ओ) को एक बड़ी रुकावट मानकर, उन्होंने पुरानी कांग्रेस का विनाश करने के लिए सरकार के अधिकार व धन का खुले तौर पर उपयोग किया। अपने लिए असली, विरोधी संस्था को नष्ट करने की जो संभव हो सकती थीं उन सारी कुटिलताओं का प्रयोग इंदिराजी ने किया। रिश्वत देकर पक्षांतर को उन्होंने प्रोत्साहन दिया। अपने ध्येय को पूरा करने के लिए हिंसाचार के लिए भी उन्होंने हिचकिचाया नहीं। कांग्रेस (ओ) के सदस्यों को अपनी तरफ खींचने के लिए उन्होंने एक व्यवस्थित योजना बनाई।

वास्तव में उन्होंने पुरानी कांग्रेस के समर्थकों को भयग्रस्थ कर दिया। ऐसे नकारात्मक मार्गों के अलावा उन्होंने भाषणों के द्वारा और अपनी जाल में फँसानेवाली वाक्चतुराई से लोगों को आकर्षित करने का प्रयत्न किया। आपने स्त्री सहज आकर्षण मात्र ही नहीं, मन को लुभानेवाली रीतियों के द्वारा सांकेतिक राजनीति का अनुसरण किया। एस.सी., एस.टी. लोगों की झोपडियों में जाकर उन्हें स्वर्ग ला देने का भरोसा देती थीं। पिछडे वर्गों के विकास के लिए अपनी जान तक देने की घोषणा करती थीं। उनका प्रबल घोषवाक्य था 'गरीबी हटाओ'। जन-जातियों का वेष पहनकर उनके साथ मिलकर दिखाती थीं कि वे भी उनमें से एक हैं। उनके लक्ष्य का एक और टार्गेट – अल्पसंख्यक लोग थे। उनके एकैक उद्धारक जैसे वे बात करती थीं। परंतु उनका व्यवहार, हर आँखवाला पहचान सकता था कि 'वह कहती थीं कुछ और करती थी कुछ और।' हर समूह को उनका दिया हुआ वादा, केवल बातों में रह जाता था। उसका अनुष्ठान करने का कभी उन्होंने प्रयत्न नहीं किया। राजनीति में, अधिकारदाहियों के मार्ग को ही उन्होंने अपनाया। वह था – तोड़कर शासन करना, नेतृत्व करनेवाले के सामने एक दूसरे व्यक्ति को खड़ा करना, एक गुट के सामने दूसरे गुट को प्रोत्साहित करना – इस प्रकार द्वेष की आग फैलाकर वे अपनी दाल गल्प लेती थीं।

सीमा विवाद को और भडकना, उनके इस व्यवहार का एक उदाहरण है; कर्नाटक व महाराष्ट्र की सीमाविवाद को भड़काने के कारण निजलिंगप्पाजी को बार बार उस समस्या का सामना करना पड़ा। इस कारण उनकी राजकीय विश्वासार्हता कुंठित हो जाती थी। मैसूर के मुख्यमंत्री वीरेंद्र पाटीलजी ने 20, फरवरी 1970 को एक प्रतिनिधि मंडल में इंदिराजी से मिलकर, सीमाविवाद के बारे में इंदिराजी के व्यवहार के प्रति अपना असंतोष व्यक्त किया। इतना ही नहीं, इंदिराजी कांग्रेस (ओ) के शासन करनेवाली सरकारों को क्रमबद्ध रीति से अस्थिर करने का प्रयत्न कर रही थीं; राज्यपालों से अपनी इच्छानुसार रिपोर्ट मंगवाकर, उनके आधार पर उन सरकारों को उतारने का कार्य करती थीं। राज्यों में अपने सहचरों द्वारा कानून समस्याओं की सृष्टि करती थीं। न्याययुत केंद्र की सहायता को बंद करते हुए, दूसरी पार्टी की सरकारों को अपने वश में कर लेती थीं। इस प्रकार राज्य सरकारों को आर्थिक समस्या में डाल देती थीं। प्रधानमंत्री के 'प्रज्ञाकेंद्र' के नाम से प्रसिद्ध डी.पी. मिश्राजी से अपने दोनों के मित्र के घर पर कामराजजी मार्च 1970 में मिले; बाद में कामराज

जी ने बताया कि 'वहाँ कुछ भी नहीं हुआ, केवल गड़बड़ी पैदा करना ही उद्देश्य था।'

कांग्रेस (ओ) के अध्यक्ष के रूप में, निजलिंगप्पाजी ने बड़ी आर्थिक समस्या का सामना किया। पार्टी इतनी गरीब हो गयी थी कि प्रतिदिन कचहरी चलाने के लिए भी धन नहीं था। आय कम होती जा रही थी, और व्यय अधिक। पार्टी की निधि के मूल स्रोत जो धनवान थे और उद्योगपति थे, वे अधिकाररूढ़ पार्टी का समर्थन करने में आसक्ति दिखा रहे थे। अब तो अधिकारियों पर निजलिंगप्पाजी का कोई प्रभाव ही नहीं था। इसकारण, उनसे धन की सहायता मिलने का कोई भरोसा ही नहीं था। सहायता के लिए फोन करे तो बहाना बनाते थे। एस.के. पाटील के अलावा किसी सहकर्मियों से कोई सहायता नहीं मिली। मोरारजी ने तो कुछ भी मदद नहीं की। इसके अलावा पार्टी के लिए योग्य पी.सी.सी. को नियुक्त करने की समस्या भी सामने थी। यह राज्यों में शासन न करनेवाले पार्टी होने के कारण यह काम असंभव ही था। शत प्रतिशत वे केवल मैसूर राज्य और मुख्यमंत्री वीरेंद्र पाटील पर ही विश्वास कर सकते थे। निजलिंगप्पाजी को अनुमान था कि यहाँ भी प्रधानमंत्री जी बीच में आकर समस्या पैदा करेंगे। वे जान गए थे कि वे उस दिशा में आगे बढ़ रही हैं।

मैसूर में कांग्रेस (ओ) 28 मार्च 1970 को राज्यसभा के अभ्यर्थी के रूप में चार लोगों को खड़ा किया था। परंतु मात्र तीन जीत पाए। निजलिंगप्पाजी को संदेह था कि इंदिरागाँधी ने कुछ ओक्कलिग (कृषक) और हरिजन मतों को खरीद लिया होगा। इन सभी राजकीय चालों के मध्य ही निजलिंगप्पाजी ने अपनी छोटी बेटी का विवाह 1 मई 1970 को बिना किसी मुश्किल से संपन्न किया। मित्रों व बंधुजनों की सहायता ही इसका कारण है, वे तो स्वयं अपनी खासगी (व्यक्तिगत) विषयों की तरफ ध्यान न दे सकते थे, वे तो राजनीतिक समस्याओं में फँसे थे। अपनी बेटी पूर्णिमा और मृत्युंजय के विवाह में वे एक रिश्तेदार जैसे आकर, दूसरे ही दिन राजकीय प्रवाह में कूद पड़े। विवाह का खर्चा दस हजार से अधिक हो गया तो वे बेचैन हुए। परंतु अनिवार्य प्रसंग होने से मान गए।

मैंसूर में मजबूत लगता हुआ कांग्रेस (ओ) के कार्यकर्ताओं को आसानी से लगा कि यह हार देशभर में आगे आनेवाली वस्तुस्थिति की सूचना है। मानसिक

पूर्व केन्द्र गृह मंत्री श्री वै. बी. चव्हाण जी के साथ निजलिंगप्पाजी

संतुलनवाले निजलिंगप्पाजी ने इसका यह मतलब लगाया कि यह इंदिरागाँधी जी के धन प्रभाव के कारण ही नहीं, अपने पार्टी के कार्यकर्त्‍ओं का आलस्य और उपेक्षा ही है। इस संदर्भ में, पत्रिकाओं से बात करते हुए उन्होंने कहा कि बुजुर्ग यदि युवाओं को मौका दे तो पार्टी को फिर से मजबूत बना सकते हैं, और प्राणभर सकते हैं। परंतु उनके सहोद्योगी मोरारजी ने नहीं माना। उन्होंने निजलिंगप्पाजी को सतर्क किया कि ऐसी बातों को खुले में नहीं कहना चाहिए। मधुर मुस्कान ही इसके लिए निजलिंगप्पाजी की प्रतिक्रिया रही। अंदर ही अंदर उनका मन कह रहा था – ''प्रधानमंत्री बने की मोरारजी की आशा अभी समाप्त नहीं हुई है।'' मोरारजी ने सूचना दी कि ''प्रजासत्तात्मक तत्वों में विश्वास रखनेवाले, दूसरे पार्टियों से मैत्री कर सकते हैं।'' उसके लिए निजलिंगप्पाजी का जवाब था – ''इंदिराजी को अधिकार से उतारने के लिए कातर होने पर भी, प्रधानमंत्री बनने की अपनी आशा को इस प्रकार सीधे शब्दों में कहना ठीक नहीं है।'' निजलिंगप्पाजी का विश्वास था कि नेताओं को यदि अधिकार पाने का ध्येय नहीं होता है तो पार्टी का नैतिक स्तर अपने आप ऊँचा उठता है। उन्होंने मोरारजी को समझाया कि गाँधीजी के साथ सीधा संपर्क रखनेवाले नेताओं को ऐसे स्तर तक नीचे नहीं गिरना चाहिए। परंतु निजलिंगप्पाजी और उनके पार्टी के दुर्भाग्य से, 1947 के बाद, अधिकार और स्थानों की रुचि को चखनेवाले नेता अपनी अधिकार लालसा को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। पार्टी के प्रधान सचिवों में एक वेंकटसुब्बय्याजी ने अपने नैतिकपतन को न सहते हुए, अपनी जिम्मेदारी से उन्हें मुक्त करने के लिए निजलिंगप्पाजी से बिनती की। निजलिंगप्पाजी ने उन्हें पार्टी के मुश्किल के समय में उसे न छोड़ने की सलाह दी। परंतु वेंकटसुब्बय्याजी को इससे तृप्ति नहीं हुई। निजलिंगप्पाजी जानते थे कि मंत्री बनकर, एकबार अधिकार का स्वाद लेनेवाले, अधिकार खोने के बाद संपूर्ण रूप से मजबूरी से दुःखी होते हैं। कांग्रेस (ओ) के बुजुर्ग नेताओं की यही हालत रही। आयकर के विषय में केंद्र सरकार ने, निजलिंगप्पाजी और उनकी पार्टी को सताने का प्रयत्न किया। इस भय से पार्टी के कार्यालय के खर्चे को निभानेवाले व्यक्ति का नाम बताने पर शायद इंदिराजी उसे बलि बनायेगी, इस वजह से निजलिंगप्पजी ने उनका नाम नहीं बताया। इसके बारे में उन्होंने पत्रिका को बताया। पार्टी को सताने के लिए सरकार को यह काफी था। कांग्रेस (ओ) और उसके अध्यक्ष को सताना, इंदिराजी ने बंद नहीं किया। इंदिराजी

सब जगह यह कहती चलीं कि निजलिंगप्पाजी और उनकी पार्टी कौमवादी पार्टी से मैत्री कर रहे हैं। वास्तव में उन्होंने ही केरल में मुस्लिम लीग के साथ मैत्री बनाई थी। परंतु सच था कि वैसी मैत्री बनाने के लिए, मोरारजी ने निजलिंगप्पाजी पर दबाव डाला था। परंतु निजलिंगप्पाजी उनके सामने नहीं झुके। मोरारजी ने यहाँ तक आगे बढ़े कि उन्होंने कहा ''पूर्व राजाओं का 'राजधन' (privy purse) का निषेध और बैंक राष्ट्रीकरण का विरोध करना चाहिए।'' प्राय: निजलिंगप्पाजी और कामराज जी को छोड़कर बाकी कांग्रेस (ओ) नायकों में बहुत लोग इंदिराजी के जैसे प्रतिगामी मनोभाव के ही थे।

सितंबर 1970 के केरल के मध्यावधि चुनाव, कांग्रेस (ओ) की शक्ति की परीक्षा का सुसंदर्भ रहा। अपने पार्टी के लिए निजलिंगप्पाजी जोरशोर से प्रचार कार्य करने लगे। चुनाव के नजदीक आते ही केरल में मुस्लिम लीग और मार्क्सिस्ट पार्टी परस्पर हिंसाचार करने लगे। इंदिराजी ने वास्तव को छिपाकर, आरोप लगाया कि कांग्रेस (ओ) और मार्क्सिस्ट ही इसके लिए कारण हैं। 28 सितंबर 1970 को केरल के चुनाव के परिणाम घोषित होने लगे; कांग्रेस (ओ) के नेता हताश हो गए; पार्टी को एक भी स्थान नहीं मिला। खुला रहस्य यह था कि कांग्रेस (आइ) की जीत के पीछे बहुत बड़ा धन का बल था। निजलिंगप्पाजी ने स्पष्ट रूप से मान लिया कि धनबल और संगठनात्मक सामर्थ्य की कमी ही अपने पक्ष की संपूर्ण विफलता का कारण है। अपनी पार्टी के गहन अंधकार के दिनों का सामना करते हुए भी अपनी विशिष्ट रीति में आशावादी होकर वे अपने पार्टी को बलवान बनाने के लिए सब प्रकार के प्रयत्न करने लगे। जैसे अब तक देखा गया है इंदिरागाँधीजी मैसूर कांग्रेस (ओ) सरकार को अस्थिर बनाने के मौके का इंतजार कर रही थीं। मुख्यमंत्री वीरेंद्र पाटीलजी के नेतृत्व में वह पार्टी सुभद्र रहा। जापान के 'एक्सपो' के नामपर इसके लिए एक अच्छा मौका मिला। अत्यंत आधुनिक तंत्रज्ञान के लिए प्रदर्शन का यह प्रसंग था। पाटीलजी ने सोचा कि 'इस प्रदर्शन का संदर्शन करने के लिए युवाओं के प्रतिनिधि मण्डल को सरकारी खर्चे में भेजना ठीक होगा।' एक सौ विद्यार्थियों को चुनने की योजना बनायी। योजना तो बहुत ही अच्छी थी, परंतु विद्यार्थियों को चुनना ही एक समस्या थी। राज्य के हर विश्वविद्यालय से शैक्षणिक रूप से आगे रहनेवाले अर्थात् रैंक पानेवाले विद्यार्थियों को और खेल-कूद में आगे रहनेवाले विद्यार्थियों को चुनने की योजना थी। 'मापदंड' कोई भी हो चुनाव के बारे में विद्यार्थी और

पोषकों में अतृप्ति के कारण होते ही हैं। वह तो अक्षरश: 'पंडोरापेटी' को खोलने के समान ही होता है। विरोधी दलों ने सोचा कि अतृप्त लोगों को शामिल करके सरकारको सिरदर्द देने के लिए यह अच्छा मौका है। एक विश्वसनीय मूल से पता चला कि सराकर के विरुद्ध लड़नेवालों के पीछे रहनेवाले आज अधिकार में न रहनेवाले कांग्रेस (आइ) के एक नायक हैं। विरोध के समय हिंसाचार और दंगे हुए। इसके पीछे राज्य में कानून की समस्या को पैदा कर केंद्र सरकार का मध्यप्रवेश होकर, राज्य सरकार को नीचे उतारने का उद्देश्य था। निर्णय लेने पर भी उनका अनुष्ठान न कर सकने की हालत पर कांग्रेस (ओ) का संगठन पहुँचा था। फिर भी उसके अध्यक्ष, आशावादी होकर पार्टी के हित की रक्षा के लिए देशभर आंधी के समान घूमने लगे। जून 1970 को मुंबई में हुई ए.आइ.सी.सी. संगठन की सभा में संबोधित करते हुए, निजलिंगप्पाजी ने कांग्रेस (आइ) के अवैध कार्यों की एक लंबी सूची सभासदों के सामने रखी। विशेष रूप से प्रजासत्तात्मक मूल्यों तथा संस्थाओं का विनाश, अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य को काटना, राष्ट्रीय अनुशासनहीनता लोगों की राजकीय प्रज्ञा का विकार – इत्यादियों के बारे में ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने बताया कि हाल के चुनावों के परिणाम से सिद्ध होता है कि 'उनकी पार्टी अभी परिस्थिति के सवाल का ठीक तरह से सामना नहीं कर सका है।' उन्होंने मान लिया कि 'प्रधानमंत्रीजी और उनके मित्रों पर तुरंत अनुशासनिक कारवाई नहीं करना एक बहुत बडी भूल हो गई और इस कारण इंदिराजी के हाथ में सारा अधिकार आ गया।' परंतु अंत में भरोसा दिलाते हुए उन्होंने कहा कि 'पार्टी को बचाने और बलवान बनाने के लिए अभी समय है। उसी महिने पी.सी.सी. और डी.सी.सी. के अध्यक्षों की सभा में बात करते हुए उन्होंने अगले चुनावों के लिए तैयार होने के लिए कहा। उसके बाद दिसंबर 1970 में लखनऊ की ए.आइ.सी.सी. की सभा में उन्होंने कहा कि फरवरी 1971 में महाचुनाव होने की संभावना है और उसके लिए अभी तैयार हो जाए।' अल्पसंख्यक सरकार के खतरों के बारे में सचेत किया। योग्य और तत्वनिर्देशित रीति में दूसरे के साथ मैत्री बढ़ाने की आवश्यकता के बारे में बताया। ''भारत को बचाओ, प्रजाप्रभुत्त्व की रक्षा करो'' – इस घोषणा को गाँव-गाँव तक पहुँचाने के कामराज जी के प्रयत्न की उन्होंने प्रशंसा की।

1971 के शुरू होते ही सभी पार्टियों के नेता चुनाव के ताप से पीड़ित हुए। इस चुनाव को अपने जीवन के अंतिम युद्ध मानकर सत्य-धर्म के नामपर

तथा अपने जीवन के नैतिक सामर्थ्य और नाम का उपयोग कर लड़ने के लिए तैयार हो गये। अपने कांग्रेस पार्टी के चुनाव के संघर्ष को अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। कनिष्ट कार्यक्रमों के आधार पर समान मना पार्टियों के साथ, चुनाव-मैत्री कर लेने के लिए उन्होंने प्रयत्न किया। 6 जनवरी 1971 को एस.के. पाटीलजी द्वारा मुंबई में व्यवस्था की गई बृहत सभा में निजलिंगप्पाजी और मोरारजी अपने पार्टी के ध्येयोद्देश्यों के बारे में विस्तृत रूप से परिचय कराया। अपनी सभा में आए अधिक संख्या के लोगों को देखकर कांग्रेस (ओ) के नायक हर्षित हुए। राजनीतिक अनिवार्यता से अथवा अपने ज्योतिषियों की सलाह पर इंदिरागाँधी जी ने अपने चुनावों को स्थगित किया। इसके कारण प्रतिस्पर्धी कांग्रेस में थोड़ी गड़बड़ पैदा हो गया। प्रायः चुनावों को स्थगित करने में प्रधानमंत्री की भी इच्छा यही होगी। परंतु निजलिंगप्पाजी अपने अभ्यर्थियों को चुनने, प्रचार, चुनावतंत्र और निधि संग्रह जैसे चुनाव की तैयारी के बारे में ढीले नहीं हुए। निधि मांगने के लिए गये तो उद्योगपतियों ने देने से इनकार किया। वे तो व्यवहारिक लोग थे; लाभ पर दृष्टि रखते थे। इसकारण जीतनेवाले घोड़े को जानते हुए वे इंदिरागाँधीजी का समर्थन करना चाहते थे। धनी लोगों को नियंत्रित करते हुए गरीबों को अनुकूल करने के उद्देश्यवाले उनकी बैंक राष्ट्रकरण नीति के कारण, धनी लोग निजलिंगप्पाजी का समर्थन करना नहीं चाहते थे। परंतु उन्हें और इंदिराजी को यह सत्य मालूम था कि उनका यह क्रांतिकारी वेष आमजनता की आँखों पर धूल झोकने का काम था। इसकारण उनकी पार्टी की निधि के लिए उदारता से धन देने में वे झिझके। 8 मार्च 1971 की निजलिंगप्पाजी ने डायरी में लिखा है कि धनी हमेशा कायर होते हैं, वे हमेशा अधिकार में होनेवाले लोगों का समर्थन करते हैं। 9 मार्च 1971 को मतगणना आरंभ हुई; शुरु के परिणामों से ही कांग्रेस (ओ) के चेहरे पर म्लानता छाई। निजलिंगप्पाजी जानते थे कि इंदिराजी का परिणाम अच्छा होगा। क्योंकि उन्होंने करोडों रुपए खर्च किए थे; उनकी पार्टी के हजारों जीप गाडियाँ जोरशोर से दौड़ी थीं। सरकारी नियंत्रण के आकाशवाणी में उनके पार्टी के लिए निरंतर घोषणायें हुई थीं। सभी शहरों व गाँवों में उनकी मुस्कानभरी फोटो विराजित थीं। परंतु अपनी चुनाव मैत्री के कारण उन्होंने अपनी पार्टी के लिए कम से कम दो सौ मतों की प्रतीक्षा की थी। वे सोच रहे थे कि 'मदरास में उनकी पार्टी बहुमत प्राप्तकर सरकार की रचना करेगी।' परंतु मार्च दस 1971 तारीख के

शाम को अंतिम रूप से जब सभी स्थानों के परिणाम की घोषणा हुई तो कांग्रेस (ओ) ही नहीं सारा विरोधी दल संपूर्ण रूप से नष्ट हो गया था। उस तारीख को उन्होंने अपनी डायरी में हार मानकर लिखा है कि ''इंदिरा कांग्रेस अथवा कांग्रेस (आइ) के अलावा सभी पार्टी पूर्णरूप से धूल में मिल गई। इंदिरागाँधी जी का प्रभाव, जंगली आग जैसे सभी ओर फैल गया था।'' यह भी कहा कि '' एस.के. पाटील, अशोक मेहता, संजीवरेड्डी, तारकेश्वरी सिन्हा और रामसुभग सिंह जैसे अतिरथों का हार जाना आश्चर्य होने पर भी सच है।'' वे सोचने लगे कि ''ऐसे आश्चर्यपूर्ण संदर्भ का कारण क्या हो सकता है?'' उन्होंने चिंता की कि ''इस अद्‌भुत विजय का कारण क्या धनबल है या कौशलपूर्ण प्रचार कार्य, प्रभावपूर्ण बातें अथवा केवल भाग्य ही है?'' परंतु अंत में इस निर्णय पर पहुँचे कि इन सभी के एकत्रित कारण ही होगा। इंदिरागाँधी जी को लोकसभा में दो-तिहाई का बहुमत प्राप्त हुआ। गरीबी हटाओ और मुस्लिम तथा हरिजनों के मत ही इस अद्‌भुत विजय के पीछे काम करनेवाले कारण थे। ऐसे अत्यधिक बहुमत से वे जो चाहे कर सकती थीं। कांग्रेस (ओ) नायक अपनी हार के कारण ढूँढ़ रहे थे। कामराज जी सबसे ज्यादा दुःखी थे। क्योंकि उनके राज्य में डी.एम.के. ने विजय प्राप्त की थी। कांग्रेस (ओ) कार्यकारी समिति ने 13 ओर 14 मार्च 1971 को सभा बुलाकर, चुनाव-पंचनामा किया। उसका अभिप्राय था कि धोखे से चुनाव में विजय प्राप्त की होगी। परंतु पार्टी गिरकर धाराशाई हो गयी थी। उनके सदस्य इंदिरागाँधी जी के बारे में भयभीत थे; और कायर व स्वार्थी होकर पार्टी छोड़ने का विचार कर रहे थे। इस कारण दूसरी पार्टियों में विलीन न होकर, अपनी पार्टी को बलवान बनाने के निर्णय का कोई मतलब नहीं रहा। मैसूर में भी वीरेंद्र पाटील जी का स्थान हिल रहा था। सभी जगह पार्टी की संरचना में ढीलापन दिखाई दिया; अनुशासनहीनता तो तांडव करने लगी थी। इस अनुशासनहीनता बढ़ाने में प्रधानमंत्री ने अनेक प्रयत्न किये। 18 मार्च 1971 को पाटीलजी ने राज्यपाल को अपनी इस्तीफा दे दी। उसके बाद देशभर में कांग्रेस में पक्षांतर व्यापक हो गया। जल्दी ही लगने लगा कि कांग्रेस (ओ) का राष्ट्रीय पक्ष के रूप में कोई भविष्य नहीं है। मैसूर के नेता पाटीलजी और राजशेखरमूर्ति जी एक प्रदेशिक पार्टी की रचना के बारे में सोचने लगे। परंतु निजलिंगप्पाजी अपनी पार्टी के बारे में बद्धता पर दृढ़ रहे। अपना संपूर्ण सामर्थ्य और संसाधन पक्ष को समर्पित किये। परंतु मैसूर में पहले उन्होंने जिन

नायकों की राजकीय क्षेत्र में लाकर रूपित किया था उन्हें भी पार्टी को छोड़ते हुए देखकर हताश हो गए। परंतु रामकृष्ण हेगडे और गुरुपाद स्वामी जैसे निष्ठावान मित्र भरोसा न खोकर पार्टी को बलवान बनाने में लगे रहे। निजलिंगप्पाजी ने रामकृष्ण हेगडे जी को पी.सी.सी. का अध्यक्ष चुना। लेकिन अस्वास्थ्य के कारण हेगडे जी वह जिम्मेदारी नहीं ले सके। अंत में पाटील जी ने वह जिम्मेदारी उठाई।

बड़े उद्देश्य के लिए अपने निजी विषय की उपेक्षा करने का असाधारण सामर्थ्य रखनेवाले निजलिंगप्पाजी पार्टी के अध्यक्ष स्थान को युवा पीढ़ी को देने के लिए सोचा। उनकी आशा थी कि युवा पार्टी को नवचैतन्य भरकर और युवा शक्ति से पार्टी को ऊपर उठा सकते हैं। 11 अप्रैल 1971 को कामराजजी से मिलकर उन्होंने इस विषय का उल्लेख किया। कामराजजी तो मान गए; परंतु पार्टी की आर्थिक दुःस्थिति के कारण कोई भी युवा इस जिम्मेदारी को उठाने के लिए सामने नहीं आया। यदि कोई भी वरिष्ठ नेता निधि संग्रह कार्य की जिम्मेदारी लेते तो निजलिंगप्पाजी किसी युवा को ढूँढ़ सकते थे। परंतु अतुल्य घोष, संजीवरेड्डी जैसे वरिष्ठ नायकों में निरासक्ति बढ़ रही थी। चुनाव में हारने के कारण उन्हें भ्रम दूर हो गया था। मई में मुंबई में जो पार्टी की ए.आइ.सी.सी. सभा हुई, उनके कांग्रेस (ओ) पार्टी के अध्यक्ष के रूप में निर्वाह की गयी, अंतिम अधिकृत सभा हो गई। ए.आइ.सी.सी का एकमत-अभिप्राय था कि निजलिंगप्पाजी ही अपने उत्तराधिकारी का नाम सूचित करे। स्थान और अधिकार के लिए मनुष्य के संघर्ष करने की नीति यही होती है। डूबनेवाली पार्टी के अध्यक्ष सही स्पर्धा के लिए लक्ष्य बने। एस.के. पाटील, सी.बी. गुप्त, मोरारजी और कामराजजी को भी अपनी रक्षा के लिए प्रचार करना पड़ा। कामराजजी और मोरारजी के बीच में पार्टी में सर्वोच्चता को स्थापित करने के लिए जोरदार स्पर्धा हुई। कामराजजी ने रामसुभग सिंह जी की स्पर्धा का समर्थन किया; मोरारजी ने उसका तीव्र प्रतिरोध किया। परंतु इस झगड़े में निजलिंगप्पाजी नहीं पड़े। सदस्यों के अभिप्राय को देखते हुए यह जानकर कि रामसुभग सिंह जी ने अधिक लोगों का समर्थन नहीं पाया है – उन्होंने सादिक अली जी का नाम सूचित किया। शुरू में सादिक अली जी ने इसका विरोध किया। उन्हें मनाने में एस.के. पाटीलजी और निजलिंगप्पाजी सफल हुए। वे पार्टी के अध्यक्ष चुने गए। और इस प्रकार निजलिंगप्पाजी के अधिकार भार को उतार दिया गया। सदस्यों ने

अध्यक्ष की भूरिभूरि प्रशंसा की। उसी प्रकार निर्गमन करनेवाले अध्यक्ष के बारे में भी अच्छे शब्द कहे। पाटील जी ने कष्ट के दिनों में पार्टी की रक्षा करनेवाले निजलिंगप्पाजी की प्रशंसा की। अध्यक्ष स्थान से निर्गमन कर निजलिंगप्पाजी धारवाड़ में कर्नाटक विश्वविद्यालय परिसर में कुछ समय विश्राम करने के लिए आए। वहाँ उनके सुपुत्र प्रो. उमाकांत भौतिकशास्त्र के प्राध्यापक थे; अपने जीवन में पहली बार निजलिंगप्पाजी ने वहाँ के प्रशांत वातावरण का अनुभव किया। उन्होंने अपने परिवार - पत्नी, बच्चा-पोते–नानियों के साथ खुशी से कुछ समय बिताने का प्रयत्न किया। परंतु अधिक समय वे विश्राम न ले सके। चुनाव के खर्चे के कारण ऋण में डूबे पार्टी के लिए निधि संग्रह करना उन्होंने अपना कर्तव्य माना। इसके लिए कलकोता, लखनऊ और मुंबई जाने के लिए सोचा। इसी बीच जब उन्होंने आकाशवाणी में सुना कि संजीवरेड्डीजी ने कार्यकारिणी समिति के सदस्यत्व से इस्तीफा दे दिया तो उन्हें बहुत बुरा लगा। एक तरह से इससे कुछ तसल्ली भी मिली। उसका कारण था कि रेड्डी जी समझौते के व्यक्ति नहीं थे। संजीवरेड्डी जी ने बताया कि समाजवाद की ओर आसक्ति बढ़ने के कारण ही उन्होंने इस्तीफा दे दिया। रेड्डी जी को लोकसभा के अध्यक्ष बनाने के लिए जो उन्होंने इंदिरागाँधीजी से अनबन मोल ली, वह वह संदर्भ निजलिंगप्पाजी को याद आया। 1967 में यह हुआ था। रेड्डीजी को अनचाह व्यक्ति मानकर इंदिराजी ने उन्हें अपने मंत्रिमंडल से दूर किया था। निजलिंगप्पाजी ने ही उन्हें लोकसभाध्यक्ष का स्थान देने के लिए इंदिराजी को मनाया था। परंतु इंदिराजी ने कहा कुछ और किया कुछ और ही! रेड्डीजी ने जब नामपत्र दिया तो इंदिरागाँधीजी ने अपने एक सहकर्मी को नामपत्र देने के लिए प्रोत्साहन दिया। इसकारण चुनाव अनिवार्य हो गया था। निजलिंगप्पाजी के सौभाग्य से रेड्डी जी अत्यधिक बहुमत से जीत गए। जब सादिक अली जी ने निजलिंगप्पाजी को पार्टी के कोशाधिकारी बनने के लिए प्रार्थना की तो निजलिंगप्पाजी पर एक और जिम्मेदारी आ पड़ी। वीरेंद्र पाटीलजी और अन्य युवा नेताओं ने निजलिंगप्पाजी से मिलकर बिनती की कि बुजुर्ग नेता लोग पार्टी के मुख्यस्थान से हटकर पार्टी के पुनःचेतना के लिए मदद करे। निजलिंगप्पाजी समझ गए कि ''युवा सदस्य सोचते हैं कि बुजुर्ग नेता पार्टी की प्रगति को रोकते हैं।'' उनके अनेक मित्रों ने इंदिरा कांग्रेस में शामिल होने की इच्छा व्यक्त की। सारांश में निजलिंगप्पाजी को अपने पार्टी के सदस्यों के बारे में मोहभंग हो गया।

वे जान गए कि अधिकार, स्थान और धन के लिए वे सब सत्य, न्याय और प्रामाणिकता की बलि चढ़ाने के लिए तैयार हैं। जब उनके किसी पत्रकर्ता मित्र ने उनसे कहा कि ''वीरेंद्र पाटील जी की नज़र स्थान और अधिकार पर है, न कि पार्टी के पुनःरुज्जीवन पर'' – तो निजलिंगप्पाजी को बड़ी निराशा हुई। वास्तव में पाटीलजी और निजलिंगप्पाजी के दामाद - महालिंग शेट्टी जी ने इन वरिष्ठों से मिलकर कहा कि आनेवाली विधानसभा के चुनावों का सामना करने के लिए कांग्रेस (ओ) पर लोगों का विश्वास न होने के कारण एक नए पक्ष की रचना करनी चाहिए। बुजुर्ग निजलिंगप्पाजी इससे क्रोधित हुए। उन्होंने अपना अभिप्राय स्पष्ट कर दिया।

पार्टी के अध्यक्ष पद को त्यागने के बाद भी निजलिंगप्पाजी के राजनैतिक जीवन में विश्राम नहीं मिला। पक्ष को मजबूत करने के लिए सोचा और उसे इंदिरागाँधी जी के अनैतिक और विश्रृंखल राजनीति को सामना करने का साधन बनाना चाहा। इस उद्देश्य से राज्य के विविध भागों का भ्रमण कर उन्होंने इंदिरागाँधी जी की तत्वहीन राजनीति के बारे में लोगों को जगाने का कार्य किया। उन्हें सबसे ज्यादा आघात – पहले की उनकी ही पार्टी के साथियों द्वारा ही लगा। सबसे बड़ी मार थी रामसुभग सिंह का विद्रोह। जो पहले निजलिंगप्पाजी को 'गुरुदेव' कहते थे। सिंहजी ने कांग्रेस (ओ) के अपने पुराने सहचरों के विरुद्ध पत्रिका में वक्तव्य दिया। श्रीमती तारकेश्वरी सिन्हाजी ने भी पुरानी कांग्रेस की निंदा करते हुए पत्रिकाओं को बयान दिया। इन दोनों के विरोध का कारण था कि सिंहजी को अध्यक्ष पद नहीं मिला और तारकेश्वरी सिन्हजी प्रधान सचिव नहीं बन सकी। वे प्रधानमंत्रीजी का ध्यान आकर्षित करने के प्रयत्न भी करते रहे। कामराज जी और सिंहजी को अपनी ओर करने के लिए इंदिराजी ने जो गुप्तचरों को भेजा था, यह बात निजलिंगप्पाजी को मालूम हो गई। कामराज जी से निकट संबंध होने पर भी उनके मन की स्थिति के बारे में निजलिंगप्पाजी को कोई भरोसा नहीं था। क्योंकि कामराज जी ने कभी अपने मन को खोलकर नहीं रखा था। निजलिंगप्पाजी ने उस समय के व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन के इन सभी व्यवहारों के कारण राजकीय से निवृत्ति लेकर, आराम का जीवन चलाने के बारे में सोचा था; यह बात उनकी डायरी में अंकित है। परंतु उसी क्षण उन्हें लगा कि संगठन को छोड़ेंगे तो वह पलायनवाद होगा तथा कर्तव्यविमुखता होगी। भविष्य जो भी हो, अपने सद्यः कर्तव्य का ज्ञान उन्हें था। इसलिए उसका अनुसरण करने का निश्चय किया। 'सच्चे लिंगायत' मनोभाव

से निष्ठा के साथ अपने कायक (कार्य) को आगे बढ़ाने का निर्णय कर लिया। 22 सितंबर 1971 को बेंगलूर में हुए 'जिला कांग्रेस सभा' में वीरेंद्र पाटील और कामारज जी ने सूचना दी कि इंदिराजी बदल गई हैं। परंतु अपनी बद्धता में दृढ़ निजलिंगप्पाजी ने उनसे स्पष्ट कहा कि उन्हें इस बात पर कोई भरोसा नहीं है। उन दोनों ने समझाया कि चुनाव की हार को भूलकर कांग्रेस की एकता के लिए क्यों न फिर से कोशिश की जाय। निजलिंगप्पाजी ने अपनी डायरी में लिखा है कि अधिकार को खोने के बाद उन दोनों ने शायद चित्तस्थिरता को खो लिया है। उन्हें लगा कि उनकी अभिरुचि निम्न स्तर की है; क्योंकि किसी भी नैतिक मानदंड के बिना चुनाव द्वारा अधिकार ग्रहण करना ही उनका ध्येय बन गया है। कामराज जी को पत्र लिखकर अपना अभिप्राय व्यक्त किया। उन्हें लगा कि संपूर्ण विश्वास रखने लायक उनके एकैक मित्र हैं – एस.के. पाटील जी। निजलिंगप्पाजी जब भी देहली जाते थे तो मुंबई द्वारा ही जाते थे। वहाँ वे और एस.के. पाटील जी दोनों और कांग्रेस (ओ) अध्यक्ष सादिक अली जी को अपने संपूर्ण समर्थन का पुनर्निर्धार बताते थे। थोड़ा बहुत धन लिए बिना देहली नहीं जाते थे। क्योंकि धनाभाव के कारण पार्टी का कार्यालय बंद होने की हालत तक पहुँची थी। परंतु धन सहायता करनेवाले व्यापारियों का मिलना भी मुश्किल था। अधिकार पद होने पर ये ही व्यापारी कांग्रेस कार्यालय दौड़ेहुए आते थे। अंग्रेजी काव्यप्रिय निजलिंगप्पाजी को टेनिसन कवि की कुछ पंक्तियाँ याद आती थीं – उस कविता में मृत्यु के कगार पर खड़े एक राजा का चित्रण है परंतु ''बुरे समय के बाद अच्छा समय जरूर आता है'' – इसी आशाभावना को उन्होंने अपनी डायरी में व्यक्त किया है। इसी बीच पार्टी के नायकों की अनिश्चितता का मनोभाव और सिंहजी और तारकेश्वरी सिंहाजी जैसे लोगों का पक्ष के विरोध में पत्रिकाओं को बताना – बेचारे सादिक अली जी को बहुत बुरा लगा। पक्ष की संरचना का बहुत ही ढ़ीला होना स्पष्ट हो गया था। उदाहरण के लिए विविध समितियों को पक्ष के अध्यक्ष के रूप में सादिक अली जी ने जिन्हें नियुक्त किया था, सिंहजी ने उसकी कड़ी आलोचना की। नाम न लेते हुए ही कई सदस्यों ने जब कड़ी आलोचना की तो सिंहजी क्रोध से सभा त्याग कर चले गए थे। संदर्भ का रूख देखकर सादिक अली जी ने इस्तीफा दिया। परंतु उसे वापस लेने के लिए उन्हें मनवाया गया। सलाह के लिए जब वे अपने मार्गदर्शक निजलिंगप्पाजी से मिले तो उन्होंने दृढ़ रहने की सलाह दी और

''आवश्यक कठिन निर्णय ले लिए; नहीं तो कार्यकर्ता धैर्य खो सकते हैं।'' कार्यकारिणी समिति में हाज़िर रहकर फिर जब वे बेंगलूर पहुँचे तो उन्होंने सुना कि मैसूर के कई कांग्रेस लोग नए पक्ष को प्रारंभ करने के बारे में प्रयत्न कर रहे हैं। अपनी पार्टी के सहचरों के इस तत्वहीन तथा अवसरवादी राजनीति के बारे में निजलिंगप्पाजी अपनी डायरी में क्रोध व्यक्त करते हैं। परंतु यही बात उन्हें अपनी पार्टी में और दृढ़ता से लगे रहने का कारण बन गई। उनका विचार था कि वैसे लोग जनता के नेता बनने के योग्य नहीं होते हैं। दूसरे दिन हुई पी.सी.सी. कार्यकारिणी की सभा में भी कई सदस्यों ने यही अभिप्राय व्यक्त किया। अपने राजनीतिक प्रभाव का कम होते जाना ही उसकी चिंता का कारण बना था। पार्टी के चिह्न के बारे में हुए कानून-समर में हार होने पर उन्होंने फिर से पुरानी कांग्रेस को आगे बढ़ाने के विरुद्ध विचार व्यक्त किया। वीरेंद्र पाटीलजी जैसे कुछ लोग डगमगा रहे थे। वे कांग्रेस (ओ) पर विश्वास खो रहे थे। परंतु छोड़कर जाने में भी वे झिझक रहे थे। वैसे राजनीतिक अनिश्चितता के लिए निजलिंगप्पाजी ने उन्हें छेड़ा। उन्हें पार्टी में वीरेंद्र पाटील जी की निष्ठा के बारे में संदेह था। इन सभी कठिनाईयों के बाद भी निजलिंगप्पाजी पुरानी कांग्रेस की निष्ठा के बारे में अपना विचार बदलने के लिए तैयार नहीं थे। अपने खुद का धन, पार्टी कार्यालय के लिए सादिक अली जी को भेजकर, उनका समर्थन किया। इसी समय चिह्न के विषय में जीत पाकर अति आनंद से कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने 12 नवंबर 1971 को जंतरमंतर के पार्टी कार्यालय पर धावा बोलते हुए, सादिक अली जी पर हमला कर उन्हें बाहर फेंकते हुए कचहरी के लोगों को डरा धमकाकर अधिकृत कागज़ों को इधर उधर फेंका। पुलिस ठीक समय पर नहीं पहुँची। वह हमला पूर्वनिर्धारित था और उद्देश्यपूर्वक ही पुलिस नहीं आई। मोरारजी ने संसद में जब इस विषय का उल्लेख किया तो प्रधानमंत्रीजी ने अपनी मुग्धता व्यक्त की। आकाशवाणी ने भी इस घटना को रिपोर्ट नहीं किया। स्पष्ट था कि उच्च अधिकारी ने ताकीद की थी। इसकी प्रतिक्रिया में सादिक अली जी उपवास करने लगे। पार्टी की कार्यकारिणी समिति ने देशभर की गुंडागर्दी का खंडन करते हुए अध्यक्ष से उपवास बंद करने की बिनती की। आगे सारे देश में होनेवाली घटनाओं के लिए जंतरमंतर की यह घटना पूर्व सूचना ही थी। बंगलौर की पी.सी.सी. (ओ) के कार्यालय पर भी कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने ऐसा ही हमला किया। निजलिंगप्पाजी के फोटो को फाड़ दिया।

सामग्रियों को तोड़ डाला। सत्य बोलनेवाले निजलिंगप्पाजी ने इस घटना को 'फासिज्म' कहा। इसके बारे में धारवाड़ में पत्रिका प्रतिनिधियों को बताया।

4 दिसंबर, 1971 को जब पाकिस्तान से युद्ध प्रारंभ हुआ तो सरकार ने 'बाह्य एमर्जेन्सी' की घोषणा की। प्रधानमंत्रीजी ने विदेशों में जाकर भारत तथा पूर्वी बंगला के पक्ष में प्रचार किया। पश्चिमी देशों के साथ विरोध की उनकी यह धारणा विश्वसंस्था में भारत के विरुद्ध होने का कारण बन गई। निजलिंगप्पाजी ने अपनी डायरी में इसे 'गलत विदेशी नीति' कहा है साथ ही उन्होंने भारत के राजदूत कार्यलय की कार्यवाही की आलोचना की है। भारत के विचार का विदेशों में स्पष्ट रूप से सुसंबद्ध रीति से विवरण देने का कार्य वे ठीक तरह से नहीं करती हैं, यह खेदजनक है। क्योंकि भारत का विचार दृढ़ है। बंगला देश को मान्य करने में देरी करने की सरकार के विचार की भी वे आलोचना करते हैं। 6 दिसंबर, 1971 को वैसा करने के बजाय कम से कम आठ महिने पहले ही यदि यह कार्य करते तो विवेकपूर्ण होता। यह निजलिंगप्पाजी का विचार था। इससे भारत-पाक युद्ध न होता। उस समय उनके मन में कातरता के विचार भरे रहते थे। परंतु 16 दिसंबर, 1971 को जब बंगला देश की विजय हुई तो निजलिंगप्पाजी से अधिक कोई और खुश नहीं हुआ होगा। धैर्य व कौशल के लिए उन्होंने इंदिराजी की भी प्रशंसा की। परंतु उन्हें पता था कि वे इसका उपयोग वैयक्तिक व अपने पार्टी की हितासक्ति के लिए ही करेंगी। उस वक्त इंदिराजी उन्नत स्थान पर थीं। उस वक्त यदि चुनाव होते तो वे बहुमत से चुनी गईं होती। निजलिंगप्पाजी जानते थे कि वे जनसामान्य की दृष्टि में देवी बनी हैं। इस समय चुनाव में उनका सामना करना किसी के लिए भी आघातकारी ही था। इसे वे और एस.के. पाटीलजी अच्छी तरह से जानते थे। कांग्रेस (आइ) द्वारा किए गए महत्वपूर्ण संविधान के बदलाव को कांग्रेस (ओ) के सहकार देने की बात ने दोनों में अंतर न होने जैसे लोगों के मन में उलझन पैदा किया था। इसे निजलिंगप्पाजी अपनी डायरी में लिखते हैं। एस.के. पाटीलजी का अभिप्राय था कि "सभी विदेशों के साथ मैत्री करनेवाली विदेश नीति, सभी मतधर्मों को समान गौरव और बुजुर्गों द्वारा समर्थन पाये युवाओं से रूपित उत्पादकता सिद्धांतों के आधार पर इंदिरागाँधी जी के लिए परिणामकारी पर्याय पार्टी रूपित कर सकते हैं।" इस तरह नये और प्रत्येक लगनेवाले पक्ष की अनिवार्यता दिन ब दिन अधिक स्पष्ट लग रही थी। 26 दिसंबर, 1971 को निजलिंगप्पाजी ने

अपनी डायरी में लिखा है कि ''मोराराजी देसाईजी, पाटीलजी, गुप्तजी और घोष जी अपनी विश्वासार्हता खो रहे हैं, इसकारण राजनीति से वे निवृत्त हों, इस तरह वीरेंद्र पाटीलजी और रामकृष्ण हेगडे जी ने मुझ से कहा था।'' उन काले अंधेरे दिनों में कांग्रेस (ओ) को उनकी पार्टी को सूत कातने लगी औरत के चिह्न को अधिकृत रूप से देनेवाली कोई भी छोटी सी सूचना उसके नेताओं को और निजलिंगप्पाजी को थोड़ी तसल्ली दे रही थी। परंतु ऐसी छोटी जीत के लिए अधिकृत माध्यमों द्वारा ज्यादा प्रचार नहीं मिला था। लेकिन इंदिराजी और उनकी पार्टी के कोई भी यशःकिंश्चत समाचार हो वह बृहत् रूप लेता था। इसकारण सरकार के नियंत्रण न होनेवाले माध्यमों के बारे में उनका जो विश्वास है वह इस अनुभव से पुष्टि पाता है।

कांग्रेस (ओ) का विसर्जन कर नई पार्टी की स्थापना करने की मांग निजलिंगप्पाजी को तंग करने लगी। निजलिंगप्पाजी और अन्य लोगों को कांग्रेस को इस्तीफा देकर मैसूर कांग्रेस की एक नई पार्टी के रूप में पुनःर्रचना करनी चाहिए – इस प्रकार हासन के डी.सी.सी. द्वारा निर्णय लेने का समाचार 3 जनवरी, 1972 को पत्रिकाओं में प्रकाशित देखकर वे और दुःखी हो गए। यह नयी पार्टी आगे चलकर कांग्रेस (आइ) में शामिल होने का उद्देश्य रखने का संदेह उन्हें सताने लगा। कार्यकारिणी समिति की सभा में भी और 4 जनवरी, 1972 को हुई पी.सी.सी. अध्यक्षों की सभा में भी नई पार्टी के बारे में उल्लेख हुआ। वहाँ यथास्थिति की रक्षा करने का निर्णय लिया गया। परंतु मैसूर के नेताओं का यह निर्णय अच्छा नहीं लगा। इस अतृप्ति के पीछे उन्हीं से रूपित दो नेताओं का होना, निजलिंगप्पाजी को बहुत बुरा लगा। उन्होंने अपनी डायरी में बहुत ही दुःख से लिखा है कि शायद इंदिराजी का चुनना उन्हें ठीक नहीं था। अथवा अपने में ही क्या कोई दोष था ? पी.सी.सी. ने कार्यकारिणी समिति के विचार को मान लिया। परंतु उनके दामाद महालिंग शेट्टी जी ने बताया कि बार बार निजलिंगप्पाजी का इंदिराजी की निष्ठुरता से आलोचना करना ठीक नहीं है; उनकी पार्टी के सदस्यों की अतृप्ति के बारे में भी बताया। प्रायः उनका अभिप्राय सच था। निजलिंगप्पाजी कभी कभी अतिरेक से प्रतिक्रिया व्यक्त करते थे। परंतु इंदिराजी के साथ उनके अनुभवों के बारे में देखा जाय तो सभी संसाधनों को अपने वश में रखनेवाली इंदिराजी के विरुद्ध प्रचार सीधी तरह से आलोचना करना कोई गलत नहीं था। परंतु वे बड़े ही खुले मन के थे;

कौशलपूर्ण दिखावा नहीं कर सकते थे। और स्पष्टता से कहना हो तो उनकी आलोचनाएँ इंदिराजी के विचारों के बारे में थी न कि व्यक्ति के विरुद्ध। उनके अनेक बुजुर्ग मित्र उनसे दूर होते जा रहे थे; इस तरह उनका अकेले होते जाना विषादनीय था। उनकी अतिरेकवाली नैतिक परिशुद्धता रही; इस कारण वे दूसरों के व्यवहार की कमी को सह नहीं सकते थे। आज भी इंदिराजी के विरुद्ध उनके मन में कडुआहट है। परंतु इंदिराजी के सामर्थ्य को पहचानने का विशाल मनोभाव भी उनमें है। कांग्रेस (आइ) के विरुद्ध उनकी ओर एक आलोचना यह है कि ''चुनावों में उसने अच्छे अभ्यर्थियों को टिकेट नहीं दिया।'' सूक्त अभ्यर्थियों को चुनने में सभी पार्टीवाले कभी कभी गलती करते हैं – इसे न पहचानने के बारे में उन्हें इंदिराजी के बारे में कडवाहट थी। 1972 के मध्यभाग से ही चुनाव की तैयारियाँ होने लगीं। कांग्रेस (ओ) चुनाव निधिसंग्रह नहीं कर सका था; इसकारण वह आर्थिक रूप से मुश्किल में था। इंदिराजी के क्रोधित होने के भय से उद्योगपतियों ने इस पार्टी की सहायता नहीं की। निजलिंगप्पाजी की एकैक आशा किरण यह थी कि जंतरमंतर का कार्यालय न्यायालय के द्वारा, कांग्रेस (ओ) के वश में था। परंतु इससे तृप्ति नहीं होती थी। निधिसंग्रह के लिए वे गाँव-गाँव तक घूमते फिरे। परंतु कोई लाभ नहीं हुआ। प्रचार के लिए कर्नाटक भर में आंधी के समान घूमे; चुनावों के समाप्त होने के बाद उन्होंने धारवाड में परिणाम का इंतजार किया। सभी प्रतीक्षाओं को झूठा साबित करते हुए, पार्टी को लेकर कांग्रेस (आइ) ने सर्वव्यापक विजय प्राप्त कर ली। उस हार को न सहते हुए पार्टी के कुछ लोगों ने निजलिंगप्पाजी से शिकायत की कि ''चुनाव भ्रष्ट हो गए थे; मतों की गिनती के समय मतपत्रों में रासायनिक के उपयोग के जैसे धोखाधडी हई है।'' उनकी बातों पर विश्वास करते हुए निजलिंगप्पाजी ने पत्रिकाओं को बताया कि कांग्रेस (आइ) ने चुनाव में अवैध काम किया है। उसी के साथ हार से हताश न होते हुए और अधिक दृढ़ निश्चय के साथ पार्टी का बलवर्धन करने के लिए उन्होंने अपने साथियों को सलाह दी। चुनावोत्तर की प्रक्रिया में कई राज्यों में नायकत्व के बारे में एकमत नहीं रहा; तो उन्होंने इंदिराजी को निर्णय की जिम्मेदारी दे दी। निजलिंगप्पाजी को यह 'प्रजाप्रभुत्व की विकृति' लगी। उन्होंने मैसूर में भविष्यवाणी की कि इंदिराजी, लिंगायत अथवा किसानों को पसंद नहीं करती हैं, शासकों के बहुमत पाकर देवराज अरसु जी मुख्यमंत्री बनेंगे। निजलिंगप्पाजी के विचार में अरसु

जी सिद्धवीरप्पाजी से उत्तम अभ्यर्थी थे। परंतु अरसु जी से भी बदरीनारायण जी और अधिक उत्तम थे। लेकिन ब्राह्मण होने के कारण उन्हें स्पष्ट मालूम था कि बदरीनारायण जी को मौका नहीं मिलेगा।

कांग्रेस (ओ) कार्यकारिणी समिति ने 22 मार्च 1972 को सभा बुलाकर चुनाव की मरणोत्तर परीक्षा की। लंबी चर्चा के बाद एकमत अभिप्राय निकला कि कांग्रेस (ओ) कार्यकर्ता अधीर हो गए हैं। कामराज जी ने सभा में बताया कि उनके पार्टी को लगता है कि डि.एम.के. के विरुद्ध कांग्रेस (ओ) और कांग्रेस (आइ) दोनों फिर से एक हो जाय, लेकिन वैयक्तिक रूप से उन्हें वह ठीक नहीं लगता है। पी.सी.सी. के अध्यक्षों का अभिप्राय था कि उनकी पार्टी परिणामकारी विरोधी दल के रूप में कार्य निर्वाह के लिए परिश्रम करे। निजलिंगप्पाजी ने सूचना दी कि पार्टी के पुनरुज्जीवन के लिए व्यापक कार्यक्रम रूपित किया जाय। इसके लिए हरेक जिले में नेताओं को ट्रेनिंग देनी चाहिए। कुल मिलाकर एक हजार लोगों को ट्रेनिंग देना होगा। फिर से नेता गाँवों में भ्रमण कर सरकार की गलत नीतियों के बारे में लोगों को जानकारी दें।

राज्य विधान मंडलों से राज्य सभा के चुनाव के बारे में, अधिसूचना के निकलने पर गुरुपादस्वामी और वीरेंद्र पाटील ने एक दूसरे के विरुद्ध अभ्यर्थी होने के लिए चाह व्यक्त की। पहले एक बार, राज्यसभा सदस्य के रूप में सफल हुए, गुरुपादस्वामीजी के पक्ष में निजलिंगप्पाजी झुके; परंतु जीत हासिल करनेवाले के रूप में वीरेंद्र पाटील जी की तरफ बाकी लोगों का झुकाव रहा। निजलिंगप्पाजी मान गए पाटीलजी चुनाव में जीत तो गए; परंतु जीते पक्षांतर के मतों से। बंगला देश की विजय और चुनाव की विजय – इन दोनों ने इंदिरागाँधी जी को स्पर्धाविहीन राष्ट्रनायक के ऊँचे पदपर उठाया। वे अधिकार और वैभव के ऊँचे शिखर पर थीं। उनकी ऊँचाई के सामने बाकी सभी 'कुब्ज' लगने लगे। मेरी माता के पीछे जानेवाली बकरियों के जैसे, राज्यों के सारे नेता उनके पीछे जाने लगे। वे अप्रतिम सार्वभौम साम्राज्ञी बनी; उनकी हर बात कानून बन गई। उनके सभी विरोधी धूल चाटने लगे। अपार लोक सम्मान प्राप्त कर वे निरंकुशाधिकार चलाने में नहीं झिझकीं। परंतु ये सभी निजलिंगप्पाजी में अंतर्निहित आशावाद को अथवा समचित्तता को नष्ट नहीं कर सके। भय या नियंत्रण के बिना उन्होंने प्रधानमंत्री की आलोचना की। उन्हें विश्वास था कि आज या कल

उनकी भी हार होगी। वे जानते थे कि ''निंदा का कोई लाभ नहीं है; गाँधीजी कहलाने वाला उसकी राजनीति और शासन का उचित जवाब उनका अपने पार्टी का बलवर्धन ही है।''

अक्तूबर 1972 के अंत में, ए.आइ.सी.सी. (ओ) की पूना में सभा हुई। नेताओं की आशा से अधिक वह आकर्षक था। निजलिंगप्पाजी शहर के प्रमुख उद्योगपति कोठारीजी के घर में ठहरे थे। कोठारी परिवार ने उनका हृत्पूर्वक तथा आत्मीय आतिथ्य किया। अपने भाषण में निजलिंगप्पाजी ने अनेक विषयों का उल्लेख किया। उन्होंने तर्क किया कि शासक दल को राजकीय सामर्थ्य बढ़ा लेना देश की आर्थिक विकास से भी अधिक प्रमुख लगता है; उन्होंने कहा कि इस कारण आर्थिक विकास, समाजवाद, सामाजिक न्याय और गरीबी का निर्मूलन – ये सब कुंठित हो गए हैं। वे सब घोषणा भर रह गए हैं; सत्वहीन बातें बन चुकी हैं। इन्हें निर्दिष्ट बातों में सूत्रीकरण करना चाहिए। इससे उनके अनुष्ठान के लिए अनुकूल होगा। उन्होंने कामराज जी से धर्म निरपेक्षता के आयात का अर्थ बताने के लिए कहा है। परंतु कामराज जी का जवाब भी एक और सवाल ही था – ''क्या निजलिंगप्पाजी 'हिंदुत्व' का अर्थ बता सकते हैं?'' निजलिंगप्पाजी जी ने बताया कि इन शब्दों का हर व्यक्ति का अपना अपना अर्थ होता है।'' परंतु भारत के लिए अत्यंत योग्य समाजवाद देश को राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजी का दिया हुआ मंत्र है। उनके सूत्र का सार यह है कि – संपत्ति का एक ही स्थान पर केन्द्रीकृत नहीं होना चाहिए; उसी तरह अधिकार और बल भी एक ही स्थान में केंद्रीकृत न हों। सर्वांगीण प्रगति साधने के लिए हरेक व्यक्ति को संपूर्ण मौका मिलना चाहिए। उन्होंने पूछा कि वे जो दस अंश के कार्यक्रम का प्रचार कर रहे हैं, उसका अनुष्ठान क्या शासक दल ठीक ढंग से कर रहा है? उदाहरण के लिए गाँवों में जानवरों की विमा क्यों नहीं किया गया है? और पूछा कि बैंक राष्ट्रीकरण से क्या गरीबी का निवारण हो गया है? उन्होंने आरोप लगाया कि इंदिरागाँधी जी आकाशवाणी का उपयोग अपने व्यक्तिगत प्रचार के माध्यम के रूप में कर रही हैं। पूर्व राजाओं का मानधन रद्द करने से क्या समाजवाद के लिए उपयोग हुआ है? औषधियों के नियंत्रण से उनका दाम ज्यादा होने के कारण गरीबों को तकलीफ हुई है। उच्च न्यायपालिका धनिकों के साधन बन गए हैं; गरीबों को जिला न्यायालय तक जाना भी कठिन हो गया है। इस तरह भूसुधार क्या सच में ही सफल हुआ है? भूमालिकों ने कानून

को स्थगित कर दिया और अपनी जमीन को अपने बंधुओं में ही बाँटा लिया है; जमीन पर अपना हक बचाने के प्रयत्नों के कारण आंध्र और पंजाब में व्यापक रूप से विवाह विच्छेद होने के बारे में उन्होंने श्रोताओं का ध्यान खींचा। उत्पादन की कमी के कारण मुद्रा स्पीति बढ़ी है। उत्पादन करनेवाली जमीन अब उत्पादन का स्त्रोत नहीं है; उसके बदले रास्ते, शालाएँ और उद्योगों के निर्माण के कारण उत्पादन का प्रमाण कुंठित हो गया है। अतः आहारोत्पादन को बढाना चाहिए। कृषि की ओर अधिक ध्यान देना होगा। सिंचाई की सुविधा से बेरोजगारी की समस्या कम हो सकती है। पार्टी के कार्यकर्ताओं को इन सभी विषयों की ओर लोगों में समझ लानी है। पीछे की ओर देखे तो बैंक राष्ट्रीकरण और पूर्व राजाओं के मासाशन को रद्द करने के क्रम की आलोचना करने वाले विवेक के बारे में सवाल करना पड़ता है। जनप्रिय नीतियों की आलोचना करना छोड़कर निजलिंगप्पाजी अपने दूसरे विचारों को सभासदों के सामने रख सकते थे। कार्यकारिणी समिति के चुनाव में निजलिंगप्पाजी गुरुपादस्वामी जी का समर्थन करना चाहते थे। परंतु नागप्पा आव्वाजी की बात मानकर, तटस्थ रह गये। इसकारण श्री वीरेंद्र पाटीलजी विजयी हो गए।

आगामी दिसंबर में निजलिंगप्पाजी के 'जन्मदिन' समारोह का आचरण करने के लिए कर्नाटक भर में लोग तैयार हुए। उनके समर्थकों के लिए वह एक संभ्रमपूर्ण मौका था। चित्रदुर्ग के लोगों ने और उनके सहचरों ने उनके इकहत्तरवें जन्मदिन महोत्सव को बड़े पैमाने पर मनाया। 10 दिसंबर को जुलूस निकला उसमें एच्.डी. देवेगौड़ाजी, वीरेंद्र पाटीलजी और अन्य मित्रों ने भाग लिया था। सम्मान समारंभ के अध्यक्ष थे देवेगौड़ाजी। निजलिंगप्पाजी पर पुष्प वर्षा की गयी। उनके अनुयायी और समर्थकों ने एक बड़ी धन राशि उन्हें समर्पित की। उसे उन्होंने पी.सी.सी. कार्यालय को दे दिया। ''अधिकार में न रहने पर भी सज्जनों को लोग सम्मान देते हैं'' – इस बात के लिए यह समारोह निदर्शन था। परंतु लिंगायतों के एक समूह को और उनके मठाधीशों को निजलिंगप्पाजी के प्रति आसक्ति नहीं थी। राजनीति और धर्म को मिलाना निजलिंगप्पाजी को अच्छा नहीं लगता था। ऐसे स्वामियों और राजनीतिज्ञों के प्रशंसक बनना वे पसंद नहीं करते थे। ऐसे राजनीति से दूर कई स्वामीजी थे; उनमें से एक थे मल्लाडीहळ्ळी के राघवेंद्र स्वामीजी। उनके प्रति निजलिंगप्पाजी को असीम आदर भाव था। सार्वजनिक सेवा करनेवाले उस आश्रम के स्वामीजी की उन्होंने सहायता

की थी। अभी जो सरकार है, उसने आश्रम की सहायता करने से इनकार किया था। क्योंकि उसे मालूम हो गया था कि वह आश्रम निजलिंगप्पाजी का समर्थन करता है। उन सज्जन स्वामीजी की हत्या करने के भी प्रयत्न हुए थे। कर्नाटक की राजनैतिक परिस्थिति धीरे धीरे निजलिंगप्पाजी के विरुद्ध हो रही थी। नए मुख्यमंत्री देवराज अरसु जी ने 1973 में आरोप लगाया कि 'बिजापुर जिले की अकाल परिस्थिति के लिए पिछली कांग्रेस सरकार ही कारण है।' यह निजलिंगप्पाजी के शासन के विरुद्ध की गई आलोचना थी। इसकी तीक्ष्णरूप से प्रतिक्रिया करते हुए निजलिंगप्पाजी ने कहा कि 'अर्थात् देवराज अरसु जी ने हमारे मंत्रिमंडल में रहते हुए कुछ भी नहीं किया।' लेकिन अरसु जी बड़े कुशल राजनीतिज्ञ थे। आगे चलकर उन्होंने निजलिंगप्प्जी से कोई विवाद नहीं किया। निजलिंगप्पाजी का अभिप्राय था कि उनके द्वारा प्रारंभ की गई सिंचाई योजनाओं को यदि पूरा किया जाता तो बिजापुर की इस अकाल की हालत का निवारण हो सकता था। अकाल से संत्रस्त लोगों के बारे में अपेक्षा करनेवाली सरकार के विरुद्ध विरोध करने के लिए बिजापुर के लोगों ने निश्चय किया। 5 मार्च 1973 को बिजापुर में सत्याग्रह का उद्घाटन करने के लिए उन्होंने निजलिंगप्पाजी से बिनती की। 25 सत्याग्रहियों के साथ शामिल होने के लिए निजलिंगप्पाजी तैयार हुए। पूरे शहर ने 'हडताल' का आचरण किया। शहर की किसी भी दूकान के दरवाजें नहीं खुले। सत्याग्रहियों को कैद कर फिर उन्हें खाना देकर मुक्त किया गया। दूसरे दिन निजलिंगप्पाजी ने जिले के मुखियों से मिलकर परिहार कार्यों के बारे में सलाह दी। 6 मार्च 1973 को उन्होंने अकाल से दुःखी 'हूडी' तालूक में व्यापक भ्रमण किया; वहाँ की दुःस्थिति को देखकर वे भी दुःखी हुए। सभी खेत सूख गए थे। लोगों को खाने के लिए कुछ भी नहीं था। जानवर सूखकर दुर्बल हो गए थे। केंद्र सरकार ने महाराष्ट्र राज्य को जितनी सहायता दी उतनी कर्नाटक राज्य को नहीं दी। इसी समय प्रधानमंत्रीजी कर्नाटक आयीं। उनसे मिलने के लिए निजलिंगप्पाजी उत्सुक नहीं थे; किन्तु वीरेंद्र पाटील जी उनसे मिले। इस मुलाकात के बारे में पूछने पर निजलिंगप्पाजी विचलित हुए।

इसी समय मूलभूत अधिकारों के बारे में सुप्रीम कोर्ट में सुनवाई हो रही थी। न्यायालय ने संसद के पक्ष में निर्णय दिया। उसका निर्णय था कि "मूलभूत अधिकारों को कम करने या दबाने का अधिकार और संविधानात्मक बदलाव

करने का अधिकार संसद को है।'' अपने पक्ष में निर्णय पाकर इंदिरागाँधी जी और उनके अनुयायी बहुत खुश हुए। इंदिराजी की सरकार अपनी इच्छा के अनुसार चलनेवाले न्यायमूर्ति रॉयजी को, कर्नाटक के हेगडे जी को भी मिलाकर तीन वरिष्ठ न्यायाधीशों की वरिष्ठता की उपेक्षा करते हुए सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश बनाया। और इस तरह न्यायपालिका को अपने वश में रखने का प्रयत्न किया। उपेक्षित न्यायमूर्तियों ने स्वाभिमान के कारण इस्तीफा दे दिया। इससे निजलिंगप्पाजी दुःखी हो गए। उन्हें दिन ब दिन कांग्रेस (ओ) नेताओं के नैतिक स्थैर्य को कुंठित होते देखना पड़ा। फिर भी वे देश की सुभद्रता और हित के बारे में अपनी बद्धता से पीछे नहीं हटे। इसी समय निजलिंगप्पाजी के विचारों को पूर्णरूप से न माननेवाले अशोक मेहता जी सादिक अली जी के स्थान पर आ गए। जब भी मौका मिलता रामकृष्ण हेगडे जी देवेगौडाजी और वीरेंद्र पाटीलजी मेहता जी को फोन करते रहते थे कि ''निजलिंगप्पाजी का समय बीत चुका है यदि उनका अनुसरण करे तो अपना भविष्य अंधेरे में डूब जाएगा।'' वैसी विरोधी परिस्थिति में भी विचलित न होते हुए निजलिंगप्पाजी भ्रमण करते हुए लोगों से मिलकर उनकी समस्याओं के बारे में चर्चा करते हुए उन्हें तसल्ली देते रहते थे। वह एक अपूर्व संदर्भ रहा – परिशुद्ध नैतिक बल में कितना सामर्थ्य रखता है – इसका वह प्रतीक था। अधिकार या स्थान न होने पर भी लोग निजलिंगप्पाजी से मिलकर उनसे सलाह और आशीर्वाद पाते थे। इस प्रकार सामान्य लोग निजलिंगप्पाजी को स्फूर्ति की धारा मानते थे। परंतु पार्टी तो धीरे धीरे कमजोर हो रही थी। एक एक करके नेता उसे छोड़ना चाहते थे। उन्हें खबर मिली कि दोनों कांग्रेसों को इंदिरागाँधी जी के नेतृत्व में विलीन करने के प्रयत्न हो रहे हैं। कामराज जी और इंदिराजी की मुलाकात वीरेंद्र पाटील जी और कामराजजी और कृष्णमाचारीजी की बार बार मुलाकात के बारे में समाचार पाकर उनके मन में उपरोक्त भावना आई। जब निजलिंगप्पाजी कामराजजी से मिले तब यह संदेह बढ़ गया कि ये कांग्रेस (ओ) को विसर्जित करने की योजना बना रहे हैं। कांग्रेस (आइ) के साथ बिलीन होने के खतरे के बारे में कृपलानी जी और उनकी पत्नी ने सतर्क रहने को कहा। कामराज जी ने बेंगलूर में हुई कांग्रेस (ओ) कार्यकारिणी समिति की सभा में तर्क किया कि ''डी.एम्.के. और ए.आइ.डी.एम.के. पार्टियों का समर्थ रीति से सामना करने के लिए तमिलनाडु में कांग्रेस (ओ) की कांगै के साथ मैत्री करना अनिवार्य

है।'' इससे यह स्पष्ट हो गया कि तमिलनाडु से बाहर कामराज जी ने ध्यान नहीं दिया था। उनमें राष्ट्रीय दृष्टिकोण की कमी थी।

कामराज जी ने धमकी दी कि यदि उनकी सलाह नहीं मानते तो वे पार्टी छोड़ देंगे। डी.एम.के. और ए.आइ.डी.एम.के. जैसे प्रादेशिक पार्टियों की भ्रष्टता पर आगबबूला होनेवाले कामराज जी ने निजलिंगप्पाजी की दृष्टि में भ्रष्टाचार को जो राष्ट्रव्यापी समस्या के रूप में है उसे नहीं पहचाना था। अस्वस्थता के कारण निजलिंगप्पाजी 11 नवंबर 1973 को देहली में हुई कार्यकारिणी समिति की सभा में भाग नहीं ले सके। टंडनजी के इस्तीफा के बाद नेहरूजी के अध्यक्ष होने के दो वर्षों को छोड़कर 1948 से निरंतर कार्यकारिणी समिति के सदस्य के रूप में वे सभाओं में धार्मिक श्रद्धा के साथ भाग लेते थे। उन दो वर्षों में उन्हें कार्यकारिणी समिति से बाहर इसलिए किया था कि उत्तर कर्नाटक के कुछ ब्राह्मणों ने निजलिंगप्पाजी के बारे में नेहरूजी के मन में जहर घोला था। इस बीच कामराज जी इंदिरागाँधी जी से नवंबर 1973 में दूसरी बार मिलकर पांडीचेरी के चुनावों में उनके साथ चुनाव-मैत्री के बारे में बातचीत कर रहे थे। निजलिंगप्पाजी ने अपनी डायरी में लिखा है कि ''कामराजजी प्रदेशिक नेता मात्र थे वे तमिलनाडु के बाहर दृष्टि नहीं डाल सकते हैं।'' कामराजजी से मिलकर इंदिरागाँधी जी के नायकत्त्व को बल देने के लिए मनाने की संजीवरेड्डी जी की बात 19 नवंबर 1973 पत्रिका में पढ़कर निजलिंगप्पाजी बहुत ही क्रोधित हो गए। यह समाचार संजीवरेड्डी जी और उनकी राजनीति के बारे में निजलिंगप्पाजी की भावना के व्यतिरिक्त था। सारांश में कांग्रेस (ओ) के नायकत्व के कुंठित होने की खबर प्रतिदिन निजलिंगप्पाजी को पढ़ना पड़ा। इंदिरागाँधी जी से कामराज द्वारा कार्यकारिणी समिति के किए गए समझौते का अनेक कार्यकर्ताओं ने खंडन किया। निजलिंगप्पाजी ने सोचा कि सभी ने कामराजजी की प्रशंसा कर उन्हें ऊपर बिठाया है; और इस कारण उनकी विवेचनाशक्ति नष्ट हो गयी है। हम तो इंदिराजी के शत्रु नहीं हैं; परंतु दोनों कांग्रेसों को एक बनाने में आसक्ति नहीं है। हमारा खंडन, इंदिराजी के शासन के विरुद्ध नहीं, वह तो गलत निर्णय लेनेवाली कर्नाटक सरकार के विरुद्ध है - अपने शिष्य वीरेंद्र पाटीलजी की बातों को पढ़कर वे दुःखी हो गए। उस समय ऐसे आघात निजलिंगप्पाजी के लिए सामान्य हो गए थे। परंतु सबसे बडी मार थी कांग्रेस (ओ) के अध्यक्ष अशोक मेहता जी का, उन्हें 21 नवंबर 1973 को लिखा

पत्र। उसमें मेहताजी ने ''इंदिरागाँधी जी का धर्म निरपेक्षक प्रजासत्तात्मक पार्टी होने के कारण पांडीचेरी और कोयंबत्तूर के चुनावों का सामना करने के लिए उनसे कामराजजी की संधि का समर्थन किया था। अपने पार्टी के ऐसे कृत्य, बातें और प्रयत्न सभी निजलिंगप्पाजी के विश्वास के विरुद्ध थे। उनके अनुसार इंदिरागाँधीजी के सामने झुकने के बदले कांग्रेस (आइ) की भ्रष्टता और अनैतिकता का परदाफाश करना होगा तथा अपनी विश्वासर्हता को बढ़ा लेना चाहिए। उन्होंने अपनी डायरी में लिखा है कि ''कार्यकारिणी समिति में जाकर वहाँ अपने मन की सारी भावनाओं को बताकर, अपने जीवन की साँसों के समान अपनी पार्टी को छोड़ने का अत्यंत दुःखभरा क्षण आया है।'' उनके दुःख का घड़ा तब भर गया जब सी.बी. गुप्ताजी और एस.के. पाटीलजी ने कामराज के आत्मप्रशंसा करनेवाले समूह में शामिल होने का निर्धार ले लिया। कांग्रेस (ओ) वलयों में जबरदस्त अफवाह फैल रही थी कि कामराजजी ने इंदिरागाँधीजी से रहस्य संधि कर ली है। परंतु 6 अप्रैल 1974 को कांग्रेस (ओ) कार्यकारिणी समिति ने अपने निर्णय में बताया कि उनकी पार्टी को कांगै में विलीन नहीं होना चाहिए और उनकी तरफ सहायता का हाथ भी नहीं बढ़ाना चाहिए। तब निजलिंगप्पाजी ने सोचा कि शायद कामराजजी पार्टी से बाहर जायेंगे। वह तो नुकसान ही था। परंतु वैसे लोगों का पार्टी से बाहर जाना ही ठीक होगा। इसी बीच पक्षांतरों के द्वारा इंदिरागाँधीजी की पार्टी का बलिष्ठ होते जाना, उनकी म्लानता का कारण बना। यह पक्षांतर स्वातंत्र्योत्तर भारत में राजकीय संस्कृति का सहज विद्यमान बन गया है। पार्टी उलझन में पड़कर दिशाविहीन हुई थी तो और एक आघात हुआ।अपने अध्यक्ष स्थान को इस्तीफा देनेवाले अशोक मेहताजी का पत्र 11 मई 1974 को उन्हें प्राप्त हुआ। इस्तीफा देने के लिए उनका कारण था कि वे परिणामकारी रूप में कार्यनिर्वाह नहीं कर सकते थे। निजलिंगप्पाजी को लगा कि यह केवल पलायनवादी कार्य है। पार्टी के विद्यमान ही नहीं देश में यहाँ वहाँ होनेवाली घटनाएँ और उनके द्वारा उदभूत समस्याओं ने भी उन्हें निराशा की खाई में डाल दिया था। इंदिरागाँधीजी ने राज्यों की इन समस्याओं की ओर ध्यान दिलाया, परंतु घोषणाओं के अलावा उन्होंने कोई निवारण नहीं सुझाया। विरुद्ध मार्ग लेकर सारी जिम्मेदारी विरोधी दल पर डालने का उनका क्रम था। हर बार निजलिंगप्पाजी उनके विचारों का खंडन करते थे। उनके मित्र जे.एम्. इमामजी उनका अभिप्राय मानते थे; उन्होंने भी अल्पसंख्यकों और परिशिष्ट

जातिवालों का स्वहित के लिए शोषण करनेवाली इंदिरागाँधी जी के मार्ग की आलोचना की। उन्होंने बताया कि फक्रुद्दीन अली जी को राष्ट्रपति बनाने के उनके प्रयत्न के पीछे भी उनका यही मकसद है। निजलिंगप्पाजी ने अपनी डायरी में लिखा है कि उन्होंने जे.पी. से तर्क किया कि इंदिरागाँधीजी को अधिकार से उतारने के अपने प्रयत्न को इंदिराजी के सवालों का सामना करनेवाली एक नयी पार्टी के संघटन में बदलना चाहिए। परंतु वे विश्ववस्थ नहीं थे कि वैसे एक पार्टी का उदय होगा।

भारतीय गणराज्य के इतिहास में एक निर्णायक वर्ष था 1974। उस वर्ष तत्वनिष्ठ गाँधीवादी, जे.पी. जी इंदिरागाँधी जी के भ्रष्ट तथा अनैतिक शासन के विरुद्ध एक अहिंसात्मक आंदोलन को रूपित करने लगे। अकाल के कारण हालत जब बिगड गई और राजकीय भ्रष्टाचार गगन तक पहुँच गया तो उनके नेतृत्व के बिहार के युवा आंदोलन ने हिंसात्मक रूप ले लिया। सरकार की हिंसा से अधीर न होते हुए, छात्रपरिषद ने जे.पी. जी के नैतिकता से भरे नायकत्व में इंदिरागाँधीजी के शासन के विरुद्ध एक प्रबल आंदोलन चलाया। उनका आग्रह था कि संसद और शासनसभा को विसर्जित किया जाय। परंतु इंदिरागाँधीजी के सहकर्मी उनके मंत्रीमंडल के मंत्री सुब्रह्मण्यन जी और कांग्रेस (आइ) अध्यक्ष शंकरदयाल शर्मा जी ने जे.पी. आंदोलन को ''क्रांति विरोधी और प्रतिगामी आंदोलन'' कहा। परंतु सारा देश सरकार के विरुद्ध भड़क उठा; गुजरात में सरकारी यंत्र स्थगित हो गया। चित्रदुर्ग में निजलिंगप्पाजी के नेतृत्व के युवा कांग्रेस (ओ) के कार्यकर्ताओं ने 15 अप्रैल 1974 को सभा बुलाकर देश में बढ़ते हुए संकट के लिए जो एकमात्र निवारणोपाय है – जे.पी. आंदोलन कहकर उसे अपना समर्थन सूचित किया। उनके पुराने मित्र कामराजजी ने इनकी नीति के विरुद्ध पत्रिका में बताया कि ''देश के सामने के संकटों को दूर करने के लिए एकैक मार्ग है - जनता, इंदिराजी के समर्थन के लिए एक होकर खड़े हो जाय!''

निजलिंगप्पाजी के दूसरे मित्र एस.के. पाटील जी ने निजलिंगप्पाजी को पत्र लिखकर कामराज की प्रामाणिकता के बारे में सवाल किया। खुद निजलिंगप्पाजी ने बताया कि कामराजजी के कार्य उनकी अधिकार और मान-सम्मान की भूख को प्रकट करते हैं। देश की राजधानी देहली राजनीतिक तंत्रों और गुप्त संघर्षों का मैदान बन गया था। जब निजलिंगप्पाजी देहली गए तो

श्री जयप्रकाश नारायण के साथ डॉ. एस. निजलिंगप्पा जी

विविध राजकीय दलों के नायकों ने उनके साथ, देश की समस्याओं के बारे में चर्चा की। 30 सितंबर 1974 को राजनारायणजी और पीलू मोदीजी ने भारतीय लोकदल पार्टी में शामिल होने के लिए उनपर दबाव डाला। उन्होंने कहा कि ''यदि निजलिंगप्पाजी भी कर्नाटक के उनके सहचर - वीरेंद्र पाटील और रामकृष्ण हेगडे जी के साथ शामिल हो तो उसे अधिक बल मिलेगा।'' सी.बी. गुप्ताजी ने भी तर्क दिया कि कांग्रेस (ओ) बी.एल.डी. से मिल जाय। जे.पी. आन्दोलन जंगली आग जैसे चारों ओर फैल रहा था। पटना और देहली में आन्दोलन में भाग लेनेवालों पर पुलिस ने नृशंसता दिखाई। पुलिस ने जे.पी. जी पर भी प्रहार किया। इससे वे तीव्र रूप में घायल हो गए। परंतु सरकारी नियंत्रणवाले आकाशवाणी ने इसे समाचारों में नहीं बताया। जे.पी. जी और प्रधानमंत्री की बातचीत के असफल होने के कारण, आंदोलन तीव्ररूप से आगे बढ़ा। क्रूरतापूर्ण 'मीसा' का आराम से प्रयोग कर आंदोलन को दबाने में सरकार हिचकिचाई नहीं। इस कानून से कैद हुए कोई भी हो न्यायालय नहीं जा सकता था। इस कानून से किसी भी कारण के बिना, किसी को भी कैदकर सकते थे। परंतु इन कार्याचरणों से आंदोलन और भी तीव्र हो गए। 5 मार्च 1975 को 'देहली बंद' का आचरण हुआ। साक्षात् जे.पी. जी के नेतृत्त्व में सरकार के विरुद्ध, एक अहिंसात्मक प्रदर्शन हुआ। इंदिराजी के दाहिने हाथ जैसे साथी चौव्हान जी ने जे.पी. आंदोलन का खुले रूप से खंडन किया और कहा कि 'यह एक राजकीय अवकाशवादियों का कृत्य है।' 6 मार्च 1975 को सरकार के विरुद्ध जुलूस निकले और सार्वजनिक सभाएँ निरातंक रूप से हुईं।

जे.पी. जी ने देशभर यात्रा करते हुए, जनता में राजकीय जागृति लाने का कार्य किया और आंदोलन के लिए निधि संग्रह किया। निजलिंगप्पाजी ने भी निधि संग्रह किया। 5 मई 1975 को जब जे.पी. जी दावणगेरे आए तो उन्हें निधि समर्पित की। 12 जून, 1975 को इंदिरा गाँधीजी को एक बड़ा आघात पहुँचा। उनकी चुनाव की विजय को इलहाबाद उच्च न्यायालय ने रद्द करने का निर्णय दे दिया। जे.पी. जी के नेतृत्त्व में विरोधी दलों ने इस निर्णय के अनुसार अधिकार से उतरने के लिए इंदिराजी पर दबाव डाला। परंतु, असली या नकली पता नहीं – श्रमिकों, रिक्षावालों, छोटे व्यापारियों और आसपास के गाँवों के लोगों के बड़े समूह ने इंदिराजी के समर्थन में घोषणायें कीं। इंदिरागाँधीजी ने अर्जी देकर सर्वोच्च न्यायालय से, निर्णय को 'रोक-आदेश' प्राप्त की। जे.पी.

जी, मोरारजी और कृपालानी जैसे वरिष्ठ नेताओं ने बताया कि इंदिराजी का अधिकार में आगे बढ़ना उनकी नैतिकता के दिवालापन का द्योतक ही है। निजलिंगप्पाजी ने भी ''इंदिराजी का व्यवहार केवल वैयक्तिक अधिकार की भूख और दुराशा की अभिव्यक्ति ही है'' – कहकर कड़ी आलोचना की। परंतु अपने क्रूर बहुमत के कारण इंदिराजी ने अपने अधिकार को आगे बढ़ाने के लिए संसद में निर्णय का मंडन करते हुए न्यायपालिका के निर्णय का सामना किया। इसका वर्णन करते हुए, निजलिंगप्पाजी ने ''पूरे मानवेतिहास में ही यह एक राजनैतिक पाप'' कहा।

इलाहाबाद के निर्णय के बाद, इंदिराजी के चारों ओर एक शक्तिशाली गुट का निर्माण हुआ। उसमें उनका दूसरा पुत्र – संजयगाँधी, सिद्धार्थ शंकरराय, बन्सीलाल, आर. के. धवन और भी कई लोग थे। उन्होंने इंदिराजी की राजनीति और शासन की जिम्मेदारी ले ली। इंदिराजी को केंद्र में रखकर, एक प्रबल व्यक्ति-पंथ का निर्माण ही उनका उद्देश्य था। हर शहर में उन्होंने इंदिरा पर जुलूस और प्रदर्शनी की व्यवस्था की। अब स्पष्ट होता है कि देश में 'एमर्जेन्सी' लाने के लिए वे रहस्य रीति से तैयार हो रहे थे।

इंदिराजी के 'यंग टर्क' के सहचर, चन्द्रशेखर और मोहनधारिया को भी उन्होंने इससे दूर रखा। इसी बीच उनके प्रमुख राजकीय विरोधी जे.पी.जी, लोकसंघर्ष समिति के नाम पर सभी विरोधपक्षों को एक करने में यशस्वी हो गए। इंदिरागाँधीजी के निरंकुश प्रभुत्व के विरुद्ध 29 जून, 1975 से देशभर में अहिंसात्मक आंदोलन प्रारंभ करने के लिए यह मैत्रिकूट तैयार हो रहा था। 'प्रार्थनापत्र' में बिनती की गई थी कि ''नैतिकमूल्यों की पुनःस्थापना, असली जनपरक सरकार की स्थापना और जे.पी.जी की संपूर्ण क्रांति को साकार करने के लिए जेल जाने के लिए भी लोग तैयार हो गये। पुलिस और सेनाओं से बिनती की थी कि कानून विरोधी और संविधान विरोधी आज्ञाओं का धिक्कार करे।'' सारांश में यह इंदिरागाँधीजी के अधिकार के विरुद्ध युद्ध की घोषणा हो गई। परंतु, सोचा था कि यह संघर्ष अहिंसात्मक रूप से और नैतिक दृष्टि से गाँधीमार्ग का होगा। इंदिराजी को विश्वास हुआ कि ऐसे व्यापक और जनसमर्थित आंदोलन को दबाने के लिए एमर्जेन्सी के अलावा कोई और उपाय उपयुक्त नहीं होगा। 25 जून, 1975 को रात के 11-45 का समय प्रायः पूरे देश के

इतिहास में ही अत्यंत अंधतम दिन था। राष्ट्रपति फकरुद्दीन अली अहमद जी ने इंदिरागाँधीजी और सिद्धार्थशंकरराय जी के सामने आपतकाल के घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किया। एमजेन्सी लागू करने के बारे में किसी भी मंत्रिमंडल-सभा में निर्णय नहीं लिया गया था। स्वयं गृहमंत्री भी उसे नहीं जानते थे। अगले दिन 26 जून, 1975 के सबेरे 6 बजे मोरारजी देसाई जी और दूसरे विरोधी पक्ष के नेताओं को गिरफतार कर लिया गया। जल्दी जल्दी में भयानक कानून की माला ही बनाई गई। अस्थायी रूप में ही क्यों न हो, सभी अधिकार प्रधानमंत्री के हाथों में केंद्रीकृत होने की राजनीतिक व्यवस्था निरंकुशाधिकार में बदल गयी। सार्वजनिक सभा, हड़ताल, स्वतंत्र पत्रिका संबंधी कार्य, भागशः मुक्त माध्यम – सभी प्रजासत्तात्मक संस्थाएँ और कार्यक्रम रातों रात, अदृश्य हो गए। जनता, सरकार और अधिकारशाही की कृपा पर निर्भर रही। अधिकारियों का भ्रष्टाचार और स्वजनपक्षपात बढ़ गए।

चौव्हान और जगजीवनराम जैसे अधिकारदाही राजनीतिज्ञ इंदिराजी के चरणों पर सेवकों के समान पड़ने लगे। निरंकुशाधिकार का विरोध करते हुए अनगिनत लोग जैल गए। सभी मंत्री और उनके पिछलग्गे अधिकारियों पर नियंत्रण न रहा। इस तरह भारत संविधान के चिथड़े हो गए थे। एमर्जेन्सी का समर्थन करनेवाला एकैक विदेश था सोवियत देश। उसका कारण सुविदित था। परंतु पश्चिम राष्ट्रों ने सुविदित कारणों से एमर्जेन्सी का विरोध किया। देश पर वास्तव में शासन कर रहे थे – पारे का और गैर जिम्मेदार व्यक्तित्त्व संजयगाँधी के, आसपास के, परमाधिकारवाले गुट के सदस्य। आपत्काल की घोषणा से कुछ महिने पहले से ही निजलिंगप्पाजी का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। उनकी दोनों आँखों की शस्त्रचिकित्सा हुई थी; वे बहुत ही दुर्बल हो गए थे। फिर भी वे जेल जाने के लिए तैयार थे। किसी भी क्षण गिरफतार होने की निरीक्षा में थे; उनके जेलवास से परिचित उनकी पत्नी भी उस तैयारी में मदद दे रही थीं। एमर्जेन्सी के बारे में चर्चा करने के लिए मदरास में होनेवाली कांग्रेस (ओ) कार्यकारी समिति की सभा वास्तव में देहली में 30 अगस्त 1975 को हुई। उस सभा में कामराजजी की अनुपस्थिति से सभी चकित थे। इंदिराजी के शासन का सामना करने के लिए निजलिंगप्पाजी ने लोगों से कहा। उस शासन को उन्होंने कौमवाद, कम्युनिसं, फ्यासिसं और नकली प्रजातंत्र का मिश्रण कहा। उसके विरुद्ध, गाँधीजी के नामपर संघर्ष करने के लिए कहा। परंतु वैद्यों की सलाह के कारण वे स्वयं
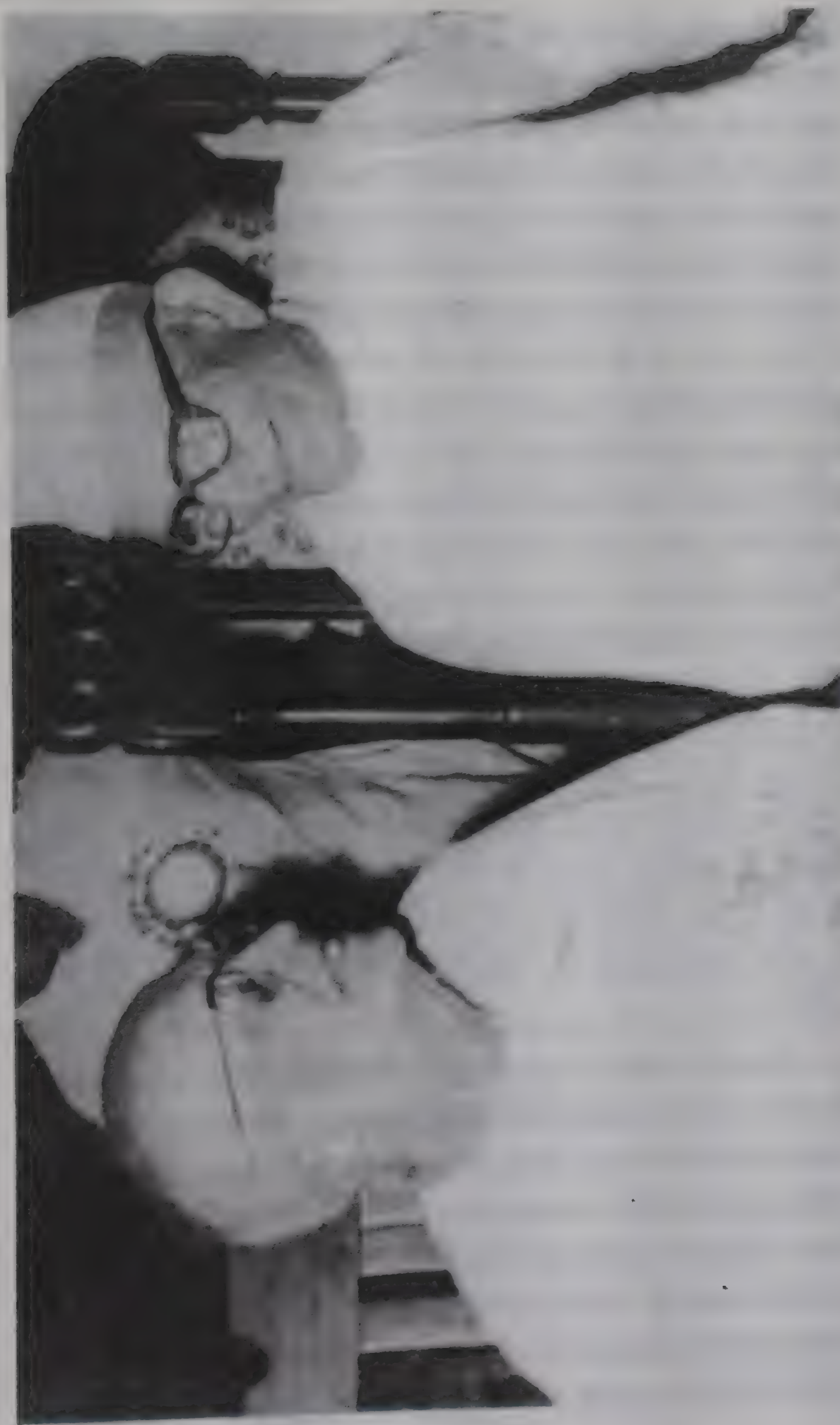
पूर्व प्रधान मंत्री मोरारजी देसायी के साथ डॉ. एस. निजलिंगप्पा जी

एमर्जेन्सी के विरुद्ध उस संघर्ष में भाग नहीं ले सके। इससे उन्हें बहुत बुरा लगा। 17 मार्च 1976 को पत्रिकागोष्ठी में उन्होंने अपनी कृति पर बद्धता को स्पष्ट किया था। शहर के उत्पन्नों के महंगे होने और उससे महंगाई के बढ़ने और दूसरी ओर आहारधान्य जैसे कृषि उत्पन्नों का दाम कम होने की इस व्यवस्था का खंडन किया। शहर-गाँव तथा उद्योग और कृषि निगम के बीच के स्वस्थ संतुलन के लिए उन्होंने तर्क किया। गिरते स्वास्थ की हालत में भी वे देश की राजनीति में आसक्ति बढ़ाते हुए उसमें परोक्ष रीति से भाग लेते रहे। कोच्ची में 13 जून 1976 को हुई कांग्रेस (ओ) की कार्यकर्ताओं की सभा में भाषण देते हुए उन्होंने सर्वाधिकार का प्रतिरोध करने के लिए नए पार्टी की रचना अथवा प्रस्तुत शासन के विरोधी दलों से मैत्री कर लेने की सलाह दी। इंदिराजी के व्यक्तित्व तथा निरंकुश शासन के विरुद्ध जनता आंदोलन के लिए सलाह दी। उनके अपने राज्य कर्नाटक में ही पी.सी.सी (ओ) अध्यक्ष वीरेंद्र पाटील जी भी इस हालत के बारे में कुछ नहीं कर रहे थे। क्रोध से निजलिंगप्पाजी ने वीरेंद्र पाटील जी को इस्तीफा देने के लिए आग्रह किया। श्री रामरेड्डी, श्री के.एस. हेगडे, श्री गुरुपादस्वामी और श्री लक्ष्मीसागर जैसे साथियों को लेकर राज्य भर में घूमते हुए एमर्जेन्सी के कानूनों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए लोगों को प्रेरित कर रहे थे। 2 अक्तूबर 1976 गाँधी जयंती के दिन आचार्य कृपालानीजी जैसे वरिष्ठ नेता ने 'राजघाट' जाकर गौरवार्पण करते हुए घोषणा की कि ''प्रस्तुत में भारत की जनता के स्वातंत्र्य को नष्ट किया गया है।'' उसी दिन कामराजजी की मृत्यु हो गई। अंत्येष्टि क्रिया संदर्भ में इंदिरागाँधीजी ने कहा कि कामराजजी की अंतिम इच्छा यह थी कि ''मेरे अपने नायकत्व में कांग्रेसों को एक होना चाहिए।''

इंदिराजी ने संसद के चुनावों का विलंबन किया। इसका कारण यह था कि अपने अनियंत्रित बेटे की नीति में शामिल होकर, अपना स्थान सुदृढ़ कर लेना था। इसी बीच जे.पी. जी का स्वास्थ्य बहुत ही गिर गया। संदेह हुआ कि उनकी मृत्यु हो जायेगी; अस्वस्थ लोकनायक को सरकार ने बंदन से मुक्त किया। उसका कारण उनके बारे में चिंता न होकर, यह दिखाना था कि ''सरकार मानवीयता रखती है''। सरकार जानती थी कि जे.पी. मृत्यु के कगार पर थे। इसलिए सरकार की चिंता यह थी कि यदि वे जेल में मर जायेंगे तो सरकार मुश्किल में पड़ेगी। इसलिए जेल के बाहर ही उन्हें मृत्यु का शिकार बनाया।

12 नवंबर 1976 को तात्कालिक रूप से जब उन्हें मुक्त किया गया तो जे.पी. जी ने लोगों के चेहरे पर अपनी मृत्यु का भय देखा। दो महिनों बाद मोरारजी इत्यादि बाकी नेताओं को भी मुक्त किया गया। कानून मंत्री गोखले जी ने संसद में घोषणा की कि एमर्जेन्सी को एक वर्ष तक आगे बढ़ाया गया है। निजलिंगप्पाजी को लगा कि इस संदिग्ध परिस्थिति में ही समानमनस्क सारे गुट शामिल होकर, इंदिरागाँधीजी के बुरे शासन का प्रतिरोध करने के लिए यह अच्छा समय है। श्री तिम्मेगौडा और श्री देवेगौडा जैसे उनके कर्नाटक के साथियों ने भी यही सोचा।

टालस्टाय के "War & peace" (वॉर अंड पीस) को तीसरी बार पढ़ते हुए निजलिंगप्पाजी को लगा कि "जगत का अत्यंत बड़ा प्रजातंत्र भारत आज एक विशाल जेल बन गया है; इंदिराजी की राजनीतिक आकांक्षाओं तथा कुतंत्रों की कठपुतली बन गया है; शायद, यह सब अपने उत्तराधिकारी के रूप में अपने पुत्र संजयगाँधी को प्रतिष्ठापित करने का जाल है" इसे उन्होंने अपनी डायरी में लिखा। राज्यभर भ्रमण करते हुए वे इंदिरागाँधीजी के गैर कानूनी और अनैतिक शासन के विरुद्ध लड़ने के लिए लोगों को प्रेरणा देते चले।

"भारत में क्या कभी प्रजासत्तात्मक शासन और मुक्त समाज फिर से आएगा?" इस विचार से कातर निजलिंगप्पाजी को आश्चर्यचकित करते हुए कि 1977 ईसवी का प्रारंभ हुआ। उद्देश्य कुछ भी हो, इंदिराजी ने अपने अनिर्धारित आकाशवाणी भाषण में घोषणा की कि लोकसभा के लिए चुनाव होंगे। इससे और अधिक आश्चर्य होने का कारण था कि अभी कानूनबद्ध रूप से प्रस्तुत संसद एक वर्ष तक आगे चल सकता था। एमर्जेन्सी तुरंत रद्द हुआ नहीं। क्रमशः 18 जनवरी 1977 को पांचवीं लोकसभा का राष्ट्रपति फकरुद्दीन अली जी ने विसर्जन किया। 18 जनवरी 1977 को पत्रिका सेन्सरशिप को निकाल देना, विरोधी पक्षों को सीमित स्वातंत्र्य देना इत्यादियों के द्वारा एमर्जेन्सी के नियमों को ढीला कर दिया गया। जनवरी 1977 अंत तक "सीमा" (आंतरिक सुरक्षता निर्वहण विधि) के अंतर्गत कैद अनेक राजकीय बंदियों को मुक्त किया गया। 23 जनवरी 1977 को एक राजनीतिक चमत्कार हुआ। बहुमुख्य विरोध पक्षों – पुराना कांग्रेस (ओ), भारतीय लोकदल (बी.एल.डी.), जनसंघ और समाजवादी पार्टी के मिले जुले नए जनता पार्टी का जयप्रकाश नाराणयजी ने नई दिल्ली में उदघायन किया। उसके अध्यक्ष बने मोरारजी और चरणसिंहजी

उपाध्यक्ष बने। इसके तीन प्रधान सचिव थे – एल.के. अदवानी (जनसंघ), सुरेन्द्रमोहन (समाजवादी पार्टी) और रांधन (पुराना कांग्रेस)। पक्ष ने 27 लोगों की राष्ट्रीय समिति की रचना की; वह पक्ष की शासन मंडल के रूप में चुनावतंत्र को रूपित करेगा और उसके कार्यनिर्वाह जैसे कार्यों का निर्वाह करेगा। निजलिंगप्पाजी पक्ष रचना में विनम्रता से पीछे ही रहे; फिर भी यह स्पष्ट था कि कांग्रेस (ओ) के मुख्य नेता के रूप में, उसके नए पक्ष के विलीन होने में वे अवश्य सहायक रहे होंगे। परंतु, पक्ष के 27 लोगों की राष्ट्रीय मंडल में उनका नाम न रहा – यह देखकर अन्याय लगता है। स्वयं की इच्छा के कारण ही उनका नाम न होने की संभावना है। 1977 में नाटकीय वेग से घटनायें हो रही थीं। 11 फरवरी को अपनी 72 वीं आयु में राष्ट्रपति अहमद जी का निधन हो गया। तब उपराष्ट्रपति डॉ. बी.डी. जत्ती जी संविधानक पद्धति से राष्ट्रपति बन गए। कुछ ही दिन पहले, 2 फरवरी को जगजीवनराम जी मंत्रि मंडल और पार्टी से बाहर आकर ''प्रजातंत्र के लिए कांग्रेस'' (सी.एफ.डी) नाम से नए पक्ष की स्थापना की तो यह इंदिरागाँधीजी पर भारी आघात था। छठी लोकसभा के लिए 16 मार्च 1977 से 20 के बीच की अवधि में चुनाव हुए। परिणाम इंदिरागाँधीजी तथा एमर्जेन्सी का निश्चित रूप से तिरस्कार करने जैसा था। उनका कांग्रेस (आइ) - जो अब एक ही था केवल 34.54% मत प्राप्त कर सका; यह तो पूरे इतिहास में ही सबसे कम है। जनता दल को थोडा बहुमत मिला। 539 सदस्यों के सदन में उसे 270 स्थान मिले; परंतु उसे दोनों कम्युनिस्टपक्षों का (कुल 29 स्थानों) और सी.एफ.डी. (28 स्थानों) का समर्थन था। कांग्रेस की तो बुरी तरह से हार हुई थी, परंतु निरीक्षा तक नहीं। उन्हें मिले थे 59 स्थान जो नगण्य नहीं था। परंतु उसकी हार गुणात्मक रही। क्योंकि, इंदिराजी स्वयं 77,375 मतों के अंतर से बुरी तरह से हार गईं। उनका पुत्र संजयगाँधी और मंत्रि मंडल के 34 सचिव हार गए थे। इस तरह हमारे गाँवों की निरक्षरस्थ जनता द्वारा बहुमत से निरंकुश राजकीय शासन का और शासकों के समूह का तिरस्कृत होने में संशय ही नहीं था। इंदिरागाँधीजी की सरकार ने 22 मार्च 1977 को इस्तीफा दे दी। नई लोकसभा 23 मार्च को कानूनबद्ध रीति से प्रारंभ हुई। 21 मार्च को ही कार्यकारी अध्यक्ष डॉ बी.डी. जत्ती जी ने एमर्जेन्सी को कानूनात्मक रीति से रद्द कर दिया। 24 मार्च 1977 को मोरारजी प्रधान मंत्री बन गए। चौव्हान जी विरोध पक्ष के नायक बने। जनता दल के

शासन का विवरण देने की आवश्यकता नहीं लगती। परंतु इतना ही कह सकते हैं कि वह पार्टी अपने को अधिकार दिलानेवाली जनता की आशाओं को साकार करने में सफल नहीं हुई। विरोध पक्ष के शासन के 9 राज्यों में राष्ट्रपति शासन लाने का विवादात्मक राजनीतिक व्यवहार दिखाई दिया। 25 जुलाई 1977 को संजीवरेड्डी जी राष्ट्रपति चुने गए और उन्होंने लोकसभा अध्यक्ष स्थान को छोड़ दिया। उस पद के लिए कर्नाटक के श्री के.एस. हेगडे जी चुने गए।

निजलिंगप्पाजी राजकीयवृत्त में न दिखाई देने पर भी इसका मतलब यह नहीं था कि वे लोगों के बीच रहकर, उनके लिए काम करने की राजनीति से दूर थे। जनता पक्ष के वरिष्ठ नेता के रूप में वे हमेशा केंद्र सरकार को सलाह देते रहते थे। इसका एक उदाहरण है – कृपलानी और आइ.के. गुजराल जी की सूचना के अनुसार यू.एस.एस.आर. के साथ सहकारी और स्नेहपूर्ण विचार रखने के लिए उन्होंने 20 नवंबर 1977 को मोरारजी को सलाह दी। उनके कुछ मित्रों ने जब उनसे पूछा कि, ''प्रधानमंत्री के रूप में क्या मोरारजी के कार्यनिर्वहण ने आपको तृप्ति दी है?'' तो निजलिंगप्पाजी का सीधा जवाब था – ''वे तो ठीक है किन्तु राजनीतिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो, जगजीवनराम का चुनाव इनसे बेहतर था।'' जगजीवनराम जी को वैयक्तिक रूप से पसंद न करने पर भी, उनके सामर्थ्य को पहचानते थे। नई सरकार की बुरी रीति यह थी कि निजलिंगप्पाजी के साथ उसका व्यवहार! उदाहरण के लिए 17 अप्रैल 1977 को चित्रदुर्ग में जब थे तो मोरारजी ने निजलिंगप्पाजी को दूरभाषा से पूछा कि ''क्या वे किसी भी राज्यपाल का पद स्वीकार करने को तैयार हैं?'' इसमें एकैक तृप्तिकर अंश था कि श्री मोरारजी में निजलिंगप्पाजी के लिए यह स्थान छोटा होने की झिझक! और उन्होंने कहा था कि कुछ मित्रों की सूचना के कारण पूछ रहे हैं! क्षणभर भी न हिचकते हुए निजलिंगप्पाजी ने इस आमंत्रण का तिरस्कार करते हुए सलाह दी कि वे श्री सादिक अलीजी और श्री नागप्पा आळ्वाजी से पूछ सकते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि उन्हें किसी भी स्थान की आकांशा नहीं हैं। उसी कारण से उन्होंने नए रूप से रचित जनता दल के अध्यक्ष पद का भी निराकरण किया। उनके न कहने के बाद ही उस स्थान के लिए चंद्रशेखर जी चुने गए। निजलिंगप्पाजी जब नए राजनैतिक पद पर जाना चाहते थे और वह स्थान था – सभी अधिकार और पदों को छोड़कर सच्ची गाँधी शैली में सामान्य जनता के नेता बनकर कार्य करना! उनका ध्येय था

जनसेवा करना! इसी उद्देश्य ने ही उन्हें सांप्रदायिक राजनीतिक संगठनों में कार्य करने को प्रेरित किया। इसतरह कार्यनिर्वहण में उन्हें फुरसत नहीं रही अंतर केवल उसके स्वरूप में था। पांडिचेरी और तमिलनाडु के चुनावों में पक्ष के निरीक्षक के रूप में कार्य निभाने के लिए उनसे पूछा गया तो पक्ष के एक विनम्र कार्यकर्ता के रूप में उसे उन्होंने मान लिया। उसके बाद अपने रिपोर्ट में चुनाव की असफलता का विवरण देते हुए, उन्होंने परिणाम को उत्तम बनाने की सलाह दी।

कर्नाटक में सार्वजनिक और राजकीय जीवन में घुसे भ्रष्टाचार के प्रमाण को देखकर निजलिंगप्पाजी घबरा गए। राज्य में कांगे सरकार में राजकीय और प्रशासनिक दोनों में रिश्वत परमावधि को पहुँच चुकी थी। इसे न सहते हुए उन्होंने केंद्र सरकार को पत्र लिखकर बताया कि अरसु और उनके सहकर्मियों के भ्रष्टाचार के बारे में जाँच करने के लिए एक समिति की रचना करें। अपनी सरकार के विरुद्ध केंद्र सरकार द्वारा एक जाँच आयोग की रचना की सूचना पाते ही, अरसुजी ने न्यायमूर्ति इकबाल हुसैन जी के 'एकव्यक्ति आयोग' की रचना स्वयं करने की घोषणा की। परंतु उन्होंने इस आयोग की व्याप्ति में पहले की निजलिंगप्पाजी तथा वीरेंद्र पाटील जी की अवधि को शामिल किया। परंतु हुसैन आयोग की रचना को कर्नाटक उच्च न्यायालय ने रद्द कर दिया। परंतु केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त न्यायमूर्ति ग्रोवर आयोग के बारे में सर्वोच्च न्यायालय में सवाल की गई, अर्जी को न्यायालय ने रद्द करते हुए 8 नवंबर 1977 के नियुक्ति के पक्ष में निर्णय दिया। 21 मई 1977 को केंद्र गृहमंत्री को पत्र लिखकर उन्होंने बताया कि कर्नाटक के राज्यपाल को वापस बुला ले और अरसु सरकार को उतार दे। ग्रोवर आयोग को नियुक्त करते हुए केंद्र ने इसे माना था। पिछले शासन के समय के भ्रष्टाचारों के विरुद्ध एक आयोग की रचना कर, गुनहगारों को सजा देते हुए जनता पक्ष, चुनाव के समय जनता को दिए गए वचन की रक्षा करने के लिए अपने मित्र एस.के. पाटीलजी को पत्र लिखा। उसके जवाब में पाटील जी ने विषाद व्यक्त किया था कि जनता सरकार ने उनकी उपेक्षा की है। परंतु निजलिंगप्पाजी ने अपनी सहज निर्भावुकता से एक और पत्र लिखकर, विवरण दिया कि "वे जनता सरकार के बारे में, सिर नहीं खपायेंगे; पढ़ाई, बागबानी, बच्चों के साथ खेलना – इसप्रकार राजकीयरहित प्रशांत जीवन में समय बिताना ही उन्हें अच्छा लगता है।" फिर भी, सार्वजनिक जीवन से दूर

रहने के लिए निजलिंगप्पाजी की बद्धता ने उन्हें मौका नहीं दिया था। उसमें भाग लेने का स्वरूप बदला होगा। परंतु उससे दूर रहने का राजकीय तथा नैतिक मनोभाव, उनका नहीं था। अपने जवाब में, उन्होंने बताया कि, जनता शासन ने, उनका मोह भंगकर दिया है; अब वे शुद्ध खासगी जीवन में वापस आए हैं। सार्वजनिक जीवन से विमुख होने पर भी उन्होंने मोरारजी को पत्र लिखकर, सूचना दी कि ''एस के पाटील और मेहताजी के उनकी देश सेवा पर ध्यान देते हुए उन्हें अमरीका और रूस देश के राजदूत बनाकर भेज दे।

इस बीच, श्री फक्रूद्दीन अली अहमदली की मृत्यु से, खाली हुए, राष्ट्रपति स्थान पर आने के लिए बिर्लाजी और गोयेंकाजी और मित्रों ने निजलिंगप्पाजी से कहा एक क्षण के लिए उस स्थान से आकर्षित हुए, परंतु तत्क्षण उस विचार को मनसे, हटाकर सोचा कि ''इंदिरागांधी जी के साथ मित्रता करते हुए, यदि अपने तत्वों को तिलांजली दे देते तो, बहुत पहले ही वे राष्ट्रपति हो सकते थे!'' आर. पी. गोयेंकाजी के पोते के विवाह में भाग लेकर, कोलकोता से वापस आते हुए, देहली में, उनके मित्र एस. एन. सिंहाजी, नागप्पा आळ्वाजी और गुरुपादस्वामीजी ने कहा कि मौका दिया जाय तो वे निजलिंगप्पाजी को राष्ट्रपति बनाने में परिश्रम करेंगे। पहले राष्ट्रपति बननेवाले संजीवरेड्डीजी अन्याय से जो उसके वंचित हुए थे, संजीवरेड्डी जी को समर्थन देने के लिए वे तैयार थे! तब तक इस स्थान के लिए संजीवरेड्डीजी जल्दी जल्दी काम कर रहे थे। उसे जानकर निजलिंगप्पाजी ने उनसे कहा कि वे उन्हीं का समर्थन करेंगे। लेकिन मोरारजी को रेड्डीजी के बारे में अच्छा अभिप्राय नहीं था; उन्हें वे अपने काम में, बाधा ही समझने थे। जब गुरुपादस्वामी आदि ने मोरारजी से कहा कि निजलिंगप्पाजी का इस स्थान के लिए क्यों गणना न करे, तो उन्होंने बताया कि निजलिंगप्पाजी ने ही रेड्डीजी का नाम सूचित किया था; इतना ही नहीं कि उनके निर्धार अचल होते हैं। परंतु निजलिंगप्पाजी के एक मित्र ने कुछ और ही कहा ''मोरारजी ने, समझाया था कि एक लिंगायत व्यक्ति जब नं-2 ओंहदे पर हैं, तो नं-1 स्थान को भी लिंगायत व्यक्ति को देना उतना ठीक नहीं होगा। इस कारण से राष्ट्रपति के स्थान के लिए निजलिंगप्पाजी के नाम का तिरस्कार करना पड़ा।'' इस जाति-पंथ के उल्लेख को सुनकर निजलिंगप्पाजी को हँसी आ गई। इससे वे जान गए कि उनका राष्ट्रपति होना मोरारजी को पसंद नहीं है। सभी पक्षों द्वारा एकमत के अभ्यर्थी के रूप में चुने गए संजीवरेड्डीजी ने

प्रामाणिकता से कहा कि निजलिंगप्पाजी के लिए योग्य स्थान पर उनका जाना, उनका सौभाग्य ही है। निजलिंगप्पाजी के राष्ट्रपति न होने पर उनके मित्र एस.के. पाटीलजी को अत्यंत निराशा हुई। उन्हें जनता पक्ष के बारे में भी निराशा रही। उसका कारण था कि एक ही नीति को अपनाने का मौका न देनेवाले अनेक हताश गुट उसमें शामिल हो गए थे। साथ ही उसमें कांग्रेस (ओ) का प्रभाव भी कम होता जा रहा था और जनसंघ का प्रभाव बढ़ रहा था। एक.के. पाटीलजी ने निजलिंगप्पाजी को सलाह दी कि पी.सी. सेन, एस.एन. सिन्हा और सी.बी. गुप्ताजी और मित्रों के साथ मिलकर इसके पर्याय के बारे में सोचे। परंतु निजलिंगप्पाजी ने उनसे कहा कि जनता पक्ष को विविध गुटों के बीच, सामरस्य साधने के लिए थोडा समय लगेगा, इसलिए कुछ समय तक चुप रहे। एस.के. पाटीलजी को सलाह दी कि उनके जैसे वरिष्ठ नायकों का कर्तव्य, सही मार्गदर्शन देना होता है। 12 जुलाई 1977 को पाटीलजी ने अपना भिन्नाभिप्राय सूचित कर, निजलिंगप्पाजी को पत्र लिखते हुए तर्क किए कि कुछ क्षिप्र क्रम लेना चाहिए। उन्होंने सूचित किया कि जनसंघ और बि.एल.डी. के कब्जे से पक्ष को मुक्त होना चाहिए। क्योंकि, आयु के बढ़ते जाने के कारण वे इन्तजार नहीं कर सकते हैं। परंतु निजलिंगप्पाजी को इस दैनंदिन राजनीति में आसक्ति कम होती जा रही थी।

निजलिंगप्पाजी ने देखा कि कर्नाटक में जनता पार्टी की हालत अच्छी नहीं थी। लोगों के साथ उसका संपर्क ही नहीं रहा। उन्हें राज्य जनता पक्ष के अध्यक्ष वीरेंद्र पाटील के बारे में विशेष असंतोष था। परंतु उत्तर कर्नाटक के कई लिंगायत समूहों ने उनसे मिलकर वीरेंद्र पाटील जी को जनता पार्टी के अध्यक्ष के रूप में आगे बढ़ाने के लिए बिनती की। पाटीलजी को मंत्रिमंडल में स्थान दिलाने के लिए उन्होंने एक पर्याय को भी सूचित किया। निजलिंगप्पाजी जानते थे कि रामकृष्ण हेगडे जी वीरेंद्र पाटीलजी के साथ भुजा से भुजा मिलाकर काम करते हैं। परंतु अपने पिछले विरोधियों को भी अपना साथ देने के जैसे करने का पाटील जी का कौशल देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। फिर भी वीरेंद्र पाटीलजी को जनता पक्ष के अध्यक्ष स्थान से निकाल देने के अपने निर्णय के बारे में उन्हें कोई संदेह नहीं था। उन्होंने पीलू मोदीजी को पत्र लिखकर यह स्पष्ट कर दिया कि राज्य का जनता पार्टी वीरेंद्र पाटीलजी, रामकृष्ण हेगडेजी और देवेगौडजी के कारण नष्ट होता जा रहा है। उसमें यह भी लिखा कि

पिछले तीन वर्षों से अध्यक्ष पद को छोड़ने की बात करनेवाले पाटीलजी अभी तक वैसा नहीं कर रहे हैं। मोदीजी को यह बताते हुए कि पार्टी के लिए एस.सी और एस.टी. और अल्पसंख्यातों का समर्थन नहीं है, उन्होंने सूचना दी कि जो एस.सी. थे वै. रामकृष्णजी जैसे लोगों को वीरेंद्र पाटीलजी के स्थान पर राज्य जनता पार्टी के अध्यक्ष बनकर आना चाहिए। किसी भी अधिकार या पद पर न होते हुए भी निजलिंगप्पाजी ने जनता के कल्याण की ओर ध्यान दिया। अधिकारियों को पत्र लिखकर विद्युत और सिंचाई योजनाओं को पूरा करने की सूचना दी। जनता को उनके हक व जिम्मेदारी पर जागरूक रहने के लिए अपने भाषण में बताते थे।

3 अगस्त 1977 को मोरारजी जी से दूरभाष पर बात करते हुए उन्होंने कहा कि "दिन ब दिन अपनी लोकप्रियता खोनेवाले, वीरेंद्र पाटील जी को हटाकर उनके पद पर, वै. रामकृष्णजी को अध्यक्ष बना दे।" वीरेंद्र पाटील, रामकृष्ण हेगडे और देवेगौडा की गुटबंदी के कारण, राज्य जनता पार्टी के नष्ट होने की अतृप्ति, पक्ष के हितैषियों के मन को दु:खी कर रहा था। अंत में, वीरेंद्र पाटील के स्थान पर वै. रामकृष्ण को बिटाने में वे असफल हुए और उस स्थान पर देवेगौडाजी आ गए। निजलिंगप्पाजी ने उनका नाम सूचित नहीं किया था; इसी कारण मोरारजी ने देवेगौडाजी को नियुक्त किया। निजलिंगप्पाजी और मोरारजी में अब कोई सामरस्य भाव नहीं रहा। सितंबर 1977 में देहली में निजलिंगप्पाजी अचानक बीमार पड़ गए। उन्हें वेलिंगडन अस्पताल में भर्ती किया गया। वहाँ उन्हें वी.वी.आइ.पी. जैसे देखा गया। इंदिरा गाँधीजी अस्पताल जाकर उनके और उनके परिवार का कुशल मंगल पूछा।

राज्य जनता पार्टी के नए अध्यक्ष देवेगौडाजी ने निजलिंगप्पाजी से मिलकर, उनके आशीर्वाद प्राप्त किए। निजलिंगप्पाजी ने उन्हें गुटबंदी छोड़कर जनता से निकट संपर्क रखने की सलाह दी। वे स्वयं भी समय मिलने पर ग्रामीण प्रदेशों में भ्रमण करते हुए, जनता के मन की भावनाओं को समझने की कोशिश करते रहते थे। उदाहरण के लिए 25 से 27 सितंबर 1977 तक भ्रमण कर जनता पार्टी के संदेश को उत्तर कर्नाटक के शिग्गाँव, सवणूर, मुंडरगी, मुळगुंद, नरेगल, रोण, गजेंद्रगड़ और अण्णीगेरी जैसे शहरों में लोगों को पहुँचाया। सरकार में बढ़ते भ्रष्टाचार का हर जगह खंडन करते हुए वे पैसे खाने के विरुद्ध और ऐसी हालत के जिम्मेदार अरसु सरकार के विरुद्ध लड़ने के लिए

वे मोरारजी से कहते ही आए। अंत में उनकी इच्छा के अनुसार सरकार उतर गई और पहली जनवरी 1978 को नए वर्ष की सुबह कर्नाटक में राष्ट्रपति शासन जारी हो गया। आगे आनेवाले चुनावों में जनता पक्ष को मतदान करने के लिए निजलिंगप्पाजी लोगों से बिनती करते थे। इसी बीच उनके मित्र एस.के. पाटीलजी जनता पक्ष से दूर हो गए। उन्होंने निजलिंगप्पाजी से शिकायत की कि उद्देश्यपूर्वक उनकी उपेक्षा की जा रही है। इन दोनों के बीच के पत्र व्यवहार में एक मजेदार कारण बताया गया है और वह था – "उन दोनों के स्थान और उनको प्राप्त अधिकारों के बीच का अंतर।"

अपने व्यक्तिगत राजनीतिक लाभ की ओर निजलिंगप्पाजी को पूर्ण निरासक्ति थी। परंतु उसे न सहते हुए, पाटीलजी ने कांग्रेस (ओ) की प्रत्येक पार्टी के रूप में, पुनर्गठन करने का प्रयत्न किया। जनता अध्यक्ष चंद्रशेखरजी ने निजलिंगप्पाजी को पत्र लिखकर, एस.के. पाटीलजी के अभिप्रायों की ओर ध्यान देने के लिए कहा। परंतु उसकी प्रतिक्रिया निराशादायक रही। जब निजलिंगप्पाजी ने देखा कि जनता पार्टी के अभ्यर्थियों की सूची में लोग ऐर गैर थे तो वे क्रोधित हुए। उन्होंने अनुमान लगाया कि यह रामकृष्ण हेगडेजी का ही कार्य है। उसके बाद, चंद्रशेखरजी को पत्र लिखकर उन्होंने बताया कि ऐसे अनपेक्षणीय कार्यक्रमों के कारण उन्हें पार्टी राजकीय में आगे बढ़ना असंभव हो गया है। इस पत्र को अथवा उनके नैतिक क्रोध को कोई मान्यता नहीं मिली। एक तत्वाधारित व्यक्ति के रूप में उन्हें जनता पार्टी को इस्तीफा देने के अलावा कोई और रास्ता नहीं रहा। मोरारजी ने आतुरता में कोई निर्णय न लेने को कहा। मित्रों और बंधुओं ने भी निजलिंगप्पाजी को वैसा न करने पर दबाव डाला। एस.के. पाटीलजी ने अपने 1 फरवरी 1978 तारीख के पत्र में पक्ष से बाहर आने के लिए अपने मित्र का अभिनंदन करते हुए पक्ष के पापकृत्यों की सूची बना दी। इस समय निजलिंगप्पाजी को लिखते हुए अपने पत्रों में पाटीलजी ने जनता पार्टी के अपराधों का बार बार स्मरण दिलाया। उनका अभिप्राय था कि इसका अत्यधिक लाभ इंदिराजी ने पाया; और वे अत्यधिक लोगों को आकर्षित कर रही हैं। उनकी इस्तीफा से जनता पार्टी पर गहरी मार पड़ी थी। लोग सोचने लगे कि "निजलिंगप्पाजी पार्टी से जब बाहर आते हैं तो पार्टी सही मार्ग पर नहीं चल रहा है। और प्राय: यह एक और कांग्रेस (आइ) हो रहा है।" अशोक मेहता जी को पत्र लिखते हुए निजलिंगप्पाजी ने अपनी निराशा व्यक्त

पूर्व प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी के साथ एस. निजलिंगप्पा जी

करते हुए राजनीति से ही निवृत्त होने की अपनी इच्छा बताई। अशोक मेहता जी ने ''निजलिंगप्पाजी जैसे लोगों का निवृत्त होना, देश को बड़ा आघात ही है'' कहते हुए, दुःख प्रकट किया। उनकी इस्तीफा ने लोगों पर प्रभाव डालते हुए, उन्हें पत्र लिखकर जनता पार्टी के मार्ग का खंडन होने लगा। अरसु जी प्राय: निजलिंगप्पाजी को अपने पक्ष की ओर आकर्षित करने के उद्देश्य से उनके घर जाकर मिले। निजलिंगप्पाजी ने बताया कि वे इंदिराजी के किसी भी संधिसूत्र के सामने नहीं झुकेंगे।

कर्नाटक में चुनाव का समय नज़दीक आने पर निजलिंगप्पाजी के इस्तीफा से चुनाव में जनता पार्टी पर बुरा असर होने की संभावना को समझकर, जनता पार्टी के अध्यक्ष चंद्रशेखरजी ने उनसे 22 फरवरी 1978 को मिलकर इस्तीफा वापस लेने की बिनती की। न चाहते हुए भी चंद्रशेखरजी की प्रामाणिकता और विनय के सामने पिघलकर, इस्तीफा वापस लेने के लिए निजलिंगप्पाजी तैयार हुए। इसमें मोरारजी का भी हाथ रहा। परंतु निजलिंगप्पाजी ने इसे मन:पूर्वक नहीं माना था। 28 फरवरी 1978 के चुनाव के परिणाम निकले तो जनता पार्टी मिट्टी में मिला था। लोगों ने देवेगौडा पर आरोप लगाया कि वे ही इसके कारण हैं। रामकृष्ण हेगडीजी को भी लोगों ने इसके लिए जिम्मेदार माना। वास्तव में जनता पार्टी को केवल 59 मत प्राप्त हुए थे; इंदिरा कांग्रेस ने 148 स्थानों में विजय प्राप्त की थी। इस हार के लिए सरलता से किसी एक ही व्यक्ति पर आरोप नहीं लगा सकते। सच कहा जाय तो जनता पार्टी में ऐक्य, अनुशासन और सामरस्य की कमी ही इसका कारण था।

जनता शासक दल के नेताओं के चुनाव से पहले 16 मार्च 1978 को एक सभा हुई। उस समय रामकृष्ण हेगडेजी, वीरेंद्र पाटीलजी और देवेगौडा जी निजलिंगप्पाजी से मिलकर उनके नायकत्व के बारे में बात करना चाहते थे। जब उन्होंने बोम्माइजी का नाम सूचित किया तो निजलिंगप्पाजी ने बताया कि चुनावों में जनता पार्टी की हार का कारण था कि दल बदलुओं को अभ्यर्थियों के रूप में सामने लाना। शासन सभा में पक्ष को आगे बढ़ाने के लिए परिशिष्ट जाति अथवा पिछडे वर्ग के किसी व्यक्ति को नेता के रूप में लेने के लिए सलाह दी। इस वर्ग के दो व्यक्ति थे – लक्ष्मीसागरजी और तिम्मय्याजी। देवेगौडाजी ने कहा कि ये दोनों, अननुभवी और राजनीति के लिए नए हैं। परंतु इस तर्क से निजलिंगप्पाजी को तसल्ली नहीं हुई। उन्होंने सोचा कि वे अपने ही रास्ते

पर चलने के लिए बहाना कर रहे हैं। देहली जब भी जाते थे, निजलिंगप्पाजी राष्ट्रपति संजीवरेड्डीजी से मिलकर देश की राजनीतिक परिस्थिति के बारे में चर्चा करते थे। रेड्डीजी भी परिस्थिति के बारे में चिंतित थे। वे मोरारजी के दर्प, असामर्थ्य तथा दिखावे के बारे में बताते थे। उन्होंने बताया कि राज्यसभा के लिए, निजलिंगप्पाजी के नाम का परिगणन करने के लिए उन्होंने मोरारजी को सलाह दी, परंतु मोरारजी किसी दूसरे को पसंद करते हैं। रेड्डीजी ने गृहमंत्री चरणसिंह जी के असामर्थ्य के बारे में भी बताया कि वे ठीक तरह में विषयों का निर्वाह न करने के कारण, सरकार के सामने अनेक समस्याएँ आ खडी हैं। दिन ब दिन जनता पार्टी के बारे में, निजलिंगप्पाजी की अतृप्ति बढ़ती ही जा रही थी। उन्होंने सोचा कि मुश्किल में पड़ती हुई, राजनीतिक परिस्थिति को निभाने के लिए जनता दल अध्यक्ष चन्द्रशेखरजी के लिए उचित समर्थन प्राप्त नहीं है। पार्टी की स्थिति के बारे में उन्होंने चंद्रशेखरजी को पत्र लिखकर बताया कि चरणसिंहजी, अटल बिहारी वाजपेयी जी और जगजीवनराम जी जैसे नेताओं को भी उसके कॉपी (copy) भेज दिया जाय। अप्रैल 1978 में, जब देहली गए थे, गुजरात राज्यपाल का पद स्वीकार के लिए राष्ट्रपति तथा प्रधानमंत्री, दोनों ने निजलिंगप्पाजी को मनाने का बहुत प्रयत्न किया। कई केंद्र मंत्रियों ने भी उसे मानने के लिए बिनती की। बात बदलते हुए निजलिंगप्पाजी ने पक्ष की बुरी हालत के बारे में, चर्चा शुरू की। परस्पर नायकों द्वारा तथा दल में जनसंघ का प्रभाव बढ़ने के कारण, उसे बुरानाम आने के बारे में शिकायतें उन्हें सुननी पड़ती थीं। देहली से लौटने के बाद उन्होंने अपनी पत्नी मुरिगेम्माजी को उन्हें राज्यपाल पद के मिलने के बारे में बताया; पति को अच्छी तरह से समझने वाली पत्नी ने उसे न स्वीकार करने के लिए कहा। निजलिंगप्पाजी ने तार देकर प्रधानमंत्री जी तथा गृहमंत्री को औपचारिक रूप में अपना निर्णय सुनाया।

दिन बीतते-बीतते निजलिंगप्पाजी ने देखा कि जनता दल विनाश की ओर जा रहा था। दल के भविष्य के बारे में उन्हें कोई भ्रम नहीं बचा था। 22 जून 1978 को जे.पी. जी से पटना में मिलकर उन्होंने दिन ब दिन बिगडने राजनीतिक परिस्थिति के बारे में चर्चा की। जनता शासन के नकारात्मक अंशों के बारे में, जे.पी.जी ने निजलिंगप्पाजी से सहमति व्यक्त की और कहा कि वे कुछ न करने की असहायक परिस्थिति में हैं। दल के आंतरिक झगडे, शिखरस्थिति पर पहुँच चुके थे, चरणसिंहजी ने प्रधानमंत्री के पुत्र कांतिसिंह

देसाई पर खुले रूप में आरोप लगाने पर, 'प्रधानमंत्री का पुत्र'' – यह नाम लेते हुए कांतिसिंह देसाई के व्यवहार की निजलिंगप्पाजी ने आलोचना की। चरणसिंहजी और राजनारायणजी ने जब 23 जून 1978 की इस्तीफा दे दिया तो दल के सामने संकट आया। एस.के. पाटीलजी ने निजलिंगप्पाजी को पत्र लिखकर अभिप्राय व्यक्त किया कि ''दोनों कांग्रेस एक हो जाय, कांग्रेस (ओ) जनता परिवार से बाहर हो जाय।'' निजलिंगप्पाजी ने हर बार की तरह इसे नहीं माना, फिर भी दोनों के स्नेह में कोई आँच नहीं आयी। निजलिंगप्पाजी को एक और बात बुरी लगी कि दक्षिण की ओर राष्ट्रराजनीति की उपेक्षा। वास्तव में, मोरारजी को पत्र लिखकर उन्होंने सलाह दी कि सी.एम. पूणच्याजी और के.सी. अब्रहाम जैसे दक्षिण के नेताओं को मंत्रिमंडल में लेते हुए, दक्षिण को न्यायबद्ध प्रातिनिध्य देने के द्वारा संतुलन बनाये रखे। राजनीतिक भ्रष्टाचार और अवसरवादिता को लेकर निजलिंगप्पाजी एक व्यक्ति सेना जैसे बने। जुलाई 1978 में महाराष्ट्र में शरद पवारजी की अस्थिर कांग्रेस (आइ) सरकार को जनता पार्टी ने समर्थन दिया; इस राजनीतिक अवसरवादिता का निजलिंगप्पाजी ने खंडन किया। एस.के. पाटील जी ने जनता दल को इस्तीफा दे दी। 21 जुलाई 1978 के पत्र में उन्होंने निजलिंगप्पाजी को बताया कि मोरारजी का वैयक्तिक मत्सर और चंद्रशेखरजी के कुतंत्र ही कारण हैं। पुराने कांग्रेस का पुनरुज्जीवन करने की सूचना देते हुए उसमें उन्होंने बताया था कि उन्होंने इंदिरा गाँधीजी को पत्र लिखा है; परंतु यह भी कहा था कि वे अपने पुत्र संजय के दुष्प्रभाव में होने के कारण उनसे कोई आशा नहीं रख सकते हैं। राजकीय निर्धारों के विषय में निजलिंगप्पाजी अपने मित्रों के अभिप्राय को नहीं मानते थे। जनता पार्टी के अध्यक्ष पद को जब चंद्रशेखरजी के इस्तीफा देने की अफवाह अगस्त 1977 में फैली तो सी.आर. बसप्पाजी जैसे मित्रों ने पत्र लिखकर ऐसी परिस्थिति में फैली राजनीतिक गंदगी से पक्ष को मुक्त करने के उद्देश्य से अध्यक्ष स्थान को अपनाने के लिए बिनती की। प्राय: जैसा कि वे जानते थे निजलिंगप्पाजी नहीं माने। इंदिरा गाँधीजी के निरंकुशाधिकार का विरोध और देश की भलाई की साधना के उद्देश्य से रूपित दल को धीरे धीरे टूटते हुए देखकर ये बुजुर्ग नेता असहायक हालत में दु:खी थे। विविध जनता दल नेताओं से मिलकर, उनके बीच सामरस्य लाने के प्रयत्न में उन्होंने 1978 के पूरे अगस्त महीना देहली में बिताया। देश में जो भी घटता उसके प्रति सीधे भाग लेने वाले नेता

कोई ध्यान नहीं देता तो ये जागरूकता से तक्षण उसके लिए स्पंदित होते थे। पत्रिकाओं में अपना अभिप्राय प्रकट करने में वे कभी पीछे नहीं हटते थे। उदाहरण के लिए 1978 जून में बिहार के पंचायत चुनावों में कई हत्यायें हुईं; उनके बारे में अपना अभिप्राय उन्होंने पत्रिकाओं में प्रकाशित किया; इतना ही नहीं, प्रधानमंत्री को भी लिखा। बिहार के उस समय के मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुरजी ने कहा कि मृतकों की संख्या निजलिंगप्पाजी के कहे अनुसार बड़ी नहीं है – वह केवल 78 है। उन्होंने विषाद व्यक्त कर यह भी कहा, निजलिंगप्पाजी जैसे वरिष्ठ जिम्मेदार नायक को सच्चाई जानकर कहना चाहिए था। 25 अगस्त 1978 को निजलिंगप्पाजी ने ठाकूरजी को पत्र लिखकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की – ''पहली बात यह है कि इन राजकीय नायकों को, 'गैरजिम्मेदार' शब्द का प्रयोग कहाँ और कैसे प्रयोग करना मालूम ही नहीं है। उन्हें मृतकों की संख्या, किसी ऐरे गैरे ने नहीं दिया है; जे.पी. जी से मिलने जब पटना गए थे तो बिहार जनता दल के सचिव और कई और मंत्रियों ने यह विचार बताया है। उन्हें क्या 'गैरजिम्मेदार' कह सकते हैं?'' इसकी प्रतिक्रिया में ठाकुरजी ने पत्र लिखा कि ''हजारों लोगों की मृत्यु का कोई आधार नहीं है; जब पिछड़े वर्ग के लोग मतदान करने आए थे, उन्हें जबरदस्ती से रोकने के कारण, पुलिस को गोलीबारी कर, उन्हें मतदान को मौका देना पड़ा था। उन्होंने कहा कि इसके बारे में किसी भी जाँच आयोग का सामना करने के लिए भी वे तैयार हैं।''

प्रधानमंत्री के पुत्र कांति देसाई के कारण जनता दल विवाद में फँसा था। निजलिंगप्पाजी जानते थे कि इन आरोपों में सत्यांश है। परंतु मामला बहुत ही खराब होने के कारण उन्होंने उसमें कुछ भी कहने से इनकार किया। पार्टी का हरेक व्यक्ति स्वयं कानून बना था। ब्राह्मणवादी जनसंघ पूरे जनता दल पर अपना अधिकार चलाना चाहता था। जनता दल से कांग्रेस (ओ) को दिन ब दिन किनारे किया जा रहा था।

इंदिरा गाँधीजी फिर से राजनीति में आने के लिए चाल चलाकर लोकसभा में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रही थीं। कर्नाटक के अरसू नेतृत्व की कांग्रेस (आइ) सरकार चिकमगळूरु को लोकसभा के स्थान के लिए जीते हुए डी.बी. चंद्रेगौडाजी हटाकर, इंदिरा गाँधीजी को उपचुनाव में स्पर्धा करने के लिए मौका देना चाहती थी। वीरेंद्र पाटील जी की गुट चाहती थी कि, इंदिराजी के विरुद्ध वीरेंद्र पाटील जी स्पर्धा करें। इस समूह के बोम्माई जी और कुछ लोग,

पूर्व कर्नाटक के मुख्यमंत्री श्री एस. आर. बोम्मायी के साथ डॉ. एस. निजलिंगप्पा जी

निजलिंगप्पाजी की अनुमति पाने के लिए चित्रदुर्ग चले। ''कर्नाटक की राजनीति में निजलिंगप्पाजी को 'शून्य' कहकर मेहताजी के सामने वर्णन करनेवाले बोम्माई को ही अब उन्हीं की अनुमति पाने के लिए उन्हें 'महान्' मानने की हालत आई'' – यह एक बड़ी विडंबना थी! अपने वैयक्तिक विचारों को अलग रखकर, निजलिंगप्पाजी ने पाटीलजी के लिए उपचुनाव में प्रचार किया। परंतु पूरे कांग्रेस (आइ) सरकार के संसाधनों का उपयोग इंदिरागाँधीजी की विजय के लिए हुआ। इंदिराजी ने विजय पाकर राजनीति में पुनः प्रवेश किया।

उपचुनाव की हार के बारे में, विवरण देते हुए निजलिंगप्पाजी ने मोरारजी को बताया कि जनता सरकार की कार्यविफलता और चुनाव के समय में मतदाताओं को दिए गए वचनों का पूरा न करना ही इसका कारण है। उनका अभिप्राय था कि पार्टी को बचाने का एकमात्र उपाय है – ''मोरारजी जैसे बुजुर्गों के बदले युवाओं को पक्ष के नायकत्व पर स्थापित करना!'' उन्हें भरोसा तो था नहीं कि ऐसा होगा। परंतु इंदिराजी का यह संतोष बहुत दिन नहीं रहा। क्योंकि, लोकसभा सदस्य के रूप में उनके प्रमाणवचन स्वीकार करने के थोड़े ही दिनों में उन्हें, कानूनन सदस्यत्व से 'अनर्ह' करार किया गया। इससे निजलिंगप्पाजी खुश हो गए; परंतु जनता पार्टी के पतन के लिए हुई कुछ घटनाओं से दुःखी हुए; इनमें महत्त्वपूर्ण घटना थी मोरारजी को हद में रखने के लिए चरणसिंह जी की 'कुचक्' चाल। चरणसिंहजी को 77 लाख रुपयों की निधि धनी किसानों ने समर्पित किया था। यह निजलिंगप्पाजी की असंतुष्टि का कारण बना। यह कार्यक्रम देहली में 23 दिसंबर 1978 को हुआ था। वहाँ चरणसिंहजी के जन्मदिन के आचरण के लिए पाँच लाख लोग जमा हुए थे। निजलिंगप्पाजी को लगा कि इस लोगों की भीड़ का यह असह्य प्रदर्शन, इंदिरागाँधीजी की राजनीतिक भीड़ के जैसी ही है। इंदिरा गाँधीजी को संसद से बाहर करने के कारण, देशभर में सरकार के विरुद्ध उनके साथियों ने प्रदर्शन किए। कहीं कहीं हिंसात्मक घटनाएँ हुईं। निजलिंगप्पाजी के चित्रदुर्ग जिले में इंदिराजी के समर्थकों ने गाँव के खेती की फसल को नष्ट किया। गरीबों की झोपड़ियों को आग लगा दी, घरों पर पत्थर फेंके। देश भर में ऐसी हिंसात्मक घटनाएँ हुईं। पार्लिमेंट भी इससे नहीं बचा। दिवाकरजी और न्यायमूर्ति तार्कुंडेजी जैसे नायक़ों ने राजनीति और सार्वजनिक जीवन के इन हिंसाकृत्यों के विरुद्ध संगठनात्मक कार्यक्रम चलाने का निर्णय किया। इसके लिए एक मंच का निर्माण किया गया। 21 और

22 जनवरी 1979 को देहली में बैठक हुई मंच निर्माण सभाओं के लिए उन्होंने निजलिंगप्पाजी को आमंत्रित किया। औपचारिक अधिकार और स्थानों के बारे में अपने विरोधी मनोभाव के कारण, निजलिंगप्पाजी ने संस्थाओं के मुखिया बनने के आमंत्रण को स्वीकार न किया। जोधपुर के किसान प्रतिष्ठान से भी एक आमंत्रण मिला था; उसका भी उन्होंने तिरस्कार किया।

जनता दल तथा सरकार के गिरती विश्वासार्हता की भूमिका में देश की हित की दृष्टि से दोनों कांग्रेसों को इंदिराजी के नेतृत्व में एक बनाने की सलाह एस.के. पाटीलजी ने निजलिंगप्पाजी के सामने रखी।

जनवरी 1 1979 को पत्र लिखकर, निजलिंगप्पाजी ने अपने मित्रों को शांत रहने के लिए कहा। उन्होंने सलाह दी कि किसी भी कार्य-योजना को कार्यगत करने से पहले कुछ दिन इन्तजार करना पड़ेगा। परंतु एस.के. पाटीलजी ने बार बार कांग्रेस को एक करने का प्रस्ताप रखा और 5 जनवरी 1979 को पत्रिका में प्रकाशित किया और उसकी जरूरत और मार्गोपाय का विवरण दिया। निजलिंगप्पाजी ने प्रतिक्रिया नहीं की। उन्होंने निजलिंगप्पाजी को पत्र में लिखा कि ''इंदिराजी के बारे में उन्हें कोई गौरव भाव नहीं है, लेकिन उन्हें जनता का समर्थन और आकर्षण है।'' उनका तर्क रहा कि गिरते हुए जनता पार्टी से भी वह अच्छा चुनाव है। जनता पार्टी में दिन ब दिन आंतरिक झगड़े बढ़ते गए। मोरारजी और चरणसिंहजी के बीच का स्पर्धा – दो उपप्रधान मंत्रियों के पदों की रचनाकर, चरणसिंहजी और जगजीवनरामजी – दोनों को उन पदों पर रखने के निर्णय के कारण – तात्कालिक रूप से समस्या स्थगित हो गई थी। 1979 जनवरी 3 को यह निश्चय हुआ था। परंतु इससे समस्या का पूर्णरूप से शमन नहीं हुआ। चरणसिंहजी ने बताया कि वे सरकार के अंदर से ही उसके विरुद्ध संघर्ष करेंगे, तो राजनारायणजी ने कहा कि वे बाहर से लडेंगे।

इससे निजलिंगप्पाजी दुःखी हुए। कर्नाटक जनता पार्टी के अध्यक्ष स्थान के लिए 1979 मार्च में चुनाव होनेवाला था। अध्यक्ष स्थान के सभी अपेक्षियों ने निजलिंगप्पाजी का समर्थन चाहा – और वे किसी भी अधिकार या ओहदे पर न होने पर भी, उनके प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व कितना महान था – इसका संकेत था। परंतु पिछडे वर्ग के किसी व्यक्ति को अध्यक्ष बनाने की उनकी सलाह व्यर्थ हुई। पार्टी की राष्ट्रीय समिति के लिए चुने गए 28 लोगों में, वे भी एक थे

और इसे वे जानते भी नहीं थे। परंतु जब उन्होंने देखा कि उस सूची में एक भी एस.सी. अथवा एस.टी. का नाम नहीं है तो उन्होंने समिति के अपने सदस्यत्व के लिए इस्तीफा दे दिया। अपने इस्तीफा वापस लेने से इनकार किया। देशभर में फैलते हुए अंधकार में उन्हें एक ही प्रकाश की किरण नज़र आई और वह थी, ''जयप्रकाश नारायणजी''। नैतिक विचार में निजलिंगप्पाजी उन्हें गाँधीजी के समान मानते थे। जे.पी.जी के गिरते स्वास्थ्य के बारे में वे चिंतित थे, और उनकी दीर्घायु के लिए प्रार्थना करते थे। 22 मार्च 1979 को जब वे भोजन के लिए बैठे ही रहे थे, तो जे.पी. जी की मृत्यु का समाचार मिला। भोजन से उठकर तक्षण पत्रिकाओं को फोन कर आकाशवाणी के समाचार की सत्यता का निश्चय कर लिया। समाचार जब सच रहा तो अपना असीम दुःख व्यक्त करते हुए पत्रिकाओं में अपने विचार प्रकट किए। उन्होंने कहा कि ''देश की प्रज्ञा को जागरूक रखने में, गाँधीजी के बाद वे ही एक समर्थ व्यक्ति थे।'' मोरारजी ने भी लोकसभा में विषाद व्यक्त किया। परंतु जे.पी. जी के अभी जीवित रहने का समाचार जब दृढ़ हो गया, यह सरकार की असमर्थता के लिए जबरदस्त उदाहरण जैसा था। लोकनायक की मृत्यु का समाचार झूठा होने पर निजलिंगप्पाजी बहुत ही खुश हुए।

कर्नाटक का जनता दल टूट गया था। अधिकारदाही और स्वार्थी नेताओं के बीच के झगडों के कारण टूटकर बिखर गया था। इस विषय में वह कांग्रेस से ऊँचा या नीच नहीं था। उतना ही भ्रष्टाचार, अनुशासनहीनता और कौमवाद-जातिवादों से सड़ गया था। एक दिन सबेरे, राज्य जनता दल के अध्यक्ष, तिम्मेगौडाजी के साथ निजलिंगप्पाजी से मिलकर, दल के विद्यमानों के बारे में रिपोर्ट दिया। राज्य जनता दल के अध्यक्ष देवेगौडाजी ने वीरेंद्र पाटील जी के राजनीतिक खेल का निरूपण किया। उन्होंने बताया कि स्वहित के लिए पाटीलजी पार्टी का विभाजन कर, अंत में इंदिरा-गुट में शामिल होने की तैयारी कर रहे हैं। परंतु वीरेंद्र पाटीलजी के पिछले पाँच-छः वर्षों के राजनीतिक खेल का परिचय निजलिंगप्पाजी को पहले ही हो चुका था। इसलिए यह विषय उनके लिए नया नहीं था। गौडाजी ने बताया कि अरसुजी के मन में अपनी ही योजनाएँ हैं। उनकी योजना यह थी कि सौ शासकों के साथ दल बदल करके चरणसिंहजी से हाथ मिलाकर उनकी सहायता से राज्य में नये पक्ष की स्थापना करें। निजलिंगप्पाजी ने गौडाजी को बताया कि उनकी बात न माननेवाले मोरारजी के कारण ही यह सब

हो रहा था। परंतु यदि निष्पक्षपात भाव से देखा जाय तो भारत के किसी भी राजनेता के जैसे ही वीरेंद्र पाटीलजी व्यवहार कर रहे थे बस! परंतु, पक्ष के हित की उपेक्षा कर अपने हित को महत्व देनेवाले वीरेंद्र पाटीलजी को निजलिंगप्पाजी कभी क्षमा नहीं कर सकते थे। अपने पक्षपातरहित दृष्टिकोण के कारण निजलिंगप्पाजी प्रशासनानुभव, निर्वहण-कौशल और होशियारी आदि वीरेंद्र पाटीलजी के गुणात्मक अंशों को पहचान सकते थे। उसी कारण, अपने शिष्य के बिहार राज्यपाल बनकर जाने की खबर सुनकर उन्होंने उसका स्वागत किया। इसके साथ ही राज्य राजनीति से एक अनपेक्षित व्यक्ति दूर जाने का विषय भी संतोष का कारण बना! चरणसिंहजी-मोरारजी की स्पर्धा से जनता दल टूटता गया। चरणसिंहजी प्रधानमंत्री बनने चले। परंतु उनकी आकांक्षा के पूरा होने में मोरारजी ही मुख्य विघ्न बने थे। चरणसिंहजी के परदे के पीछे की चालों से 25 जुलाई 1979 को चौव्हानजी ने मोरारजी के मंत्रीमंडल के विरुद्ध अविश्वास निर्णय का मंडन किया। पक्ष के अनेक हितैषियों ने वरिष्ठ राजनेता के रूप में निजलिंगप्पाजी को मध्यप्रवेश कर, पक्ष को बचाने के लिए बिनती की। निजलिंगप्पाजी ने दूरभाष पर मोरारजी से संपर्क करते हुए वास्तविकता समझने का प्रयत्न किया। परंतु ज्योतिष पर विश्वास करते हुए मोरारजी ने उसी दिन प्रधानमंत्री स्थान को इस्तीफा दे दिया, परंतु, जनता पार्टी के संसदीय दल के सदस्यत्व से अलग नहीं हुए। इससे पहले 9 जुलाई 1979 को राजनारायणजी नौ लोकसभा सदस्यों के साथ जनता पार्टी से अलग हो गए थे। चरणसिंहजी के आशीर्वाद से जनता (एस्) पक्ष की स्थापना करना स्पष्ट था। मोरारजी ने लोकसभा विसर्जन की सिफारिश नहीं की। चरणसिंहजी ने राष्ट्रपति संजीवरेड्डी जी से मिलकर मंत्रीमंडल रचना करने के लिए मौका देने के लिए प्रार्थना की। लोकसभा में बहुमत साबीत करने का सिंहजी ने रेड्डीजी को आश्वासन दिया। रेड्डीजी ने 1979 अगस्त तीसरे हफ्ते से पहले, बहुमत साबीत करने का सिंहजी को आदेश दिया। निजलिंगप्पाजी ने अंदाजा लगाया कि अवसरवादी इंदिरागाँधीजी अपने विरोधी चरणसिंहजी का समर्थन कर फिर उसे वापस लेंगी! मोरारजी को देखकर मुँह मोड़नेवाले रेड्डीजी चरणसिंहजी के प्रधानमंत्री होने का इंतजार कर रहे थे। निजलिंगप्पाजी ने सोचा कि ''संजीवरेड्डीजी के व्यवहार के कारण जनता पार्टी का विभाजन होगा; इसी बहाने अंत में इंदिराजी विजयी होंगी।'' परंतु रेड्डीजी ने पहले चरणसिंहजी को आमंत्रित नहीं किया था। लोकसभा के विरोध पक्ष के

नायक चौव्हानजी ने जब सरकार की रचना के लिए अपनी असमर्थता घोषित की, तभी उन्होंने चरणसिंहजी को मंत्रिमंडल रचना करने का मौका दिया। चरणसिंहजी इसके लिए मान गए; क्योंकि उन्होंने सोचा था कि चौव्हान-गुट के 75 सदस्यों का उन्हें समर्थन है। 28 जुलाई 1979 को विधिपूर्वक प्रधानमंत्री का प्रमाणवचन स्वीकार कर जनता (एस्) (समाजवादी पक्ष) और कांग्रेस (आइ) पक्षों की सम्मिश्र सरकार की रचना की। परंतु लोकसभा में विश्वासमत की याचना करने से पहले ही उन्हें पता चला कि उसका समर्थन मिलना असंभव है। कांग्रेस (आइ) का अपना समर्थन वापस लेना उसका कारण था। 20 अगस्त 1979 को सिंहजी ने प्रधानमंत्री स्थान को इस्तीफा दिया; साथ ही लोकसभा के विसर्जन की सिफारिश की। इसप्रकार 23 दिनों की अल्पकाल की सरकार ने अपनी अंतिम साँस ली।

अटल बिहारी वाजपेयी जी का 1996 में प्रधानमंत्रित्व भी एक ही हफ्ते में अंत हुआ तो, इस रेकार्ड को उन्होंने तोड़ा था। चरणसिंहजी के बदले, रेड्डीजी यदि जगजीवनरामजी को मंत्रीमंडल रचना के लिए आमंत्रित करते तो जनता पार्टी की दृष्टि से परिस्थिति नियंत्रण में रह सकती थी। प्रधानमंत्री का स्थान छोड़ने के बाद भी संसदीय दल के नायकत्व को इस्तीफा न देने के मोरारजी के व्यवहार से चकित निजलिंगप्पाजी 19 जुलाई 1979 को तार भेजकर, संसदीय दल के नायकत्व को इस्तीफा देने की सलाह दी। उसमें उन्होंने स्पष्ट किया था कि जनता पार्टी को बचाने का एकैक मार्ग होगा जगजीवनरामजी को प्रधानमंत्री बनाना। यह भी स्पष्ट किया था कि वैयक्तिक रूप से उन्हें जगजीवनरामजी पर मन न होने पर भी, अपनी निष्पक्षपात दृष्टि में वे उस स्थान के लिए योग्य हैं। उन्होंने सोचा कि यदि समर्थन पा सकते तो, चंद्रशेखर भी उन्हें मान्य है। जब रेड्डीजी ने चरणसिंहजी को मंत्रीमंडल रचना के लिए आमंत्रित किया तो निजलिंगप्पाजी ने सोचा था कि वह अच्छा तरीका नहीं है। इस तरह जब देश की राजनीतिक परिस्थिति मज़ाक का रूप ले रही थी तो 28 जुलाई 1979 के पत्र में, एस.के. पाटीलजी ने अपने राजनीतिक समझौतों को छोड़कर कांग्रेस (ओ) की पुनस्थापना करने के लिए निजलिंगप्पाजी से बिनती की। अपने जवाब में निजलिंगप्पाजी ने सवाल उठाया – ''सच में कांग्रेस (ओ) के पक्ष के सदस्यों को पहचानना क्या संभव है?'' कर्नाटक का राजनैतिक वातावरण बहुत ही कलुषित था। वीरेंद्र पाटीलजी जब जनता पार्टी को छोड़कर

कांग्रेस (आइ) में शामिल हो गए तो कुछ समय से निजलिंगप्पाजी जो प्रतीक्षा कर रहे थे वह सच हो गया था। निजलिंगप्पाजी खुश हुए कि एक अनपेक्षित व्यक्ति बाहर हो गया। चरणसिंहजी के इस्तीफा देने से कुछ दिन पहले जगजीवनरामजी ने तार भेजकर एक प्रमुख विषय की चर्चा के लिए देहली आने के लिए बिनती की थी। अतः 20 अगस्त 1979 को वे देहली गए। दूसरे दिन जगजीवनरामजी ने निजलिंगप्पाजी के सामने प्रधानमंत्री बनने की अपनी इच्छा व्यक्त की। उन्होंने सोचा था कि अनेक मुश्किल की परिस्थितियों में समर्थन देने के कारण संजीवरेड्डीजी, निजलिंगप्पाजी के ऋणी होने के कारण वे ही राष्ट्रपति पर प्रभाव डालने के लिए योग्य व्यक्ति हैं। पहले से ही, निजलिंगप्पाजी चाहते थे कि जगजीवनरामजी प्रधानमंत्री बने। उनका विचार था कि एस.सी. गुट पर प्रभाव डालकर इंदिरागाँधी जी का सामना करने का यह एकमात्र मार्ग है। इसके लिए कुछ करने को यही अच्छा मौका समझकर वे जगजीवनरामजी के बारे में बताने के लिए, रेड्डीजी से मिले; परंतु रेड्डीजी का विचार था कि मध्यंतर चुनाव ही इसका एकमात्र मार्ग है। इसे जनता पार्टी के लिए हानिकारक मानते हुए निजलिंगप्प्जी ने रेड्डीजी को मनाने का प्रयत्न किया; रेड्डीजी नहीं माने तो उन्हें लगा कि वे इंदिराजी की तरफ हो रहे हैं। इंदिराजी से पहले ही उनको किए गए नुकसानों को देखते हुए उन्हें, रेड्डीजी का व्यवहार, राजनीतिक अवसरवादिता की परमावधि लगी। परंतु वे जानते थे धीरे-धीरे अधिकार व धन अर्जन करना राजनीति के द्विमुखी ध्येय बनकर भारत का राजनीतिक वातावरण अवसरवादिता की ओर झुक रहा है। 28 अगस्त 1979 को राष्ट्रपति जी ने लोकसभा के विसर्जन का आदेश निकाला। साथ ही उन्होंने चरणसिंहजी की देखरेख के प्रधानमंत्री के रूप में आगे बढ़ने का भी आदेश दिया। अपनी दूरदर्शिता से निजलिंगप्पाजी ने भविष्यवाणी की कि इन चुनावों से इंदिरागाँधीजी फिर से अधिकार पर आएँगी। जनता नेताओं से थके हुए, एस.के. पाटीलजी मूर्ख जनता पार्टी के नेताओं से इंदिरागाँधीजी को बेहतर मानते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे। परंतु निजलिंगप्पाजी इंदिरागाँधीजी तथा उनके राजनीतिक तंत्रों के बारे में आलोचना करते रहे। पहले के जैसे ही यह इन दोनों एस.के. पाटील और निजलिंगप्पाजी के बीच की मित्रता के लिए बाधा नहीं बन सका।

चुनाव होना निश्चित होने के बाद राजनीतिक वातावरण नरम हुआ। मौकापरस्त समझौते के लिए अनुकूल हुआ। कर्नाटक में कांग्रेस (यु) नाम से

अरसु नेतृत्व का एक दल प्रारंभ हुआ। एस.के. पाटीलजी ने जगजीवनरामजी से कांग्रेस (आइ) में शामिल होने के लिए कहा। कांग्रेस (ओ) को बड़ी मार पड़ी थी; वह पूर्णरूप से टूट गया था। बी.जे.पी. और समाजवादी गुटों ने अपने अस्तित्व की रक्षा कर ली। कर्नाटक की जनता पार्टी ने निजलिंगप्पाजी से चुनाव-प्रचार के लिए मार्गदर्शन करने के लिए कहा। अपनी बढ़ती आयु और गिरते स्वास्थ्य की उपेक्षा करते हुए, उन्होंने प्रचार का कार्य किया। दैहिक थकावट के कारण उन्हें अस्पताल में दाखिल होना पड़ा। निजलिंगप्पाजी ने नवंबर 1979 में ही भविष्यवाणी की कि "विरोधीदलों के टूटने के कारण इंदिरागाँधीजी चुनावों में आसानी से विजय प्राप्त कर लेंगी। 3 जनवरी 1980 को लोकसभा के लिए चुनाव हुए और इंदिरागाँधीजी के कांग्रेस (आइ) ने दो तिहाई मत प्राप्त कर लिया। 525 स्थानों में कांग्रेस (आइ) को 351 स्थान मिले। जनता पार्टी 31 मत प्राप्त कर बहुत पीछे रह गया था। लोकदल 41 स्थान प्राप्त कर थोडी अच्छी स्थिति पर रहा; कांग्रेस (ओ) 13, सी.पी.आइ को 10, सी.पी.एम. को 35 स्थान मिले; डी.एम.के. को 16, ए.आइ.डी.एम.के. को 2 स्थान मिले। मुस्लिमलीग, अकाली दल और नेशनल कान्फरेन्स को क्रम से 3, 1, 3 स्थान प्राप्त हुए। केवल 4 स्वतंत्र अभ्यर्थी विजयी हुए और वैसे दलों को कुल 14 स्थान प्राप्त कर तृप्त होना पड़ा। इंदिरागाँधीजी, दो क्षेत्रों में अद्‌भुत रूप से विजयी हुईं - वे स्थान थे – उत्तर प्रदेश का रायबरेसी, और आंध्र का मेड़क। 14 जनवरी 1980 को इंदिरागाँधीजी ने शपथ ग्रहण किया। इस प्रकार वह उन्हें नए साल का इनाम था। लोकसभा चुनावों में कांग्रेस (उ) दल की दयनीय हार की जिम्मेदारी लेते हुए 7 जनवरी 1980 को कर्नाटक में अरसु जी ने कांग्रेस (उ) के मुख्यमंत्री पद को इस्तीफा दी। परंतु उन्होंने विधानसभा के विसर्जन की सिफारिश नहीं की। इसलिए गुंडूरावजी ने कांग्रेस (आइ) के नए मुख्यमंत्री के रूप में अधिकार प्राप्त किया। 18 जनवरी 1980 को पहले जैसे जनता दल ने अधिकार प्राप्त करते ही दूसरे दलों की सरकारों को हटाया था, वैसे ही नौ राज्यों की जहाँ कांग्रेस (आइ) सरकार नहीं रही, उन्हें हटा दिया गया।

जब अपनी राजनीतिक विजय से इंदिराजी बहुत ही खुश थीं, उसी समय एक भयानक वैयक्तिक दुर्घटना का उन्हें सामना करना पड़ा। उनके प्रिय पुत्र संजय गाँधीजी की विमान दुर्घटना में मृत्यु हुई। परंतु, अपने वंश के ही शासन

को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र राजीव गाँधीजी को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा। अपनी पुरानी रीति को आगे बढ़ाते हुए पार्टी तथा राज्य सरकारों को वे अपने नियंत्रण में रखती थीं। इसमें उनकी सहायता करते थे; उनके प्रशंसक मुख्यमंत्री और उनके पार्टी के लोग। निरंकुशाधिकार को फिर सिर उठाते हुए देखकर दुःखी होते हुए निजलिंगप्पाजी ने 15 अगस्त 1980 को आजादी के दिन, स्वयं भी आज़ाद होने को सोचा। इसे उन्होंने अपनी डायरी में लिखा है; यह तीस वर्षों की भारत की आजादी की व्याख्या थी। आम लोग विशेष रूप से गरीब किसान और कुली, पहले के समान ही प्रायः और अधिक मुश्किल में पड़े थे। मंत्री, शासक पार्टी के सदस्य और सभी स्तरों के अधिकारी वर्ग – ऐसे थोड़े ही उच्चस्तर के लोग ही आजादी के फल का स्वाद ले रहे हैं। शहर के श्रमिक लोग, ग्रामीण श्रमिकों से थोड़ी उत्तम परिस्थिति में थे। 65% लोग गरीबी की रेखा के नीचे हैं। इंदिरागाँधीजी के अधिकार पर आने के बाद धनिकों और गरीबों के बीच का अंतर बढ़ गया। प्रधानमंत्री से लेकर नीचे के स्तर तक के सभी लोग गाँधी तत्वों का नाम लेने पर भी रिश्वत लेने में डूब गए थे। कौमीवाद और विदेशीप्रवेश जैसी सभी दुष्टशक्तियाँ देश का विनाश कर रही थीं। कर्नाटक में ही ये शक्तियाँ बढ़ गई थीं। मंत्री इब्राहिमजी के विरुद्ध जब शासकों ने ही खुले रूप से आरोप लगाया तो बेशर्म मुख्यमंत्रिजी ने अपने आरोपी मंत्री का समर्थन कर लिया। 9 जुलाई 1981 को चित्रदुर्ग में निजलिंगप्पाजी की अध्यक्षता में एक बड़ी सभा हुई, उसमें आरोपित मंत्री के विरुद्ध कारवाई करने के लिए दबाव डाला गया। अपना गहरा दुःख व्यक्त करते हुए निजलिंगप्पाजी ने कहा कि ''गंभीर आरोप के शिकार इब्राहिम जैसे ही लोग देश में हर जगह शासन कर रहे हैं।'' इसी समय कई जिलों में सूखे की हालत होने पर भी सरकार ने बहुत धन खर्चकर हेलिकाप्टर द्वारा, जाकर देख आने के सिवाय किसी भी तरह की कोई सहायता कार्य नहीं की! इस समस्या के लिए शाश्वत रूप से किसी सहायता कार्यक्रम के बारे में चिंतन करने के लिए, निजलिंगप्पाजी ने कहा; परंतु इस बात की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। बढ़ते हुए राजनैतिक भ्रष्टाचार और रिश्वत लेकर धन कमानेवाले अधिकारी वर्ग के राजनीतिक लोगों को देखकर निजलिंगप्पाजी का खून खौलने लगा। परंतु वे असहायक थे। वे जानते थे कि यह सब केन्द्र के लोगों के आशीर्वाद से ही हो रहा है।

कर्नाटक में अधिकार और पद खोये अरसुजी ने राज्य और देश में होनेवाली परिस्थिति का वर्णन करते हुए भ्रमण किया। अब वे ज्यादा समझदार हो गये थे। राजनैतिक नसीब के कुंठित होने पर भी अधिक सूक्ष्मज्ञ हो गए थे। इंदिरागाँधीजी का खंडन करते हुए, वे अपनी पार्टी के लिए समर्थन पाने का प्रयत्न कर रहे थे। चित्रदुर्ग में बडी सभा में उन्होंने भी भाषण दिया। उनकी मुख्यमंत्री की अवधि में रिश्वत सब जगह फैली थी; उनके ऊपर भी रिश्वत के आरोप थे; फिर भी उनकी अवधि में पिछडे वर्गों की परिस्थिति को सुधारने के लिए उन्होंने मजबूत कारवाई अपनाये थे; इसीकारण लोग वहाँ अधिक संख्या में जमा हुए थे। 24 सितंबर 1981को निजलिंगप्पाजी ने अपनी डायरी में 1971 में अरसु जी के कांग्रेस (ओ) छोड़कर कांग्रेस (आइ) में शामिल होने के प्रसंग का स्मरण किया है। इंदिराजी के मार्गदर्शन में ही उन्होंने राज्य में भ्रष्ट राजनैतिक साम्राज्य की स्थापना की थी, वे ही गुंडूराव जैसे प्रश्नार्ह नेता को प्रवर्धमान में लाये थे। परंतु अब अपने अपराधों का आरोप, इंदिरागाँधीजी और गुंडूराव पर लगाते हुए, उनकी आलोचना कर रहे थे। पहले ही निश्चित किए गए समय पर अरसू जी चित्रदुर्ग में निजलिंगप्पाजी से 25 सितंबर 1981 को सबेरे 10.30 मिले। एक घंटे तक दोनों ने इंदिरागाँधीजी के विरुद्ध प्रबल विरोधी दल के संगठन करने के बारे में चर्चा की। निजलिंगप्पाजी ने अरसूजी को बताया कि जनता प्रयोग की विफलता के कारण उसके हर घटक के अपना ही रास्ता अपनाना था; और उनके नेता देश के हित के बदले, अपने गुट को बलवान बनाने के लिए प्रयत्न करते ही रहे। इंदिरागाँधीजी के विरुद्ध एकमत के न होने पर भी चुनाव के समय, ये समूह आंतरिक झगडों में ही लगे हुए थे, अरसू जी ने बताया कि ''वे किसी भी पार्टी में शामिल होने को तैयार हैं; और वे मोरारजी, चंद्रशेखरजी और चरणसिंहजी से बातचीत करना शुरू कर चुके हैं।'' उनसे चरणसिंहजी ने स्पष्ट कहा था कि ''उन्हें प्रधानमंत्री बनने की कोई इच्छा नहीं है, और विरोधी गुटों को जोड़ने के किसी भी प्रयत्न को वे समर्थन करते हैं।'' निजलिंगप्पाजी ने उत्तर दिया कि ''चरणसिंहजी परम स्वार्थी हैं, इसलिए उनपर कोई भरोसा नहीं कर सकते।'' अरसू जी ने बताया कि ''राज्य जनता दल के पूर्व अध्यक्ष अब दिनभर, गुंडूरावजी के घर में ही रहते हैं, और राजनीति में राव जी के बहुत नजदीक हैं।'' निजलिंगप्पाजी पहले ही इसके बारे में जानते थे। उन्होंने कहा कि वह व्यक्ति विश्वास करने योग्य नहीं है।

आधुनिक उत्तर-उपनिवेशी भारत के इतिहास में जनता पार्टी प्रसंग एक त्रासद स्मरण के रूप में रह गया। उतनी ऊँचाई आशा-आकांक्षाओं के साथ किसी भी पार्टी की रचना नहीं हुई थी; और उसी तरह सभी भरोसे झूठे साबित हुए थे। इंदिरागाँधीजी का ऊँचाई तक पहुँचना तथा 1980 की जनता पार्टी की विघटनाएँ सभी, निजलिंगप्पाजी के राजनीतिक और सार्वजनिक जीवन की सक्रिय अवधि के अंत के कारण बने। परंतु यह समझने की गलती न करे कि, ''इसके बाद निजलिंगप्पाजी ने राजनीति में अथवा सार्वजनिक जीवन में कोई आसक्ति नहीं दिखाई।'' अगले अध्याय में हम देखते हैं कि उनकी राजनीतिक और सार्वजनिक आसक्ति बढ़ती चली, परंतु वह विभिन्न तरह से और दूसरे ही क्रियात्मक स्वरूप में!

कांग्रेस विभाजन और उसके बाद की जनता पार्टी के प्रयोग में निजलिंगप्पाजी के पात्र की दृष्टि से पीछे मुड़कर देखने पर निजलिंगप्पाजी के विभिन्न स्वरूप के राजनीतिक तथा व्यक्तित्व का दूसरा ही रूप सामने आता है। वैसे देखा जाय तो वैयक्तिक तथा सार्वजनिक जीवन के बीच की पादर्शिकता के अंतर न रखनेवाले उस युग में वे एक अनुपम व्यक्ति थे। भारत की राजनीति का रोग था पक्षभेद के बिना कि क्रमशः सार्वजनिक हितासक्ति धीमे होते चलना और वैयक्तिक आशोत्तर, प्रमुख होते जाना। प्रायः अपने को कौटुंबिक जीवन से दूर रखते हुए ही देश की या राज्य की सार्वजनिक हितासक्तियों के लिए बद्ध रहे। राज्य और राष्ट्र दोनों परस्पर निर्भर हैं। वे जानते थे कि एक के हित के लिए दूसरे की उपेक्षा नहीं कर सकते। इस अर्थ में उन्होंने गाँधीजी की सच्ची राजनीतिक संस्कृति को अपनाया था, अर्थात् उदार प्रजासत्तात्मक मूल्यों के बारे में बद्धता को अपनाया था। इसे – ''सत्य और मानवीयता का नाश करनेवाली शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए, उनको अपनानेवाली राजनीति को बढ़ावा देने का प्रयत्न'' – कह सकते हैं। गाँधीजी के रास्ते पर चलने के लिए उन्होंने उनकी पसंद की राजनीति के लिए इंदिरा गाँधीजी को प्रमुख विरोधी माना। निस्संदेह कह सकते हैं कि राजनीतिक क्षेत्र में इंदिराजी के विरोधियों में अत्यंत तत्त्वबद्ध रहनेवाले थे केवल निजलिंगप्पाजी। इंदिरा गाँधीजी के साथ मित्रता कर वे कांग्रेस की एकता अथवा स्वहित साधने का प्रयत्न कर सकते थे। परंतु यह उनके स्वभाव के विरुद्ध था। जनता पार्टी की रचना और उसके बाद उसका समर्थन, ये सब गाँधीमठ में सीखे गए वे तत्वबद्ध मूल्यों से प्रेरित

रहे। उसके बाद उनका जनता पार्टी के सांस्थिक राजनीति से दूर होना भी, इन्हीं मूल्यों व तत्वों के कारण ही! निजलिंगप्पाजी सहित सभी के सोचने का विषय यह था कि "तत्वहीनता को ही मुख्यगुण माननेवालों के राजनीतिक क्षेत्र में ऐसी मानसिक व्यक्ति कैसे टिक पाये? स्वातंत्र्योत्तर भारत के गाँधी विरोधी घने जंगल में वैयक्तिक रूप से बड़ा मूल्य चुकाकर, वे स्थिर रहे। वह मूल्य उन्होंने स्वसंतोष से चुकाया। "नीतिरहित, अनीतिकर, अवसरवादी, अधिकार-राजनीति-जगत में नैतिकता की रक्षा कैसे कर सकते हैं" – इसके लिए वे उदाहरण थे। अधिकार और पद के आमिष का निराकरण करनेवालों के लिए वे एक भरोसा की किरण जैसे थे। वैसे लोगों की संख्या बहुत ही कम होगी; धीरे धीरे वह संख्या भी और कम होती जा रही है। परंतु "हमेशा ऐसे लोग अवश्य होते हैं" – इसके लिए निजलिंगप्पाजी गवाह हैं। यह निजलिंगप्पाजी के वैभवीकरण के लिए नहीं कहा गया है परंतु यह स्पष्ट करने के लिए कि आज भी आदर्श राजनीति में एक क्रियामार्ग है। परंतु आदर्श और भ्रमात्मक वास्तविक दूरी – इनके बारे में गडबडी कर लेना ठीक नहीं है। वास्तव में अपने गुरु गाँधीजी के समान ही निजलिंगप्पाजी महान वास्तववादी और संगठन की सूक्ष्म बातों पर ध्यान देनेवाले थे।

राजनीतिक नैतिकता के साथ राजनीतिक कौशल को आनुषंगिक करने के द्वारा, गाँधीजी ने नैतिक और कौशलों के बीच के चिर संघर्ष का समाधान निकाला। एक मुख्य बात यह है कि मूलभूत तत्वों और गौण तत्वों के बीच एक निश्चित रेखा खींचते हुए उन्होंने यह काम किया। इसलिए मूलतत्वों के साथ हमेशा के लिए अविच्छिन्न बद्धता और गौण तत्वों के बारे में लेन देन का मार्ग पाना उन्हें संभव हो गया। सरल न होने पर भी निजलिंगप्पाजी अपने ही ढंग से इस गाँधीय आदर्श का अनुसरण करते चले।

7. नवमन्वंतर

आत्मसाक्षी और प्रज्ञावान राजनिति

इस जीवनी लेखक ने जब निजलिंगप्पाजी से पूछा कि आपने कब राजनीति से निवृत्ति पाई तो बुजुर्ग निजलिंगप्पाजी ने कहा – ''किसने कहा कि मैं सक्रिय राजनीति से निवृत्त हो गया हूँ? वह तो मेरे जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है; उससे मैं निवृत्त कैसे हो सकता हूँ? इस आवेशभरे जवाब ने लेखक को सोच में डुबो दिया और इन बातों के पीछे छिपे अर्थ के बारे में सोचने के लिए उन्हें मजबूर किया। उसी का फल है इस अध्याय का शीर्षक। सामान्यत: हम सक्रिय राजनीति और क्रियारहित राजनीति के बीच अंतर करते हैं। इसका अर्थ होता है – प्रस्तुत राजनीति में सीधा भाग लेना तथा केवल दूर से राजनीति के कार्यों को देखना। गिरते हुए स्वास्थ्य पर ध्यान न देते हुए, देशभर भ्रमण कर भ्रष्टाचार जैसे राक्षस के विरुद्ध समानमनस्कों को इकट्टा करने का प्रयत्न करनेवाले. छियानबे वर्ष की आयुवाले निजलिंगप्पाजी को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि वे सक्रिय राजनीति से दूर हो गए हैं। उनकी सक्रिय राजनीति के केंद्र स्थान में और उसके ध्येयों में मात्र बदलाव रहा। स्थूलरूप में बताना हो तो 1980 के दशक के अंत में पुराने जनता परिवार के विघटन और मृत्यु के बाद उनकी राजनीति की केंद्र बिन्दु, सरकार और राजनीतिक दलों जैसी संस्थाओं को छोड़कर उनसे संत्रस्तों की ओर हो गई है। आज का ध्येय सरकार के सांस्थिक अधिकार को पाने व उपयोग करने की ओर न होते हुए, हमारे राजनीतिक जीवन को घेरे हुए अनैतिकता के विरुद्ध जनता को जागृत कर उनमें राजनीतिक प्रज्ञा भरना और तदद्वारा सरकार के अधिकार का नियंत्रण करनेवाले प्रशासकों के सामने सवाल रखने के सीमित वलय की तरफ केंद्रीकृत हुए हैं। राजनीति के अंदर रहनेवाले निजलिंगप्पाजी अब उसके विरुद्ध संघर्ष करने के लिए लोगों को इकट्टा करने के लिए अत्यंत योग्य व्यक्ति हैं। 1980 के दशक के अंत तक निजलिंगप्पाजी आत्मसाक्षी तथा प्रज्ञावान राजनीति का अनुसरण करते हुए आज भी उसी में आगे बढ़ रहे हैं। स्वातंत्र्योत्तर भारत में

राजनीतिक आमिषों से दूर और गाँधीजी के तत्वों से बद्ध इने-गिने नेताओं में एक निजलिंगप्पाजी के लिए यह बदलाव योग्य ही है। परंतु इस केंद्रस्थान पलट को मूलभूत नैतिक तथा सैद्धांतिक बद्धता से दूर निकला पलट समझने की गलती कोई न करे! उदाहरण के लिए कह नहीं सकते कि अपने पूर्व राजनीतिक जीवन में भी आत्मसाक्षी तथा प्रज्ञावान राजनीति से वे अलग थे। उसका मतलब यह है कि ''उनकी बद्धता की सांस्थिक चौखट और उसका मार्ग भिन्न था'' इतना ही है न कि उसका सारसत्व! अर्थात् ये दोनों राजनीतिक क्रियाओं के मार्ग संघर्ष को सूचित नहीं करते हैं, परंतु उससे आगे बढ़ने की सूचना देते हैं।

इन कार्यक्रमों का एक अभिव्यक्ति रूप था, देश की पुनर्रचना और देश के विकास के बारे में राष्ट्रीय स्तर पर निरंतर संस्थाओं के साथ निजलिंगप्पाजी का संपर्क। ये संस्थाएँ थीं – सरदार वल्लभभाई स्मारक प्रतिष्ठान दिल्ली, लालबहादुर शास्त्रीजी का राष्ट्रीय स्मारक प्रतिष्ठान, स्वप्न तथा वास्तवों की संस्था, सुचेत स्मारक निधि हरिद्वार, कर्नाटक धर्मशाला समाज, श्रीनिवास मल्य स्मारक समाज, भारतीय विद्याभवन और अन्य अनेक संस्थाएँ थीं। वैसे देखा जाय तो भारतीय विद्याभवन बेंगलूर केन्द्र की स्थापना के लिए वे ही कारण थे। 10 दिसंबर 1995 को निजलिंगप्पाजी के 94वें जन्मदिन पर भवन की तरफ से हार्दिक अभिनंदन समर्पित किया गया। यह भवन के बेंगलूर केंद्र का 30वाँ वार्षिकोत्सव भी था; इस संदर्भ में निजलिंगप्पाजी ने वैश्विक स्तर पर भारतीय संस्कृति को लोकप्रिय बनानेवाले भवन को अपना गौरव समर्पित किया। निजलिंगप्पाजी का सक्रिय समर्थन तथा प्रोत्साहन प्राप्त की हुई एक और संस्था रही – कर्नाटक के होळल्केरे तालूक के मल्लाडीहळ्ळी में अपूर्व संत राघवेंद्रस्वामीजी द्वारा स्थापित किया गया 'अनाथ सेवाश्रम'। ''कोई सरकारेतर संस्था, समुदाय की सर्वांगीण – भौतिक, मानसिक, आध्यात्मिक और नैतिक–प्रगति साध सकती है''– इसका यह एक उज्ज्वल उदाहरण है। अस्सी के दशक में निजलिंगप्पाजी द्वारा सार्वजनिक जीवन को परिशुद्ध करने में अपनी तरफ से आसक्तिसहित विकास के लिए प्रोत्साहन पाई गई संस्थाओं में ये गिने जाते हैं। इन सार्वजनिक सेवा संस्थाओं के अलावा, उनकी सलाह और मार्गदर्शन के लिए आनेवाले लोगों के साथ वे निरंतर संपर्क रखते थे। लोगों क़ी समस्याओं के निवारण के लिए वे अधिकारियों के साथ बात करते थे। इसप्रकार उन्होंने आम आदमी के हित के प्रति अपनी बद्धता व्यक्त की। भारत के ग्रामीण जीवन

के प्रति विशेष आसक्ति रखते हुए, उन्होंने पिछड़े प्रदेश के सर्वांगीण विकास की साधना के लिए कर्नाटक के उत्तर कन्नड़ जिले के बनवासी में 1982 में स्थापित 'बनवासी वलय विकास समिति' को काफी मात्रा में सहायता की। उत्तर कर्नाटक की प्रमुख शिक्षासंस्था – के.एल.इ. सोसाइटी इसका पोषण कर रही है। केंद्र और राज्य सरकारों की सहायता से उन्होंने इस योजना को अपनाया। 1980 में पूरे देश में वैविध्यमय जनसमुदायों के साथ सीधा संपर्क रखने के द्वारा ऐसे कार्यक्रमों को निजलिंगप्पाजी ने आगे बढ़ाया। देश की हालत के बारे में सतर्क करते हुए, अपनी कल्पना के नैतिक तथा तत्वबद्ध राजनीति को समझाया। लोगों को आदर्श और मूल्यों के बारे में बताकर, वैसी राजनीति में क्रियाशील होने के लिए लोगों को उत्साहित किया। इस अध्याय में उन संदर्भों के विवरण देने का उद्देश्य नहीं है। उसके बदले इस वरिष्ठ राजनेता द्वारा आत्मसाक्षी और प्रज्ञावान नवराजनीति के स्वरूप का वर्णन करने के लिए कुछ निर्देशित संदर्भों का वर्णन करना हमारा उद्देश्य है। 8 मार्च 1983 को 'गुळेद्गुड्ड' में जनतादल के कार्यालय की नींव डालने के लिए निजलिंगप्पाजी को आमंत्रित किया गया। इस संदर्भ में उन्होंने भाषण देते हुए स्वस्थ राजनीति चाहनेवालों को एक सलाह दी। राजनीतिज्ञों के लिए निवृत्ति की आयु का नियम नहीं होता है – वह सही हो सकता है – फिर भी, अपनी शक्ति के कम होने पर भी वे राजनीति में आगे बढ़ना चाहते रहते हैं। इससे योग्य युवाओं को आगे आने में बाधा पड़ती है। इससे भी अधिक दिलचस्प विषय यह है कि निजलिंगप्पाजी ने उपदेश दिया कि इन वरिष्ठ लोगों को स्वेच्छा से अधिकार छोड़कर, युवा राजनीतिज्ञों को उदाहरण पेश करना चाहिए। निजलिंगप्पाजी के मन में यह विषय था या नहीं हम नहीं जानते। परंतु काकतालीय रूप में यह सलाह प्राचीन भारतीय आश्रम की परिकल्पना के लिए समानंतार में है। हर आश्रम के अपने कर्तव्य होते हैं। हर व्यक्ति को उन सभी को समान बद्धता से पूरा करना चाहिए। उन्होंने सांप्रदायिकता का खंडन करने के लिए, इस मौके का उपयोग किया; राजनीति में धर्म निरपेक्षता का अनुसरण करने के लिए कहा। आगे चलकर, अपनी सभी प्रमुख सिंचाई की योजनाओं को पूरा करने के लिए उन्होंने राज्य सरकार को आग्रह किया। सतर्क किया कि वरना जनता, सरकार को उतार देगी। एक वर्ष के बाद 8 मार्च 1984 को पटना के जयप्रकाश नगर में जनतादल के दूसरे वार्षिक अधिवेशन में उन्होंने भाग लिया। उस समय भाषण देते हुए

उन्होंने शासन करनेवाली कांग्रेस (आइ) सरकार की निरंकुशता का खंडन करते हुए सब विरोधी दलों को समान कार्यक्रमों में एक जुट होकर, सरकार को निकाल देने के लिए कहा। दल के अध्यक्ष चंद्रशेखरजी द्वारा प्रस्तावित देश की हितसाधना और समग्रता की रक्षा के लिए विरोधी दलों के एकमत का उन्होंने समर्थन किया। केंद्र में अधिकार निर्वाह करने में असफल जनतादल के बारे में उन्होंने बताया कि उसका कारण नेताओं की स्वहितासक्ति ही है। 25 मार्च 1984 मार्च को निजलिंगप्पाजी ने 'इळकल' शहर में महांत स्वामीजी के बारहवें वार्षिकोत्सव के उद्घाटन समारोह के अध्यक्ष बने थे। समारोह के समाप्त होते समय 'सांपके स्वामीजी' के नाम से प्रसिद्ध बागेवाडी के स्वामीजी ने जीवित सांप को हार के रूप में उनके गले में डाला। सांप से भरी टोकरी में से एक जीवित सांप को निकालकर उसे उन्होंने निजलिंगप्पाजी को पहनाया था! स्वामीजी ने सांप को छूने के लिए निजलिंगप्पाजी से कहा। परंतु सहज ही वे उसे छूने में हिचकिचाये। सांप टोकरी में चला गया। नेता को इसप्रकार नए तरह के हार पहनाने का फोटो लेने के लिए फोटोग्राफर्स बडे ही खुश थे! कन्नड़ की एक दैनिक पत्रिका ने दूसरे दिन इसका फोटो छापकर उसे 'सर्पभूषण' नाम दिया था। सांप का आभूषण पहननेवाला है सर्पभूषण।

एक साल के बाद, 6 मार्च 1985 को जनतादल के सदस्यत्व को नियमानुसार इस्तीफा देते हुए निजलिंगप्पाजी ने अनेक वर्षों से मन में छिपी भावना को एक निश्चित रूप दिया। उसके बारे में चित्रदुर्ग से उन्होंने दूरभाष द्वारा पी.टी.आइ. के साथ बात की। उन्होंने बताया कि किसी भी इच्छा के बिना सभी दलों की आलोचना करने के स्वातंत्र्य को पाने के लिए वे इस्तीफा दे रहे हैं। जब किसी ने पूछा कि "इस इस्तीफा के साथ कर्नाटक में शासन करनेवाली जनतादल की सरकार के बारे में उनके मन में जो अतृप्ति है – उसका क्या कोई संबंध है?" तो निजलिंगप्पाजी ने बिना किसी झिझक के जवाब दिया कि " इंदिरागाँधीजी अथवा राजीवगाँधीजी की केंद्र सरकार से कर्नाटक की जनता सरकार ने उत्तम रीति से कार्य निर्वाह किया है।" उन्होंने बताया कि "वे पक्षेतर व्यक्ति रहना चाहते हैं।" वस्तुतः 1978 में ही उन्होंने इस्तीफा दिया था, लेकिन उसका कारण था केन्द्र में जनता पार्टी के नेताओं से असंतुष्टि। परंतु तब उसे वापस लेने के लिए उन्हें मनाया गया था।

1985 भारत राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म शताब्दी वर्ष था। इसलिए कांग्रेस शताब्दि उत्सव मनाने के लिए वह एक सुसंदर्भ था। "परंतु उसका आचरण

श्री रामकृष्ण हेगडे जी के साथ डॉ. एस. निजलिंगप्पा जी

सुत्तुर मठ के श्री शिवरात्रीश्वर देशिकेन्द्र स्वामीजी के साथ डॉ. एस. निजलिंगप्पा जी

करने के लिए मूल कांग्रेस कहाँ था? समारोह के आचरण का हक किसका है? छिद्र हुए मूल कांग्रेस के एक टुकडे – कांग्रेस (आइ) क्या उस हक के लिए प्रतिपादन कर सकता है? अथवा वह एक पक्षेतर अथवा सर्वपक्षों का आचरण होगा?'' इस संदर्भ में ये सब सवाल सामने आए। 4 मई 1985 को पत्रिकाओं से बात करते हुए, निजलिंगप्पाजी सहज ही इन विषयों के बारे में चिंतित रहे। उन्होंने कहा कि बुलाने पर भी वे कांग्रेस शताब्दि उत्सव में भाग नहीं लेंगे। परंतु अब तक किसी ने भी उन्हें आचरण के लिए आमंत्रण नहीं भेजा था। इसलिए भाग लेने का सवाल ही नहीं था। उनका तर्क था कि अब सच्ची कांग्रेस का अस्तित्व में न होने के कारण उसमें भाग नहीं लेंगे। अब तो केवल इंदिरा कांग्रेस थी। कांग्रेस के वर्णरंजित इतिहास और उसमें जो महान नेता थे, उनका उन्होंने गर्व से स्मरण किया। उसका अध्यक्ष होने का सुयोग प्राप्त होने पर उनमें अभिमान था। शिकायत की कि इंदिराजी ने कांग्रेस का विनाश कर दिया। उन्होंने मजाक किया कि अंग्रेजी भाषा में जितने अक्षर हैं, उतने आज कांग्रेस हैं। राजीव गाँधीजी ने 5 मई 1985 को कांग्रेस शताब्दि उत्सव का उद्घाटन किया। कुछ वरिष्ठ नेताओं के भाग न लेने पर उन्होंने विषाद व्यक्त किया। प्रायः इनमें निजलिंगप्पाजी भी शायद एक थे। उसके बाद शीला कौलजी ने बेंगलूर में समारोह का उद्घाटन किया।

कर्नाटक की सांस्कृतिक राजधानी मैसूर में 15 दिसंबर 1985 को राष्ट्रकवि कुवेंपु जी ने विश्व कन्नड़ सम्मेलन का उद्घाटन किया। वह 17 दिसंबर 1985 तक चलनेवाला था। उसमें विविध विषयों पर गोष्ठियों और विचार गोष्ठियों की व्यवस्था की गई थी। उनमें एक कर्नाटक की राजनीतिक परंपरा के बारे में थी। उसके अध्यक्ष बने थे निजलिंगप्पाजी, जो सहज ही उसके लिए योग्य थे। उसमें उन्होंने जाति-धर्मों के बीच सौहार्दता और सहिष्णुता-भाव पर जोर दिया। 20 मार्च 1986 को निजलिंगप्पाजी बेलगाँव से करीब 35 किलोमीटर दूर के एक छोटे गाँव नंदगढ़ में 'खानापुर तालूक कृषि मार्केट संघ' द्वारा निर्मित, कल्याण मंटप (शादी मंडप) के उद्घाटन समारोह के अध्यक्ष बने थे। इस संदर्भ में वे अपने हृदय के समीप के विषय की ओर मुड़े थे और वह विषय कृषि विकास और सिंचाई के बारे में था। उनकी सरकार द्वारा शुरू की गई बड़ी सिंचाई योजनाओं को आगमी सरकारों द्वारा पूरे न होने पर, उन्होंने विषाद व्यक्त किया। मुख्यमंत्री के रूप में उन्होंने 1964 में ही इन्हें प्रारंभ किया था तो 1974

तक उन्हें पूरा होना चाहिए था। नहीं होने के कारण क्या थे? यदि उन्हें पूरा किया जाता तो करीब 70 लाख एकड़ जमीन की सिंचाई हो जाती थी। उससे सालाना, दो करोड़ रुपयों की आमदनी प्राप्त हो सकती थी।

इस संदर्भ में उन्होंने अपने मित्र, वरिष्ठ स्वातंत्र्ययोद्धा, दिवंगत बसप्पाण्णा अरगावी जी की जीवनी की पुस्तक का लोकाप्रण किया। फिर सिंचाई योजनाओं पर बात करते हुए – आंध्र सरकार ने एकचित्त और दृढ़ निश्चय से जो नागार्जुन सागर योजना को पूरा किया तो उससे राज्य के लिए धान काफी होकर दूसरे राज्यों को देने के लिए भी धान पैदा करता है – उसका उदाहरण सामने रखा। 8 जून 1986 को बेंगलोर में पी.जी. हळकट्टीजी के मंच के नाम पर वीरशैव मठाधिपतियों द्वारा आयोजित की गई 'जगज्योति बसवेश्वर जयंती' में गुरुदर्शन के बारे में विचारगोष्ठी का उन्होंने उद्घाटन किया। यह लालबाग में हो रहा था। उस समय भाषण देते हुए उन्होंने 'दासोहमार्ग का अनुसरण करते हुए, गरीब तथा दुखी लोगों के अज्ञान को दूर करने के लिए वीरशैव स्वामीजियों से कहा।' ''यदि मठाधीश बसवण्णा के सच्चे भक्त और अनुयायी हैं तो उन्हें भक्तों के पास जाकर उनकी समस्याओं को समझ लेना चाहिए; धनी लोगों से दूर होकर ही वे संघरक्षा के व्रत का पालन कर सकते हैं।'' उन्होंने अपने शिष्यों से मिलने के लिए मीलों तक पैदल जानेवाले 'कंचीकामकोटी स्वामीजी' का उदाहरण दिया। कुछ मठाधीशों की भ्रष्टता के बारे में निजलिंगप्पाजी ने बड़ी ही कटुता से बात की – ''कुछ मठाधीशों को विदेशी कार ही चाहिए। दूसरे किसी और मठ में करीब तीन करोड़ रूपयों की आयवाले संसादनों को अपने वश में लेने के लिए आंतरिक स्पर्धा हो रही है! उन्होंने कहा कि अपने मन की बात कहने में उन्हें कोई झिझक नहीं है। इससे चाहे किसी को भी गुस्सा आ जाय तो कोई परवाह नहीं है। वीरशैव धार्मिक संस्थाओं की अव्यवस्थाओं के बारे में उन्होंने कुछ स्वामीजियों द्वारा कॉलेजों को प्रारंभ कर फिर लोगों से धन संग्रह करने पर आपत्ति व्यक्त की, और इस धन का अपनी इच्छा के अनुसार खर्च करने पर उनके प्रति क्रोध व्यक्त किया। उन्होंने सवाल किया कि ''क्या यह आपका अपना धन है? प्रतिदिन लोगों के दुःख व संघर्ष को देखने के कारण वे इतने आक्रोश से बात कर रहे थे। बसवण्णा का उपदेश था – दासोह का अनुसरण करो – यही समाज की सेवा है – यही लिंगायत धर्म का तत्व है।'' उन्होंने स्वामीजियों को अपने शिष्यों के सौजन्य से और समाज के लिए

उपकारी होकर जीवन चलाने के लिए समझाने को कहा। श्री जयदेव स्वामीजी की उदारता की उन्होंने बड़ी प्रशंसा की। दासोह के लिए रखे धन को अपनी माता को भी देने से उन्होंने इनकार किया था – इस बडप्पन की प्रशंसा की। जब उनकी माताजी के लिए साड़ी लाने के लिए उनके नौकरने वह धन लिया तो क्रोधित होकर वह धन लौटाने के लिए उसे कहा। निजलिंगप्पाजी ने पूछा कि ''आज ऐसे लोग कितने हैं ? उन्होंने विषाद व्यक्त किया कि सरकार और मठाधिपति दोनों देश के 40 करोड़ लोगों को रोजगार देने में असफल हो गए हैं। बेरोजगारी समस्या के बारे में चिंतन करने के लिए उन्होंने कहा। बसवेश्वर की मूर्तियों की स्थापना करने में धन और समय का दुरुपयोग होता है। उसके बदले बसवण्णा के उपदेशों को गंभीरतापूर्वक समझना चाहिए और वही बसवण्णा की मूर्ति होगी। बसवण्णा के उपदेशों को विश्वभर प्रसारित करना होगा; उन्हें केवल वीरशैवों तक सीमित नहीं रखना चाहिए। बसवण्णा के उपदेशों का संकुचित दृष्टि से अर्थ लगानेवाले लिंगायतों के दृष्टिकोण की आलोचना करनेवाले अंबेडकरजी का उन्होंने उल्लेख किया।

1986 के उत्तरार्ध में आरक्षण के बारे में वेंकटस्वामी आयोग के रिपोर्ट ने कर्नाटक के लोगों के सामने समस्या खड़ी कर दी थी, जो उन्हें तंग कर रही थी। कर्नाटक के वीरशैव और ओक्कलिग (कृषिक) दो प्रबल कौमों के लोग इससे अतृप्त हुए थे; क्योंकि उन्हें आरक्षण नहीं मिला था। इसलिए वे रिपोर्ट के विरुद्ध विरोध व्यक्त कर रहे थे।

इस संदर्भ में पूर्व एम.एल.ए. पी. रामदेवजी ने आरक्षण के बारे में बेंगलूर में 18 सितंबर 1986 को एक विचारगोष्ठी का आयोजन किया। उसके अध्यक्ष थे कडिदाळु मंजप्पाजी और निजलिंगप्पाजी। दोनों ने रिपोर्ट के विरुद्ध विरोध करनेवाले अपने कौमवालों से उसे रोक के लिए बिनती की। इसका कारण था कि हावनूर तथा वेंकटस्वामी – दोनों के रिपोर्टों के विरुद्ध उनकी अतृप्ति व्यक्त करनी थी। दोनों ने तर्क किया कि सरकारी नौकरी का आकर्षण ही इस आरक्षण व्यामोह का मूल कारण है। निजलिंगप्पाजी का तर्क यह था कि सालाना 9000/- रूपयों की आयवालों को आरक्षण की सुविधा नहीं देनी चाहिए। उनके अनुसार आर्थिक रूप से पीछे रहना ही आरक्षण का मानदंड होना चाहिए। फिर भी उन्होंने स्वीकार किया कि जितना भी दूर करने के प्रयत्न करने पर भी भारत में जाति शाश्वत रूप से स्थिर हो गई हैं इसलिए पिछडेपन की दृष्टि से जातियों

की संपूर्ण रूप से उपेक्षा करना संभव नहीं है। उन्होंने तुरंत हड़ताल को बंद करने के लिए बिनती की। उन्होंने सलाह दी कि उसके बदले ग्रामों व तालूकों में अभी जाकर जीवन स्तर के बारे में जानकारी का संग्रह करे। उन्होंने स्मरण किया कि करीब आठ-दस वर्षों के पहले ही ऐसी जानकारी का संग्रह करने के लिए उन्होंने राज्य और केंद्र सरकारों को सूचना दी थी। परंतु उससे कोई लाभ नहीं हुआ। उन्होंने आग्रहपूर्वक कहा कि आरक्षण राष्ट्रीय स्तर का विषय है; इस कारण उसके लिए राष्ट्रीय स्तर का निवारणोपाय ढूँढना चाहिए। सरकारी नौकरियों को बढ़ाने की नीति का विरोध करते हुए कडिदाळ मंजप्पाजी ने गाँवों की गरीबी की उपेक्षा का खंडन किया। सरकारी नौकरी के आकर्षण हैं – अच्छी तनख्वाह, रिश्वत और थोड़ा काम! सरकार द्वारा अपने नौकरों को अधिक तनख्वाह देने के विरुद्ध उन्होंने क्रोध व्यक्त किया।

लिंगायत शिक्षासंस्था के शताब्दी उत्सव और 'हुरकड्ली अज्जा' के 88वें जन्मदिन के समारोह के आचरण में भाग लेने के लिए 16 मई 1987 को निजलिंगप्पाजी हुबली आए। इस संदर्भ में उन्होंने शिक्षाक्षेत्र में अच्छा कार्य करनेवाली संस्था के कार्यों की प्रशंसा की। निरंतर प्रदूषण रहित बहती हुई गंगा नदी से उन्होंने समिति की तुलना की। 16 मई 1987 को धारवाड़ में कर्नाटक खादी संगठनों के प्रतिनिधियों के सम्मेलन में वे मुख्य अतिथि थे। उन्होंने वहाँ जो भाषण दिया वह गाँधीजी की अर्थव्यवस्था को जो महत्त्व दिया था उसपर प्रकाश डालता है। श्रोताओं में सक्रिय मनोभाव भरने के उनके संवहन कौशल के लिए यह एक उदाहरण है। उन्होंने कहा – ''क्या यहाँ कोई हरिजन हैं? कृपया वे खड़े हो जाय।'' सभा में फुसफुसाहट शुरू हुई, कोई खड़ा नहीं हुआ। उन्होंने फिर कहा ''शायद कोई नहीं है; मैं अपने को हरिजन समझकर बात करूँगा; तुम लोग अपने को हरिजन समझकर सुनो। हमारे देश में बारह करोड़ हरिजन हैं। पहले वे चमड़ा साखकर जूते तैयार कर जीवनयापन करते थे। गाँवों में मृत गाय के चर्म का कच्चे पदार्थ के रूप में उपयोग करते थे। परंतु आज वह चर्म दूर दूर के शहरों में बाटा और फ्लेक्स कंपनी और कारखानों में पहुँचता है। अब कोई बदबू नहीं रहती है। वहाँ से चप्पल व शू – बनकर मार्केट पहुँचता है। इस प्रक्रिया में कुछ ही लोग काम करते हैं। इसकारण गाँवों में हरिजनों के लिए पारंपरिक जीवन का स्रोत ही जैसे सूख गया है। आज सभी को सरकारी नौकरी ही चाहिए। परंतु सरकारी

नौकरी हजारों में केवल 15 लोगों को ही मिलती है और उसमें दो या तीन हरिजनों को मिल सकती है। परंतु सरकार इस सच्चाई को छिपाती है, क्योंकि आरक्षण द्वारा हरिजनों के मतों को आकर्षित करना चाहती है। सरकारी नौकरी न मिलनेवाले करोड़ों हरिजनों का क्या प्रयोजन ? इसकारण नयी आरक्षण नीति कुछ ही क्षेत्रों में मात्र जारी होती है। बाकी लोगों को स्वयं रोजगारी के लिए मौका देना है। चमड़े को स्वच्छकर ठीक रूप देना और भू-तैयारी जैसे कामों का आरक्षण, हरिजनों को ही नहीं, दूसरों को भी अगर मिलता है तो हरिजनों के साथ दूसरों को भी काम मिलता है; और जीवन चला सकते हैं। लिंगायत, ब्राह्मण और दूसरे भी ऐसे काम करें।'' देश की राजनैतिक व्यवस्था के बारे में उन्होंने कहा – ''शासक बनकर यशस्वी होने के बाद, जब वह मंत्री बन जाता है तो उस गरीब शासक को शासन अपने वश में लेकर, वह व्यवस्था उसे दूसरे गरीबों से दूर रख देती है। एक बार मंत्री बनकर पाँच वर्षों तक समृद्धि सुख का अनुभव करते हुए, उसके सामने बाद के पाँच वर्षों के बारे में सोचना है; इसी कारण वह अधिकार की समाप्ति के बाद भी आगे चलकर, उसी तरह समृद्धि सुख का अनुभव करने के लिए भ्रष्टाचार को अपनाता है। अन्याय का धन इकट्ठा करके रखता है। खद्दर को कई लोग बहुत ही खुरदरा और कनिष्ट कहकर आपत्ति उठाते हैं; उसके बाद उन्होंने कहा कि 1920 के दशक से ही वे उसको धारण करते आए हैं। ये कपड़े मिल के कपडों से भी अधिक समय टिकते हैं। इसे मैं साबित करने के लिए तैयार हूँ। करीब 18 वर्ष पहले के कपडे आज भी पहनने लायक हैं; ''मेरी तरफ देखिए, अभी भी मैंने शुद्ध खद्दर के कपडे ही पहना है।'' कहते हुए वे मुस्कुराने लगे। सभी सभासद जोर से हँसे। 1 नवंबर 1987 को ''कन्नड़ साहित्य सम्मेलन'' में भाग लेने के लिए वे गुलबर्गा गए थे। सरकारी नौकरी में रहते हुए कन्नड़ भाषा के विकास के लिए कार्य करने के कारण, वहाँ उनका सम्मान किया गया। असली साहित्य का अर्थ क्या होता है ? इसके बारे में अपनी परिकल्पना का वर्णन करने के लिए उन्होंने उस संदर्भ का उपयोग किया। उन्होंने कहा कि ''सोते हुए लोगों को जगानेवाला, आँखें खोलनेवालों को, उठकर बिठानेवाला, बैठे हुए को उठाकर खड़ा करनेवाला, और खड़े हुए को खुशी से नाचने के लिए मजबूर करनेवाला साहित्य ही सहज अथवा असली साहित्य है।'' इन सरल शब्दों के पीछे साहित्य की रूपांतर करने की शक्ति ध्वनित होती है।

1987 में निजलिंगप्पाजी ने एक अत्यंत विशिष्ट कार्य किया – और वह था – उन्होंने अपने सहकर्मी तथा मित्र अतुल्य घोषजी के स्मरण में कोलकाता में व्यवस्था की गई 'अतुल्यघोष स्मृति' में भाषण देना। वह पहला स्मारक भाषण था। अतुल्य घोषजी के हृदय वैशाल्य और तेज दिमाग का वर्णन करने के बाद उन्होंने भारत की अर्थ व्यवस्था के असंतुलन के बारे में गंभीर गहरा और व्यापक विश्लेषण करते हुए उसके निवारण के उपायों के बारे में विस्तार से बताया। बच्चे और फूलों के बारे में घोषजी के प्रेम का उल्लेख किया फिर आर्थिक विश्लेषण करने लगे। यह उन्होंने एक व्यावसायिक अर्थ विशेषज्ञ जैसे नहीं किया। अपने पचास वर्षों के राजनीतिक अनुभवों पर इस समस्या के बारे में अर्जित व्यावहारिक विश्लेषण किया। उन्होंने कहा, पिछले चालीस वर्षों की आर्थिक प्रगति ने नगर भारत और ग्रामीण भारत के बीच के अंतर को बढ़ा दिया है। अपने प्रमुख विचारों को बताने से पहले उन्होंने गाँधीजी द्वारा बताये गए ''धनी लोग स्वेच्छा से अपना धन गरीबों में नहीं बाँटते तो ''रक्तपात और हिंसात्मक क्रांति के द्वारा वैसा किया जाएगा'' इन शब्दों को याद दिलाया। अतः ''अंतर केवल नगर भारत और ग्रामीण भारत के बीच नहीं अपितु वर्गों के बीच के अंतर से भी होता है।'' इस संदर्भ में उन्होंने गाँधीजी की अहिंसा और अधिकार तथा संसाधनों के विकेंद्रीकरण तत्व के बारे में भी बताया। उसके बाद सरदार पटेलजी का नाम लेते हुए कहा कि वे ग्रामीण भारत की समस्याओं को जानते थे; यह कहते हुए उन्होंने गाँधीजी के साथ उनको भी शामिल किया। नेहरूजी का नाम सीधे न लेते हुए उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर भारत में हुए आर्थिक विकास के नमूने को आर्थिक तथा सामाजिक पतन का कारण है'' कहते हुए शिकायत की। फिर, भारत के संविधान का संदर्भ देते हुए, देश के मूलभूत तत्त्व – मूलभूत मानव अधिकार और सरकार की नीति निर्देशक तत्वों की ओर ध्यान को केंद्रीकृत किया। उन्होंने कहा कि पहला सामान्य लोगों को निषेधात्मक स्वातंत्र्य देता है तो दूसरा उन्हें सकारात्मक स्वातंत्र्य देता है। स्वतंत्र भारत की त्रासदी है कि इस दूसरे अंश की उसने पूर्णरूप से उपेक्षा की है। नाम न लेते हुए कहा कि नेहरूजी के विकास का यह नमूना 'औद्योगिक पश्चिम के दिखावे' पर आधारित है। उसने पूँजी पर आधारित बड़े उद्योगों को प्रोत्साहित किया। साथ ही, धन, यंत्रोपकरण तथा तांत्रिकता को भी विदेश से आयात किया। इसकारण, देश बड़े ऋणभार में डूब गया। उसके बाद आया दिखावटी समाजवाद; इसमें

लैसेन्सराज और अधिकारशाही प्रमुख हुए थे। यह तो भ्रष्टाचार का मूल होता है। रिश्वत से मौज करना होता है। शहर के दस प्रतिशत इस विकास का फल चख सके। 75% ग्रामीण जनता मूलभूत सुविधाओं से भी वंचित रह गयी थी। निर्देशक तत्वों में प्रतिपादित साक्षरता से भी वे वंचित रहे। भारत के आर्थिक जीवन की नींव कृषि है – कहते हुए, उद्योग जैसे ही वैज्ञानिकता से व्यवस्थित रूप में सुधार करने की आवश्यकता पर सुझाव दिया। उन्होंने कहा ''मेरा दृढ़ अभिप्राय है कि कृषि भी एक उद्योग है; इसलिए सही ढंग से वैज्ञानिक रीति से उसका विकास करना चाहिए।'' सिंचाई योजनाओं की उपेक्षा होने के बारे में भी उन्होंने श्रोताओं का ध्यान आकर्षित किया। उनके विचारानुसार, कृषि कार्यों पर धन लगाने से 25% आय मिलती है। उन्होंने सवाल किया कि ''सार्वजनिक क्षेत्र में अथवा खासगी क्षेत्र में क्या इतनी आय लानेवाला कोई दूसरा उद्योग है क्या?'' उसके बाद उन्होंने ग्रामीण प्रदेशों के शुचित्व और स्वास्थ्य के बारे में बताया कि उसकी भी उपेक्षा की गई है। गोबर अनिल स्थावरों के प्रामुख्य के बारे में विवरण देते हुए बताया कि इस विषय में भी भारत चीन से निचले स्तर पर है। ''हमारी विद्युत समस्या के बारे में नए नए विचारों की आवश्यकता है'' कहते हुए वे जैविक अनिल तंत्रज्ञान पर बात करने लगे। राज्य और केंद्र सरकार में धन लगाने वाले केवल बडी जैविक अनिल योजना ही इंधन समस्या का निवारण कर सकती है। जैविक अनिल तंत्रज्ञान क्षेत्र में अधिक अनुसंधान की जरूरत है। गृह उद्योग का विकास करनेवाले गाँधीजी के मार्गों द्वारा ही गाँवों की बेरोजगारी की समस्याओं का निवारण कर सकते हैं। उन्होंने आरोप लगाया कि नेहरूजी की विकास योजना चिंतनरहित है। उसमें सरकार और धनी लोग मिलकर ऐसे उद्योगों को अधिक स्थापना करने की चाल है। क्रोध से कहा कि यह नीति, उपनिवेशी आर्थिक विचार को आगे बढ़ाने की है। 1947 के बाद प्रयोग में लाये विकास के उदाहरण भारत की वास्तविकता को समझकर नहीं किया गया है। और कहा कि ''यह कम जनसंख्यावाला देश नहीं है जहाँ श्रमिकों की कमी हो'' – इस असलियत को न जानने का फल है। सारांशतः पूंजी आधारित आर्थिक व्यवस्था के बदले, श्रमिक आधारित आर्थिकता की तरफ हमारी आद्यता को बदलना चाहिए। गरीबी की समस्या और बेरोजगारी का सीधा संबंध है। ग्रामीण प्रदेशों में भूमि-बाँटने की तरफ ध्यान देते हुए निजलिंगप्पाजी ने सलाह दी – ''सारी भूमि का आर्थिक-संभव

निर्वहणा-संभव रीति में विभाजन करना चाहिए। सिंचाई प्रदेशों के लिए यह छः एकड़ खुश्की ज़मीन के लिए 20 से 30 एकड़ होगा। कोई और आय न होनेवाला व्यक्ति इस विभाजित भूमि के टुकडे का नियंत्रण करेगा।'' इसे उन्होंने ''भूमि का सामाजिकीकरण'' कहा। 'ग्राम भारत' के बाद 'नगर भारत' की तरफ उन्होंने ध्यान आकर्षित किया, जहाँ जीवन दूभर होकर विकृत रूप धारण कर रहा था। ऐसे निर्वहणातीत शहरों की जनसंख्या को वहाँ के कारखानों को दूसरे स्थानों पर स्थापित करते हुए, उसे बाँटना चाहिए। कपडे और खाद्य तैलों के उत्पादन को रोकते हुए, बड़े बड़े यंत्र न होनेवाले विकेंद्रित स्थानीय घटकों को उनमें स्थानांतरित करना चाहिए। भारत के ग्रामों को आवश्यक वस्तुओं के संबंध में स्वयंपूर्ण बनाना होगा। इसके बाद, रिश्वत और कालेधन के नियंत्रण की तरफ उन्होंने ध्यान आकर्षित किया। आय के बारे में प्रधानमंत्री से लेकर बड़े बड़े अधिकारियों तक सभी की सच्ची आय के बारे में सख्त लेखापरीक्षा होनी चाहिए। अधिकारशाही के सेवामनो भावरहित होने का उन्होंने खंडन किया। संभवनीय सभी कठिन कारवाई द्वारा इसे ठीक करना है। सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक घटकों की आर्थिक दुःस्थिति के स्वरूप के बारे में विषाद व्यक्त करते हुए कहा कि ''हानि को कम करने के लिए कठिन कारवाई करना चाहिए।'' 'योजना आयोग' नाम के सफेद हाथी के बारे में भी उन्हें अतृप्ति थी। ''संविधानेतर और प्रायः क्रियारहित'' इन शब्दों में उन्होंने उसका वर्णन किया। समाप्ति में, उन्होंने इसके लिए दस निवारणोपायों को सूचित किया जो निम्नलिखित हैं –

1. पूंजी आधारित उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहित न करके श्रम आधारित उद्योगों की स्थापना करना। दस वर्ष में दस या बारह करोड़ एकड़ भूमि को सिंचाई के अंतर्गत लाना चाहिए। समय और धन के अपव्यय रोकने से यह संभव है।
2. केंद्रीकृत तथा विकेंद्रीकृत उत्पादनों के बीच जहाँ संघर्ष होता है वहाँ सर्व प्रयत्नों द्वारा विकेंद्रीकृत उत्पादन को प्रोत्साहन देना होगा।
3. गाँधीजी द्वारा बताए गए रचनात्मक कार्यक्रमों को अत्यधिक प्रोत्साहन दीजिए; इससे ग्राम स्वयंपूर्ण होंगे और अपने पैरों पर खड़े हो जायेंगे।
4. ऊपर जैसे बताया गया है, वैसे जहाँ जहाँ हो सकता है, वहाँ गृह उद्योगों को मौका दीजिए।

5. जैविक अनिल और बेरोजगारी के कारण उत्पन्न मानव-शक्ति का उपयोग कर, जानवर-सामर्थ्य का पूर्ण उपयोग करता है; गांवों से पास के मार्केट को कृषि उत्पादनों को ले जाने के लिए बैल गाडी का उपयोग कीजिए, ट्रकों का नहीं। इससे पेट्रोल की बचत होगी।
6. सरकारी कर्मचारियों की गैरईमानदारी से अर्जित आय का पता लगाइए; और उसे वश में कर लेने के लिए कानूनों की रचना करें।
7. अप्रामाणिक सरकारी कर्मचारियों को विभिन्न प्रकार के दण्ड देना होगा; उत्तरदायित्व और दण्ड को जारी करना चाहिए।
8. संपत्ति और अधिकारों के एकत्रित होने को रोकिए।
9. गाँधीजी का स्मरण करो और उनका अनुसरण करो।
10. सत्यम् शिवम् सुन्दरम्।

इस भाषण के महत्व के बारे में जितना कहो उतना कम है। वह भारत की बहुमुखी समस्याओं का विश्लेषण करता है; इतना ही नहीं उसके लिए निवारणोपायों को भी सूचित करता है। शायद उसे मानना संभव न होगा। परंतु उसको गंभीरता से लेना और सोचना चाहिए कि हमारी इस संदिग्ध स्थिति में वह कहाँ तक कार्यसाधु होगा। अधिकारशाही को सुधारना आदि कुछ सलाह सूक्ष्म होने पर भी और अपेक्षणीय लगने पर भी व्यवहार में लाना आसान नहीं लगते। परंतु इस भाषण का महत्व उसके विवरण में नहीं वह है सारांशतः उसकी प्रामाणिकता में; नेहरूजी के विकास-नमूने के केंद्र आलोचना में। गाँधीजी के आदर्शों की ओर उनकी बद्धता संपूर्ण है। प्रायः नैतिक पतन के कूप में पड़े हमारे देश के जीवन में महात्मा जी के आदर्शों को फिर से लाने का समय आया है।

22 मई 1988 को बेंगलूर में हुए, स्वातंत्र्ययोद्धाओं के अधिवेशन में निजलिंगप्पाजी अध्यक्ष बने थे। उस संदर्भ में स्वातंत्र्य प्राप्ति के चालीस वर्षों के बाद भी सामाजिक तथा आर्थिक असमानता कम न होने के बारे में उन्होंने विषाद व्यक्त किया। शासक वर्ग पर इसकी जिम्मेदारी है; उसमें भी, ऊँचे अधिकार व स्थानों में रहनेवाले लोगों पर है। अधिकार में रहनेवाले राजनीतिज्ञ, धन अर्जन करते भ्रष्ट हो गए हैं। इसकारण कुछ ही लोगो में धन केंद्रीकृत हो गया है। ग्रामीणों की गरीबी के लिए केंद्र और राज्य सरकार दोनों ही कारण

हैं। योजना आयोग को ग्रामीणों और किसानों की दु:स्थिति के बारे में शायद पता नहीं है। गरीबों की कनिष्ट आवश्यकताओं को पूरा कर, क्रमशः गरीबी का निवारण करनेवाली योजनाओं पर जोर डालने के लिए उन्होंने प्रधानमंत्री राजीवगाँधीजी से बिनती की। उसके बाद 29 मई 1988 को कन्नड़-संगठनों के सम्मेलन का उन्होंने उद्घाटन किया। कन्नड़वालों की हितासक्ति की रक्षा करते हुए, महाजन और महिषी रिपोर्टों को जारी करने के लिए उन्होंने सरकार से बिनती की। साहित्यकार और कलाकारों द्वारा आयोजित इस सभा में भाषण देते हुए उन्होंने कहा कि "प्रगति की दृष्टि से कर्नाटक किसी भी राज्य से कम नहीं है। परंतु हमारी संस्कृति को राष्ट्रीय और भारतीय संस्कृति के एक भाग के रूप में उसे विकसित करना होगा। 'महाजन रिपोर्ट' में कन्नड़वालों को अन्याय होनेवाले अनेक अंश हैं; परंतु बेळगांव को बचा लेने के लिए उसे सह लेना होगा। उद्योगों की स्थापना के लिए कन्नड़वालों के आगे नहीं आने के बारे में विषाद व्यक्त करते हुए, उन्होंने कहा कि इसीकारण, बाहरवाले कर्नाटक में आ रहे हैं। 1988 जुलाई 28 को शिवपुर के सत्याग्रह के 50वें वार्षिकोत्सव के आचरण के संदर्भ में प्रसिद्ध शिवपुर में, उन्होंने राष्ट्रध्वज को फहराया। वह 41वें स्वातंत्र्य समारोह का दिन भी था। 1938 के सत्याग्रह में भाग लेनेवाले श्री तगडूर रामचंद्रराव, श्री एम.एस. जोइस और डा. पार्थनारायण पंडित जैसे लोग समारोह में हाजिर थे। बार बार होनेवाले इस तरह के समारोह, लोगों को जागरूक करनेवाले मौके बन जाते हैं। और बदलते हुए उनके विचारों को शब्दरूप देने के लिए सहायक होते हैं।

इस वृद्ध नेता के लिए निस्संदेह 1988 एक दुखदायी वर्ष था। 62 वर्ष जीवनसंगिनी रही और उनके जीवन का आधारस्तंभ रूपी पत्नी मुरिगेम्माजी का 10 अक्तूबर 1988 को बेंगलूर के एक नर्सिंगहोम में निधन हो गया। उनके एक बेटे ने कहा कि वे मृत्यु का इन्तजार कर रही थी। क्योंकि अंधापन और संधिवात जैसी दैहिक बिमारियों से वे तडप रही थी, दूसरों को वे दुःख देना नहीं चाहती थी; और हिंदू नारी के जैसे वे भी सौभाग्यवती की मृत्यु चाहती थीं। बड़े ह्वदयाघात के 10 दिन बाद उनकी मृत्यु हो गई। सामान्यतः भावुकता के वश न होनेवाले निजलिंगप्पाजी के लिए बच्चे के जैसे रोने का यह दूसरा प्रसंग था। जब उनकी माताजी का देहावसान हुआ, वैसे ही रोये थे। श्रीमती मुरिगेम्माजी, एक साधारण स्त्री होने पर भी भारतीय संस्कृति और संप्रदायों

का पालन करती थीं। कन्नड़ स्कूल में 5वीं क्लास तक उनकी पढ़ाई हुई थी। कन्नड़ भाषा वह पढ़ सकती थी, लेकिन लिखना कठिन लगता था। वे सहनशीलता और सरलता की मूर्ति थीं। पति और परिवार की तरफ ही उनका ध्यान रहता था। राजनीति में उन्हें कोई रुचि नहीं थी। मुख्यमंत्री की पत्नी होने का दिखावा वे कभी नहीं करती थीं। उनका दृढ़ समर्थन न होता तो निजलिंगप्पाजी का राजनीतिक जीवन समस्यात्मक हो जाता। परिवार की पूरी जिम्मेदारी लेते हुए उन्होंने पारिवारिक रुकावट के बिना, राजनीति में भाग लेने के लिए अपने पति को मौका दिया। वे भगवान और धर्म पर विश्वास करनेवाली संप्रदायस्थ महिला थीं। उनका गहरा और स्थिर व्यक्तित्व ही उनकी बड़ी शक्ति थी। इसी कारण जीवन के कष्टों का सामना करने का सामर्थ्य उन्हें प्राप्त था। 11 अक्तूबर 1988 को चित्रदुर्ग के पास उनके पार्थिव शरीर का दफन संस्कार किया गया। इससे हुई निजलिंगप्पाजी की वैयक्तिक हानि का बयान करना संभव नहीं है।

स्थितप्रज्ञ मनोभाववाले निजलिंगप्पाजी ने अपनी इस वैयक्तिक हानि का आत्मसाक्षी और प्रज्ञापूर्ण राजनीति के प्रचार पर असर पड़ने नहीं दिया। सार्वजनिक संपर्क के द्वारा, क्रियाशील होकर ही आगे बढ़े। 2 अक्दूबर 1988 की हुबली के लाइन्सक्लब द्वारा आयोजित गाँधी जयंती समारोह में उन्होंने भाषण दिया। सत्य, अहिंसा के द्वारा, बिना किसी शस्त्रास्त्रों के दुश्मन पर विजय प्राप्त कर देश को आजाद करनेवाले गाँधीजी को लोगों के भूल जाने के बारे में, उन्होंने विषाद व्यक्त किया। निजलिंगप्पाजी ने कहा कि स्वार्थरहित, जनसेवा के लिए जीवन को समर्पित करनेवाले नेताओं में गाँधीजी प्रमुख हैं। श्रोताओं से उन्होंने बिनती की कि ''कम से कम अपनी शक्ति के अनुसार गाँधीजी के मार्ग का अनुसरण करे।'' धर्मग्लानि होने पर अवतरित होने के कृष्ण के संदेश का उन्होंने स्मरण किया। इसे उन्होंने भगवान का अवतार न कहकर, धर्मरक्षा के लिए हुए मानव का अवतार कहा। राम, बुद्ध, ईसा, बसव ये सब ऐसे ही मानव थे, विश्वमानव कल्याण ही उनका ध्येय था। उनके संदेशों का वर्णन करने के बाद उन्होंने गाँधीजी को 'इन सभी में श्रेष्ठ' कहा। 22 अक्तूबर 1988 को बेंगलूर में पत्रिकागोष्ठी में उन्होंने कहा कि किसी भी राजकीय पार्टी पर उन्हें कोई गौरव नहीं है। श्री ज्योति बसु और बी.जे.पी. नेताओं को छोड़कर अन्य राजकीय नेताओं की उन्होंने कडी आलोचना की। और कहा कि यह व्यक्तिगत

पसंद है, इनका नेताओं के सिद्धांतों से कोई संबंध नहीं है। यह सर्वविदित है कि बि.जे.पी. के कौमवाद के और मार्कसिज्म के भारतीय रूप के प्रति वे विरोधी थे। सभी राजनीतिक नेताओं को भ्रष्ट कहा। सभी मुख्यमंत्रियों, प्रधानमंत्रियों पर भ्रष्टाचार के आरोप लगने की ओर ध्यान दिलाया। ''कौन परिशुद्ध हैं ?'' पूछते हुए, उन्होंने कहा कि बी.जे.पी. नेताओं पर कलंक नहीं लगा है, आर.एस.एस. का उन पर परोक्ष नियंत्रण ही इसका कारण है। अगले चुनावों के बारे में बात करते हुए, उन्होंने मतदान करने के लिए लोगों से बिनती की। पार्टी पर ध्यान न देते हुए, योग्य व्यक्ति को मत देने के लिए कहा। बाबरी मस्जिद और रामजन्मभूमि - विवाद के बारे में बात करते हुए कहा कि वह एक विषादपूर्ण घटना है। उन्होंने कहा कि देश की एकता को नष्ट करनेवाले किसी भी प्रयत्न का समर्थन कोई न करे। धार्मिक सामरस्य के लिए लोगों को अपने अपने विश्वास के अनुसार पूजा-प्रार्थना के लिए मौका देना ही है। हिंदू-मुसल्मान दोनों एक साथ मिलकर पूजा करनेवाले, कर्नाटक के 'बाबाबुडनगिरी' का उदाहरण दिया। उन्होंने कहा कि ऐसी पद्धति का विस्तार करना चाहिए। जवाहर रोजगार योजना को उन्होंने ग्रामीणों को रोजगार दिलाने की बड़ी योजना कहा। क्योंकि नेहरूजी को ग्रामीण रोजगार के बारे में विश्वास ही नहीं था। इसलिए उन्होंने प्रधानमंत्रीजी को पत्र लिखकर नेहरूजी के नाम के बदले, गाँधीजी का नाम रखने के लिए सूचना दी। श्री रामकृष्ण हेगडे योजना आयोग के उपाध्यक्ष थे, उन्होंने योजना का पुनः नामकरण किया। राजनीतिक दल, राजनीतिक छिद्रीकरण, राजनीतिक अनिश्चितता और अस्थिरता के कारण बनने से उनके प्रति उन्हें तिरस्कार था। 1988 में लोकसभा के लिए हुए चुनावों ने इसे निस्संदिग्ध रूप में साबित किया। किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला था। कांग्रेस (आइ) को अत्यधिक मत (525 में 192) मत प्राप्त थे। 88 मत प्राप्त कर बी.जे.पी. तीसरे स्थान पर थी।

युवावस्था में निजलिंगप्पाजी को स्फूर्ति देनेवाले महान व्यक्तियों में हर्डेकर मंजप्पाजी भी एक थे। कर्नाटक में लिंगायतों की राजनीति पर गहरा प्रभाव डालनेवाले इस महान नेता ने उस समुदाय में गाँधीवाद और कांग्रेस के प्रति गौरव बढ़ाया। श्रेष्ठ बौद्धिकता से युक्त वे कन्नड़ के लेखक थे और अत्यंत श्रेष्ठ राजनीतिक चिन्तक भी थे। लोग उन्हें 'कर्नाटक के गाँधी' कहते थे। परंतु भारत को आजादी मिलने से पहले ही उनकी मृत्यु हो गई। गाँधीजी के

मार्ग के लिए बद्ध होने पर भी वे गाँधीजी के मूक अनुयायी नहीं थे। कर्नाटक विश्वविद्यालय के राज्यशास्त्र के निवृत्त प्राध्यापक जी.एस. हालप्पाजी ने मंजप्पाजी के विद्वतपूर्ण कन्नड़ के सारे लेखों का संपादन कर प्रकाशित किया। इस योजना में भाग लेने का सुयोग विश्वविद्यालय में प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक को मिला। वे हालप्पाजी के सहकर्मी थे। 1990 में मंजप्पाजी के शताब्दी उत्सव का आयोजन किया गया। इसके भाग के रूप में कर्नाटक सरकार के 'कन्नड़ और संस्कृति' विभाग ने 'कर्नाटक गाँधी – हर्डेकर मंजप्पा' नाम से स्मरण ग्रंथ को प्रकाशित किया। उसमें हर्डेकर मंजप्पाजी के राजनीतिक चिंतन के बारे में इस कृति के लेखक का एक लेख था। उस ग्रंथ का निजलिंगप्पाजी ने ही धारवाड में 21 अप्रैल 1990 को लोकार्पण किया। निजलिंगप्पाजी ने बताया कि मंजप्पाजी पर बसवेश्वर और गाँधीजी – दोनों का प्रभाव पड़ा था। यह बात निजलिंगप्पाजी के बारे में भी सच निकलती है। उनका प्रभाव होने पर भी मंजप्पाजी, अपने स्वतंत्र आलोचनाक्रम से दूर नहीं थे। उदाहरण के लिए वर्णाश्रम पद्धति पर गाँधीजी के विश्वास को उन्होंने नकारा था। निजलिंगप्पाजी ने विषाद व्यक्त किया कि आज भी हमारे जीवन में जाति का महत्वपूर्ण पात्र है। उन्होंने कहा कि इस व्यवस्था की रक्षा के लिए असंख्य अन्याय हो रहे हैं। संस्कृत भाषा के बारे में बताते हुए उन्होंने विषाद व्यक्त किया कि साधारण लोगों को उस भाषा के ज्ञान से दूर रखा गया है। यदि आम जनता संस्कृत का ज्ञान रखती तो देश का इतिहास कुछ और ही होता था।

जीवन के इस नए मुकाम पर उनका एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम यह था कि वे समाजसेवी संस्थाओं को प्रोत्साहन देते हुए, उन्हें राज्य तथा केंद्र सरकारों से सहायता दिलाते थे। इसका एक उदाहरण है 1990 के शुरू में उत्तर कन्नड़ जिले के बनवासी में ''बनवासी वलय अभ्युदय समिति'' द्वारा प्रस्तावित ''ग्रामीण पुनर्रचना और निर्वाहणा ट्रेनिंग केंद्र'' की स्थापना के लिए उनका प्रोत्साहन। 27 फरवरी 1990 को प्रधानमंत्री वी.पी. सिंहजी को इसके बारे में पत्र लिखकर उन्होंने इस योजना के लिए सरकार का सक्रिय समर्थन देने को कहा। जुलाई 1992 को 'कर्नाटक वेदिके' द्वारा संगठित किए गए बृहत किसान सम्मेलन में भाषण देते हुए उन्होंने 'कावेरी विवाद' में कर्नाटक का समर्थन किया। कावेरी जल विवाद के लिए ट्रिब्यूनल की स्थापना का विरोध करते हुए, पी.वी. नरसिंहरावजी को पत्र लिखा। उन्होंने आलोचना की कि ''जल बाँटने के बारे

में किसी भी निर्देशक सूत्रों के बिना ही इस त्रिमूर्ति समिति की रचना की गई है।'' संबंधित विशेषज्ञों से सही विवरण इकट्ठाकर पहले योग्य मार्गदर्शनों की रचना करने के लिए उन्होंने प्रधानमंत्री जी से बिनती की। केंद्र पर उन्होंने आरोप लगाया कि कर्नाटक पर अन्यायों की वर्षा की जा रही है। उन्होंने सचेत किया कि जनता इसे देखते हुए चुप नहीं रहेगी। विषाद भी व्यक्त किया कि उनके मुख्यमंत्रित्व में प्रारंभ की गई दस योजनायें अभी तक पूरी नहीं हुई हैं। राज्य में अब एक ही सिंचाई योजना है – ''कृष्णराज सागर''। केंद्र सरकार ने किसानों के हित की उपेक्षा की है; अनेक निर्देशक तत्वों के अनुष्ठान में वह हार गयी है; साक्षरता और शिक्षा योजना किसानों तक पहुँची ही नहीं है। भ्रष्टाचार व्यापक हो गया है, अनेकों ने भ्रष्टाचार से धन कमाया है। न्यायपालिका भी नीचे गिर गयी है'' यह कहकर वे दुःखी हुए। उन्होंने कहा कि ''ट्रिब्यूनल सदस्य भ्रष्टाचार में डूबे हुए हैं; और इसके बारे में उनके पास दृढ़ सबूत हैं।'' उन्होंने प्रधानमंत्री नरसिंहरावजी को उससे संबंधित वीडियो कैसेट को देवेगौड़ा जी से लेने के लिए सूचना दी। उन्होंने आरोप लगाया कि तमिलनाडु सरकार कावेरी जल का गैर कानून रीति से उपयोग कर रही है और इसके बारे में जाँच करने के लिए उन्होंने प्रधानमंत्री जी से बिनती की। उन्होंने सवाल किया, ''हम आपको बाळेकुंद्रीजी को देते हैं, आप भी अपने विशेषज्ञों को भेजिए, हम दिखायेंगे कि क्या हो रहा है, संकुचित हितासक्तियों को छोड़कर सत्य के प्रकाश में समस्या का निवारणोपाय ढूँढेंगे। अपनी पत्नियों के लिए अच्छी साडियाँ और महंगे सोने चांदी पर अपने को बेचनेवाले, न्यायाधीशों पर अपना समय क्यों व्यर्थ कर रहे हो ?''

कर्नाटक विकास मंच ने 27 जुलाई 1992 को ट्रिब्युनल के विरुद्ध कावेरी जलानयन प्रदेश के जिलों के करीब 50.000 किसानों की बृहत् रैली का आयोजन किया। उस समय के समाजवादी एम.पी., एच.डी. देवेगौडाजी मंच के संचालक थे। उसमें भाग लेते हुए निजलिंगप्पाजी ने ''कर्नाटक के हित की रक्षा करने के लिए जनता एक शांतिपूर्ण संघर्ष करेगी'' कहकर प्रमाणवचन कराया। कावेरी और कृष्णा नदियों के जल के विषय में कर्नाटक के प्रति दिखाये सौतेली माँ जैसे व्यवहार का खंडन करते हुए उसके विरुद्ध संघर्ष करने को निजलिंगप्पाजी ने जनता से कहा। नदी-जल को बांटने के लिए एक नीति की रचना करने के लिए उन्होंने प्रधानमंत्री जी से कहा।

बेंगलूर में 30 मार्च 1993 को पत्रकत्राओं से निजलिंगप्पाजी ने कहा कि देश की सुरक्षा के लिए एक तीसरी शक्ति की आवश्यकता है। एक तरफ, नेहरूजी के पुराने तत्वों पर आधारित कांग्रेस (आइ), दूसरी तरफ हिंदुत्व पर ही अवलंबित बी.जे.पी हैं; यह बताते हुए उन्होंने कहा कि बी.जी.पी. को प्रशासन का मौका देना बड़ी आपत्ति को बुलाने के जैसा है। ''क्या मूलभूतवादियों, जातिवादियों और कौमवादियों को देश पर शासन करने देना चाहिए? मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि हिंदुत्व का मतलब क्या है? परंतु बी.जे.पी. की दृष्टि में हिंदुत्व का अर्थ है मूसलमानों का विरोध, कांग्रेस अवसरवादी और निरंकुश अधिकारदाहियों के वश में है। नरसिंहरावजी की सरकार देश के विकास में आसक्ति न रखकर केवल साँस लेने के लिए तड़प रही है। अपना दीर्घ मौन तोड़ते हुए निजलिंगप्पाजी बोल रहे थे। देश की सभी मुश्किलों के लिए नेहरूजी ही कारण हैं। योजना आयोग एक अज्ञानी समिति है – कहकर मज़ाक करते हुए उन्होंने मनमोहनसिंहजी को बैंकों का गुलाम कहा। एक पत्रिका रिपोर्ट में नेहरूजी ने 'गाँधीजी एक भयानक बूढ़ा पाखंडी है' कहा; इसकी तरफ जब उनका ध्यान दिलाया तो निजलिंगप्पाजी ने जवाब दिया कि ''इन शब्दों द्वारा नेहरूजी ने खुद की निंदा की है। गाँधीजी जैसे व्यक्ति, हजारों वर्षों में भी जन्म नहीं लेते........ मनमोहन सिंह! – कितना सुन्दर नाम है! .... अच्छा व्यक्ति है। परंतु वे बैंकों के गुलाम हैं'' कहते हुए उन्होंने क्रोध से सवाल किया। ''क्या वे जानते हैं कि भारत क्या है? उनकी नीतियों के कारण, भारत देश कितनी मुश्किल में पड़ा है – क्या इसे वे नहीं जानते हैं?'' योजना आयोग को उन्होंने कहा कि ''वह एक दुष्ट संविधानबाहिर संस्था है, कम्युनिस्ट रूस की नकल है।'' उसके सदस्य विदेशियों द्वारा लिखी गई पुस्तकों से बद्ध हैं'' – कहकर उनकी निंदा की। हमारी आर्थिक व्यवस्था, उत्पादकता और निर्यात के बारे में न जानते हुए, यंत्रों, पूँजी और तांत्रिकता के आयात के लिए सिफारिश करनेवाले योजना आयोग का उन्होंने खंडन किया। वीरप्पा मोइली सरकार के बारे में प्रशंसा की – ''मोइली जी का परिचय मुझे ज्यादा नहीं है। एक दो बार उनसे मुलाकात हुई है; आजतक उन्होंने अच्छा कार्य किया है।'' पिछले मुख्यमंत्री और मुख्य सचिव के बारे में अतृप्ति व्यक्त की। उन्होंने कहा – ''आधीरात में न्यायाधीश को नींद से जगाकर, क्लासिकल कंप्यूटर के केस में प्रत्याशित जमानत (anticipatory bial) प्राप्त किया।'' भ्रष्टाचारियों और रिश्वतखोरों

को सी.बी.आइ. के वश में देना चाहिए। अधिकार व पद पर रहनेवालों की जायदाद की जाँच होनी चाहिए। 'बी' रिपोर्टों के बारे में क्रोध से उन्होंने 'ऐसी गंदी हरकत यहाँ हुई है' कहकर आक्रोश किया। अहिंसावादी होकर भी मुझे इन लोगों को अच्छी तरह से पीटने का मन होता है।''

बदनहाळ ग्राम में, देवालय के विवाद के संदर्भ में लिंगायतों ने हरिजनों की हत्या की थी; उसका उल्लेख करते हुए स्वयं लिंगायत होते हुए उन्होंने उसे 'अक्षम्य अपराध' कहा। देवालयों के पुजारियों का पद रद्द करना चाहिए और सभी जातियों के लोगों के लिए प्रवेश मिलना चाहिए। विरोध की ध्वनि में उन्होंने पूछा, 'भगवान और भक्त के बीच में कोई पुजारी अथवा धार्मिक मठ को क्यों आना चाहिए?' इस विषय में वे क्रांतिकारी बसवण्णा के मनोभाव का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। देश में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार को मूलसहित निकाल फेंकने को उन्होंने आम जनता से कहा। निजलिंगप्पाजी के मित्रों और हित चिंतक लोगों ने मिलकर 6 जून 1993 को 'श्री निजलिंगप्पा राष्ट्रीय प्रतिष्ठान' की स्थापना करने का निर्णय किया। देश निर्माण के लिए, कार्यनिर्वाहण करने के उद्देश्य से एक सरकारेतर संस्था के रूप में 17 जून 1993 को उसका रेजिस्टेशन हुआ। कर्नाटक के पूर्व मंत्रियों में एक तथा निजलिंगप्पाजी के निजी सहचर श्री ए.आर. बदरीनारायण जी उसके अध्यक्ष बने जो योग्य व्यक्ति थे। मई 1993 में निजलिंगप्पाजी ने जी.बी. महालिंगशेट्टी जी द्वारा संस्था को एक संदेश भेजा। उसमें उन्होंने ''देश के सामने जो विविध समस्यायें हैं उनका निवारण करने के लिए गाँधीमार्ग ही एकमेव सूक्त मार्ग है – अपने इस विश्वास का पुनरुच्चार किया था। अधिकार और संसाधनों के विकेंद्रीकरण पर जोर देते हुए उन्होंने स्थानीय संस्थाओं के स्वावलंबन और समानता के आदर्शों के बारे में पुनः प्रतिपादन किया। राष्ट्रकवि कुवेंपुजी की परिकल्पना - 'विश्व मानव' तत्व का उल्लेख करते हुए उन्होंने संपूर्ण मानव कुल का कल्याण चाहा था। पत्रकर्ता गौतम माचय्याजी ने ''पूज्य पितामह' शीर्षिका देते हुए एक विशेष रूपक को लिखा था। ''निजलिंगप्पाजी के बुढापे में स्वयं निर्मित आदर्शों की अवनति उन्हें दुःखी कर रही है'' – यह संदेश, लेखक ने उसमें व्यक्त किया था। यह वर्णन सही था, क्योंकि देश के सभी क्षेत्रों में पतन हुआ है। उसमें भी सार्वजनिक जीवन में भ्रष्टाचार अधिक होने के कारण सांस्थिक नैतिकता के गिरने पर निजलिंगप्पाजी चिंतित थे। उन्होंने कहा कि इन सभी के लिए कारण है कि आजादी मिलते ही गाँधीजी के आदर्शों को भूल जाना।

तत्कालीन मुख्यमंत्री वीरप्पा मोइली जी को 1994 मई 16 को कन्नड़ भाषा में पत्र लिखकर बताया कि बनवासी के हर्डेकर मंजप्पाजी के निवास को स्मारक बना देना चाहिए। उस पत्र में निजलिंगप्पाजी ने दस-बारह वर्ष की आयु में ही दावणगेरे में प्रकट होनेवाली 'धनुर्धारी' पत्रिका के द्वारा मंजप्पाजी के प्रभाव में आने के बारे में स्मरण किया था। उस महान नेता के साथ अपने संपर्क के बारे में उन्होंने बताया कि उनसे वे अनेक विषयों को जान सके थे। मुख्यमंत्री वीरप्पा मोइली जी को 10 फरवरी 1994 को पत्र लिखकर उसमें बनवासी में बनवासी वलय अभ्युदय समिति द्वारा आयोजित 'ग्राणीण प्रशिक्षण संस्था' की स्थापना में वैयक्तिक आसक्ति लेते हुए, उसे जल्दी पूरा करने के लिए बिनती की थी। राजनीतिक पार्टियों के विषय में विश्वास खोकर निजलिंगप्पाजी ने उसके पर्याय में क्या सोचा था ? यह सवाल करना ठीक ही है। निजलिंगप्पाजी के निजी वलय के अनुसार उनके मन में 'संघर्ष रहित एकमत की राजनीति' थी। सार्वजनिक जीवन के प्रमुख व्यक्तियों की एकमतीय संस्था के बारे में शायद उनके मन में विचार था। यह परिकल्पना पहले टी.एन. शेषन जी और मनमोहन सिंहजी द्वारा सूचित 'राष्ट्रीय एकमत समिति' की परिकल्पना के बहुत समीप थी। परंतु आज तक निजलिंगप्पाजी ने विस्तृत रूप से कुछ नहीं कहा है। इसकी संवादी रही – राष्ट्रीय सरकार - एक अर्थ में पहले ही जे.पी. जी द्वारा सूचित पार्टीरहित प्रजातंत्र। परंतु इस परिकल्पना के बारे में राजनीतिक वलय में, अभी गंभीर रूप से नहीं लिया गया है। उसपर राजनीतिक चर्चा भी नहीं हुई है। सोचने के लिए यह योग्य विचार है।

निजलिंगप्पाजी के सार्वजनिक तथा राजनीतिक जीवन का एक प्रमुख आशय था – सिंचाई योजनाओं के द्वारा कृषि का विकास। 1995 के अंत में कर्नाटक के तत्कालीन मुख्यमंत्री एच.डी. देवेगौडा जी के सामने एक सलाह रखकर सिंचाई योजनाओं को पूरा करने के लिए तथा लगातार विद्युत देने के लिए कहा था। किसानों से कहा था कि उसे सेवा का दाम दे दे। जब निजलिंगप्पाजी से देवेगौडाजी बात कर रहे थे तो निजलिंगप्पाजी ने अपने से शुरू की गई सिंचाई योजनाओं को पूरा करने के लिए सूचना दी। गौडाजी ने जवाब दिया – ''मैं आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि सभी सिंचाई योजनाओं को पूरा करूँगा और विद्युत उत्पादन को आद्यता दूँगा।''

अब इस बयान के समाप्त होने का समय है तो ऐतिहासिक तथा सार्वजनिक व्यक्ति निजलिंगप्पाजी के पीछे एक खासगी निजलिंगप्पाजी भी थे – इसे स्मरण करने का समय यह है। अबतक हमारे इस बयान में उनका खासगी चेहरा भूलकर, केवल सार्वजनिक चेहरे पर ही ध्यान दिलाया है। ऐतिहासिक तथा सार्वजनिक व्यक्ति का जीवन-कथन में यह अनिवार्य होता है। निजलिंगप्पाजी के खासगी व्यक्तित्व के एक स्थूल परिचय मात्र ही हम दे सकते हैं। सुयोग से निजलिंगप्पाजी ने स्वयं कन्नड़ साप्ताहिक पत्रिका 'कर्मवीर'के 19 मार्च 1995 के अंक में अपनी दिनचर्या के बारे में लिखा है। इस स्वकथन में एक विनयशील, साधारण तथा पारदर्शक व्यक्तित्व का चित्र मिलता है। वे विवरण देते हैं कि मिताहार, शराब न पीना या धूम्रपान न करना, व्यायाम करना, तथा गहरी नींद – ये सब उनकी दीर्घायु के राज़ हैं। उनका जीवन नियमित अनुशासित है। हर काम वे नियमित रूप से करते थे तथा सबसे मिलकर करते थे। सवेरे 7 बजे उठते थे; प्रात:विधियाँ पूरा कर, समाचार पत्रों को पढ़ते थे; पत्र व्यवहार पर ध्यान देते थे; उनमें कुछ श्रम से भरे काम थे। दुपहर में आकाशवाणी द्वारा प्रसारित संगीत सुनते थे। उनकी सलाह मांगने आनेवाले, ग्रामीणों से कुशल-मंगल और उन्हें सलाह देने में उनका काफी समय व्यतीत होता था। उसके बाद, डेढ़ घंटे का समय दुपहर का विश्राम। परंतु आजकल सार्वजनिक तथा राजनीतिक जीवन को तंग करनेवाले नैसर्गिक विकोप, तथा दुर्घटनाओं के कारण वे आधीरात में अचानक उठ जाते हैं। उनकी एक आँख नाममात्र है; इसलिए वे एक ही आँख से देख सकते हैं। उनकी 'समीपदृष्टि' है; दूर की वस्तुएँ ठीक से नहीं दिखती हैं। कान से ठीक सुनते हैं; यह 1995 का उनका चित्रण है। परंतु आज वे मुश्किल से सुन सकते हैं। गाँधीजी के सपनों को साकार करना उनकी इच्छा है। उन्हें मृत्यु का भय नहीं है; क्योंकि वह जन्म के साथ ही है और वह अनिवार्य भी है। उन्हें पिछले जन्म या मृत्यु के बाद के जीवन के बारे में, पुनर्जन्म के बारे में विश्वास नहीं है। ''जीवन भर जनसेवा कर फिर मर सकते हैं'' – यही उनके संतोष का कारण है। ईश्वर के अस्तित्व या अनस्तित्व के बारे में उन्हें निश्चित विचार न होने के कारण वे एक 'अज्ञेयतावादी' हैं। ''जीवन को संतोष से बिताकर, समय आने पर, प्रशांत रूप से मरना ही समंजस है'' – यह उनका विश्वास है। मृत्यु के बाद देह, पंचभूतों में विलीन हो जाती है, बस। हंपी के कन्नड़ विश्वविद्यालय द्वारा कुपेंपुजी तथा गंगुबाईजी के साथ दिये गए 'नाडोज' गौरव प्रशस्ति को उन्होंने विनम्रता से स्वीकार किया।

श्रीमती मुरिगेम्मा और छः पुत्रियों तथा तीन पुत्रों के साथ डॉ. एस. निजलिंगप्पा जी

उनके एक पुत्र ने इस ग्रंथ के लेखक को उनके निजी कुटुम्ब के बारे में विवरण दिए। उनकी ज्येष्ठ सुपुत्री पार्वतम्माजी हैं, जिनकी आयु 68 है। मेट्रिक तक उनकी पढ़ाई हुई। फिर हुब्बळ्ळी के चाय व्यापारी तथा कंट्राक्टर जी.बी. महालिंग शेट्टीजी से उनका विवाह हुआ। पिछले वर्ष, उनके पति श्री महालिंग शेट्टी जी की मृत्यु हुई। उनके चार पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं। पार्वतम्माजी ने अपने भाई राजशेखर तथा उमाकांत से मिलकर 'कन्नड़ वर्गीकृत पदकोश' ग्रंथ की रचना की है। दूसरी संतान पुत्र उमाकांत अब 66 वर्ष के हैं; भौतिकशास्त्र में एम.एस.सी. पदवी लेकर धारवाड के कर्नाटक विश्वविद्यालय में भौतशास्त्र के प्राध्यापक होकर निवृत्त हो गए हैं। वे अविवाहित हैं। तीसरे हैं एन्. राजशेखर। अब ये 65 वर्ष के हैं; पी.यू. तक पढ़कर अब कृषिकार्य में निरत होकर अब विश्रांत जीवन चला रहे हैं। (हाल ही में इनका देहात हो गया) वे भी अविवाहित हैं। चित्रदुर्ग में पिता निजलिंगप्पाजी के साथ रहकर उनकी देखभाल करते हैं। कुवेंपु जी के श्री रामायणदर्शनं' महाकाव्य का गद्य में निरूपण किया है। हिंदी में उन्होंने वर्गीकृत पदकोश का रूपांतर डॉ. टी. जी. प्रभाशंकर 'प्रेमी' के साथ मिलकर किया है जो आइ बी एच प्रकाशन से अब प्रकाशित है। भाई उमाकांत जी के साथ मिलकर उन्होंने 'मेटरलिंक' नाटक का कन्नड़ रूपांतर 'नीली हक्किगळु' शीर्षक से किया है। चौथी हैं अनसूयाजी जो अब 63 वर्ष की हैं। उन्होंने भी मेट्रिक तक पढाई की है; बेंगलूर के डा. जी. चन्द्रशेखरप्पाजी से उनका विवाह हुआ था। कुछ ही महिने पहले उन्हें पतिवियोग हुआ। उनके दो पुत्र और एक पुत्री हैं। पांचवीं पुत्री हैं, गौरम्माजी, जो अब 62 वर्ष की हैं। उन्होंने बी.एस.सी. तक पढ़ाई की। विद्यार्थी जीवन में निजलिंगप्पाजी की सहायता करनेवाले साहुकार वीरभद्रप्पाजी के पुत्र एस.वी. परमेश्वरजी से उनका विवाह हुआ है। परमेश्वरजी, जीवविमा कंपनी में अधिकारी थे; उनकी पन्द्रह वर्ष पहले मृत्यु हुई। उनके दो पुत्र और एक पुत्री हैं। छठी संतान है – गिरिजम्माजी, मेट्रिक तक पढ़ाई कर, बेंगलूर के मरळवाडी के श्री एम.वी. राजशेखरनजी से विवाह किया है। राजशेखरन् जी मनिलामूल की अंतरराष्ट्रीय विकास संस्था के अध्यक्ष हैं, उनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं। सातवीं संतान है प्रतिभाजी जो अब 54 वर्ष की हैं। एम.एससी. तक पढ़ाई कर उन्होंने आइ.ए.एस. अधिकारी श्री एस.बी. मुद्दप्पाजी से विवाह किया है। (श्री मुद्दप्पाजी कर्नाटक सरकार के मुख्य सचिव रहकर, निवृत्त हुए हैं। प्रतिभाजी बेंगलूर के कालेज में लेक्चरर

हैं; उनके एक पुत्र और एक पुत्री हैं। प्रतिभाजी सस्यशास्त्र की पाठ्यपुस्तक की लेखिका भी हैं। आठवी संतान है श्री किरणशंकर, जिन्होंने 'याले' विश्वविद्यालय से आर्कीटेक्चर में एम.एससी डिग्री प्राप्त की है। वे अब 52 वर्ष के हैं; कर्नाटक सरकार के मुख्य आर्किटेक्ट के पद पर कार्य कर रहे हैं। पुत्रों में केवल उन्होंने विवाह कर लिया है। उनके एक पुत्र और एक पुत्री हैं। सबसे छोटी संतान है पूर्णिमा जी जो अब 50 वर्ष की हैं। बी.एससी. तक पढ़ाई की है। डा. जय इस्लूरजी से विवाह हुआ है। वे केनडा में रहते हैं। उनके दो पुत्र हैं। इसतरह निजलिंगप्पाजी का भरापूरा परिवार है; उनके कई नाती-पोते हैं। उनका खेलना, निजलिंगप्पाजी को बहुत अच्छा लगता है; उनकी नाती-पोतों की बड़ी सेना ही है। जब भी निजलिंगप्पाजी भ्रमण करते हैं, तो उनके मौसेरा भाई दिवंगत, श्री एस. गुरुनाथजी के पुत्र श्री एस.जी. मंजुनाथजी उनकी देखभाल करते हैं।

कर्नाटक के मुख्यमंत्री देवेगौडाजी ने 3 नवंबर 1995 को उद्योगपतियों तथा किसानों से सरकार के विद्युत दर को बढाने के विचार में सरकार को मदद देते हुए, जितना हो सकता है उतना धन देने के लिए बिनती की। बेंगलूर में विधानसौध के सामने किसानों की सभा में वे भाषण दे रहे थे। 1994-95 वर्ष में अत्यंत अधिक आहारधान्य तथा वाणिज्य उत्पादन करनेवाले, किसानों को कृषि प्रशस्ति प्रदान करने के लिए उस समारंभ का आयोजन हुआ था। उन्होंने बताया कि अबतक के.ई.बी को 730 करोड़ रुपयों का नुकसान हुआ है। अभी तक अंतिम निर्णय नहीं हुआ है कि विद्युत दर को कितना बढाना चाहिए। उन्होंने आश्वासन दिया कि किसानों को कनिष्ट दर देना पड़ेगा और उद्योगपतियों पर अधिक बोझ डाला जाएगा। इस समारोह में निजलिंगप्पाजी भी थे। अपने भाषण में उन्होंने सिंचाई योजनाओं की उपेक्षा करने के बारे में केन्द्र सरकार पर क्रोध प्रकट किया। केन्द्र सरकार का निर्देशक तत्वों के अनुष्ठान में, आसक्ति न लेना ही इसका कारण है। उन्होंने कहा कि यदि बीच में ही मुख्यमंत्री पद का त्याग नहीं किया होता तो वह पन्द्रह वर्ष पहले ही 'अप्पर कृष्णा योजना' को पूरा कर देते थे। उस समय एशिया में ही अत्यंत बडी शरावती योजना को मुख्यमंत्री स्थान पर रहते हुए केवल छः वर्षों में पूरा करने के बारे में उन्होंने गर्व व्यक्त किया। 1995 के अंत में कर्नाटक जनतादल की सरकार ने निजलिंगप्पाजी को एक विशिष्ट गौरव दिखाया; चंडीगढ़ के जैसे निजलिंगनगर - निजलिंगपुर नामक आदर्श नगर का निर्माण करने की योजना बनाई।

30 दिसंबर 1995 को सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश इ.एस. वेंकटरामय्याजी ने बेळ्ळारी जिले के हडगली शहर आकर इस उद्देश्य के लिए हडगली शहर से करीब छः किलोमीटर दूर के कोळीरगट्टी के पास, 1600 एकड़ प्रदेश को चुना। कर्नाटक ग्रामीण विकास मंत्री एम.पी. प्रकाशजी भूमि के परिशीलन के लिए वेंकटरामय्याजी के साथ गए थे। बाद में पत्रकर्ताओं से बात करते हुए वेंकटरामय्याजी ने आशा व्यक्त की कि यह शहर राज्य की दूसरी राजधानी बनकर बेंगलूर की भीड़ को कम कर सकता है। बळ्ळारी के जिलाधिकारी की अध्यक्षता में एक विकास प्राधिकार को नगर निर्माण की जिम्मेदारी दी जाएगी। एम.पी. प्रकाशजी ने कहा कि इस स्थान में एक निवासीय स्कूल तथा कृषि अनुसंधान संस्थाओं की स्थापना की जाएगी। मंत्री जी ने कहा कि आसपास के गाँव के लिए पीने के पानी की योजना के लिए सरकार ने एक करोड़ रूपयों की योजना को अनुमति दे दी है। पहले निजलिंगप्पाजी, इस जिले के हरपनहळ्ळी से संबंध रखते थे; शायद इस योजना के लिए बळ्ळारी जिले को चुनने में यही कारण होगा। साथ ही, भौगोलिक रूप में वह राज्य के केन्द्र स्थान में है।

1996 के प्रारंभ में होनेवाले चुनाव निजलिंगप्पाजी में छिपे राजनीतिज्ञ को उत्साहित करने का विषय था। वह किसी राजनीतिक पार्टी के दृष्टिकोण से नहीं, अबतक उन्होंने सभी पार्टियों के साथ संबंध तोड दिया था। एक आसक्त पक्षातीत तथा आत्मसाक्षी और प्रज्ञावान राजनीति में रुचि रखनेवाले नागरिक के रूप में उन्हें उसमें कुतूहल था। इसकारण उन्होंने सभी नागरिकों और पार्टी के नेताओं को विनंती पत्र देते हुए, इस संदर्भ के महत्व का विवरण देते हुए, उस संदर्भ में उनके कर्तव्य का वर्णन किया था।पार्टी के अंदर और पार्टियों के बीच के तीव्र मतभेद की ओर उन्होंने उंगली दिखाई। उसके बाद सभी तरह के अपराधियों के द्वारा राजनीतिक क्षेत्र में होनेवाली हानि की ओर ध्यान दिलाया। अनपेक्षित स्ट्राइक में समय लगानेवाले श्रमिक वर्ग को भी नहीं छोड़ा। सार्वजनिक जीवन के सभी क्षेत्रों में व्यापक भ्रष्टाचार की तरफ ध्यान दिलाया। सामान्य लोगों के और ग्रामीणों के हित की उपेक्षा करने के बारे में उन्होंने विषाद व्यक्त किया। गाँवों में गरीबी और बेरोजगारी का तांडव हो रहा है। उन्होंने कहा कि इसका कारण हमारी आर्थिकता के प्रमुख स्रोत कृषि की उपेक्षा ही है। कानूनबद्ध रीति से समर्थनीय न होने पर भी, उसे नैतिक जिम्मेदारी कहनेवाले सर्वोच्च

न्यायालय के निर्देशक तत्वों का अनुष्ठान न किए जाने पर, विषाद व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि इस संविधानात्मक मार्गदर्शन की उपेक्षा करने का सीधा फल ही – ग्रामीण प्रदेशों की दुस्थिति है। फिर अनेक दुर्व्यवहारों के बारे में बताते हुए, अधिकारशाही के दु:ष्कृत्यों की सूची दी। उन्होंने आरोप लगाया कि सरकारे ही नहीं, राजनीतिक पार्टियों व उनके नेता भी जनसमुदाय से दूर हो गए हैं। उन्होंने भविष्यवाणी की कि ''राजनीतिक जीवन की इस विच्छिद्रता और अध:पतन के कारण, अगले चुनाव में किसी भी दल को बहुमत प्राप्त नहीं होगा।'' और यह सच निकला। अब आगे क्या होगा ? कम्युनिस्ट और मूलभूतवादी बी.जे.पी. की सलाह को उन्होंने पसंद नहीं किया। उन्होंने कहा कि धर्मनिरपेक्षता और प्रजातंत्र की पार्टियों का ही समर्थन करना चाहिए। परंतु वैसी पार्टी कहाँ है ? इसे निभाने के लिए अभी कोई भी पार्टी योग्य नहीं है। इस संदर्भ में उन्होंने 1990 में व्यक्त आशाय को अपनी आवाज दी – ''ऐसी परिस्थिति में देश की आजादी के लिए संघर्ष किए हुए तथा बीस वर्षों तक शासन किए पुराने कांग्रेस का पुनरुज्जीवन करना ही एकमात्र मार्ग है। इस प्रकार पुनरुज्जीवित कांग्रेस गाँधी मार्ग पर चलेगा।'' सीधे न बताने पर भी नेहरू मार्ग का तिरस्कार करना ही उनका विचार था। यह पार्टी सर्वग्राही पार्टी हो; सभी धर्मनिरपेक्ष तथा प्रजासत्तात्मक समूह व गुटों को अपनाना होगा। इस नवीन पुराना कांग्रेस को चुनाव में स्पर्धा करके, पुराने कांग्रेस द्वारा बताये गए मार्ग पर चलना होगा। हर मतक्षेत्र में योग्य पक्षेतर अभ्यर्थी को चुनाव में खड़ा करना चाहिए। परंतु उन्होंने नहीं सोचा कि क्या यह विचार अनुष्ठान योग्य है या नहीं; उन्होंने पुराने कांग्रेस के पुनरुज्जीवन के प्रति ही ध्यान दिया। बाहरी दृष्टि से यह आकर्षक होने पर भी उसको साकार करने में अनेक समस्याओं को सामने लाता है। इसमें अनेक तार्किक, सैद्धांतिक तथा संगठनात्मक मुश्किलें हैं। हाल ही में एक संवाद में जब लेखक ने निजलिंगप्पाजी से पूछा तो उन्होंने भी इसे माना। उन्होंने कहा कि कोई और बेहतर उपाय न होने पर, उसका प्रयोग कर सकते हैं। वैयक्तिक रूप में उन्हें भरोसा होने पर भी वे मानते हैं कि उसके लिए समय चाहिए। वास्तव में जनता दल की अधिकारावधि में ही इसके बारे में उनके मित्र, एक.के. पाटीलजी ने इसका प्रस्ताव रखा था।

बेंगलूर में 26 जनवरी 1996 को पत्रकर्ताओं से उन्होंने इस विषय पर बयान दिया था। उन्होंने प्रतिपादन किया था कि 1969 से पहले के कांग्रेस

नेताओं को एक ही मंच पर इकट्ठे होकर चुनावों का सामना करना चाहिए। पी.वी. नरसिंहरावजी, रामकृष्ण हेगडेजी, और बोम्माई जी को इस दिशा में प्रवृत्त होना चाहिए। उन्होंने घोषणा की कि वे इसके लिए पूर्णरूप से मदद करेंगे। परंतु, उन्होंने स्पष्ट किया कि उसके प्रारंभ के लिए वे पहला कदम नहीं उठाएँगे। निजलिंगप्पाजी से मिलने पर, देवेगौडाजी ने भी इस सलाह को माना था। बी.जे.पी. के साथ व्यवहार करने में निजलिंगप्पाजी झिझकते थे। क्योंकि उसके सिद्धांत के वे विरोधी होने पर भी मानते थे कि बी.जे.पी. के कुछ नेता प्रामाणिक थे। हवाला कांड के संदर्भ में, सी.बी.आइ. ने जब चार्जशीट दिया था, तो एल.के. अडवानी जी ने लोकसभा सदस्यत्व को इस्तीफा दे दी थी, इस कारण उन्हें अडवानी पर गौरव था। उनका अभिप्राय था कि नरसिंहराव को भी उसी तरह इस्तीफा देना चाहिए। सोनिया गाँधीजी के नेता होने के लिए कांग्रेस को मनाने के विचार को वे मानते नहीं थे। उनका विचार था कि वे एक साधारण महिला है, उनमें ऐसी कोई विशेषता नहीं है। अनेक पुराने कांग्रेस के लोगों के शामिल हुए हवाला की बुरी घटना के कारण, कुछ पत्रकर्ताओं को उनकी सलाह समस्यात्मक लगी। परंतु निजलिंगप्पाजी का तर्क था कि उसमें भाग न लेनेवाले कई कांग्रेसजन उसमें हैं। उन्होंने एक असाधारण और प्रायः कल्पनात्मक सलाह सामने रखी – ''बी.जे.पी. नेता पुराने कांग्रेस के नामपर एक हो जाय।'' बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार, राजकीय का अपराधीकरण, कौमवाद, असमानता की खाई आदि के बारे में उन्हें चिंता सता रही थी। उनका अभिप्राय था विवेचनारहित आरक्षण देश की समग्रता के लिए हानिकारक है।

20 जून 1996 को निजलिंगप्पाजी ने इंडियन एक्सप्रेस पत्रिका के रिपोर्टर को एक साक्षात्कार दिया। उसमें जो उन्होंने देश के उस समय के राजनीतिक घटनाओं के बारे में ज्ञान और आसक्ति दिखाई, वह आश्चर्यजनक था। उन्हें भय था कि देवेगौडाजी और रामकृष्ण हेगडे जी के बीच 'राजनीतिक तथा वैयक्तिक द्वेष' का केन्द्र और राज्य सरकारों पर गंभीर परिणाम हो सकता है। उन्होंने कहा कि ''उनकी विशिष्ट तेज बातों के कारण रामकृष्ण हेगडेजी को दल से निकालने में कोई 'तात्विकता या सैद्धांतिकता' नहीं है। कर्नाटक के इन दो नेताओं में केवल वैयक्तिक द्वेष, बस।'' हेगडे जी को पार्टी से निकालने में प्रतिबद्धता के उल्लंघन का उन्होंने खंडन किया। निकालने से पहले, कारण पूछते हुए नोटिस नहीं दिया गया था। पार्टी के बारे में सार्वजनिक रूप से
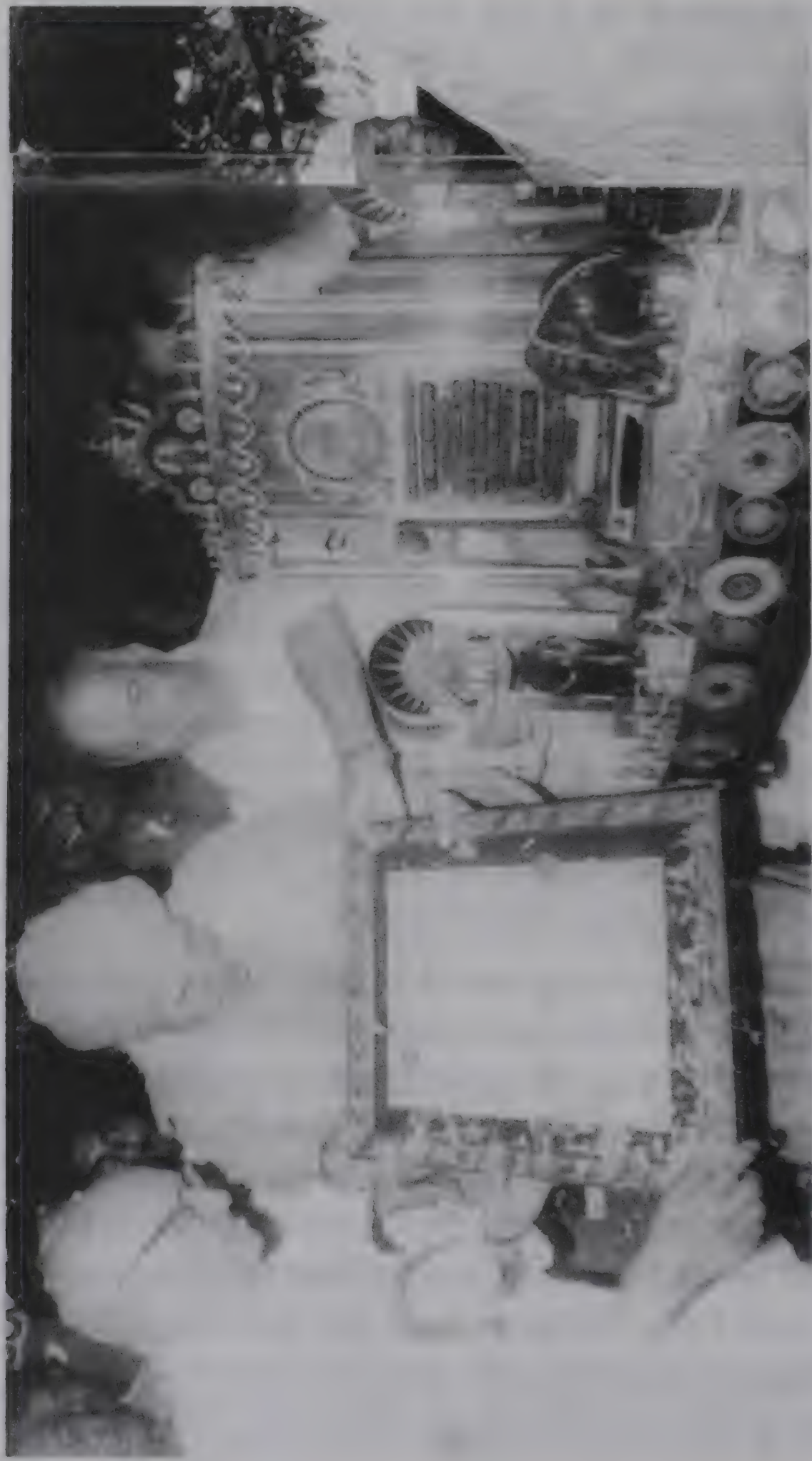
सिद्धगंगामठ के श्री शिवकुमार स्वामीजी और पूर्व मुख्यमंत्री श्री जे.एच. पटेल के साथ श्री एस. निजलंगप्पाजी

बोलनेवाले हेगडेजी के बारे में भी उन्होंने तीव्र अतृप्ति व्यक्त की। उन्होंने कहा कि जनता दल के अंदरूनी झगडों का कांग्रेस (आइ) और बी.जे.पी. को लाभ होता है। इसके अंतिम परिणामस्वरूप शायद केंद्र की संयुक्त रंग की सरकार गिर जाएगी। अपने मतभेदों को ठीक करने की उन्होंने देवेगौडाजी और हेगडेजी को सलाह दी। उन्होंने बताया कि देहली जाने से पहले कर्नाटक के मुख्यमंत्री जे.एच.पटेलजी ने फोन पर उनके इस विषय की चर्चा की थी। पटेलजी ने कहा कि इस विषय में निजलिंगप्पाजी का अभिप्राय वे देवेगौडाजी को बताएँगे। इतना ही नहीं, हेगडेजी ने भी उनसे मिलकर एक घंटे तक चर्चा की थी। अपने और देवेगौडाजी के बीच जो भी हुआ उसके बारे में हेगडेजी ने अपने पिछले मार्गदर्शक को विस्तृत रूप में विवरण दिया। निजलिंगप्पाजी ने कहा कि हेगडेजी परिस्थिति के पुनःपरिशीलन के लिए मान गए हैं। निजलिंगप्पाजी को भरोसा था कि देवेगौडाजी भी उनकी बात मानेंगे। अपने साथियों को भी समझाने के लिए, निजलिंगप्पाजी ने हेगडेजी को सूचना दी। परंतु हेगडेजी ने कहा कि ''उनके समर्थकों ने ही दबाव डाला है इसलिए यह विषय उनके वश में नहीं है।'' हेगडेजी के अलावा, निजलिंगप्पाजी से मंत्री एम.पी. प्रकाशजी, आर.वी. देशपांडेजी, पी.जी.आर. सिंध्याजी और जनतादल के कार्याध्यक्ष आर. लक्ष्मीसागरजी भी निजलिंगप्पाजी से मिले। इस भेंट से निजलिंगप्पाजी की प्रस्तुत राजनीति के प्रति आसक्ति और सक्रिय राजनेताओं पर उनका वैयक्तिक नैतिक प्रभाव स्पष्ट होता है। 9 जून 1996 के 'इंडियन एक्सप्रेस' पत्रिका के 'अतिथिपीठ' विभाग में निजलिंगप्पाजी ने अपने विचारों को विस्तृत रूप में रखा है। देवेगौडाजी कर्नाटक के होने के कारण और उनकी कृषि में आसक्ति के कारण उनके प्रधानमंत्री होने का स्वागत करते हैं। परंतु उन्हें भय था कि कांग्रेस शायद उन्हें अवधि पूरा करने का मौका नहीं देगा। 1969 के विभाजन के लिए उन्होंने इंदिरागाँधीजी को सिद्धांत रहित कहा। वे सत्य के पक्ष में थे तो इंदिराजी असत्य के पक्ष में थीं।

अपने राजनीतिक इतिहास का संक्षिप्त रूप में स्मरण करते हुए उन्होंने कहा कि ''विभाजन के बाद जनता पार्टी के विलीन होने तक वे पुराने कांग्रेस में रहे।'' अब उनकी दुष्टि में कोई पार्टी योग्य नहीं है। उन्होंने बताया कि देवेगौडाजी का राष्ट्रीय राजनीति में कदम रखना कर्नाटक की राष्ट्रीय राजनीति में लेनेवाले

पात्र के संबंध में महत्वपूर्ण है। उन्होंने कर्नाटक को व्यवस्था के विरोधी राज्य कहा है। गाँधीजी ने इसे 'मेरा राज्य' कहा था। स्वातंत्र्यपूर्व में कर्नाटक में गाँधीजी के संघर्ष को यशस्वी रूप में आगे बढ़ाया था। परंतु 1947 के बाद से कर्नाटक अपने ही 'छोटे खेलों' में लगा हुआ है। अधिक संख्या में अपने राज्य से प्रधानमंत्रियों को देने के कारण, उत्तर प्रदेश को विशिष्ट स्थान मिला है। उन्होंने कहा कि समाजवादी समाज की स्थापना करने के व्यर्थ आशय के 'आवडी-निर्णय' का वे विरोध करते हैं। उन्होंने आलोचना की कि किसी भी पार्टी के पास निर्दिष्ट आर्थिक नीति तथा कार्यक्रम नहीं है। परंतु शहर और ग्रामों में असमानता है और शहर की प्रामुख्यता अधिक है। भरोसा किया कि वस्तुस्थिति बदल सकती है और उत्तम होगी। पश्चिमी राष्ट्रों का अनुकरण करते हुए हम गाँधी-आदर्शों को भूल गए हैं। नेहरूजी को उन्होंने अच्छा व्यक्ति माना उन्हें गौरव भी दिया। परंतु बताया कि नेहरू जी ने गाँधी-आदर्शों को दूर फेंकते हुए रूस का अनुकरण किया। पश्चिम के राष्ट्रों में तो कम्युनिसम् की कोई कीमत नहीं है। स्पष्ट कार्यक्रमों की कमी के लिए उन्होंने 'वामपंथी' की आलोचना की। कौमवादी बी.जे.पी. का खंडन किया। उन्होंने कहा कि आज सामान्य व्यक्ति अपने हक के बारे में जानता है, परंतु उनके उपयोग के बारे में वह जानता नहीं। राष्ट्र के जीवन की ठोस बुनियाद डालने के लिए निर्देशक तत्वों का पूर्ण अनुष्ठान करने पर उन्होंने जोर डाला। निजलिंगप्पाजी ने सरिताराय से बात की और सरिता राय ने उसकी टिप्पणी ली। शायद उनकी अनुमति लेते हुए उसे पत्रिका में प्रकाशित भी किया। पुराने कांग्रेस के पुनरुज्जीवन के लिए बद्ध होकर, उन्होंने नरसिंहरावजी से कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा देने के लिए कहा और कहा कि 1969 से पहले कांग्रेस छोड़कर जानेवाले सदस्य फिर से वापस आकर उसमें शामिल होने की कोशिश करें। कांग्रेस के विभिन्न समूहों को मिलाकर एकता की स्थापना में उनका प्रयत्न रहा। केवल बिनती करके तृप्त न होकर अपने विचार को स्पष्टरूप से साकार करने के उद्देश्य से बी.जे.पी. का समर्थ रीति से सामना करने के लिए धर्मनिरपेक्ष तथा प्रजासत्तात्मक कांग्रेस को एक ध्वज के नीचे, एक स्थान पर शामिल होने के लिए और चर्चा करने के लिए अगस्त 1996 में एक सम्मेलन किया।

जुलाई 1996 में नरसिंहरावजी की बिनती का उच्च न्यायालय ने तिरस्कार किया था; इसकी भूमिका में उनकी राजनीतिक मृदुता के कारण का उपयोग

पाने का निजलिंगप्पाजी ने प्रयत्न किया। उनकी इच्छा थी कि पुरानी कांग्रेस को वापस जाने के लिए, पद से उतरने के लिए, कांग्रेस के लोगों के दबाव के कारण, राव जी इस्तीफा देने के लिए नैतिक रूप से बद्ध हों, इस संबंध में वे देहली में देवेगौडाजी से भी मिले। 1957 में नेहरूजी से अपने एक दूत के द्वारा परोक्ष रूप में भेजी गई शिकायत के कारण निजलिंगप्पाजी ने मुख्यमंत्री स्थान का त्याग किया था; उसका स्मरण आज उन्हें हुआ। उन्होंने पत्रकर्ताओं से बताया कि 'तत्क्षण मैंने कागज मंगवाकर, इस्तीफा दे दिया और खुद की कार लेकर घर चला गया।' 'नए पुनरुज्जीवित कांग्रेस का नेता कौन बने?' इस प्रश्न के जवाब में उन्होंने कहा, 'बेंगलूर का समागम उसके बारे में निर्णय लेगा।'

वे अधिकार के केंद्रीकरण के विरोधी थे; इसलिए एक ही व्यक्ति के कांग्रेस के अध्यक्ष और प्रधानमंत्री दोनों पदों को पाने के बारे में उन्हें आपत्ति थी। हाल ही में रचित 'संयुक्त कांग्रेस वेदिके' ने बेंगलूर समागम का आयोजन किया था; उसके अध्यक्ष थे निजलिंगप्पाजी। उपाध्यक्ष थे, हरियाणा के चौधरी रणवीरसिंहजी। वे भी निजलिंगप्पाजी के जैसे संविधान-रचना सभा के सदस्य थे। वी.पी. सिंहजी के पूर्व सहायक तथा कांग्रेस (आइ) के एक पदाधिकारी सैयद अश्रफजी उसके अधिकृत संचालक थे। इस मंच ने बड़ी संख्या में कांग्रेस के लोगों को अर्थात् पूर्व कांग्रेसियों को समागम के लिए आमंत्रित किया था। इसमें देवेगौडाजी, नरसिंहरावजी आर. वेंकटरामनजी, सी. सुब्रह्मण्यम् जी, डा. करणसिंहजी सब थे। आमंत्रितों में कांग्रेस में रावजी के विरोधी भी कई थे; यह कुतूहलकारी विषय रहा। परंतु आजतक शायद उसका कोई स्पष्ट परिणाम हुआ नहीं। जन्म से आशावादी निजलिंगप्पाजी ने अपना सुबद्ध कार्य को कभी अधूरा नहीं छोड़ा। निजलिंगप्पाजी ने पत्रिकागोष्ठी में बताया कि नरसिंहरावजी को कांग्रेस (आइ) के अध्यक्ष स्थान से उतारना होगा, भारत राष्ट्रीय कांग्रेस का पुराने कांग्रेस के लोगों को मिलाकर, पुनरुज्जीवित करना चाहिए। कांग्रेस (आइ) के द्वारा पुराने कांग्रेस के तत्वों को हवा में उड़ाने के कारण अनेक कांग्रेस लोगों की अतृप्ति को बताया। इंदिराजी ने 1969 में कांग्रेस को मार डाला, अब कांग्रेस के सामने पानेवाले 'आई को निकालने का सुसमय आ गया है। गौड़ाजी की सरकार के बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा कि उसके बारे में कोई निश्चित अभिप्राय देने के लिए अभी समय नहीं आया है।

श्रीमती सोनिया गांधी जी के साथ एस. निजलिंगप्पाजी

यह सर्वविदित विषय है कि सरदार पटेलजी के बारे में निजलिंगप्पाजी का प्रेम और अभिमान केवल शब्दों तक सीमित नहीं थे। भारत के ग्रामीण जीवन और कृषि के बारे में गहरा ज्ञान रखनेवाले सरदार पटेलजी के भारत के प्रथम प्रधानमंत्री न होने के बारे में, निजलिंगप्पाजी विषाद व्यक्त करते थे। सरदार पटेल सोसाइटी की स्थापना में निजलिंगप्पाजी ने बड़े प्रयत्न किए, फिर उसके अध्यक्ष भी बने। बाकी विषयों के अलावा नेहरू स्मारक वस्तुसंग्रहालय और ग्रंथालय की स्थापना जैसे सरदार पटेल के भाषणों लेखों का प्रकाशन तथा उनके नामपर विशेष भाषणों की व्यवस्था - ये सब सोसाइटी के उद्देश्य थे। संपूर्ण कृतियों के संपादक के रूप में डा. पी.एन. छोप्राजी को नियुक्त किया गया। उन्हें सलाह देने के लिए निजलिंगप्पाजी के नेतृत्व में वृत्तिनिरत विद्वानों तथा इतिहासकारों की एक सलाह-समिति की रचना की गई। अवरडीन विश्वविद्यालय के प्रो. मैकेल ल्यान जी ने सरदार पटेल स्मारक का पहला विशेष भाषण दिया। अबतक आठ भागों का प्रकाशन हुआ है। अभी तीन भागों की छपाई हो रही है। इस प्रयत्न में निजलिंगप्पाजी का सहभागित्व इसका द्योतक है कि वे किसी भी कार्य में तत्परता से भाग लेते हैं। जो भी कार्य वे प्रारंभ करते हैं तो उसमें संपूर्ण रूप से तल्लीन हो जाते हैं।

10 दिसंबर 1996 को संयुक्त कांग्रेस मंच ने देहली में निजलिंगप्पाजी के 95 वें जन्मदिन का समारोह किया। कांग्रेस के विविध गुटों के नेता तथा उनके समर्थकों ने आकर इस वरिष्ठ नेता का अभिनंदन किया। कर्नाटक भवन में इस सरल समारोह का आयोजन किया गया था। चंद्रशेखरजी और नरसिंहराव जी भी समारोह में आये थे। कृषि में आसक्त निजलिंगप्पाजी ने देहली के बाहरी प्रदेश में चन्द्रशेखरजी के उद्यान तथा वहाँ के फलों के बारे में पूछताछ की। उसके बाद रावजी से कहा, ''आपने सामने आई परिस्थितियों का निर्भावुकता से सामने किया, उसके लिए अभिनंदन है; आपका स्वभाव अनूठा का है।'' रावजी ने जवाब में कहा – ''ऊँच-नीच की परिस्थितियों में सदा हमें शांतचित्त रहना चाहिए।'' पुराने दिनों का स्मरण करते हुए निजलिंगप्पाजी ने उस समय की आशाभावना के बारे में बात की। उन्होंने कहा, ''उस समय हमारे साथ अति श्रेष्ठा वकील, वैद्य या व्यापारी रहते थे; परंतु अब देखिए! समय कैसे बदल गया है!'' इनकी बातचीत के बीच युवा कांग्रेस के नए अध्यक्ष, सलीम अहमद जी आये और उन्होंने निजलिंगप्पाजी से आशीर्वाद माँगा। तब

निजलिंगप्पाजी ने कहा, ''आप हमारे लिए अत्यंत कीमती हैं – आप जैसे युवाओं पर ही हमारा भरोसा है।'' तब रावजी ने कहा, ''अब हमें, हटना चाहिए। हमने जो किया अच्छा, बुरा या गैरजिम्मेदारी पूर्ण कार्य, अब अपना गौरव बचाकर हटना चाहिए न!'' निजलिंगप्पाजी ने वैसा ही किया। परंतु रावजी के बारे में वैसा कैसे कह सकते हैं? रामकृष्ण हेगडे जी, वीरेंद्र पाटील जी के साथ समारोह में सबसे पहले आए। दोनों ही कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री थे। निजलिंगप्पाजी ने उन्हें सुधारा था। उन दोनों को लोग 'लव-कुश' कहते थे।

जीवन के सभी क्षेत्रों में – उनमें भी राजनीति में – हुई गिरावट को देखते हुए घबराकर निजलिंगप्पाजी ने 6 फरवरी 1997 को नई देहली में छः-सात नेताओं की एक सभा बुलाई। उद्देश्य था - पुरानी कांग्रेस को पुनरुज्जीवित करना। दो घंटों तक सुदीर्घ चर्चा हुई। इसमें पूर्व प्रधानमंत्री चंद्रशेखर, कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री रामकृष्ण हेगडे, कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सदस्य राजेश पायलट, लोकसभा के पूर्व सभाध्यक्ष शिवराज पाटील, देवीलाल, सी. सुब्रह्मण्यम्, करणसिंह, मीर खासीम और एस.एन. मिश्रा आदि ने भाग लिया था। बाद में पत्रकर्ताओं से चन्द्रशेखरजी ने बताया कि देश के सामने प्रस्तुत समस्याओं के बारे में चर्चा हो रही थी; कांग्रेस की एकता के बारे में नहीं। पत्रकर्ताओं से बात करते हुए पैलटजी ने कहा कि इस गुट का एकाभिप्राय है कि कांग्रेस को शक्तिशाली बनाना। पुरानी कांग्रेस के आदर्शों को फिर से लाने के द्वारा यह हो सकता है। पुरानी कांग्रेसवालों के अभिप्रायों को कांग्रेस कार्यकारी समिति को बताने का भरोसा पायलटजी ने दिया। पत्रकर्ताओं ने पूछा कि चन्द्रशेखरजी और हेगडे जी को क्या कांग्रेस फिर से शामिल करेगा? उसके जवाब में पायलटजी ने कहा कि कांग्रेस कार्यकारी समिति ने पुरानी कांग्रेसवालों को वापस आने के लिए पत्र लिख भेजा है। निजलिंगप्पाजी ने कहा कि पुरानी कांग्रेस का पुनरुज्जीवन करने के बारे में और चर्चायें करने का कई लोगों का अभिप्राय है। कांग्रेस अध्यक्ष सीताराम केसरी जी और नरसिंहरावजी को भी आमंत्रित किया गया था। परंतु वे सभा में नहीं आए। स्पष्ट हो गया कि विविध समूहों में बँटे हुए पुरानी कांग्रेस के नेताओं को एक छत के नीचे लाने का प्रयत्न विफल हो गया। दूसरे दिन, उसके बदले भ्रष्टाचार निर्मूलन के लिए देशव्यापी आंदोलन करने का निर्णय हुआ। निजलिंगप्पाजी ने बताया कि सभा में आए हुए नेताओं का सामान्य अभिप्राय था कि कांग्रेस में शामिल होने से उद्देश्य पूरा नहीं होगा - फिर से गडबडी उत्पन्न होगी।

ध्यान देना होगा कि निजलिंगप्पाजी अपने प्रयत्न में हारे नहीं थे। देश की बढ़ती हुई समस्याओं के बारे में चर्चा कर उनके लिए समाधान ढूँढने में अपना समय और सामर्थ्य को अर्पित करने के मनोभाव के व्यक्ति थे। वह कुछ हद तक कार्यगत हो रहा था। परंतु संभव नहीं हुआ। कुछ लोग उसे बुजुर्ग व्यक्ति की दुर्बलता कहते हैं, परंतु सांदर्भिक संभावनाओं को भी पार करनेवाले उनके आशावाद का यह संकेत है। यही उनका सामर्थ्य भी है। क्योंकि सच्चे गाँधीवादी होते हुए यदि कोई भी कार्य करने का प्रयत्न, भरोसे के साथ न करे तो वे क्रियारहित हो जाते हैं। प्रयत्न करके हार जाना, निराशा होकर प्रयत्न न करने से बेहतर होता है। देश के सामने जो भ्रष्टाचार रूपी सबसे बड़ी समस्या थी उसके लिए वे बहुत चिंतित थे। 19 मार्च 1997 को बेंगलूर में भरी हुई पत्रिकागोष्ठी में भाषण देते हुए उन्होंने कहा कि 1969 से अधिकार में रहनेवाले लोगों की और आज के शासकों, एम.पी., मंत्री लोग, मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री और अधिकारीयों के जायदाद की सी.बी.आई. द्वारा जाँच होनी चाहिए। वह साल मुख्य इसलिए कि इसी समय कांग्रेस का विभाजन हुआ था। और पहले कभी न देखे गए अत्यधिक मात्रा में अब भ्रष्टाचार में लगी हुई इंदिरागाँधीजी अपना निरंकुशाधिकार दिखा रही थीं। प्रमाणिक अधिकारी ही यह कार्य करे। भ्रष्टों को सज़ा होनी चाहिए और उनकी जायदाद को ज़ब्त करना चाहिए। इसके द्वारा, विदेशी ऋण से मुक्त हो सकते हैं। उन्होंने घोषणा की वे थोडे ही समय में भ्रष्टाचार के विरुद्ध एक कार्यक्रम को रूपित करनेवाले हैं। सलाह मांगते हुए उन्होंने देश के विविध क्षेत्रों के 55 प्रसिद्ध व्यक्तियों को पत्र लिखे थे। उनकी सलाह के अनुसार अपने आगे की कार्ययोजना बनाएँगे – उन्होंने कहा - ''भ्रष्टाचार के तांडव में फँसे, प्रस्तुत संदर्भ का सामना करने के लिए विभिन्न मार्ग को सूचित करना और आर्थिक विकास में कार्य करना ही मेरा ध्येय है। उनमें केवल प्रसिद्ध राजनेता ही नहीं; उनके नाम नहीं बताये जायेंगे।'' पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त टी.एन्. शेषनजी और महाराष्ट्र के योद्धा अण्णा हजारे जी से उन्होंने संपर्क किया था। उन्होंने कहा कि देश के राजनीतिक क्षेत्र को परिशुद्ध कर राष्ट्र को विकास की ओर ले जाना ही मेरा उद्देश्य है। परंतु उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि इसके लिए कोई नई राजनितिक पार्टी को प्रारंभ नहीं करेंगे। मन में कल्पित यही एक आंदोलन है। 95वीं आयु में भी, जनता का

विनम्र सेवक बनकर, सार्वजनिक जीवन में भरे भ्रष्टाचार, अप्रामाणिकता और अदक्षता का निर्मूलन करने के लिए मैं संघर्ष कर रहा हूँ। नरसिंहरावजी के बारे में उनका अभिप्राय पूछा गया तो उन्होंने कहा – ''पिछले पचास वर्षों से मैं उन्हें जानता हूँ। कानून के अनुसार सज़ा पाने तक कोई भी प्रामाणिक ही होता है।'' और कहा कि ''पुरानी कांग्रेस के पुनरुज्जीवन का विचार मैंने छोड़ दिया है; क्योकि, वह शायद हो नहीं सकेगा। अब पुरानी कांग्रेसवाले इंदिराजी के गुटवाले आदि अनेक तरह के कांग्रेसवाले बन गए हैं तो मुश्किल हो गया है। अब लगता है कि कांग्रेस को पुनरुज्जीवन देना बेमतलब का कार्य है।'' देवेगौडाजी की कार्यशैली के बारे में पूछे गए सवाल का जवाब देते हुए उन्होंने कहा – ''उसका निर्णय देने के लिए नौ महिना छोटी अवधि है; परंतु आजकल केंद्र सरकार पिछले चार दशकों से मैं जो कहते आ रहा था वैसे कृषि, ग्रामीण विकास और छोटे उद्योगों की तरफ ध्यान दे रही है।'' हेगडे जी की 'लोकशक्ति' पार्टी के बारे में कहा कि ''थोड़ा इन्तजार करके देखिए।'' और ज्यादा कहने से इनकार किया। जनसंख्या की समस्या के बारे में चिंता व्यक्त करते हुए कहा कि ''दंपति की एक से अधिक संतान न होने के बारे में कानून बना देना चाहिए। और इसे सभी धर्मों के लिए लागू करना चाहिए।'' डा. पी.वी. नारायणजी के उपन्यास 'धर्मकारण' के लिए राज्यभर आंदोलन होने के विषय पर अभिप्राय व्यक्त करते हुए कहा कि ''उसमें गलतियाँ भरी हुई हैं – अक्कनागम्माजी और चेन्नबसवण्णाजी के बारे में ऐतिहासिक अंशों को बदलते हुए लेखक ने पाप किया है।'' परंतु सृजनशील लेखों पर नियंत्रण लगाने के विशाल प्रश्न की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। केवल ऐतिहासिकता तक अपने को सीमित कर लिया। कहा कि 'सिंगिराजपुराण' तथा पंद्रहवीं सदी की और कई कृतियों के अनुसार, अक्कनागम्माजी के पति थे 'शिवस्वामी'। उपन्यासकार ने अक्कनागम्माजी, उनका विवाह और उनके पुत्र चेन्नबसवण्णाजी के प्रति गलत लिखा है।''

पत्रिकाओं के साथ हुए इस साक्षात्कार से यह स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत विषयों में तथा राजनीतिक अथवा साहित्यिक, सांस्कृतिक विषयों में अपनी 96वीं आयु में भी उन्हें तीव्र आसक्ति थी। यह केवल आसक्ति ही नहीं – अच्छी जानकारी रखनेवाली आसक्ति है। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने को सिर्फ राजनीति तक ही सीमित नहीं कर लिया था; मानव के हर कार्यों के प्रति उनकी आसक्ति रही।

24 अगस्त 1997 को स्वातंत्र्य आंदोलन में भाग लेने के स्मरण में प्रशस्ति प्राप्त सी. सुब्रह्मण्य जी का अभिनंदन करने के लिए चेन्नई में आयोजित एक समारोह में, निजलिंगप्पाजी ने भाग लिया था। इस संदर्भ में उन्होंने विषाद व्यक्त किया कि अनिवार्य शिक्षा कार्यक्रम का प्रामाणिक रीति से प्रयोग न होने के कारण सरकार के नीति-निर्देशक तत्वों का ठीक तरह से आचरण में न लाने के कारण, देश की ऐसी दुस्थिति हो गई है। संविधान निर्देशक तत्वों में अनुष्ठान किया गया एक सूत्र है – कार्यपालिका से न्यायपालिका को स्वतंत्र किया जाना। परंतु ग्रामीण विकास से संबंधित किसी भी सूत्र का अनुष्ठान नहीं हुआ है। अब धन और अधिकार केवल कुछ ही लोगों के हाथों में केंद्रीकृत हैं। स्वातंत्र्य संग्राम के समय देखे गए तथा संविधान में माने गए ध्येयों को साधने में अभी बहुत दूर जाना है। देश में कौमवाद के बढ़ने पर खेद प्रकट करते हुए उन्होंने कहा कि अब इस सामाजिक पद्धति के बारे में, फिर से सोचने का समय आया है। रिश्वतखोरी पर खेद व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि इसका एकमात्र उपाय है, लोगों को जागृत होकर, क्रांतिकारक बदलाव लाने के लिए कार्य करना है।

6 अक्तूबर 1997 को निजलिंगप्पाजी ने देश की बुराइयों को दूर कर, गाँधीजी के तत्वों पर आधारित देश का निर्माण करने के लिए लोगों से बिनती की। गाँधी जयंती के संदर्भ में 'गाँधी वेदिके' नामक राजकीयेतर संस्था के आरंभोत्सव में वे भाग लेकर, भाषण दे रहे थे। उन्होंने कहा कि पिछले पचास वर्षों में देश में विज्ञान और सुरक्षा के क्षेत्रों में अच्छे काम हुए हैं; परंतु गाँधीजी द्वारा बताये गए नैतिक मूल्य सब लोग भूल गए हैं। दिल्ली में गाँधीजी की समाधि स्थल में वे बोल रहे थे। उस मंच ने पंचवार्षिक कार्यसूची को रूपित किया था। मंच के कार्याध्यक्ष राजेश पायलटजी ने घोषणा की कि वे गाँधीजी के ध्येयों की साधना के लिए गाँधी मार्ग का ही अनुसरण करेंगे। यह भी कहा कि भ्रष्टाचार निर्मूलन के लिए यह मंच सरकार को दृढ़ सलाह देगा, और भरोसा भी है कि सरकार उसे अवश्य मानेगी। यदि नहीं मानेगी सरकार तो यह मंच गाँधी के अहिंसात्मक मार्गों पर चलकर, लोगों को एक करने का प्रयत्न करेगा। मंच की कार्यसूची में यह भी बताया गया है कि प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री और शासकों को 60 दिनों में अपनी अपनी जायदादों का विवरण खुले में प्रकट करना होगा। प्रशासन में प्रामाणिकता, निष्पक्षता और पारदर्शकता की पुनः स्थापना मंच का ध्येय है। अपने कर्तव्यों का निर्वहण करनेवाले, अधिकारियों का यह मंच नैतिक कानूनी तथा नैतिक समर्थन देता है।

सौ के लिए तीन कदम
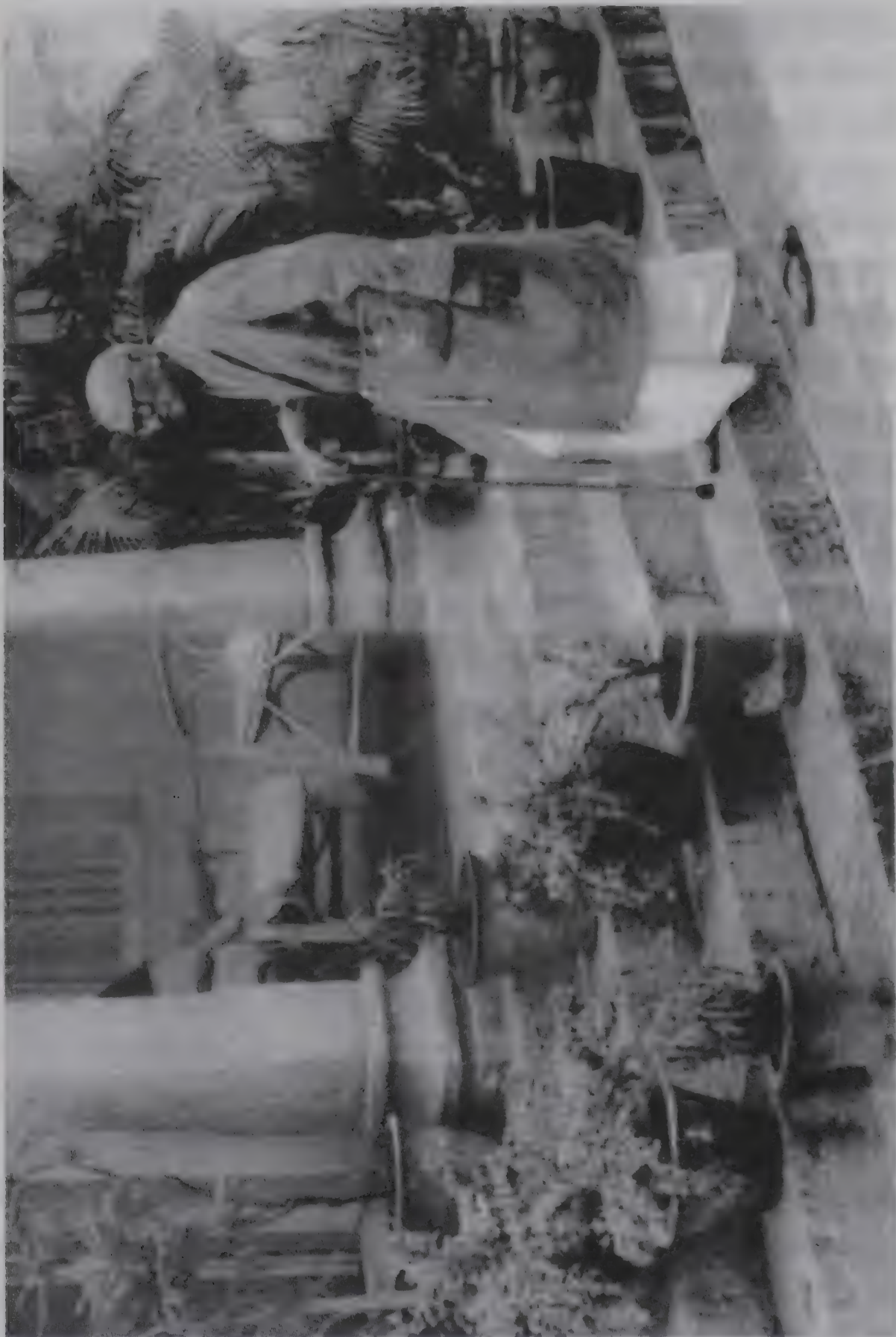
अक्तूबर 1997 को नई दिल्ली के कर्नाटक भवन में, आयोजित सभा में निजलिंगप्पाजी को संविधान रचना सभा के सदस्यों के संघ का अध्यक्ष बनाया गया। इस संघ के सदस्यों ने भ्रष्टाचार और राजनीतिक आपराधीकरणों के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए, पहले ही रचित 'गाँधी-मंच' को अपना समर्थन व्यक्त किया। इसमें कुसुमाकांत जैन, कालूराम विरुलकर, मोतीराम बैग्रा, बेगम अजीजा रसूल, बलवंतसिंह मेहता, चौधरी रणबीरसिंह, भगवानदीन और निहालसिंह तक्षक आदि थे। संविधान रचना सभा के सदस्यों में जीवित पन्द्रह लोग समीप ही थे। और आश्चर्य का विषय है कि वह सभा आज भी अस्तित्व में है। क्योंकि, उसके अध्यक्ष और भारत के पूर्व राष्ट्रपति डा. राजेंद्रप्रसाद जी ने अनिर्दिष्ट अवधि तक उसे आगे बढ़ाया था। प्रधानमंत्री आइ.के. गुजरालजी ने मंच को पत्र लिखकर मंच को अपना समर्थन देते हुए कहा था कि उनकी भी प्रथम आद्यता भ्रष्टाचार-निर्मूलन ही है। समर्थन देने के लिए निजलिंगप्पाजी ने प्रधानमंत्री जी को धन्यवाद दिया।

दिसंबर 1997 को निजलिंगप्पाजी ने 96 वर्ष की आयु पूरी की। बढ़ती आयु ने उनके जीवन के प्रति असीम प्रीति और प्रस्तुत घटनाओं में सक्रिय भागीदारी के उत्साह को कम नहीं किया था। उनके 96 वे जन्मदिन के लिए चित्रदुर्ग में एक सरल समारोह का आयोजन किया गया। उसमें चित्रदुर्ग के कृतज्ञ नागरिकों ने अपने प्रिय, गण्यामान्य राजनेता और सबसे बढकर जनता सेवक को गौरवादर समर्पित किया। निजलिंगप्पाजी ने देश के ही नहीं, पूरे जगत के प्रस्तुत व्यवहारों के बारे में अपना गहरा चिंतन व्यक्त किया। उन्होंने प्रशंसा की कि औपचारिक रूप से शिक्षा प्राप्त न करने पर भी भारत की सामान्य जनता, वस्तुस्थिति को ग्रहण करने की होशियारी रखती हैं।

अपने गुरु महात्मा गाँधीजी के जैसे ही निजलिंगप्पाजी इस संदर्भ में औपचारिक शिक्षा तथा जीवन के अनुभव से प्राप्त शिक्षा, इन दोनों में अंतर करते थे। आनेवाले चुनावों के बारे में प्रस्ताव करते हुए, उन्होंने कहा कि लोगों को अभी से किसे मत देना चाहिए इसके बारे में सोचना चाहिए। राजनीतिक विभाजन और राजनीतिक भ्रष्टाचारों से भरे हुए आज के संद्भों में उसका निर्णय करना भी थोड़ा मुश्किल है। मुझे ही उसका निर्णय लेना अभी तक संभव नहीं हुआ है। भारत को आजादी दिलानेवाली कांग्रेस अब कमजोर हो गयी है;

इसकारण पार्टी के बारे में न सोचते हुए, प्रामाणिक, श्रद्धावान, विश्वासनीय अभ्यर्थी को मत देना चाहिए। कौमनिष्ठा भूलकर, योग्य व्यक्ति को मत देने के लिए कहा। आजादी प्राप्तकर 50 वर्षों के बाद भी देश के 70% लोग दुस्थिति में हैं। पिछली राष्ट्रीय सरकारों का आमजनता की हितसाधना की तरफ ध्यान न देना ही इसका कारण है। आनेवाली सरकार बड़े बड़े कारखानों की स्थापना के लिए विदेशी धन को आमंत्रित करने के लिए आतुर हैं। उन्होंने कहा कि ऐसे गलत रास्ते छोड़कर असली भारत के ग्रामीण लोगों के विकास और भलाई की तरफ ध्यान देना चाहिए। अपने जीवन में जानकर कोई गलत कार्य न करने पर, उन्होंने अभिमान महसूस किया। यदि कोई गलती हुई भी हो तो अनजान में हुई होगी। जब इस लेखक की उनसे मुलाकात हुई तो उन्होंने यही कहा था। सलाह दी कि अब आगे कितने वर्ष जीवित रहेंगे यह पता नहीं है; लोगों ने मुझमें जो सौजन्य व अच्छे गुणों का वर्णन किया, उन्हें आप भी अपने जीवन में लागू कर लीजिए। अपने मुख्यमंत्री होने के दिनों का स्मरण करते हुए अपनी कुछ साधनाओं के बारे में बताया। उनमें प्रमुख थीं – वृद्धजनों को सहायक धन दिलाना, स्वातंत्र्ययोद्धाओं को मासिक पेनशन, लेखकों व कलाकारों को आर्थिक सहायता दिलाना, छः वर्षों में शरावती जलविद्युत योजना को पूरा करना और सिंचाई सुविधाओं का विकास। राज्य के पिछड़े जिलों में चित्रदुर्ग भी एक होने के बारे में उन्होंने विषाद प्रकट किया – ''इस जिले में बहुत कम सिंचाई की सुविधाएँ हैं।'' भद्रा अप्पर योजना को प्रारंभ करने के लिए उन्होंने सरकार से बिनती की।

96 वर्ष आयुवाले निजलिंगप्पाजी आज भी हट्टेकट्टे और आम जनता के बारे में सोचनेवाले और उनके कुशल मंगल के लिए अथक परिश्रम करनेवाले हैं। निजलिंगप्पाजी के जीवन का बयान यहाँ पर हम समाप्त करना चाहते हैं। अपने जीवन के लिए कहीं अंत होने पर भी, निजलिंगप्पाजी आगे बढ़ते जायेंगे और अपनी जीवनी को आगे बढ़ाएँगे। इस जीवन कथन के अंत में पाठक, उनके बारे में जो व्यक्तिचित्र देखता है वह असली है परंतु, सौजन्य व सरलता के पीछे छिपनेवाले एक महान व्यक्तित्व है। उनका जीवन महान है, हम सभी को वह स्फूर्तिदायक है, हमारी विवेचना को तेज बनाता है। चित्रपूर्ण दुर्ग (किले) के गाँव 'चित्रदुर्ग' के अपने साधारण घर 'विनय' के बरामदे में बेंत की कुर्सी पर बैठे, इस छियानवे वर्ष के वृद्ध का गगनचुंबी तेज, हमें आश्चर्यचकित कर

देता है। निजलिंगप्पाजी का भौतिक आकार (शरीर) शाश्वत न हो सकता है। परंतु कर्नाटक और भारत पर उनका प्रभाव कभी न मिटनेवाला है; वह भौतिक शरीर के बाद भी जीवित रहेगा! निजलिंगप्पाजी को मृत्यु का भय नहीं है, वे उसका स्वागत करते हैं। अपने खासगी और सार्वजनिक जीवन जो भी देता है, उसे स्वीकार करते आए हैं। जीवन के प्रति प्रेम; उसी में सुख पाने का मनोभाव, प्रकृति के साथ खुद को पहचानने की रीति – ये सब अनन्य हैं - अनुपम हैं। ऐसे लोगों के लिए जीवन और मृत्यु के बीच के अंतर का कोई मतलब ही नहीं है; दोनों को एक ही अस्तित्व के आगे बढ़ना हैं। ''मृत्यु के बाद ?' यह सवाल निजलिंगप्पाजी को कभी नहीं सताएगा।

8. निजलिंगप्पाजी की दृष्टि

निजलिंगप्पाजी के जीवन और विचारों के विस्तृत निरूपण के बाद उनके जीवन-विचारों के सामञ्जस्य के बारे में सहज ही हम सोचने लगते हैं। अपने जीवन का इस जगत पर, प्रभाव डालनेवाले निजलिंगप्पाजी सहित सभी ऐतिहासिक व्यक्तियों के कहीं किसी भी देन से स्फूर्ति पाने में कोई संदेह नहीं है। शायद वह कुछ हदतक प्रज्ञापूर्वक और कुछ हदतक अप्रज्ञापूर्वक होता है। परंतु वैसा कुछ होना ही चाहिए।

उनके जीवन की तरफ मुड़कर देखने पर, यह दृष्टिकोण कितना महत्वपूर्ण है – यह समझ में आता है। दृष्टि एक व्यक्ति के या जीवन के ध्येयों के बारे में, उसकी इच्छा का सारांश होता है और उसमें कुछ तत्व और मूल्य अंतर्गत होते हैं। अधिक व्यापक रूप में उसे ''सहज जीवी और वैचारिक जीवी में गहराई तक जड़ पकड़नेवाली मानवीय दृष्टि है'' – इस प्रकार वर्णन कर सकते हैं। इस दृष्टि में भगवान एक अनिवार्य साधन नहीं है, किन्तु उसे अनुकूलता के लिए शामिल कर सकते हैं। ईश्वर के विषय में निजलिंगप्पाजी एक अज्ञेयतावादी थे। उसके बारे में उन्हें विश्वास अथवा अविश्वास दोनों नहीं थे। इस दृष्टिकोण से मानव के बारे में ''एक स्वयं निर्धारक अर्थात् अपनी गति का स्वयं निर्णय लेनेवाले और अपना इतिहास खुद रचनेवाले जीवी हैं'' – ऐसी कल्पना होती है। परंतु, यह मानव सामर्थ्य - मानव की वैचारिक प्रज्ञा और ''मैं एकांगी अल्पजीवी ही न होकर दूसरे मानवों के और सहज जीवियों के बीच का एक जीवी है'' – इस वैचारिक परिकल्पना की व्याप्ति में बद्ध, नैतिक कर्तव्यों के अंदर रह जाता है। इसी कारण, निजलिंगप्पाजी कर्म और पुनर्जन्म की परिभावनाओं का तिरस्कार करते हैं। अपनी मानवीय देन के कारण ही व्यक्ति स्वातंत्र्य, समानता और भ्रातृत्व के बारे में उन्होंने बद्धता के साथ मूल्यों और तत्वों को रूपित कर लिया है।

पूज्य दलायीलाम के साथ एस. निजलिंगप्पा जी

अपने राजनीतिक आयाम में, यह दृष्टिकोण धर्म निरपेक्षता और प्रजातंत्र के मूल्यों को शामिल कर लेता है। इस उदार बद्धता के कारण ही निजलिंगप्पाजी कम्यूनिज़म् और कौमवाद के विरोधी हैं। प्रजातंत्र तत्त्व का उल्लंघन करने के कारण निजलिंगप्पाजी कम्युनिज़म् को और धर्म निरपेक्षता का उल्लंघन करने के कारण कौमवाद का तिरस्कार करते हैं। परंतु युरोपियन ज्ञानोदय (एनलैटनमेंट) तक पीछे जानेवाली यह पश्चिमनिष्ठ देन, अपनी मिट्टी की मानवीय परंपरा से अधिक प्रभावित हुई है। एक तरफ निजलिंगप्पाजी, बसवेश्वर के श्रीमंत प्रजासत्तात्मक तथा मानवीय परंपरा की ओर ध्यान देनेवाले हो तो दूसरी तरफ, उतना ही नैतिक प्रज्ञावाले गाँधीजी की राजनीतिक परंपरा से प्रभावित थे। राजनीति में नीति की आवश्यकता तथा आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों के विकेंद्रीकरण जैसे कुछ विषयों तक गाँधी-राजनीति के साथ उनका संबंध स्पष्ट था। परंतु भूलना न होगा कि वह काफी संकीर्णता से भरा था। गाँधीजी ने अपने अत्यंत मूलभूत राजनीतिक चिंतन के पाठ्य 'हिंद स्वराज' में संसदीय प्रजातंत्र में संस्थीकृत आधुनिक राजनीतिक संस्कृति का स्पष्ट रूप से तिरस्कार किया था। परंतु शायद निजलिंगप्पाजी इस संकीर्णता के बारे में नहीं जानते थे। यह सच था कि अभी अस्तित्व में रहनेवाली राजनीतिक व्यवस्था को, गाँधीयता का अन्वय करना चाहते हैं; उसके मूल स्वरूप के बारे में, गाँधीजी द्वारा की गई टीकाओं का वे परिगणन नहीं करते थे। यह भी सच है कि इस विषय में वे अकेले नहीं थे; क्योंकि, आधुनिक भारतीय राजनीतिक संस्कृति के मूलभूत विषयों में गाँधीवाद का तिरस्कार करते हुए, उसे आनुषंगिक-नैतिक पूरकांश के रूप में, शामिल करने की यह रीति है। उदाहरण के लिए – हमारे पंचायतराज अथवा सरकार की नीति निर्देशक तत्वों को – उसमें गाँधीवाद से लिए गए कुछ अंशों के होने पर भी, सच्चे गाँधीय नहीं कह सकते। यह समस्या जे.पी.जी में भी थी। अपने सभी (सदिच्छा) सदोद्देश्यों के अलावा गाँधीतर उदार विचार का पोषण करता है। शायद मानना पड़ेगा कि गाँधीजी द्वारा ही रूपित गाँधीवाद का हम से अनुष्ठान संभव नहीं है। वैसा है तो ''आज की राजनीतिक संस्थाओं को गाँधीमार्ग की तरफ ले जाना ठीक है'' – यह तर्क करना समंजस होगा। इस अर्थ में, हम निजलिंगप्पाजी को 'गाँधीवादी' कह सकते हैं। परंतु इस अर्थ में नेहरूजी

और गाँधीजी के बीच का अंतर, निजलिंगप्पाजी के अनुसार मूलभूत नहीं है। नेहरूजी पर इलजाम लगा सकते हैं, फिर भी, वह गाँधी विरोध के कारण नहीं, इस कारण से शायद कि वे असमर्थ गांधी विरोधी रहे। जो भी हो, हमारे सामने यह सवाल उठता है कि "गाँधीजी ने नेहरूजी को क्यों अपना उत्तराधिकारी माना?" यह निवारण न होनेवाला प्रश्न है। परंतु यह स्पष्ट है कि निजलिंगप्पाजी किसी भी प्रमाण को - गाँधीजी का भी - आँख मूंदकर भी परिशीलन किए बिना नहीं माननेवाले थे। इस कारण उन्हें 'गाँधीवादी' कहने पर अथवा वे स्वयं, खुद को गाँधावादी कहने पर उसका मतलब होगा – "वह गाँधीवाद को सूक्त रीति में अनुसरण करने का मार्ग है"। गाँधीजी से निजलिंगप्पाजी द्वारा स्वीकार किए गए अंश थे – राजनीतिक जीवन का अर्थ है "नियमबद्ध जीवन की रीति" तथा कभी भी "अधिकार, एक व्यक्ति अथवा एक स्थल में केंद्रीकृत न हो"।

अंत में उनकी दृष्टि राष्ट्रीयवादी रही और भारत को मूलभूत रूप में एक घटक मानकर, उसपर विश्वास करने की दृष्टि से बद्ध थे। परंतु, उनकी परिकल्पना का राष्ट्र था – अपनी ही विशिष्ट संस्कृति और इतिहासवाला, विभिन्न प्रादेशिक व्यवस्थाओं का एक समूह। इस पर "अमूर्त राष्ट्र और उसके घटकों के बीच के संघर्ष हो सकता है – इसे वे देख नहीं सके। उसके बदले, वे विश्वास करते थे कि "य़े दोनों परस्पर एक और अभेध्य हैं।" इस सैद्धांतिक नींव पर ही उन्होंने कर्नाटक एकीकरण आंदोलन को चलाया। उन्होंने अनेक बार कहा है कि "यदि यह पूरक टूट जाता है, राष्ट्र और उसके भाषिक घटकों के बीच संघर्ष हो तो, बिना कुछ सोचे वे वैसी प्रादेशिकता का तिरस्कार कर, राष्ट्र के पक्ष में खड़े होंगे। इसी कारण से अपने यौवन और मध्य आयु को भाषावार प्रांतों की रचना के लिए सुरक्षित रखनेवाले निजलिंगप्पाजी अब उन्हें राष्ट्र की न्याययुत हितासक्तियों के विरुद्ध मानकर, उसके बारे में आलोचक हो गये थे– यही उनमें विरोधाभास था।

अंतिम विश्लेषण में – यह दृष्टिकोण भारतीय वांतावरण में घनीभूत हुआ है। उसमें परस्पर विरुद्ध लगनेवाले पाश्चात्य आधुनिकता और भारतीय धार्मिक नैतिकता, दोनों मिली हुई हैं। और विशाल ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में, देखने पर निजलिंगप्पाजी और उनके समय के लोग – गाँधीजी को लेकर –

उपनिवेशवादी परंपरा और अपनी सांप्रदायिकता के बीच के पुल के जैसे खड़े हुए लगते हैं। परंतु बाद में आए हुए लोग - जो भी कारण कहे - नई तरह के उपनिवेश और नई तरह की गुलामी में वैश्वीकरण के भ्रम में खोने के खतरे में फँसे हुए लगते हैं। परंतु निजलिंगप्पाजी आशावादी हैं। उसका कारण है – ''फिर से उच्चवर्ग के ऊपर उठने की भूमिका को युवा लोग और मान्य जनता उसका विरोध कर उसे पीछे हटायेंगे।'' – यही विश्वास है। निजलिंगप्पाजी की दृष्टि दृढ़ आशावाद से भरी है; परंतु वह भ्रमात्मक नहीं है। क्योंकि, इसके पीछे गाँधीजी के नैतिक वास्तववादी विवेक है।

* * * * *

गाँधीजी के अंतिम दर्शन

हरिजनों की बहुत ही अच्छी तरह से देखभाल करने पर भी, किसी ने गाँधीजी को गलत खबर दी थी कि 1947 से पहले पुराने मैसूर में हरिजनों को अच्छी तरह से देखा नहीं जाता है।

इसके बारे में बातचीत करने के लिए, 30 जनवरी 1947 को नई दिल्ली के बिरला-भवन में, शाम 5 बजे से 5-30 तक निजलिंगप्पाजी, हेच.सी. दासप्प्जी और कई लोगों से मिलने के लिए गाँधीजी मान गए थे। पुराने मैसूर के ये नेता, गाँधीजी को वस्तुस्थिति बताने के लिए, ठीक समय पर वहाँ पहुँचे थे। दुर्भाग्य से वहाँ जाने तक नाथूराम गोड़से ने गोली चलाकर गाँधीजी की हत्या कर दी थी। निजलिंगप्पाजी आदि लोग बिरला भवन के अंदर दौड़े। बिरला भवन में खलबली मची थी। गाँधीजी मर चुके थे। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री नेहरूजी और सरदार पटेलजी आदि नेताओं को निजलिंगप्पाजी ने ही यह खबर दी। ''मुँह में थोड़ा दूध डालने पर शायद गाँधीजी जीवित होंगे'' – इस विश्वास से एच.सी. दासप्पाजी दूध दूँढ़ रहे थे।

मुख्यमंत्री श्री एस.आर. बोम्मायी जी को निजलिंगप्पाजी का पत्र

एस. निजलिंगप्पा

'विनय' वी.पी. एक्सटेनशन
चित्रदुर्ग - 577 571
(कर्नाटक राज्य)
दूरभाष - 2550

दिनांक 05-11-1988

मान्य श्री बोम्माई जी को नमस्कार।

आपके पत्र की प्रतिलिपि कल मिली। मेरी पत्नी श्रीमती मुरिगेम्माजी के निधन पर हमारे दुःख में आप भी भागी होकर, व्यक्त की गई आपकी सहानुभूति और अनुकंपा के लिए धन्यवाद। हम आपके लिए ऋणी हैं।

उसी प्रकार मेरे स्वास्थ्य और बढ़ती आयु की समस्याओं के प्रति आपकी सहानुभूति के लिए भी धन्यवाद। मेरे स्वास्य के संबंध में बेंगलूर आने के लिए, वैद्य दबाव डाल रहे हैं। मेरी पत्नी के अभिप्राय के कारण आ नहीं सका। अब बेंगलूर आने में कोई रुकावट नहीं है। बेंगलूर में मेरे रहने आदि की व्यवस्था करने के लिए भी आपने कहा है। धन्यवाद। आप, मुझसे दूरभाष में बात करके मेरे कष्ट में भागी होने की बात कहने की कृपा की। मैंने बहुत सोच लिया है। आपकी सलाह के लिए धन्यवाद। बेंगलूर में अपना खर्च, स्वयं निभाते हुए मैंने आपकी, जनता की तथा देश की सेवा करने का निर्णय लिया है। उसके लिए मैं संसाधनों की व्यवस्था करना चाहता हूँ।

मैं सेवा के लिए हमेशा तैयार हूँ।

आपकी सहानुभूति के लिए फिर से धन्यवाद।

आपके विश्वासी,
निजलिंगप्पा

श्री एस.आर. बोम्माई जी
मुख्यमंत्री – कर्नाटक
बेंगलूर

सहायक ग्रंथ सूची

I अप्रकाशित सामग्री

1) निजलिंगप्पाजी के साथ किए गए साक्षात्कार के आठ घंटों से भी अधिक समय के टेप।
2) उनके निजी पत्र और उनकी डायरी
3) दिवंगत एस.एस. ओडेयर जी की टंकित टिप्पणी

II अधिकृत दाखलात

1) 1956 से 1968 तक की मैसूर राज्य विधानसभा की कार्यवाही
2) कांग्रेस बुलेटिन

III समाचार पत्र

1) इंडियन एक्सप्रेस
2) डेक्कन हेराल्ड
3) संयुक्त कर्नाटक (कन्नड़)

IV प्रकाशन

1) कर्नाटक का भाग्यविधाता – एल. एस. चन्द्रशेखर और सुशीलम्मा चन्द्रशेखर, बेंगलूर - 1962 (कन्नड़)
2) थॉट्स आफ श्री एस. निजलिंगप्पा – साठवें वर्ष का गौरव ग्रंथ – एम.पी.सी.सी. प्रकाशन, 10 दिसंबर, 1967, बेंगलूर
3) कामराज – ए स्टडी – वी.के. नरसिंहन, मनक्तलास - मुंबई - 1967
4) बयाग्रफी ऑफ श्री एस. निजलिंगप्पा – एस. एन. शांतवीरप्पा, श्रीशैल प्रकाशन, मैसूर 1969
5) बिट्वीन लैन्स – कुलदीप नय्यर – अलाइड पब्लिकेशन्स – मुंबई, 1969
6) द स्प्लिट ऑफ इंडियन नेशनल कांग्रेस – अतुल्य घोष, कलकत्ता, 1970
7) कर्नाटक रूवारी – डी. जवरेगौड़ (दे.ज.गौ.) कलाकंठीरव, टी.एस. करिबसय्या – ट्रस्ट, बेंगलूर, 1985 (कन्नड़)
8) इम्बेलन्सस इन इंडियन इकानमी एण्ड रेमेडीस – अतुल्य घोष स्मारकोपन्यास – एस. निजलिंगप्पा, कल्कत्ता, 1987
9) बदुकु-मेलकु – एच.के. वीरण्णगौड़ा (कन्नड़) (विवरण प्राप्त नहीं)
10) ग्लिंससिस ऑफ ए विशनरी – सी.के. जाफर शरीफ (जीवन चरित), मूल कन्नड़ – वड्डुर्से रघुराम शेट्टी – एल.एस. शेषगिरी रावजी का अंग्रेजी अनुवाद – आइ.बी.एच्. प्रकाशन बेंगलूर, 1993

परिशिष्ट

I मुख्यमंत्री के रूप में, एस. निजलिंगप्पाजी की साधनाएँ

(पाठ्य में जो नहीं है)

1) बेंगलूर डायरी
2) खादी और ग्रामोद्योग मण्डल की रचना से, खादी और ग्रामोद्योग को प्रोत्साहन
3) तुंगभद्रा केनल निर्माण का खर्चा देने की परिस्थिति में किसानों के न रहने के कारण मुख्यमंत्री ने केनल के निर्माण का आदेश दिया और उसका खर्चा दस वर्षों में वसूल करने के लिए बताया।
4) मंगलूर पोर्ट
5) बसव भवन के लिए भूमि
6) पुलिसों के लिए घर तथा उनके लिए गृह निर्माण संस्था की रचना।
7) कागज का कारखाना – 'वेस्ट कोस्ट पेपर मिल्स' की स्थापना।
8) सहकारी क्षेत्र में चीनी कारखानों की स्थापना।
9) कृषि-उद्योग-संस्था का विकास।
10) ऊन-उद्योग का विकास।
11) उपेक्षित, हैदराबाद कर्नाटक और मुंबई कर्नाटक प्रदेशों के मार्गों का निर्माण।
12) बिजापुर में सैनिक स्कूल का प्रारंभ
13) कित्तूर में कित्तूररानी चेन्नम्मा लडकियों की आवासीय स्कूल की स्थापना।
14) कारवार-पोर्ट
15) सिंचाई – भद्रा केनल
16) सहकार क्षेत्र को प्रोत्साहन
17) कंठीरव स्टुडियो को प्रोत्साहन
18) इंगळदाळ में खान की स्थापना (इंगलदाळ में तांबा और हट्टी - सोने के खान)
19) बेंगलूर के कब्बन पार्क में नॉन गेजेटेड़ नौकरों के संघ को भूमि।

II कांग्रेस विभाजन के समय, इंदिरागाँधीजी–निजलिंगप्पाजी के बीच का पत्र-व्यवहार

(प्रधानमंत्री इंदिरागाँधी और अन्य पाँच व्यक्तियों द्वारा, 9 अक्तूबर 1969 को कांग्रेस अध्यक्ष श्री एस. निजलिंगप्पाजी को लिखा पत्र)

25 अगस्त की सभा में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने राजनीतिक परिस्थिति की समीक्षा करने के बाद, संस्था में ऐक्यता के वातावरण की सृष्टि करने के लिए सभी कांग्रेसवालों को बुलाने का निर्णय लिया। अनेक कांग्रेस नेताओं की उस पत्र की भावना के प्रति, स्पंदित न होने के बारे में शिकायतें आई थीं।

श्री सी. सुब्रह्मण्यम् जी को कांग्रेस कार्यकारिणी समिति से और श्री कमलापति त्रिपाठी जी, श्री काकनी वेंकटरामन् जी तथा अन्य कई लोगों को, करीब दो दशक पहले किए गए निर्णय के आधार पर संस्था के विविध पदों से निकालने के मनमाने आदेश, परिस्थिति को और बिगाड़ देंगे और इससे एकता निर्णय को जारी करना और कठिन होगा।

संसदीय मंडली 7 अक्तूबर की सभा में इन विषयों के बारे में प्रस्ताव कर, इसी महीने में ही बाद में बुलाए गए कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के परिशीलन तक रोक लेने के लिए सूचना दे सकते थे।

अध्यक्ष के इस व्यवहार का गंभीर राजनीतिक परिणाम होने में कोई संदेह नहीं है; इस कारण जल्दी ही, इसके बारे में, कांग्रेस कार्यकारिणी समिति को परिशीलन करना होगा।

इस कारण, 30 अक्तूबर को बुलाई गई कांग्रेस कार्यकारिणी समिति को इसी महीने 15 को बुलाने की व्यवस्था करनी होगी।

इसी बीच, अध्यक्ष जी के आदेशों को रोकना होगा। हम सोचते हैं कि पूर्ण राजनीतिक परिस्थिति के परिशीलन के लिए शीघ्र ए.आइ.सी.सी. सभा बुलानी होगी।

17 नवंबर से पहले ए.आइ.सी.सी. सभा बुलाने के लिए अध्यक्ष जी से यथोचित कारवाई करने के लिए हम बिनती करते हैं।

(कांग्रेस अध्यक्ष श्री एस. निजलिंगप्पाजी द्वारा, 9 अक्तूबर 1969 को प्रधानमंत्री इंदिरागाँधी को लिखा पत्र)

प्रिय इंदिराजी,

आपके और हमारे कार्यकारिणी समिति के सहचरों का भेजा हुआ पत्र पढ़कर बहुत दुःख हुआ।

आपने आरोप लगाया है कि श्री सुब्रह्मण्यम् जी को कांग्रेस कार्यकारिणी समिति से मैंने, स्वेच्छा से निकाल दिया है। इस निर्णय पर आने से पहले और उसके प्रचार को मौका देने से पहले, मेरे साथ इसके बारे में चर्चा करने के बाद, इसको स्पष्ट कर लेना चाहिए था। सुब्रह्मण्यम् जी को मैंने कोई पत्र नहीं भेजा है। स्वेच्छा से मैं कभी व्यवहार नहीं करता; यह मेरा स्वभाव नहीं है। मेरे किसी जिम्मेदार सहयोगी पर इस तरह का नीच आरोप करना ठीक नहीं है। कांग्रेस संविधान के अनुसार कार्यकारिणी समिति के सदस्य को ए.आइ.सी.सी. के सदस्य होना पड़ता है, उसके बारे में आप नहीं जानती।

श्री सुब्रह्मण्यम् जी के बारे में बताना हो तो, टी.एन.सी.सी. अध्यक्ष होने के कारण, वे ए.आइ.सी.सी. के पदनिमित्त सदस्य थे।

अब वे टी.एस.सी.सी. के अध्यक्ष न होने के कारण, उनका स्थान खाली होता है। इसके बारे में, श्री सुब्रह्मण्यम् जी को मैं खत लिखनेवाला था। इसके बारे में उन्हें न लिखकर, उनसे चर्चा न करना कांग्रेस संविधान का परिगणन न करने पर, वह स्वेच्छा कहलाई जा सकती थी।

एकता से बद्ध होने का अर्थ क्या कांग्रेस संविधान का उल्लंघन होता है ? आंध्र प्रदेश से मुझे पत्र मिले हैं; उनमें बताया गया है कि, पी.सी.सी. अध्यक्ष और सचिव, सरकार में शामिल हो गए हैं। परंतु उनके उत्तराधिकारी के चुनाव के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गयी है। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के निर्णय के अनुसार, श्री कमलापति त्रिपाठी जी ने पी.सी.सी. अध्यक्ष पद को बहुत पहले ही इस्तीफा दे दिया है; नए अध्यक्ष को चुनने के लिए, पी.सी.सी. की सभा बुलाकर फिर उसे आगे बढ़ाया है। इसलिए इसके बारे में, पी.सी.सी. को स्मरण दिलाना आवश्यक था।

आपके ही शब्दों में बताना हो तो ''वैसी सूचना पी.सी.सी. को भेजना करीब दो दशकों से पहले किए गए निर्णय के आधार पर संस्था के विभिन्न पदों से निकालने की अध्यक्ष की मनमानी आज्ञाएँ, परिस्थिति को और खराब कर देंगी और इससे एक निर्णय को जारी करना और कठिन हो जाता है'' – इसे पढ़कर मुझे आश्चर्य और दुःख भी हुआ।

मैंने समझा था कि परिष्करण अथवा रद्द न होनेवाले कांग्रेस के निर्णयों को उसमें भी पार्टी के निर्वहण क्रम और कार्यनिर्वहण के लिए हमें बद्ध होना चाहिए।

क्या आपका सिद्धांत है कि कुछ समय बीत जाय तो, लिए गए निर्णय, अपने आप रद्द हो जायेंगे?

किसी भी पार्टी की इच्छानुसार मेरा - जैसे चाहे वैसे – कार्यनिर्वाह करना क्या ऐक्यता साधने के लिए सहायक होगा?

आपके पत्र में व्यक्त चिंता के लिए, कारण होनेवाला कोई कार्य मैंने नहीं किया है; इसलिए मैं सोचता हूँ कि कांग्रेस कार्यकारिणी समिति तथा ए.आइ.सी.सी. सभा के तारीख के बारे में निर्णय लेने के बारे में पहले ही निर्णित विषयों के बारे में, बदलाव करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि ''पूरे राजनितिक परिस्थिति'' को शीघ्र परिशीलन करने के लिए आपके मन में अनिवार्य कारण क्या था।

(कांग्रेस अध्यक्ष श्री एस. निजलिंगप्पाजी से प्रधानमंत्री इंदिरागाँधीजी को लिखा पत्र)

प्रिय इंदिराजी,

मेरे मनमाने आदेश और पूरे राजनीतिक संदर्भ के बारे में, परिशीलन करने के लिए, कार्यकारिणी समिति और अखिल भारत कांग्रेस समिति की सभा बुलाने के लिए, दबाव डालते हुए आप और बाकी पाँचों द्वारा लिखे पत्र का 9 अक्तूबर को मैंने उत्तर लिखा था।

उस पत्र में मैंने बहुत चिंतापूर्वक आपके इस आरोप का निराकरण किया कि ''सी. सुब्रह्मण्यम् जी अथवा और किसी को भी निकालने के लिए मैंने मनस्वी

डॉ. एस. निजलिंगप्पा जी

आदेश नहीं दिया था। और मेरी मनस्वी कार्यशैली से एकमत निर्णय के अनुष्ठान को और अधिक कष्टकर हुआ'' इस आरोप को भी न करना था।

आपका 8 तारीख का पत्र, मुझपर बिजली-सी गिरी। आप और आपके सहचरों के पहले के पत्रों जैसे ही, इस पत्र का विषय भी आपके पत्र के मुझतक पहुँचने से पहले ही, पत्रिकाओं में प्रकट हुआ था। अभी मुझे तक्षण स्मरण नहीं हो रहा है कि ''भारत के राष्ट्रीय कांग्रेस के सुदीर्घ इतिहास में कार्यकारिणी समिति के सदस्य, इस तरह का पत्र अध्यक्ष को लिखकर, संस्था की हितासक्ति के विरुद्ध कार्य करने का आरोप उनपर लगाते हुए प्रचार करना और अध्यक्ष के कार्य के बारे में परिशीलन करने के लिए, ए.आइ.सी.सी. सभा बुलाने के लिए, दबाव डालने का निदर्शन है। इससे पहले, विचारों के बारे में गंभीर मतभेद होते हैं तो, कार्यकारिणी समिति के सदस्य स्नेहपूर्ण व्यवहार करते थे। इसी करण, कार्यकारिणी समिति को 'वरिष्ठ मंडली' की प्रशंसा प्राप्त हुई थी। एकता, निष्ठा और परस्पर सम्मान देकर, संस्था के कार्यकर्ताओं को उदाहरण बना था।

इसलिए आप और आपके सहचरों का यह कार्य विषादनीय और कांग्रेस की एकता के लिए, सहायक हुए प्रजासत्तात्मक सज्जनता और स्नेहपरता के मार्ग से दूर है। मूलभूत तत्व – न्याय और सौजन्य की अपेक्षा करते हुए – मुझसे कुछ पूछे बिना ही मेरे विरुद्ध झूठी अफवाह और संदेहों के आधार पर आप लोग मुझपर अति गंभीर आरोप लगा रहे हैं। कांग्रेस अध्यक्ष के लिए मूल सौजन्य भी न दिखानेवाला यह आपका व्यवहार कुछ नया नहीं है।

आपको स्मरण होगा कि राष्ट्रपति स्थान के कांग्रेस अभ्यर्थी के रूप में हमें निर्णय लेने के बारे में, आपके सामने हमने मई-जून-जुलाई के प्रारंभ में ही बार बार सलाह दी है तो आपने कहा था कि अभी कोई जल्दी नहीं है, इस निर्धार को स्थगित कर सकते हैं। इतना ही नहीं, 12 जुलाई को संसदीय मंडली की सभा के दो घंटे पहले तक आपने किसी नाम का प्रस्ताव नहीं किया था।

हाल ही के राष्ट्रपति चुनाव जैसे महत्वपूर्ण संदर्भ में जगजीवनरामजी और फकरुद्दीन अली अहमदजी से मिलकर आपने खुले में आरोप लगाया था कि ''जनसंघ और स्वतंत्र पार्टी के साथ मैंने रहस्य समझौता कर लिया है।'' तब

भी, मुझसे संपर्क किए बिना अथवा बात करके वस्तुस्थिति को समझने का रास्ता न लेते हुए, मेरे बारे में गलत प्रचार करके कांग्रेस के अधिकृत अभ्यर्थी को हराने के लिए इस कहानी को ही अस्त्र बना लिया। श्री जगजीवनरामजी और श्री फकरुद्दीन अली अहमदजी मुझसे मिले थे और आरोप के बारे में पत्र लिखा। फिर भी, कांग्रेस अभ्यर्थी के पक्ष में कार्य करने के लिए कहने पर भी उन्होंने इसका प्रस्ताव नहीं किया। उसके बाद आपकी इस कहानी के कारण कांग्रेस और उसके अभ्यर्थी का काफी नुकसान होने पर भी, मेरे ऊपर किए गए आरोप को साबित करने के लिए कार्यकारिणी समिति से कहा गया तो, आपने मान लिया था कि उसके बारे में कोई प्रमाण नहीं है। फिर भी, कांग्रेस अभ्यर्थी की हार के बारे में या (बिना हाथ पैर की) झूठी कहानी के आधार पर, अनुशासनहीनता को आपने जो प्रोत्साहित किया उसके बारे में आपने विषाद व्यक्त भी नहीं किया। वास्तव में श्री गिरीजी के अभिनंदन को आपने स्वीकार किया और उसे 'श्री गिरी जी की विजय, आपके विचार की विजय' इस तरह आपने जो कहा वह पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ है।

मैं मानता हूँ कि माने गए, प्रजासत्तात्मक अथवा संसदीय लोकतंत्र के मार्ग में इन सभी को समझने में असफल हो गया हूँ। संसदीय मंडली के निर्णय को मानने में आपकी झिझक बहुमत प्राप्त न करने पर आपका क्रोध और 'होनेवाले गंभीर परिणामों के' बारे में आपकी सूचना आपके बताये गए गंभीर परिणाम के रूप में मोरारजी देसाई जी को निकालने की रीति, कांग्रेस संसदीय मंडली को 'विप्' जारी करने के लिए मेरे द्वारा तथा संसदीय मंडली की कार्यकारिणी समिति द्वारा बार बार आपसे की गई बिनती का आपके निराकरण करने की रीति, श्री जगजीवनराम और फकरुद्दीन अली अहमद द्वारा किए गए आरोपों को आपका दिया हुआ समर्थन 'सत्यदूर' कहानी ने कांग्रेस अभ्यर्थी की 'जड़ को ही निकाल फेंका है'' – यह आपका तर्क और वैसे करने पर कम्युनिस्ट तथा मुस्लिम लीग से समर्थित अभ्यर्थी के पक्ष में होगा और वैसा अशिष्ट व्यवहार कांग्रेस के अधिकृत अभ्यर्थी की हार का कारण ही नहीं बनेगा बल्कि पार्टी के विभाजन का कारण भी बनेगा – यह जानते हुए भी, 'मुक्त मतदान' अथवा 'आत्मप्रज्ञा' के मतदान की माँग को आपका समर्थन है, इन सभी को देखकर कांग्रेस के अनेक लोग और हमारे देश के प्रजातंत्रप्रिय लोग दुःखी हो गए हैं, दिशाविहीन हो गए हैं।

आप अच्छी तरह जानती हैं कि एकता को नष्ट करने के व्यवहारों को मौका देने पर अथवा प्रोत्साहित करने पर, कोई भी राजनीतिक संगठन बच नहीं सकता। प्रजासत्तात्मक पार्टी के विचार और कार्यक्रम सभी मुक्त और प्रामाणिक चर्चा के द्वारा और बहुमत के निर्णय के द्वारा ही रूपित होते हैं। पार्टी के संविधान के अनुसार विचारों को रूपित करने में और अभ्यर्थियों को चुनने के लिए उसकी अधीन संस्थाओं को मौका रहता है। पार्टी के सदस्य उसके ध्येय व विचारों के प्रति निष्ठ रहते हैं; और पार्टी की सही अधीन संस्थाओं से चुने गए अभ्यर्थियों को मत देते हैं और उनके लिए कार्य करते हैं। निर्णय किए गए ध्येय-विचारों का उल्लंघन करने का अथवा उसके अभ्यर्थी के लिए उन ध्येय-विचारों और वह अभ्यर्थी उन्हें पसंद न होने के कारण से मत न देनेवाले सदस्य अथवा सदस्यों का समूह दल की अनन्यता और समग्रता को तथा संसदीय प्रजासत्ता के राजनीतिक व्यवहार का साधन – उसकी परिणामकारिकता को भंग करता है। उसका अस्तित्व टूटता है; इस कारण से जनता का समर्थन वह खो देता है। वैसे संगठन के ध्येय-विचारों के बारे में मतदाता को स्पष्टता नहीं होती। अपने ध्येय-विचारों को कार्यगत करने में, संगठन को विश्वास नहीं रहता; अपने अभ्यर्थी के जीतने का भरोसा नहीं रहता। पार्टी अधिकार में होने पर भी उसके अपने सदस्यों के समर्थन के बारे में विश्वास नहीं रहता। वैसी सरकार को अपने अस्तित्व के बारे में ही हमेशा अनिश्चितता से ही कार्य निर्वाह करना पड़ता है। पार्टी को यदि वायरस लग जाय तो वे संसदीय प्रजासत्ता में कार्य निर्वाहण नहीं कर सकेंगे। प्रजासत्ता को कार्यसाध्य, विश्वासनीय और परिणामकारी बनने के लिए पार्टी के सदस्यों में शिष्टता और पार्टी को विशिष्ट अनन्यता और निर्दिष्टता देने की बद्धता होनी चाहिए। ऐसी शिष्टता डूब जाती है तो पार्टी और संसदीय प्रजासत्ता भी टूट जाती हैं।

मैंने सोचा था कि राष्ट्रपति चुनाव में कांग्रेस अभ्यर्थी के हारने के बाद, यह पाठ सीखा गया है। अब स्पष्ट हो गया है कि योग्य अंगसंस्थायें यदि विचार और अभ्यर्थियों के चुनाव के बारे में लिए गए निर्णयों को मानें तो एकता की रक्षा की सकती हैं। इसी ध्येय को एकता निर्णय ने भी अपनाया था। संसदीय विभाग और सांस्थिक विभाग दोनों को अपनी ही जिम्मेदारी के क्षेत्र होते हैं। और उनकी परिधि में हर विभाग को संस्था के सामान्य हित के लिए काम करने की सूचना उसने दी थी।

इस निर्णय की बात और आशय दोनों के प्रति मुझे गौरव है – इसमें कोई संदेह नहीं है। मैंने चेतावनी दी थी कि पुरानी बातें उदाहरण न बनें। इस कारण अनुशासन और एकमत पर जोर दिया था। और कहा था कि सांस्थिक तथा शासकीय विभाग दोनों ध्येय-विचार, कार्यमार्ग और अनुशासन के अनुसार चले।

इसलिए ''एकमत निर्णय के आशय के विरुद्ध मैंने व्यवहार किया है'' इस आरोप का पत्र जब मिला तो मुझे आश्चर्य हुआ। यह एकमत निर्णय क्यों अनिवार्य हुआ – इसे ए.आइ.सी.सी. बेंगलूर अधिवेशन के बाद, एकमत निर्णय के अंगीकार से पहले आप और पत्र को हस्ताक्षर करनेवाले पाँच व्यक्ति कैसे बात करते थे और कैसे व्यवहार करते थे – यह शायद आप भूल गए हैं।

ए.आइ.सी.सी बेंगलूर के अधिवेशन के बाद के आपके भाषण और क्रियाओं को देखने पर मुझे ठीक समझ में नहीं आ रहा है कि संस्था अथवा पार्टी के बारे में आपका मनोभाव क्या है। अपने भाषण में बार बार आप, प्रधानमंत्री जी की जिम्मेदारी के बारे में उल्लेख करती हैं; कोई भी इसे इनकार नहीं करेगा। परंतु प्रजातंत्र की व्यवस्था में प्रधानमंत्री 'स्वयंभू' नहीं है; प्रधानमंत्री का मतलब है पार्टी के अभ्यर्थियों के रूप में चुने गए सदस्यों की संसदीय मंडली द्वारा चुने गए नेता। जनता के सामने पार्टी का घोषणापत्र रखा जाता है, प्रचार करके मतों को प्राप्त कर, पार्टी के कार्यकर्ता उन्हें विजयी बनाते हैं। पार्टी को बहुमत न मिलने पर भी वह रहता है, रहना ही होगा। इस कारण हमारी ही पार्टी हमेशा के लिए अधिकार में रहेगी – ऐसे भ्रम में न रहकर शासकीय विभाग और सांस्थिक विभागों के संबंध को हम भूल नहीं सकते।

सदन में बहुमत पाने पर, प्रधानमंत्री के चुने जाने के बाद, ऐसा नहीं होगा कि सांस्थिक विभाग की आवश्यकता नहीं है। ध्येय-विचार को रूपित करना और चुनाव के लिए अभ्यर्थी को चुननेवाली पार्टी की अंग संस्थाओं के प्रजासत्तात्मक कार्यों की समाप्ति नहीं होगी। उसके बाद प्रधानमंत्री की बातों पर पार्टी का अंगीकार का मुहर लगाना और नेता का वैभवीकरण करना ही कार्य होता है – यह समझना प्रजातंत्र के विरुद्ध है। लोकतंत्र में ध्येय-विचारों को रूपित करने और नेता को बदलने का हक पार्टी से कोई नहीं छीन सकता।

आपके भाषण और कृतियों से व्यक्त होता है कि संस्था के पात्र के बारे में आपकी भावना असाधारण है। शायद आप सोचती हैं कि पार्टी द्वारा किसी

अभ्यर्थी को मान लेने के बाद भी यदि आप को वह पसंद नहीं तो पार्टी के अभ्यर्थी के विरुद्ध कार्य करने का स्वातंत्र्य आपको है। शायद आप समझती हैं कि "पार्टी जब निर्णय लेती है और कार्यक्रम करने लगता है तो जो आपको ठीक लगता है उतना ही आप मान सकती हैं और वैसा ही चलने के लिए आप बद्ध हैं।" पार्टी के कार्यक्रमों को मानने के बाद भी (दस अंशों के कार्यक्रम अथवा 1975 से पहले कनिष्ठ को देने के निर्णय) आप जो कर रही हैं, पार्टी द्वारा सोचे गए निर्णय – ऐसे आपको न लगते हुए वे भी आपकी प्रतिभा अथवा कल्पना के फूल जैसे लगते हैं। आपके निजी समर्थक पार्टी के पात्र की उपेक्षा करते हुए इन कार्यक्रमों के कर्ता आप ही हैं – कहकर, प्रचार कर अनुष्ठान करने की कल्पना आपको रोचक लगती है। पहले से आपके कार्यों के बारे में पार्टी कहती आयी है तो आप सोचती हैं कि वह आपको निकृष्ट दिखाने या आपकी उपेक्षा करने के प्रयत्न हैं। पार्टी के कार्यक्रमों का अनुष्ठान कर, आश्वासनों को पूरा करने के लिए, अधिकार रूपी कवच धारण करनेवाले शासनयंत्र के मुख्यस्थ आप होने पर भी, आप चाहती हैं कि अनुष्ठान के निकृष्ट होने के लिए केवल पार्टी को कारण मानकर उसकी निंदा की जाय। शासन के विचारों का, कार्यों का यदि पार्टी या पार्टी की अंगसंस्थायें परिशीलन करना चाहे तो आपको झिझक होती है! ध्येय-विचारों का रूपण, शासन कार्यशैली का परिशीलन और चुनावों के लिए अभ्यर्थियों को चुनना – इन कार्यों में यदि संस्था के पात्र को कम कर दे तो शायद आपको संतोष होता है। ध्येय-विचारों के बारे में कार्यकारिणी समिति की सभा में विस्तृत रूप से चर्चा करना भी आपको शायद अच्छा नहीं लगता है। उससे पहले ही आप ऐसी चर्चा करती हैं जैसे कि उनकी चर्चा करने का अधिकार और जिम्मेदारी संसदीय मंडली की शासन-समिति की व्याप्ति में ही आते हैं।

आपके द्वारा हाल ही में लिखे पत्र में आपका ऐसा विचार व्यक्त होता है कि आपकी आसक्ति के विषयों पर पार्टी के नियमों और निर्णयों के परिणाम के आधार पर पार्टी की संविधानात्मक विधियों को जारी करने के अधिकार को पार्टी के अध्यक्ष को जैसे आप ही दे रही हैं। आपका मनोभाव यह है कि चुनावों के लिए पार्टी द्वारा चुने गए अभ्यर्थी आपकी पसंद के हों, आपको समर्थन देनेवाले व्यक्ति और समूहों को अनुकूल है तभी पार्टी के नियम जारी हों।

कई बार आपने कहा है कि आप गुटबंदी का विरोध करती हैं। आपने यह भी कहा है कि एक गुट के जैसे बर्ताव करनेवाला सिंडिकेट आपके और आपके 'प्रगतिपर' विचारों के विरुद्ध कार्य करता है। मैं नहीं जानता कि आपके अभिप्राय में सिंडिकेट में कौन हैं? लेकिन मैं इतना जानता हूँ कि श्री लालबहादूर शास्त्रीजी के बाद 1965 और 1967 में आपको चुनने के लिए कार्य करनेवालों को पत्रिकाओं ने 'सिंडिकेट' कहा। श्री मोरारजी देसाई जी तो उस गुट में नहीं थे। क्योंकि इन तीनों संदर्भों में उन्हीं को कहना पड़ा कि 'शास्त्रीजी और आपको विजयी बनाने के लिए पीछे हटिए, नहीं तो आप हार जायेंगे। उस समय वह गुट या सिंडिकेट आपको प्रतिगामी नहीं लगे थे। आपको नहीं लगा कि ऊँचे पद के लिए चुनने का हक आपही का है - ऐसे अभिमान से भरे कुछ ही लोग हैं। आप जानते थे कि पार्टी के नेता के रूप में आपके चुन जाने के लिए उनके प्रयत्न ही कारण हैं।

अब आप आरोप लगा रही हैं कि पार्टी के अधिकार में हस्तक्षेप करनेवाला वह गुट है। आप आरोप कर रही हैं कि 'सिंडिकेट' में रहनेवाले आपके 'प्रगतिपर' विचारों के विरुद्ध हैं, आपको निकृष्ट कर रहे हैं तथा प्रधानमंत्री के पद की उपेक्षा कर रहे हैं।

ऐसा रिपोर्ट हुआ है कि 'बैंक राष्ट्रीकरण के बाद आपके कई भाषणों में आपकी प्रगतिपर नीतियों के लिए, उसमें भी बैंक राष्ट्रीकरण के लिए कुछ वरिष्ठ नेता विरुद्ध हैं; इसका कारण यह है कि वे पूंजीवाद के पक्ष में थे। पत्रिकाओं ने उल्लेख किया है कि ''आपको गरीबों का परिचय है, हमेशा आप गरीबों के पक्ष में हैं'' ऐसा आपने कहा है। परंतु आपने नहीं कहा है कि 'कांग्रेस को गरीबों का परिचय है और हमेशा वह गरीबों के पक्ष में है।'' आप नहीं कह सकते कि ''कांग्रेस बैंक राष्ट्रीकरण के पक्ष में नहीं है।'' आप इसको नकार नहीं सकते कि बेंगलूर में हुई ए.आइ.सी.सी. को बैंक राष्ट्रीकरण पर दबाव डालते हुए, भेजी गई टिप्पणी से पहले ही कई कांग्रेस नेता सिंडिकेट के सदस्य कहलानेवाले नेता सभी उसके पक्ष में थे। वास्तव में आपकी टिप्पणी के आने से बहुत पहले ही बैंक राष्ट्रीकरण पर जोर डालनेवाले थे – श्री कामराजजी, चौहानजी, अतुल्य घोष और अन्य लोग। इस टिप्पणी में भी आपने सुझाव दिया है कि यदि सामाजिक नियंत्रण परिणामकारी न हो तो बैंक राष्ट्रीकरण ही दूसरा पर्याय है। इस विषय के बारे में मंत्रीमंडल और कार्यकारिणी समिति सभाओं में

आपके लिए किये गए विचार के बारे में श्री आशोक मेहता जी ने एक भाषण दिया था।

परंतु अब आप कह रही है कि बैंक राष्ट्रीकरण की कल्पना आपकी प्रतिभा का प्रकाश है, दूसरे प्रतिगामी होने के कारण वे उसके विरुद्ध हैं और उनके विरोध की चालों के बाद भी उसे जारी कर चुके हैं। परंतु सच तो इसके विरुद्ध है। सभी जानते हैं कि आपने जब यह कार्यवाई की वह परिस्थिति कैसी थी। उसका विवरण देने अथवा उसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। परंतु आप ऐसा चित्र दे रही हैं जैसे कि आप एक 'प्रगतिपर नायिका' हैं। यह तो आपके रास्ते में आनेवाले सभी के विरुद्ध प्रचार करने का एक तंत्र है।

शायद आपका आशय यह है कि आपके प्रति वैयक्तिक निष्ठा दिखाना ही कांग्रेस तथा देश के प्रति निष्ठा होगी। आपका वैभवीकरण करनेवाले सभी लोग प्रगतिपर हैं। शायद आप का विचार है कि ''पार्टी तथा उसके ध्येयों के प्रति निष्ठा रखनेवाले तथा विचार और अभ्यर्थियों को चुनने के विषय में, आप ही एकमात्र निर्णायिका हो – इस बात को न माननेवाले लोग, लोकतंत्र में मुक्त चर्चा होने के बाद, पार्टी की अंगसंस्थाएँ इसके बारे में निर्णय ले सकती हैं – उसके लिए एक ही व्यक्ति को कारण न कहना चाहिए – ऐसे समझनेवाले प्रतिगामी हैं और निष्ठारहित हैं। ऐसे लोगों को 'प्रतिगामी' साबित करने के लिए, आकाशवाणी जैसे प्रबल प्रचार माध्यम और सरकारी नियंत्रण की पत्रिकाओं का उपयोग किया जा रहा है। सरकार द्वारा नियमित, अधिकृत स्थानों से (उदाहरण के लिए नियोग), वैसे लोगों को दूर रखा जाता है; और 'समझौता' और 'उद्देश्य' के कारण से निकाला जाता है। सरकार द्वारा दिए गए 'लालच' और खतरों को गुट रचना और वैयक्तिक निष्ठा को सुभद्र करने के लिए, उपयोग किया जा रहा है। इससे यह भावना उत्पन्न होती है, आपके मन में उत्पन्न सोच है कि आपके वैयक्तिक दृष्टिकोण का, इच्छा-अनिच्छा का विरोध करनेवालों को पार्टी अथवा सरकार में कोई स्थान नहीं है।

आप कहती हैं कि गुटबंदी का आप विरोध करती हैं। परंतु, हाल ही में जो आपका पत्र मिला है उसमें केवल छः लोगों का हस्ताक्षर हैं और इनमें एक के बिना सभी 'मुक्त मतदान' के पक्ष में थे। आपके मंत्रिमण्डल के सभी सहयोगी देश भर में घूमते हुए, भाषण व मांगों को ए.आइ.सी.सी. सदस्यों तथा संसद्

सदस्यों के हस्ताक्षर संग्रह करने में निरत हैं। पार्टी के प्रजासत्तात्मक कार्य निर्वाहण से अधिक निष्ठा, आपको वैयक्तिक रूप से दिखानेवाले - आप और आपके समर्थकों को नापसंद, राज्यों के कांग्रेस मुख्यमंत्रियों के मंत्रिमंडल की स्थिरता के बारे में धमकी देते हुए, प्रचार करनेवाले योग्य लोगों के समूह को 'निष्ठ व्यक्तियों' के समूह के रूप में परिगणना करने के लिए और ऐसे तूफान उठानेवाले समूहों को आपके अधिकार के पोषण का भरोसा देने की भावना जगाने के लिए प्रोत्साहन देनेवाले हैं। नियमानुसार चुने गए राज्य की पी.सी.सी. की - उसके कार्यों की - आप आपकी गुट के सदस्यों के समर्थन से उपेक्षा कर सकती हैं। सरकार चलानेवाले विरोध पार्टी के कुछ सदस्यों का समर्थन पाकर – इससे उन राज्यों के हमारी पार्टी की एकता और नैतिकता का विनाश होने पर भी उसकी परिगणना न करते हुए अपने वैयक्तिक स्थान को शायद आप सुभद्र करना चाहती हैं। राष्ट्रपति चुनाव में कांग्रेस के अधिकृत अभ्यर्थी को हारने के लिए, कम्युनिस्ट पार्टी, मुस्लिम लीग और डी.एम.के. का समर्थन, आसानी से जो आपने प्राप्त किया – वह तरीका, इस भावना की पुष्टि करता है।

पार्टी के प्रजासत्तात्मक कार्यनिर्वहण के हानिकर होने की दृष्टि में, व्यक्तिपूजा के स्पष्ट समर्थक कुछ भी कर सकते हैं; कुछ भी करने पर शायद क्षम्य होगा, यदि उन्होंने आयकर जैसे कानून का भी गंभीर रूप में उल्लंघन किया होगा। पार्टी की नियमावली के अनुसार, अपनी जायदाद का विवरण ए.आइ.सी.सी. को न दिया होगा। अनेक मूलों से पार्टी के नाम पर अत्यधिक धन संग्रह करके उसके बारे में पार्टी को न बताया होगा; अथवा पार्टी को उसका लेखा-जोखा न दिखाया होगा।

मुझे अत्यंत दुःखी करनेवाला तथा कांग्रेस और देश को आतंकित करनेवाला अंश है – यह मनोभाव और ऐसे कार्यों से उत्पन्न मनोविन्यास और यह मनोविनाश, प्रजासत्तात्मक समाजवाद की बलिष्ठता को बढ़ाने के बदले, पार्टी व सरकार दोनों को समान-एकव्यक्तिप्रभुत्व के लिए कारण बनेगा!

यह सब आपको लिखना मेरे लिए आसान कार्य नहीं था। मेरे मन के विचार तथा मेरी तड़प को आपके सामने रखने का निर्णय लेने में मुझे घंटों सोच-विचार करना पड़ा था। कई दिनों की कातरपूर्ण सोच की आवश्यकता

पड़ी। परंतु कांग्रेस के ऊँचे स्थान पर बैठे हुए मेरा यह सब करना अपना कर्तव्य है। इस कर्तव्य से मैं विमुख नहीं हो सकता। कांग्रेस का अध्यक्ष होकर, कांग्रेस की एकता का भंग करनेवाले तथा संस्था के प्रजासत्तात्मक कार्यनिर्वहण का भंग करनेवाले मनोभाव तथा कार्यों के बारे में निगाह रखना मेरा कर्तव्य है। इस विनाशकारी मनोभाव को त्यागने के लिए, हर कांग्रेसव्यक्ति को बिनती करने की भावना से मैं यह पत्र लिख रहा हूँ। मुझे भरोसा है कि आप भी इसी भावना से इसे पढ़ेंगे।

आज भी मैं विश्वास करता हूँ कि 'पिछली सभी कुचेष्टाओं को ठीक करते हुए, एकता साधकर देश के हित की दृष्टि से कांग्रेस को दृढ़ बना सकते हैं।'

आपकी प्रतिक्रिया का इन्तजार करता हूँ।

इस पत्र को मैं पत्रिकाओं को नहीं दे रहा हूँ।

सादर।

आपके
एस. निजलिंगप्पा

श्रीमती इंदिरा गाँधीजी
नं 1. सफ्दरजंग रोड़
नई दिल्ली

कांग्रेस अध्यक्ष श्री एस.निजलिंगप्पाजी का प्रधानमंत्री इंदिरागाँधीजी को 2, नवंबर 1969 को लिखा गया पत्र

आज की पत्रिकाओं में रिपोर्ट आई है कि कल की कार्यकारिणी समिति के कुछ सदस्यों की सभा में आप अध्यक्ष थीं तथा यह सभा आपके घर में हुई। इतना ही नहीं रिपोर्टों में यह भी बताया गया है कि आपकी अध्यक्षता की उस सभा में बाकी विषयों के साथ ''कार्यकारिणी समिति की कोई भी निर्णय असिंधु है, इसके किसी भी निर्णय से कांग्रेस पार्टी को बद्ध नहीं रहना होगा विषय भी था।'' इनके साथ उन रिपोर्टों में उल्लेख किया गया है कि ''नए कांग्रेस अध्यक्ष को चुनने के लिए नवंबर 22 और 23 को नई दिल्ली में विशेष ए.आइ.सी.सी. की सभा बुलाने का निर्णय लिया गया।''

''रिपोर्ट किए गए, इस निर्धार के बारे में कार्यकारिणी समिति द्वारा लिए गए निर्णय की एक प्रति इसके साथ मैंने रखी है। आप अच्छी तरह जानती हैं

कि कांग्रेस संविधान द्वारा अधिकार प्राप्त लोग ही ए.आइ.सी.सी सभा बुनाने का अधिकार रखते हैं और इस विषय में कोई भी अधिकार न रखनेवाला व्यक्ति सभा नहीं बुला सकता है।''

''आपकी अध्यक्षता में ए.आइ.सी.सी. समागम को चलाते और उसको चलाने के लिए श्री फकरुद्दीन अली अहमदजी, श्री सी. सुब्रह्मण्यम् जी और श्री एस.डी. शर्मा जी को अधिकार देने के निर्णय लेने का विषय पत्रिकाओं में जो प्रकट हुआ है - यदि सच है तो यह समझी जायगी कि आपने पार्टी के नियममानुसार तथा पाटी के संविधान का गंभीर रूप में उल्लंघन किया है।''

इसलिए कांग्रेस पार्टी के संविधान तथा कार्यकारिणी समिति के निर्णयों का उल्लंघन करते हुए गैर कानूनी और संविधानबाहिर रूप में ए.आइ.सी.सी. सभा बुलाने के इस कार्य के साथ आपके संबंध के बारे में विवरण देने के लिए मैं यह पत्र लिख रहा हूँ।''

3 नवंबर 1969 को कांग्रेस अध्यक्ष श्री एस.निजलिंगप्पाजी द्वारा प्रधानमंत्री इंदिरागाँधीजी को लिखा पत्र

प्रिय इंदिराजी,

28 अक्तूबर 1969 को मैंने एक पत्र लिखकर उसमें मैंने बेंगलूर ए.आइ.सी.सी के अधिवेशन के बाद आपके मनोभाव और आपकी कृतियों के बारे में मेरा भय तथा आतंक का विवरण दिया था। आपके कार्यों के कारण, कांग्रेस पार्टी की एकता पर तथा देश में हम जो निर्माण करना चाहते हैं उस प्रजातंत्र की परंपरा पर न सुधारने वाले नष्ट की ओर आपका ध्यान आकर्षित करने का मैंने प्रयत्न किया था। आप जो अब पहुँची है उस किनारे से पीछे आकर अपने हानिकारक और तंत्रों के कार्यों को छोड़ने के लिए मैंने बिनती की थी। मैंने भरोसा किया था कि आप अपनी आत्मसाक्षी की आवाज़ की ओर बहरी नहीं होगी। मैंने निरीक्षा की थी कि करोडों लोगों द्वारा अपने कष्टों और त्यागों द्वारा निर्माण की गई और सभी सच्चे कांग्रेस लोगों को रोमांचित करनेवाली भारत के राष्ट्रीय कांग्रेस की महान परंपरा को बलि चढ़ाने का कार्य आप नहीं करेंगी।

परंतु मेरी बिनती नहीं मानी, यह विषादनीय है। उसका जवाब देने के लिए या मुझसे उसके बारे में बहस करने के लिए आपको समय नहीं मिला।

परंतु नियमानुसार रचित भारत के राष्ट्रीय कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति की सभा का बहिष्कार करने का तथा कार्यकारिणी समिति के सदस्यों की सभा बुलाने का अपूर्व निर्णय लिया है। पत्रिका के रिपोर्ट बताते हैं कि आपकी अध्यक्षता में हुई सभा के सदस्यों से "मेरे कई कार्य असंविधानिक है, मुझे कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष पद से निकाल देने के लिए, देहली में 22 और 23 नवंबर 1969 को एक विशेष ए.आइ.सी.सी अधिवेशन बुलाने का निर्णय लिया गया।" यह एक अक्षम्य नियमोल्लंघन हुआ है। इतना ही नहीं, यह कांग्रेस संविधान के विरुद्ध है तथा यह पार्टी की एकता को नष्ट करने का प्रयत्न है। विवेक, अनुशासन और प्रजासत्तात्मक मार्ग की तरफ वापस आने के लिए, मुझसे की गई बिनती का क्या इसे जवाब समझना चाहिए? मेरा भय यह है कि आपका कार्य दूर के कई परिणामों के लिए कारण बन सकता है। इस कारण मेरा कर्तव्य है कि इससे होनेवाले बुरे परिणाम, हमारे पार्टी की एकता, आदर्श और विचारों के लिए खतरा लानेवाले कौन है – इस विषय को कांग्रेस के लोगों को बताना हमारा कर्तव्य है। हम जो सेवा करना चाहते हैं – उन सार्वजनिकों के प्रति हम उत्तरदायी हैं। इसलिए मैं सोचता हूँ कि हमारे अभिप्रायों को सार्वजनिकों के सामने रखने का समय आ गया है। इस कारण 28 अक्तूबर 1969 के मेरे पत्र को मैं पत्रिकाओं को प्रकाशनार्थ दे रहा हूँ।"

आपका

(सही) एस्. निजलिंगप्पा

कांग्रेस अध्यक्ष श्री एस. निजलिंगप्पाजी को प्रधानमंत्री इंदिरागाँधीजी द्वारा 3 नवंबर 1969 को लिखा गया पत्र

प्रिय श्री निजलिंगप्पाजी,

3 नवंबर 1969 को आपका लिखा गया पत्र अभी मुझे मिला है। 28 अक्तूबर 1969 को आपको लिखे गए पत्र को पत्रिकाओं में प्रकाशित करने के बारे में आपने उसमें लिखा है।

28 अक्तूबर 1969 का आपका पत्र मुझे 29 अक्तूबर 1969 को ही प्राप्त हुआ है। परंतु उस पत्र में आपके बताए हुए अनेक अंशों के कारण, मुझे लगा कि उन सभी का विस्तार से जवाब देना आवश्यक है। इसे तैयार करने के समय, अचानक 31 अक्तूबर को मुझे पता चला कि श्री फकरुद्दीन अली

अहमद जी को कार्यकारिणी समिति के सदस्यत्व से निकाल देने का पत्र आपने उन्हें भेजा है। यह भी मालूम हुआ कि आपने श्री सी. सुब्रह्मण्यम् जी को भी पत्र लिखकर बताया है कि कार्यकारिणी समिति का उनका सदस्यत्व समाप्त हो गया है।

यहाँ मैं इतना ही कहना चाहती हूँ कि "28 अक्तूबर 1969 के आपके पत्र में, पार्टी की एकता और उसका लोकतंत्र रक्षा और समाजवाद के निर्माण में परिणामकारी साधन होने का खतरा लानेवाले ऐसा मनोभाव को छोड़ने के लिए कांग्रेस के लोगों से की गई बिनती को जारी करने की रीति तो विचित्र है।"

श्री फकरुद्दीन अली अहमद जी और श्री सी. सुब्रह्मण्यम् जी के विरुद्ध आपकी कार्यवाही की अवैधता के बारे में पहले बताना मेरा कर्तव्य है। "कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति में 20 सदस्य होते हैं; उनमें सात ए.आइ.सी.सी. द्वारा चुने गए होते हैं; और बाकी सदस्य, अध्यक्षजी द्वारा नियुक्त होते हैं" – यह सब आप जानते हैं। संविधान की 5वीं विधि के अनुसार, कांग्रेस समिति के हर सदस्य की अवधि सामान्यतः दो वर्ष की होती है। इन दोनों विधियों के अनुसार, एक व्यक्ति के कार्यकारिणी समिति के सदस्य होने के बाद - वह चाहे अध्यक्ष द्वारा नियुक्त हो या ए.आइ.सी.सी. द्वारा चुना गया हो - उनकी अवधि सामान्यतः दो वर्षों की होती है।

परंतु, कार्यकारिणी समिति के सदस्य को निकालने का कोई अधिकार सामान्यतः संविधान नहीं देता है।

"कार्यकारिणी समिति के सदस्य को अध्यक्षजी द्वारा नियुक्त होने के कारण, उस व्यक्ति में यदि विश्वास न हो तो उसे निकालने का अधिकार अध्यक्ष को होता है" – आपके पत्र में लिखा यह तर्क संविधान अथवा नियमों के अनुसार नहीं है। इसके साथ ही आपका ध्यान, इस बात पर आकर्षित करना उचित होगा कि "नियमों में निश्चित किए जाने के अनुसार अध्यक्ष को पदाधिकारियों को निकालने का अधिकार होता है।"

उचित विधि के अनुसार, कांग्रेस के किसी भी समिति के अध्यक्ष, उनके द्वारा नियमित किसी भी पदाधिकारी को उनके अध्यक्ष को तृप्त न कर सकने के कारण उन्हें निकाल सकते हैं। यह अधिकार समिति द्वारा नियमित अथवा

नामकरण किये गए किसी भी सदस्य को निकालने तक व्यापक न होकर, केवल उनके द्वारा नियुक्त किए गए पदाधिकारी तक ही अन्वय होता है।

यहाँ इसका भी ध्यान रखना पड़ता है कि ऐसे पदाधिकारी को निकालने के संदर्भ में, उनके विरुद्ध कोई भी कार्यवाई करने से पहले उन्हें अपना विचार सामने रखने का मौका देना जरूरी होता है।

आपने कांग्रेस संविधान की इन सारी बातों का उल्लंघन किया है। आपके कार्य के गैर कानून कार्य के बारे में, इन आपत्तियों के अलावा एकता के बारे में, बात करते हुए ही आपका पार्टी की एकता को बिगाडने का काम करना, आश्चर्यजनक है।

आज बहुत प्रचार में होनेवाले एक और तर्क के बारे में भी मुझे यहाँ प्रस्ताव करना है। कहा जाता है कि प्रधानमंत्री को अपने मंत्रिमंडल में यदि कोई सदस्य उसे ठीक नहीं लगता है तो उसे निकालने का निस्संदिग्ध अधिकार जैसे उसे होता है, वैसे ही कांग्रेस अध्यक्ष को, कार्यकारिणी समिति को, उसके द्वारा नामित किसी भी सदस्य को निकालने का अधिकार होता है।

प्रधानमंत्री का अधिकार भारत के संविधान द्वारा दिया हुआ है; परंतु कांग्रेस अध्यक्ष का अधिकार, कांग्रेस के संविधान द्वारा दिया हुआ है। परंतु इन दोनों संविधानों की रचना स्पष्ट रूप से भिन्न उद्देश्यों से हुई है। एक - कार्यपालिका के ठीक से कार्यनिर्वहण के लिए और दूसरा - राजनीतिक पार्टी के नायकत्व के ठीक कार्यनिर्वहण के लिए। इन दोनों की तुलना करना भद्दा है।

श्री फकरुद्दीन अली अहमद जी और श्री सी. सुब्रह्मण्यम् जी के विरुद्ध कार्यवाई करने के बाद, फिर एक बार आपने नियमबाहिर रीति से और कांग्रेस के संविधान का उल्लंघन करते हुए, डॉ. शंकरदयाल शर्माजी को कार्यकारिणी समिति के सदस्यत्व से निकाल दिया है। वैसे करने के लिए आपने उनसे बिनती करने के कारण, अपने सचिव पद को उन्होंने स्वयं इस्तीफा दे दिया।

परंतु उन्हें समिति के सदस्य सचिव पद मानने के कई महिनों पहले ही दिया गया था। इस तरह उनके समिति के सदस्य होने और पदाधिकारी होने कोई संबंध नहीं है। आपकी इच्छानुसार पदाधिकारी के स्थान को जब उन्होंने छोड़ दिया तो समिति के सदस्यत्व से भी उन्हें निकालने का आपका कार्य असाधारण ही है।

ये सब कार्य यह दिखाते हैं कि अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए, कांग्रेस संविधान के सभी नियमों का उल्लंघन करने के लिए तथा पार्टी के अत्युन्नत विचार को रूपित करने की संस्था के सदस्यत्व से जैसे चाहे वैसे निकालने के लिए आप तैयार थे।

इन सभी कार्यों के कारण मुझे लगा कि आपके पत्र को जवाब देने से कोई लाभ नहीं होगा। परंतु, मैंने सोचा कि आपके अपना पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशन करने के कारण, उसमें आपके द्वारा प्रस्तावित अति प्रमुख अंशों को उत्तर देना आवश्यक है।

राष्ट्रपति चुनाव के कारण उद्भव हुए सभी विषयों को तथा अगस्त 25 को लिया गया निर्णय - कहलानेवाले के बारे में भी कार्यकारिणी समिति ने विवरणों के साथ हर दृष्टि से चर्चा की है। इसलिए फिर से उन विषयों को उठाना ठीक नहीं होगा। फिर भी आपने जो अनेक असमंजसवाली बातें की हैं, उनके बारे में संक्षेप में उल्लेख करती हूँ।

आपके पत्र के चौथे पैरा का विषय सच नहीं है। मैंने चाहा नहीं कि राष्ट्रपति-अभ्यर्थी को चुनने का निर्णय आगे बढ़ाया जाय और मेरा अपना कोई अभ्यर्थी भी नहीं था। मैं बार बार सलाह लेती रही और अनेक लोगों के नाम प्रस्तावित केवल इसलिए करता थी कि एकमत का निर्णय लेने के लिए अनुकूल हो। उसके बारे में बिना किसी चर्चा के संसदीय मंडल का क्षिप्र निर्णय लेने के लिए दबाव डालना दुर्भाग्य का विषय है। जिम्मेदारी से युक्त पार्टी में प्रबुद्ध कार्यनिर्वाह होना चाहिए; प्रमुख निर्णय लेने का यह क्रम ठीक नहीं है।

आपके पत्र के छठे पैरा में आपने आरोप लगाया है कि मुक्त-मतदान के लिए बिनती करनेवाले सभी लोग, कम्युनिस्ट पार्टी और मुस्लिम लीग को सहकार दिया और श्री गिरीजी को अभ्यर्थी के रूप में उन्होंने ही चुना था। श्री गिरीजी ने एक स्वतंत्र अभ्यर्थी के रूप में स्पर्धा की थी; यदि उन्हें अनेक पार्टियों का समर्थन मिला हो तो, उसके लिए मुझे और मेरे सहकर्मियों को कारण मानकर आप आरोप नहीं लगा सकते।

एकता-संकल्प की तरफ ध्यान खींचते हुए आपने कहा कि "आपने उसके बारे में अक्षरशः तथा उसके आशय में उसके अनुसार व्यवहार किया है।" परंतु यह आपका मनोभाव है। पूरे देश का अभिप्राय नहीं है।

एकता-संकल्प की उपेक्षा करते हुए, कार्यकारिणी समिति के वरिष्ठ सदस्य मेरे तथा मुझे समर्थन देनेवालों के विरुद्ध गलत प्रचार करने में लगे हुए थे। इसे रोकने के लिए आपने कोई कार्यवाई नहीं की; उसके बदले आपने उन्हीं के जैसा व्यवहार किया। पत्रिका रिपोर्ट के द्वारा एकता संकल्प के विरुद्ध कार्य करनेवालों को आसानी से पहचाना जा सकता है। मैंने अथवा जिम्मेदार किसी व्यक्ति ने, किसी के विरुध एक शब्द भी नहीं कहा है।

यू.पी.सी.सी. और मध्यप्रदेश की समितियों को आपके द्वारा लिए गए पत्र में, फिर से स्पष्ट रूप से गैर कानूनी रीति से आप जो मेरे समर्थक मानते हैं – श्री कमला पति त्रिपाठी जी, श्री आर. वेंकटरत्नम् जी और श्री ए.पी. शर्माजी के विरुद्ध कार्यवाई करना आपके मनोभाव के बारे में, हमारे अनुमानों को दृढ़ करते हैं। उसके पिछले दिन शाम को ही संसदीय मंडल की सभा में हम मिले थे, आपने इन विषयों का उल्लेख ही नहीं किया।

आपके द्वारा की गयी कार्यवाही के बारे में हमें देर रात को आपके और बाकी प्रदाधिकारियों के सोने के बाद पता चला। मैं दूसरे दिन बडे सबेरे ही जल्दी लक्षद्वीप जानेवाली थी। इन कार्यों का सूक्ष्म रीति से परिशीलन करने बाद ही मैंने और कार्यकारिणी समिति के मेरे सहकर्मियों ने, 8 सितंबर को आपको पत्र लिखने का निर्णय किया।

वास्तव में आपके पत्र से दु:खी होने के बाद, इसके बारे में आपने विषाद व्यक्त किया है; यह गलत है कि ''आपको पत्र मिलने से पहले ही उसका प्रकाशन पत्रिकाओं में हुआ।''

आपने अपने पत्र में शिकायत की है कि ''कांग्रेस के अध्यक्ष के विरुद्ध, कार्यकारिणी समिति के सदस्य गलत प्रचार कर रहे हैं, ए.आइ.सी.सी. अधिवेशन के लिए दबाव डाल रहे हैं।'' यह तो वास्तविकता का महा विकृतरूप है। कार्यकारिणी समिति के किसी भी सदस्य द्वारा, आपके विरुद्ध गलत प्रचार ही नहीं, किसी भी प्रकार के प्रचार करने के बारे में, मुझे कुछ भी मालूम नहीं है।

किसी निर्दिष्ट उद्देश्य के लिए विशेष ए.आइ.सी.सी. का अधिवेशन बुलाने की माँग करने के लिए, कांग्रेस के संविधान में मौका है। सामान्यतः दिसंबर में निवृत्त होनेवाले अध्यक्ष के पद के लिए चुनाव कराना ही, इस मांग का उद्देश्य था। इसमें मुझे कोई गलती नहीं दिखती है, वह भी साधारण अवधि के बाद

चुनाव करने के लिए जब ए.आई.सी.सी. के अनेक सदस्य दबाव डाल रहे हैं। यदि आप चाहते हैं तो फिर से स्पर्धा कर आप चुने जा सकते हैं – जैसे आप चाहते हैं!''

परंतु यह दुर्भाग्य की बात है कि आप ही के नायकत्व की किसी संस्था के अनेक सदस्यों को बुराभला कहना और पार्टी की एकता निष्ठा और गौरवों के नष्ट होने का आपका ही आरोप लगना, यह ठीक नहीं है। ए.आइ.सी.सी. की सभा बुलाने के लिए निस्संशय रूप में प्रजासत्तात्मक हक प्राप्त सदस्यों द्वारा उठाए गए अनेक सवालों पर परदा डालने के लिए शायद आपने अपने पत्र में प्रस्ताव किया है।

एकता संकल्प में, पार्टी का संगठन और सरकारी विभागों के पात्रों के बारे में, स्पष्ट रूप से निरूपण किया गया था। प्रधानमंत्री के रूप में पार्टी की संपूर्ण रूप से उपेक्षा करते हुए, मैंने कभी भी सरकार के लिए या मेरे लिए परमाधिकार की इच्छा नहीं की है। उसके बदले, मैं चाहती हूँ कि सरकार और संगठन दोनों, पार्टी तथा देश की हितदृष्टि से परस्पर पूरक रूप में कार्य निर्वाहण करे। अभी प्रमुख सामाजिक, आर्थिक बदलाव की आवश्यकता भारत को है वह केवल सरकार के प्रयत्न से संभव नहीं।

केवल स्थूल तत्वों को निरूपित करने से ही संगठन का कर्तव्य समाप्त नहीं होता है। उसका प्रमुख कर्तव्य है – माने गए विचारों के लिए, करोडों लोगों का समर्थन पाना। अभी कांग्रेस की सरकार होने के कारण पार्टी जब जनता के बीच सक्रिय होती है तभी वह परिणामकारी रूप में कार्य निर्वाह कर सकती है। परंतु हमारी चिंता का विषय यह है कि आज की परिस्थिति में संगठन से आवश्यक समर्थन नहीं मिल रहा है।

देश में अनेक घटनायें हो रही हैं – अपराध बढ़ रहे हैं। सरकार के विचार और उसके कार्यों के प्रति यदि पार्टी का संगठन और अधिक सक्रिय होता और जनता के बीच क्रियाशील होता तो, इस सभी का आसानी से सामना कर सकते थे। किसी का भी यह सवाल करना ठीक ही है। अलाहाबाद में कौम संघर्ष जब हुआ था तथा आंध्र में, तेलंगाण के बारे में हिंसाचार हुआ था, चंडीगढ़ के भविष्य के बारे में पंजाब और हरियाणा में जब स्फोटक परिस्थिति उत्पन्न हुई थी तथा दूसरे तैल शुद्धीकरण केंद्र के लिए दबाव डालते हुए असम

में विरोध शुरू हुआ, उस वक्त पार्टी के संगठन ने और उसमें भी केंद्र नायकत्व ने क्या किया था?

सही दिशा में, जनाभिप्राय रूपित करने के लिए पार्टी के परिणामकारी पात्र निभाने के लिए अनेक संदर्भ हैं।

आपने और एक शिकायत की है कि मैंने 'सिंडिकेट को पार्टी का प्रतिगामी समूह' कहा है। मुझे याद नहीं है कि कभी मैंने अपनी बातों में या भाषणों में 'सिडिकेट' शब्द का प्रयोग किया है। कांग्रेस पार्टी के किसी भी व्यक्ति को मैने 'प्रतिगामी' नहीं कहा है। हितासक्तियों के विरुद्ध, मेरे और मेरे विचारों के बारे में पत्रिकाओं में किये गये आरोपों के बारे में मैंने बात की है। बस!

परंतु बैंक राष्ट्रीकरण, महाराजाओं की 'प्रीवी पर्स' को रद्द करना आदि कांग्रेस द्वारा मानी गई नीतियों के विरुद्ध श्री एस.के. पाटील जी के सार्वजनिक भाषणों की कोई उपेक्षा नहीं कर सकता। दुर्भाग्य का विषय यह है कि फरीदाबाद के अधिवेशन में, आपका अध्यक्षीय भाषण, हमारे पार्टी के दीर्घकाल से समर्थन की गई कई नीतियों का खंडन करने से भरा हुआ था। बहुत लोगों ने कहा है कि फरीदाबाद के अधिवेशन का आपका अध्यक्षीय भाषण स्वतंत्र पार्टी के किसी नेता के भाषण जैसा था। कांग्रेस पार्टी की इन प्रवृत्तियों को मैं पूर्णरूप से नजरंदाज नहीं कर सकती। मैंने कहीं नहीं कहा है कि ''बैंक राष्ट्रीकरण मेरी योजना है।'' उसके बदले, मैंने कई बार कहा है कि ''कांग्रेस पार्टी की किसी पुरानी नीति को मैं जारी कर रही हूँ।'' परंतु मैं सोचती हूँ कि ''बैंक राष्ट्रीकरण का मैंने विरोध किया था'' – इस झूठे प्रचार का निवारण करना आवश्यक है। आप अच्छी तरह जानते हैं कि ''श्री मोरारजी देसाई जी उसके कड़े विरोधी हैं।'' श्री देसाई जी ने धमकी दी थी कि ''यदि वैसे कार्यक्रम के लिए दबाव डाला तो इस्तीफा दे दूँगा।'' यह प्रबल दबाव ही कारण था कि हमारें देश के विकास के लिए अत्यंत आवश्यक कार्यक्रम को लागू करना मुझे स्थगित करना पड़ा है। परंतु बेंगलूर ए.आइ.सी.सी. अधिवेशन के बाद, इसे जारी करने के उद्देश्य से श्री मोरारजी देसाई जी को वित्त मंत्री स्थान से मुक्त करने का मैंने निर्णय लिया।

''अपने चारों ओर व्यक्ति पूजा को मैं उत्तेजना देती हूँ'' – मेरे बारे में आपकी ये बातें इतनी बेबुनियाद हैं कि उनके बारे में, यह कहना कि 'वे दर्द देती हैं' – इससे अधिक 'वे मुझे दुःखी करती हैं' कहना उचित होगा। सरकार

और नीति निरूपण करनेवाली पार्टियों के बीच का संबंध बहुत ही संकीर्ण होता है। इसके बारे में, हमारे देश में ही नहीं दूसरे कई देशों में बहुत बार इसकी चर्चाएँ हुई हैं।

इस संबंध को कुछ मूलभूत तत्वों द्वारा बचाया जा सकता है। इन तत्वों के व्यावहारिक स्वरूप को हमारे देश की, आज की परिस्थिति के अनुसार हमें निश्चित करना पड़ता है।

आपने आरोप लगाया है कि मैंने, गुटबंदी मनोभाव को बढ़ा लिया है। मेरे बारे में आलोचना करने के मनोभाववाले अनेक लोगों को भी मैंने मुख्य समितियों और मंडलियों में नियुक्त किया है। परंतु सरकार की नीति को महत्व देनेवाले प्रतिनिधि मंडलों में हमारे विचारों को मनःपूर्वक न माननेवालों को नियुक्त करना संभव नहीं है।

कोई भी व्यक्ति, जब कोई गलती करता है तो नियम और विधि के अनुसार अधिकारयुत साधना, ऐसे संदर्भों में योग्य कारवाई करता है। नियमों अथवा कारवाई के विरुद्ध किसी के समर्थन में, मैने कभी हस्तक्षेप नहीं किया है।

पार्टी के लिए, निधि संग्रह करके लेखा-जोखा न रखनेवाले के बारे में प्रस्ताव किया गया है। इस विषय में, कई राज्यों में क्या चल रहा है – इसके प्रति आसक्ति से ध्यान दे रही हूँ। महाचुनाव तथा उपचुनावों के संदर्भों में निधि संग्रह करनेवाले, कार्यकारिणी समिति के सदस्यों में, क्या किसी ने भी लेखा-जोखा दिखाया है?

श्री एस.के, पाटीलजी ने खुले रूप में मान लिया है कि 1967 के महाचुनावों के समय बहुत बड़ा धनसंग्रह किया था। क्या इसका कोई लेखा-जोखा है? यह धन क्या ए.आइ.सी.सी. को पहुँचा? धनसंग्रह के विषय में ठीक व्यवहार न करनेवाले किसी भी व्यक्ति पर आप यदि कारवाई करना चाहते हैं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परंतु मेरी इतनी ही विनती है कि वह कारवाई पक्षपात के बिना अथवा निर्भय होकर किया जाना चाहिए।

पार्टी तथा सरकारों में एक व्यक्ति शासन होने के बारे में,.अपना आतंक व्यक्त किया है। सरकार के प्रधान यदि संपूर्ण अधिकार न रखते तो सरकार का कार्यनिर्वहण संभव नहीं होगा। परंतु संविधान में ही इसके बारे में अनेक

रक्षाक्रम अंतर्निहित हैं। साथ ही ऐसे अस्वस्थ मनोभाव को कन्ट्रोल करने के लिए हमेशा खुली आँखों से देखनेवाला संसद भी है।

परंतु ये बातें मैं पार्टी के बारे में नहीं कह सकती हूँ। खोटा सदस्यत्व, असमंजस चुनाव और बड़े भाई के मनोभाव के होते हुए, पार्टी के अध्यक्ष द्वारा कांग्रेस के संविधान होने के बावजूद, कार्यकारिणी समिति के सदस्यों को जब चाहे तब निकालने की पद्धति के रहते हुए, प्रजासत्तात्मक कार्य निर्वहण क्या संभव है?

''स्थानीय नेता के साथ कदम न मिला सकते हैं'' – इस एक ही कारण से पार्टी के अच्छे तथा प्रामाणिक कार्यकर्त्ताओं को निकालने के असंख्य उदाहरण हैं। ऐसी परिस्थिति का अंत होना चाहिए। परंतु ऐसी न्यूनताएँ तथा दोषों के बारे में कितने लोग चिंतित हैं?

मैं प्रामाणिक प्रांजल मन से आपको, पार्टी को भरोसा देती हूँ कि ''मुझे कोई वैयक्तिक लाभ या सुविधा नहीं चाहिए।'' मैं चाहती हूँ कि ''कांग्रेस पार्टी को सुदृढ़ता और एकता से रहना चाहिए। पार्टी को मान्य ये आदर्श और विचारों के विरुद्ध काम करनेवाली शक्तियों को निकाल फेंकेंगे। पार्टी के आरोग्यपूर्ण कार्य निर्वहण के लिए हम मार्गों को रूपित करेंगे।''

इसी दृष्टिकोण से ही ए.आइ.सी.सी के बहुसंख्यक सदस्यों ने विशेष अधिवेशन बुलाने की माँग की है। पार्टी के सदस्यों की माँग के लिए, योग्य प्रतिक्रिया करना पार्टी के नेता का कर्तव्य है। पार्टी के आशय का प्रतिनिधित्व करनेवाली, परम संस्था ए.आइ.सी.सी. के अलावा कोई विशेष जिम्मेदारी अथवा कर्तव्य उन्हें नहीं होता है। पार्टी के आशय तथा निर्णयों की उपेक्षा करनेवाले कोई भी क्यों न हो उन्हें प्रजासत्तात्मक होने और उससे ज्यादा पार्टी की एकता और प्रजासत्तात्मक कार्य निर्वहण की रक्षा करने की डींग मारना संभव नहीं है।

उपरोक्त अंशों को प्रस्तुत परिस्थिति की भूमिका में समझ लेना होगा। कांग्रेस पार्टी के सामने की कठिनाइयाँ और उसके कारण देश के सामने की कठिनाइयों को ये बातें प्रतिबिंबित करती हैं। विकास की कठिन समस्याओं ने, देश के सामने अनेक नए सवालों रखे हैं। फरीदाबाद के ए.आइ.सी.सी. अधिवेशन

ने दिखाया है कि इन नए सवालों के लिए विभिन्न प्रतिक्रियायें हैं – एक तरफ अध्यक्षस्थान से आपका भाषण और दूसरी तरफ ए.आइ.सी.सी. का कार्यक्रम!

बेंगलूर के ए.आइ.सी.सी. अधिवेशन में हुई चर्चाओं ने इस भिन्नता को और दृढ़ बना दिया। भारत को तंग करनेवाले नए सवालों का परिणामकारी रूप में सामना करने के लिए सकारात्मक तथा क्रांतिकारक निवारणोपायों को सामने रखने के लिए मेरी टिप्पणी ने प्रयत्न किया है। आपकी टिप्पणियों पर आधारित निर्णयों का समर्थन करने के ढोंग से, उसके मार्ग को पूरी तरह से नष्ट करनेवाले मोरारजी देसाई जी के भाषण के सार के विरुद्ध थी मेरी टिप्पणी।

इस भूमिका में बैंक राष्ट्रीकरण के द्वारा सरकार ने माने गए तत्वों का अनुष्ठान करने का निर्णय लिया तो कांग्रेस की कठिनाई और बढ़ गई।

अब यह सवाल पूछा जा रहा है कि, ''बेंगलूर के ए.आइ.सी.सी. अधिवेशन द्वारा लिया गया निर्णय और दस अंश के कार्यक्रम को पार्टी की जिम्मेदारी लेनेवाले सभी नेता इसका प्रतिरोध नहीं कर सकते हैं – इसलिए पार्टी के प्रस्तुत नायकत्व के विरोध की उपेक्षा करते हुए, सरकार के नेता, इसका अनुष्ठान क्यों नहीं करते?'' परंतु सच्चाई यह है कि वैसे क्रांतिकारी कार्यक्रम का अनुष्ठान केवल सरकार द्वारा ही नहीं हो सकता है।

वास्तव में एक तरफ सरकार में अपने सामने के विषयों के बारे में स्पष्ट निर्णय लेनेवाले ओजस्वी नायकत्व की आवश्यकता है। और दूसरी तरफ बाहर भारत के पुनरुज्जीवन के लिए - धर्मनिरपेक्षता , देश की समग्रता और एकता की रक्षा के लिए आवश्यक नए कार्यक्रमों के लिए लोगों का समर्थन इकट्ठा करनेवाले, स्पष्टता और स्फूर्तिदायकता के गुणोंवाला पार्टी का नायकत्व चाहिए। ये दोनों आवश्यकताएँ हमारे पार्टी की एकता को तंग करनेवाले कारण हैं। कोई इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि हमारे देश के अनेक भागों में हमारी पार्टी वास्तव में स्थगित हुई है। नई समस्याओं के प्रति वह स्पंदित नहीं होता है; वह पहचानता भी नहीं है कि लोग किस मार्ग पर जा रहे हैं; सरकार के निर्णयों के लिए लोगों का समर्थन जोड़ा नहीं जा सकता है। ये ही सभी – हमारे सामने की समस्याओं का सामना करने के लिए अत्यावश्यक समंजस निवारणोपाय हैं।

प्रस्तुत कठिनाई का वातावरण अधिक समय तक नहीं रहना चाहिए और इसके समाधान का एक ही प्रजासत्तात्मक उपाय यह है कि ''जितनी जल्दी हो सके, इस विषय को ए.आइ.सी.सी. के सामने ले जाना चाहिए। इसलिए मैं विनती करती हूँ कि केवल तांत्रिकता का अवलंबन न करते हुए शिकायत भी न करते हुए कि '' संविधान का उल्लंघन कर, ए.आइ.सी.सी. अधिवेशन को बुलाया गया है''– उस सभा के आप अध्यक्ष होकर सदस्यों को अपना अभिप्राय व्यक्त करने का मौका देते हुए, प्रजासत्तात्मक रीति से पार्टी के निर्णय से आप बद्ध रहे। व्यक्तियों को प्रामुख्य न देकर, हमारी पार्टी तथा देश के परमहित की दृष्टि से पार्टी निर्णय ले।

यदि आप चाहते हैं कि, ए.आइ.सी.सी. अधिवेशन को विधिपूर्वक आपके परिपत्र के द्वारा ही बुलाया जाय तो इस महिने के 22 और 23 को देहली में आप ही अधिवेशन बुलाइए – इस बिनती के साथ मैं यह पत्र लिख रही हूँ। आपके द्वारा अपना पत्र, पत्रिकाओं में प्रकाशित करने के कारण, मैं भी वैसा ही कर रह रही हूँ।

सम्मानपूर्वक,

आपकी विश्वासी
(सही) इंदिरागाँधी

प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधीजी द्वारा कांग्रेस अध्यक्ष, श्री एस. निजलिंगप्पाजी को 4 नवंबर 1969 को लिखा गया पत्र

प्रिय श्री निजलिंगप्पाजी,

इस महिने की दो तारीख को आपका लिखा हुआ पत्र मिला, जिसमें आपने पार्टी के संविधान तथा कार्यकारी समिति के निर्णयों का उल्लंघन करते हुए, आपके अनुसार नियमबाहिर तथा संविधान विरोधी ए.आइ.सी.सी. की सभा बुलाने के साथ मेरे संबंध के बारे में आपने विवरण माँगा है। वह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। 28 नवंबर, 1969 के आपके पत्र के जवाब में कल के तारीख के मेरे पत्र में – आजकल हमारी पार्टी के सामने की मुश्किल की शुरूवात और स्वरूप के बारे में मैंने विवरण दिया है। जोर देते हुए जिन अंशों को वहाँ मैंने बताया है, उन्हें फिर न दोहराते हुए, मैं यहाँ जो कहना चाहती हूँ – वह यह है कि हम यहाँ केवल तांत्रिक तथा कानूनात्मक समस्या के बारे में उल्लेख नहीं कर रहे हैं। सारंश में हम एक राजनैतिक संकट का सामना कर रहे हैं।

हमारी पार्टी के संविधान की किसी एक 'विधि' अथवा वाक्य का व्याख्यान करना है तो वह कागज पर बेकार की रेखाओं को खींचने जैसे असफल प्रयत्न है बस! हमें प्रामाणिकता से मानना होगा कि देश के सामने जो सामाजिक, आर्थिक समस्या है उसे देखने के दृष्टिकोण में तीव्र भिन्नता है।

इसमें संदेह नहीं है कि ''मुझसे उठाये गये कदमों का बहुसंख्यात लोगों ने पार्टी के विविध वर्ग के कार्यकर्ताओं ने प्रबलरीति से समर्थन किया है।''

प्रजासत्तात्मक संगठन – कांग्रेस पार्टी का हमारे देश के अनेक लोगों के तथा उसके सदस्यों की उत्तेजना से प्रतिस्पंदित होते हुए प्रतिक्रिया देना आवश्यक है। प्रस्तुत संदर्भ में, मुझसे प्रत्याशा की जानेवाले कर्तव्यों का कांग्रेस संसदीय पार्टी की नायिका के स्थान से निर्वहण करने से मैं भागूँगी नहीं। मुझे कोई संदेह नहीं है कि ''मुझसे प्रतिपादित नीति और कार्यक्रमों का ए.आइ.सी.सी. के सदस्यों तथा प्रतिनिधियों में अनेक जन समर्थन करेंगे।'' यदि अनिवार्य होता है कि इसकी परीक्षा करने के लिए एकैक मंच है – ए.आइ.सी.सी. अथवा कांग्रेस के सर्वसदस्यों की सभा बुलाकर प्रजासत्तात्मक रीति से निर्णय ले सकते हैं।

आज यह सर्वविदित विषय है कि ''ए.आइ.सी.सी. के 400 से भी अधिक सदस्य ए.आइ.सी.सी. अधिवेशन बुलाकर, माँगों के पत्र में सूचित निर्दिष्ट निर्णय की चर्चा करने के लिए संविधान की 'विधि' 12 (बी) (डी) में कार्यकारिणी समिति से माँग की गई थी। राष्ट्र की समस्याओं के लिए हमारे दृष्टिकोण के बारे में बहुसंख्यात सदस्यों ने अपनी माँग के पत्र में स्पष्ट रूप से अपना विश्वास व्यक्त किया है। विशेष सभा बुलाने के लिए चाहते हुए, ए.आइ.सी.सी. सदस्यों के प्रजासत्तात्मक और संविधान बद्ध हक की आप और आपका समर्थन करनेवाले कार्यकारी समिति के सदस्यों ने असमर्थनीय और तुच्छ रीति से तथा होशियारी से उपेक्षा की है। इसकी किसी ने प्रत्याशा नहीं की थी।

इसलिए, मैं विनम्रता से पूछना चाहती हूँ कि पार्टी के संविधान का उल्लंघन किसने किया है? संविधानबद्ध रीति से आपको माँग का पत्र लिखनेवालों ने या माँग के अनुसार अधिवेशन बुलाने के कर्तव्य को निर्लज्जता से न करनेवाले आपने?

विधि 12 (बी) (डी), इस प्रकार है :-

''ए.आइ.सी.सी. की कार्यकारिणी समिति, जितनी बार चाहे अथवा संपूर्ण मतदान का हक रखनेवाले, ए.आइ.सी.सी. के सदस्यों की कुल संख्या में 20% से कम सदस्य, जब चाहकर, सब मिलकर जब पत्र लिखते हैं, मिल सकते हैं। उस माँग के पत्र में ए.आइ.सी.सी. सभा बुलाने के उद्देश्य को स्पष्टरूप से लिखना होगा। उस माँग के पत्र के प्राप्त होने के दो महिने के अंदर सभा बुलानी चाहिए। परंतु एक वर्ष में एक से अधिक ऐसी सभा नहीं बुला सकते हैं। ऐसी माँग की सभा में कार्यकारी समिति में बाकी विषयों के बारे में भी चर्चा कर सकते हैं।''

इस विधि को समझने के लिए कानून के विशेष ज्ञान की भी आवश्यकता नहीं है। चाहत की सभा न बुलानेवाले किसी की भी विवेचना के लिए यह 'विधि' मौका नहीं देती है।

ए.आइ.सी.सी. के 50% से भी अधिक सदस्यों ने जब सभा बुलाने के लिए दबाव डाला तो उसका तिरस्कार करने की क्या आवश्यकता थी ? आपने आरोप लगाया है कि इस निर्णय से आप पर अविश्वास व्यक्त होता है। यदि ऐसे आप सोचते हैं तो एक राजनैतिक पार्टी के प्रधान होकर, सदस्यों का अभिप्राय जानने के लिए सभा बुलाना और आवश्यक हो जाता है न ? निर्णय को आपके विरुद्ध का अविश्वास निर्णय कहना, वस्तुस्थिति को बदलने का प्रयत्न होगा।

प्रजासत्तात्मक कार्यनिर्वहण के बारे में चिंता करनेवाले और हमारी पार्टी और उसके नेताजन को कार्यनिर्वाह करना चाहिए – ऐसी निरीक्षा रखनेवाले मुझे या दूसरे किसी को भी सभा बुलाकर अपने अभिप्रायों को व्यक्त करनेवाले, हमारे सदस्यों के मूलभूत हकों को तोड़ता देखकर, चुप बैठना संभव नहीं है।

मैं और मेरे सहकर्मी यदि जैसे अब किया है वैसे किसी भी तरह से प्रतिक्रिया न करते हुए मुँह बंदकर बैठते तो कर्तव्य निर्वहण में हारना जैसे होता था। इसके लिए हमारी पार्टी के अधिक सदस्यों के और जनता के संपूर्ण समर्थन होने के बारे में मुझे कोई संदेह नहीं है। पार्टी के नियमों को तोड़ने तथा संविधान का गंभीर रीति से उल्लंघन करने के आरोप को, मेरे ऊपर लगाए गए आरोप को – कुतंत्र का न कहने से ज्यादा दुर्भाग्य का ही कह सकते हैं। अजीब तर्क को सामने रखकर, सभा बुलाने को संविधानबाहिर तथा पार्टी के संविधान के और कार्यकारिणी समिति के निर्णय का उल्लंघन कहकर आपने वर्णन किया है।

मैं कहना चाहती हूँ – ''आपके आरोप को संपूर्ण रूप से नकारकर, उसके व्यतिरिक्त रूप से आप और कार्यकारिणी समिति के आपके समर्थकों ने ए.आइ.सी.सी. सभा को बुलाने के लिए की गई न्याययुत मांग का तिरस्कार कर, हमारी पार्टी के संविधान को तीव्र स्वरूप में आपने तोड़ा है।'' इतना ही नहीं अपने न्यायबाहिर उद्देश्य को साधने के लिए तीन सम्माननीय सदस्यों को कार्यकारिणी समिति से निकालने के प्रयत्न करने की गलती की है। मैं आपको चेता रही हूँ कि अन्याय के मार्ग से सदस्यों को निकालेंगे तो कार्यकारिणी समिति की कोई सभा ठीक नहीं होगी।

मेरा कोई भी कार्य न्यायबाहिर न होने के कारण मैं सोचती हूँ कि विवरण देने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसके बदले ए.आइ.सी.सी. सदस्यों के हकों को तोड़ते हुए, मुँह बंद करने का प्रयत्न करके, पार्टी के संविधान का उल्लंघन करके और प्रजासत्तात्मक तत्वों को हवा में उड़ाकर पार्टी में, देश में मुश्किलों की सृष्टि करनेवालों को विवरण देना है। आप मुझसे जो विवरण चाहते हैं, वही इस सामान्य भावना को पुष्ट करता है कि पार्टी के टूटने की संभावना की उपेक्षा करते हुए, पार्टी के बहुसंख्यात सदस्यों के अभिप्राय का प्रतिनिधित्व करने पर भी, अपनी बात न माननेवालों को पार्टी से निकालने का प्रयत्न कर रहे हैं।''– यदि आप आशा करते हैं कि, ''आपसे मतभेद रखनेवालों को और अपने अभिप्रायों को मुक्तरूप से व्यक्त करनेवालों को डराना हो तो आप निराश हो जायेंगे।

पत्र समाप्त करने से पहले आपसे बिनती है कि आप अपने कार्यों के बारे में फिर से सोचकर पुनः परिशीलन कीजिए। पार्टी के प्रमुख होने के कारण, आप पर बड़ी जिम्मेदारी है; अत्यंत प्रामाणिक मन से बिनती करती हूँ, सोचिए हमारी पार्टी के निर्णय के लिए बद्ध होना क्या अभी भी संभव नहीं है?''

ससम्मान,
आपके विश्वासी
(सही) इंदिरा गाँधी

11 नवंबर, 1969 को प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधीजी को कांग्रेस अध्यक्ष,श्री एस. निजलिंगप्पाजी द्वारा लिखा गया पत्र

प्रिय इन्दिराजी,

28 अक्तूबर को लिखे गए मेरे पत्र को 3 नवंबर को आपका लिखा गया जवाब कुछ घंटों पहले ही मुझे प्राप्त हुआ। तब तक उसके विवरणों को आकाशवाणी के समाचार-प्रसार में मैंने सुना था। तुरंत मैं उसका जवाब देनेवाला था। परंतु मेरे कुछ मित्रों के प्रयत्नों से मेरे 28 अक्तूबर के पत्र में, मुझसे व्यक्त किये गये अभिप्रायों तथा भयों के बारे में चर्चा करने का मौका प्राप्त होने की प्रतीक्षा कर रहा था। भोजन समारोह में, जब हम मिले थे तब भी, उन मूलभूत प्रश्नों के बारे में प्रस्ताव करना, आपको जरूरी न लगना विषाद की बात है। उसी कारण से मेरे लिए यह पत्र लिखना अनिवार्य हो गया है।

बड़ी सावधानी से ध्यान लगाकर मैंने आपका पत्र पढ़ा है। उसे पढ़ते हुए मैं कातर था कि तंत्रात्मकता तथा अनुशासनहीनता के कारण पार्टी की दुःस्थिति के बारे में क्या कहीं आप में विषाद दिखाई देता है; आप जहाँ जाकर पहुँच चुकी है उस किनारे से क्या आप वापस आ सकती हैं – आशाकिरण देखने को मिलेगी।'' परंतु आपका पत्र पढ़ने के बाद मुझे विश्वास हो गया कि मेरी प्रतीक्षा और विश्वास सब गलत निकले। आपके मनोभाव तथा कृतियों के बारे में, हममें से कइयों को जो आतंक है, उसका निवारण करने का प्रयत्न न किया, न आपने मेरे द्वारा प्रस्तावित मूल प्रश्नों की तरफ ध्यान ही दिया है। असत्य का पुनरावर्तन अंत में वास्तव तथा कल्पना के बीच के अंतर को मिटा देगें – इस आशा से, उसके बदले अर्धसत्य, असत्य पर आप टिकी हैं।

आपने आरोप लगाया है कि एकता के लिए माँग रखते हुए ही ''पार्टी की एकता की उपेक्षा'' करनेवालों को मैं ले रहा हूँ। आपने कहा है कि, ''श्री फकरुद्दीन अली अहमद, श्री सुब्रह्मण्यम् और डा. शंकरदयाल शर्मा पर मुझसे की गई कारवाई संपूर्ण रूप से गैर कानूनी है। आप अच्छी तरह जानती हैं कि मैंने श्री सुब्रह्मण्यम् जी को नहीं निकाला। श्री सुब्रह्मण्यम् जी स्वयं तमिलनाडु कांग्रेस समिति के अध्यक्ष स्थान से बाहर आने के कारण, अपने पदनिमित्त सदस्यत्व को उससे कार्यकारिणी समिति के चुने गए सदस्यत्व को खो लिया। आप अच्छी तरह जानती हैं कि 1 नवंबर को कार्यकारिणी समिति की सभा के

होने से पहले मैंने डा. शंकरदयाल शर्माजी को सदस्यत्व से नहीं निकाला। उस दिन उन्हें कार्यकारिणी समिति की सभा में आना था; परंतु वे गैर हाजिर हुए। शायद ऐसे उनके बर्ताव से विश्वसनीयता तथा नियमों का उल्लंघन हुआ और प्रधान सचिव स्थान को खोने के बारे में वे जानते होंगे। मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि प्रधान सचिव के पद पर कार्यनिर्वाह करने को अनुकूल होने के लिए, डा. शंकरदयाल शर्माजी को कार्यकारिणी समिति को नामकरण करनेवाला मैं ही था। इस कारण यह स्पष्ट है कि प्रधान सचिव पद को खोने के कारण वे अपनी समिति के सदस्यत्व में आगे नहीं बढ़ सकते। श्री फकरुद्दीन अली अहमद जी को कार्यकारिणी समिति के सदस्यत्व से निकालने की कारवाई को आपने असाधारण तथा अन्याय कहा है। परंतु आपसे पूछना है कि कार्यकारिणी समिति के सदस्य होकर, उनका व्यवहार क्या असाधारण तथा न्यायबाहिर नहीं था? भारत के राष्ट्रीय कांग्रेस के सुदीर्घ इतिहास में, कार्यकारिणी समिति के किसी सदस्य ने श्री फकरुद्दीन अली अहमद के जैसे 1 नवंबर को कार्यकारिणी समिति की सभा होने के कुछ ही दिनों पहले पत्रिका गोष्ठी बुलाकर उसमें पार्टी के अध्यक्ष के विरुद्ध सार्वजनिक रूप से गलत प्रचार करने की अनुशासनहीनता को प्रस्तावित करनेवाली ऐसी कोई और घटना है क्या? असाधारण स्वरूप की अनुशासनहीनता और पार्टीद्रोह बड़ी सज़ा के लिए योग्य हैं।

श्री कमलापति त्रिपाठी, श्री वेंकटरत्नम् और श्री ए.पी. शर्मा के विरुद्ध मैंने स्पष्ट रूप से गैर कानूनी कारवाई की है कहकर आपने यह व्यक्त किया है कि वैसे करनेवाले वे आपके समर्थक हैं – इस कारण से। क्या आप कांग्रेस के इस निर्णय को जानती नहीं कि " मंत्री होनेवाले कोई भी क्यों न हो, वह पी.सी.सी. का अध्यक्ष अथवा कोई भी और पदाधिकारी नहीं हो सकते।" क्या आप सोचती हैं कि आप तथा आपके समर्थकों के विरुद्ध कारवाई करने के लिए ही, अभी यह निर्णय लिया गया है? वैसे देखा जाय तो अपने 8 अक्तूबर के पत्र में आपने ही यह लिखते हुए ध्यान दिलाया है क़ि यह दशकों के पहले ही निर्णय लिया गया था। आप याद कर सकती हैं कि मंत्री बने पी.सी.सी. अध्यक्षों को, इस प्रकार पत्र लिखने के अनेक प्रसंग पहले भी हुए हैं।

मैं यहाँ यह भी कहना चाहता हूँ कि एस.पी. शर्माजी के विरुद्ध कोई भी कारवाई करने के बारे में मुझे याद नहीं है। इसलिए आप कैसे कह सकती हैं

कि श्री कमलापति त्रिपाठी, श्री वेंकटरत्नम् और श्री एस.पी. शर्माजी के विरुद्ध मैंने कानून विरोधी कारवाई की है? क्या आप समझती हैं कि कांग्रेस के निर्णयों का पालन करना ही कानून विरोधी कार्य है?

आपने कहा है कि आपने एकता निर्णय का उल्लंघन नहीं किया है, तथा आपने या किसी और जिम्मेदार व्यक्ति ने किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध एक शब्द नहीं कहा है। आपने श्री जगजीवनरामजी और श्री फकरुद्दीन अली अहमदजी ने अपने अनेक भाषण या बातों में कहे गए विषयों को उद्धृत कर, इस पत्र को लंबा बनाने की इच्छा मुझे नहीं है। परंतु ऐक्यता निर्णय के अंगीकार के चार ही दिनों में 29 अगस्त को श्री जगजीवनरामजी ने पटना में जो कहा, और मुंबई में कांग्रेस के ऐक्यता और नायकत्व के बारे में आपने जो कहा– तथा श्री फकरुद्दीन अली अहमदजी द्वारा उल्लेख की गई देहली के पत्रकार सम्मेलन – इन सभी की तरफ आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ।

राष्ट्रपति चुनाव के संदर्भ में आपके पात्र के बारे में, मुझसे पूछे गये प्रश्न के बारे में "उसी जगह पर बार बार जाने का कोई मतलब नहीं है" – कहते हुए आपने उससे बचने का प्रयत्न किया है। मुझे लगता है कि इस प्रश्न के बारे में बचने का आपका प्रयत्न – इस विषय की वास्तविकता सर्वविदित है और नकारना असंभव है – यह अंश आपको निश्चित हुआ है। एक और विषय की ओर आपका ध्यान खींचना चाहता हूँ कि "मई-जून-जुलाई महिनों में जब मैंने आपसे बात की तो राष्ट्रपति पद के अभ्यर्थी को चुनने की चर्चा को आगे बढ़ाने के लिए आपने कहा,– इस मेरी बात से आपने इनकार किया था।" आपकी स्मरणशक्ति शायद कम होती जा रही है! परंतु इस विषय पर आपसे मैंने 'मई-जून-जुलाई महिनों में बात की थी"।

हर बार इसे आगे बढ़ाते हुए, बेंगलूर में संसदीय मंडल की सभा होने के मात्र दो घंटे पहले आपने अपने मन की भावना सूचित की। अपनी पार्टी को विश्वास में लेकर, वहाँ एकमत बनाने का प्रयत्न करने से पहले ही विरोधी दलों के साथ चर्चा कर एकमत बनाने का आपका प्रयत्न, असाधारण ही है। आपने कहा कि श्री गिरीजी की विजय के लिए प्रयत्न नहीं किया है। मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि ऐसा कहने के लिए आपकी आत्मसाक्षी कैसे मान गई!

आपने कहा है कि "माँग को पुरस्कृत न करनेवाली कार्यकारिणी समिति की कारवाई संविधान विरोधी है, प्रजासत्तात्मकता के विरुद्ध है" आप अच्छी

तरह जानती हैं कि कार्यकारिणी समिति ने इस माँग का तिरस्कार क्यों किया ? ए.आइ.सी.सी. के संविधानबद्ध विषय के बारे में यदि चर्चा करनी थी तो कार्यकारिणी समिति ए.आइ.सी.सी. सभा बुलाने की माँग को अमान्य नहीं करती थी। माँग करनेवालों के निर्णय को छिपाने का कारण, वह अध्यक्ष के विरुद्ध का अविश्वास निर्णय था। आप जानती हैं कि महाधिवेशन ही अध्यक्ष को चुनता है न कि ए.आइ.सी.सी. के सदस्य! इसलिए आप सभी को स्पष्ट करने का अंश यह है कि – अध्यक्ष को नियमानुसार चुननेवाला महाधिवेशन मात्र ही अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास निर्णय लेने के बारे में निश्चय कर सकता है। तो कांग्रेस के महाधिवेशन के हक पर अतिक्रमण करने के लिए ए.आइ.सी.सी. को मौका देने के प्रयत्न के लिए कार्यकारिणी समिति कैसे मौका दे सकती है ? आपका तर्क यह है कि ''अखिल भारत कांग्रेस समिति की माँग को बहुसंख्यक सदस्यों के हस्ताक्षर करने के कारण, कार्यकारिणी समिति को अनुमति का निराकरण नहीं करना चाहिए था।'' क्या मुझे समझना चाहिए कि '' ए.आइ.सी.सी. सदस्यों का हस्ताक्षर संग्रह करने का क्रम आप जानती नहीं है।'' क्या आप जानती नहीं है कि '' कई हस्ताक्षर नकली हैं, कई हस्ताक्षरों को अमित अधिकार पानेवाले की अनुग्रह शक्तिवालों की इच्छा के विरुद्ध चले तो गंभीर परिणाम होगा। इस प्रकार भय देकर की गई है। किसी माँग को स्व-इच्छा से कइयों द्वारा किए जाने पर भी महाधिवेशन के हकों का ए.आइ.सी.सी. सभा क्या उपयोग कर सकती है ?

पार्टी पर आपने क्रियाहीनता और निरासक्ति का आरोप लगाया है। आपने सवाल किया है कि ''अहमदाबाद में जब हिंसाचार हुआ था, असम के तैल शुद्धिकरण के संबंध में, आंदोलन हुआ था, चंडीगढ़ में हुए विरोध के समय और आंध्रप्रदेश के तेलंगाणा के संबंध में विरोध होते हुए, पार्टी का केंद्र नायकत्व क्या कर रहा था ? क्या आपको कभी लगा है कि ''आपके नायकत्व में, शासन द्वारा दिखाई गई निष्क्रियता और संघर्ष के कारण प्रतीक्षाओं को बढ़ाते हुए अपने वैयक्तिक प्रभाव को बढ़ाने का, आपकी महत्त्वाकांक्षा तथा परस्पर विरुद्ध माँगों को पूरा करने के दिन को आगे बढ़ाने की आपकी प्रतीक्षा ही इनकी संभावना का कारण है।'' आपको स्मरण दिलाने की आवश्यकता नहीं है कि कौमी संघर्ष के परिणामस्वरूप गुजरात में उद्‌भूत संदर्भ का सामना करने के लिए कांग्रेस पार्टी ने श्री मोरारजी देसाई के नेतृत्त्व में क्या किया था !

आपके लगातार अनुशासनहीनता के कार्यों का कांग्रेस के सैद्धांतिक मतभेद के परिणाम के बहाने समर्थन करने का आपने प्रयत्न किया है। फरीदाबाद अधिवेशन का मेरा भाषण, श्री पाटीलजी के भाषणों तथा बैंक राष्ट्रीकरण के बारे में श्री मोरारजी के मनोभाव की तरफ ध्यान दिलाते हुए उसके अधीन सैद्धांतिक संघर्ष का रंग देने के लिए तथा प्रगतिपरता और समाजवाद का झंडा ऊपर उठाया है, इसे प्रतिबिंबित करने का आपने प्रयत्न किया है। यह झूठ है कि ''फरीदाबाद के अधिवेशन के भाषण में मैंने कांग्रेस द्वारा माने गए निर्णयों के विरुद्ध बात की।'' देश की प्रजा के जैसे मैं भी एक समाजवादी हूँ। पार्टी के लिए और मैसूर के मुख्यमंत्री के रूप में मैंने जो भी कार्य किए हैं वे सब मैं जितना समाजवादी हूँ और सार्वजनिक क्षेत्रों के लिए बद्ध हूँ – इसका प्रमाण देते हैं। शायद आप सोचती हैं कि एक समाजवादी सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार मात्र की अपेक्षा करता है, सार्वजनिक क्षेत्र की दक्षता को नहीं। श्री मोरारजी देसाई तथा श्री पाटीलजी के बेंगलूर में किए गए भाषणों के विषय पर बताना मैं नहीं चाहता।

श्री मोरारजी ने स्वयं कहा है कि बैंक राष्ट्रीकरण का उन्होंने कभी विरोध नहीं किया है। उन्होंने ही कहा था कि ''निष्ठुर सामाजिक नियंत्रण क्रमों को जारी करके यदि सामाजिक नियंत्रण तब भी काफी नहीं होता तो बैंक राष्ट्रीकरण करना चाहिए।'' पार्टी तथा सरकार में एक व्यक्ति के परमाधिकार को साधने के जिद्द को कांग्रेस के प्रगतिपर और क्रांतिकारी कहलानेवाले लोगों के तथा प्रगतिगामियों के बीच के संघर्ष के रूप में, चित्रित करने के आपके प्रयत्न विद्रोह करनेवाले लोगों को छोड़कर किसी और को भटका नहीं सकते। निरंकुशप्रभु बनने की इच्छा रखनेवाला – बीसवीं सदी का कोई भी व्यक्ति समाजवाद का मुखौटा पहनना नहीं भूलेगा।

पार्टी की निधि के लिए, धन संग्रह करने का प्रस्ताव करते हुए आपने उल्लेख किया है कि ''श्री पाटीलजी ने अधिक धनसंग्रह करके उसका लेखाजोखा नहीं दिया है और इसे उन्होंने खुले रूप से मान भी लिया है।'' आपके इस आरोप का जवाब देते हुए, श्री पाटीलजी ने कहा है कि पार्टी को ही नहीं मुंबई उच्च न्यायालय को भी उन्होंने लेखाजोखा दिया है। पार्टी के नाम पर राजनीतिक कार्यों के लिए आपने और आपके सहचरों ने बडी रकम का

क्या संग्रह नहीं किया है ? कांग्रेस के इस निर्णय के बारे में आप जानती ही हैं कि ''मंत्रियों के धनसंग्रह के बारे में चाहे वह ए.आइ.सी.सी. के दानकार्यों के लिए भी क्यों न हो – पार्टी को लेखाजोखा दिखाना उसका कर्तव्य है।'' ए.आइ.सी.सी. नियमों के अनुसार, मंत्रियों को अथवा संसद या शासनसभा के सदस्यों को अपनी जायदाद का विवरण ए.आइ.सी.सी. को देना चाहिए। परंतु क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आपने अभी तक, धनसंग्रह का लेखाजोखा और जायदाद का विवरण अखिल भारत कांग्रेस समिति को क्यों नहीं दिया है ?

पार्टी के नकली सदस्यत्व तथा जिम्मेदारियों के बारे में, आपने बात की है। आप ही भारत राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष थीं। आप जानती हैं कि कांग्रेस पार्टी समस्याओं के निवारण का प्रयत्न कर रहा है, तथा नकली सदस्यत्व की समस्या का सामना करने में गणनीय यश पाया है। परंतु मैं नहीं जानता कि आपने कांग्रेस अध्यक्ष पद पर रहते हुए कोई कारवाई की हो। पार्टी के कार्यनिर्वहण और नकली सदस्यत्व तथा जागीरदारी प्रवृत्ति जैसी समस्याओं का निवारण करने की जिम्मेदारी आप पर भी थी न ?

एकव्यक्ति-शासन और व्यक्ति पूजा के बारे में मुझसे उठाए गए सवाल को आपका दिया गया जवाब अर्थगर्भित है। आपने कहा है कि ''आरोप विषादनीय है, परंतु दुःखी करनेवाला नहीं है।'' ''आपके कार्य और मनोभाव – एकव्यक्ति-शासन की स्थापना करने की इच्छा को व्यक्त करते हैं '' – मेरी इस बात को आपने नकारा नहीं है – यह अर्थगर्भित है। आपने कहा है कि ''एकव्यक्ति-शासन के विरुद्ध देश के संविधान में अन्तर्निहित रक्षणोपाय हैं''। जर्मनी के वीमर गणतंत्र में भी ऐसे ही रक्षणोपाय थे। इसके अनुसार निदर्शनों के लिए हमें, दूर भूतकाल को जाने की आवश्यकता नहीं है। लोकप्रियता की लहर के कारण से या किसी एक प्रजासत्तात्मक पार्टी के समर्थन से अधिकार पानेवाला नेता राजनीतिक आत्मरति का शिकार होते हुए, भ्रष्टाचार और भय से जनाभिप्राय को अधिकारियों की प्रतिध्वनि बनाकर, प्रजातंत्र की बली लेने के अनेक निदर्शन पूरे बीसवीं सदी में भरे हैं। प्रजातंत्र और समाजवाद के लिए बद्ध कांग्रेस पार्टी को वैसी मनोवृत्ति के विरुद्ध लड़ना है।

गौरवादरों के साथ, आपके विश्वासी

(हस्ताक्षर) एस. निजलिंगप्पा

3. भारत राष्ट्रीय कांग्रेस के 71 वें अधिवेशन में निजलिंगप्पाजी का अध्यक्षीय-भाषण

(1968 जनवरी में हैदराबाद के लालबहादुर नगर में हुए भारत राष्ट्रीय कांग्रेस के 71वें अधिवेशन में श्री निजलिंगप्पाजी का भाषण)

सहप्रतिनिधियों और कार्यकर्ताओं,

बहुत ही कम समय में इस महाधिवेशन की व्यवस्था करनेवाली स्वागत समिति का अभिनंदन करते हुए, मैं अपना भाषण शुरू करता हूँ। जैसाकि आप सब जानते हैं, यह अधिवेशन महाराष्ट्र के सांगली में होनेवाला था। परंतु 11-11-1967 को वहाँ जो विनाशकारी भूकंप हुआ, उसके कारण जाने और जायदादों के नष्ट होने की वजह से वहाँ यह अधिवेशन करना संभव नहीं हुआ। मृतकों के परिवारों को संताप व्यक्त करना और कई तरह के संकष्टों से त्रस्त लोगों को सहानुभूति प्रकट करना हमारा कर्तव्य है।

पी.सी.सी. अध्यक्ष तथा मुख्यमंत्री के नेतृत्व में आन्ध्र प्रदेश कांग्रेस-समिति ने संदर्भ के अनुसार तैयार होकर, केवल तीन सप्ताहों में ऐतिहासिक नगर तथा विविध संस्कृतियों के संगमस्थल हैदराबाद में इस अधिवेशन के लिए अत्युत्तम व्यवस्था की है, उन्हें हृत्पूर्वक कृतज्ञता अर्पित करता हूँ।

भारत राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षता की जिम्मेदारी उठाने के लिए आपने कहा है। स्वातंत्र्य के लिए संघर्ष करनेवाले लोग, राजनेता, विद्वान, चिंतक और शासकों ने इस पद को अलंकृत कर, देश को आगे बढ़ाया है। इसकी गणना करके एक तरह की अल्पता और विनम्रता मुझमें उत्पन्न होती है। इस स्थान पर बैठने के लिए मैं झिझकता हूँ। इसका कारण केवल मेरी कमियाँ ही नहीं; प्रस्तुत संदर्भ में यह संकीर्ण समस्याओं से भरा है। दो तीन दशकों तक मुझे कार्य करने का मौका देनेवाले मित्रों के दबाव के कारण मैंने यह जिम्मेदारी उठाई थी। उन मित्रों के, उससे बढ़कर सभी प्रतिनिधियों के समूह का जिन्हें मुझपर विश्वास है, उसने मुझे यह निभाने का चैतन्य दिया है। मुझे पूरा विश्वास है कि सर्वसम्मति से चुननेवाले आप सभी, मुझे संपूर्ण सहकार, मार्गदर्शन तथा समर्थन देते हुए, इस बड़े कर्तव्य के निर्वहण को आसान बनायेंगे।

देश के इतिहास की एक संदिग्ध परिस्थिति में हम यहाँ इकट्ठे हुए हैं। हम सदस्य होने का गर्व करनेवाली कांग्रेस की भी यह संदिग्ध पर्व है। यह सच

है कि स्वातंत्र्य के बाद, पिछले बीस वर्षों में हमने गणनीय साधना की है। देश में उत्पादन की वृद्धि हुई है; राष्ट्रीय आय बढ़ गई है; देश के और अधिक लोग साक्षर हुए हैं; शिक्षा के मौकों का विस्तार हुआ है। शिशु तथा माताओं की मृत्यु का प्रमाण कम हो गया है; जीवितावधि की प्रतिशत काफी बढ़ गई है। हमारी कृषि-पद्धतियाँ धीरे-धीरे अधिक आधुनिक होती जा रही हैं। औद्योगिक क्षेत्र वैविध्यपूर्ण होता जा रहा है। हमारे रक्षादल अधिक आत्मविश्वास, सामर्थ्य और आधुनिक युद्धोपकरण प्राप्त कर देश की सीमा की रक्षा कर रहे हैं। फिर भी, कह नहीं सकते कि देश में सबकुछ सही चल रहा है। कठिन परिस्थिति से भी अधिक अब हम अतृप्ति से भरे हैं। इस मार्ग में कांग्रेस ने भी संकष्ट का सामना किया है। पिछले महाचुनाव, चिंतन तथा आत्मावलोकन करने के लिए कारण बने हैं। अब यह सब अनिवार्य हो गया है कि देश की परिस्थिति का फिर से परिशीलन करना है; पहचानना है कि हमने कहाँ गलती की है; जनता में आत्मविश्वास भरना है; गरीबी, बेरोजगारी, बिमारियाँ और निरक्षरता के विरुद्ध संघर्ष करने में दृढ़ता से आगे बढ़ना है; और आजादी की प्राप्ति के बाद पूर्ण और मुक्त जीवन चलाने का हक पाने के लिए लोगों को तैयार करना है।

पिछले बीस वर्षों से केन्द्र तथा राज्यों में कांग्रेस शासन चल रहा है। देश के विकास के लिए सचमुच यह सहकारी है। यह आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण साधना व विकास करने के लिए सहायक हुआ है। प्रारंभ के तीन महाचुनावों में देश की जनता ने हमें समर्थन दिया है। इसका कारण, केवल हमारे कार्य और हमारे प्रति उनका गौरव ही नहीं है; 'भारत में राजनीति करनेवाला यह एकैक पार्टी है' यह भी कारण है। अन्य पार्टियों के होने पर भी, कांग्रेस से ही उनका उद्‌भव हुआ है; इसकारण, कांग्रेस के सिद्धांतों से वे मूलभूत रूप से भिन्न नहीं हैं।

परंतु, चौथे महाचुनाव के बाद यह चित्र सामने आता है कि पिछले दस महीनों से उसका विन्यास व रंग निरंतर बदल रहे हैं। केवल आठ राज्यों में कांग्रेस ने अधिकमत प्राप्तकर सरकार की रचना की है। राजस्थान में विरोध दलों से मतांतर होकर आए हुए सदस्यों के कारण बंहुमत प्राप्तकर सरकार की रचना की गयी। शेष राज्यों में मद्रास विधानसभा में स्पष्ट बहुमत पाये हुए डी.एम्.के. दल को छोड़कर, विरोधी दलों के सदस्यों ने मिलकर आवश्यक बहुमत प्राप्त करते हुए 'संयुक्त रंग' नाम से सरकार की रचना की है। उसके

श्री ग्यानी जैलसिंह और अन्य पंजाब कांग्रेस नेताओं के साथ एस. निजलिंगप्पा जी

बाद हरियाणा, मध्यप्रदेश, और यू.पी. में हुए बडी मात्रा के दल बदलने के कारण, कांग्रेस को अधिकार खोना पड़ा। दल बदलना एक बडी बिमारी बन गई है। हरियाणा में ध्यान देने की बात है कि क्रमबद्ध सरकार की रचना संभव नहीं हुई। इसकारण, सरकार को हटाकर, विधानसभा का विसर्जन करते हुए राष्ट्रपति का शासन जारी करना पड़ा। पंजाब में दलबदलने के कारण, संयुक्त रंग को इस्तीफा देना पड़ा। अब कांग्रेस का समर्थन पाकर और एक मंत्रिमंडल अधिकार पाकर शासन चला रहा है। पश्चिम बंगाल के संविधान की मुश्किल को सारी दुनिया जानती है। वहाँ संयुक्त रंग की सरकार को हटाकर कांग्रेस द्वारा समर्थन पाए हुए नए मंत्रिमंडल का शासन चल रहा है।

कांग्रेस सरकारों के पर्याय में रचित संयुक्त रंग की सरकारों का अनुभव कैसा है? इन सरकारों की रचना किसी भी दृढ़ सैद्धांतिक नींव अथवा कार्यक्रमों के बिना, केवल अवसरवादिता की दृष्टि से एक हुए पार्टियों से हुई है। मिले हुए राजनीतिक घटकों का अपना विशिष्ट स्वरूप बचाकर, संयुक्त रंग की सरकार की तरह कार्यनिर्वाह करने पर भी हर एक राज्य में अपनी स्थिति को उत्तम बनाने का प्रयत्न करते हुए कभी कभी ये मंत्रिमंडल में संघर्षों के कारण बन गए। बलपंथी तथा वामपंथी के अतिरेक सिद्धांतों के राजनीतिक पार्टियों का यह अवसरवादी मिलन किसी भी तत्त्व से बद्ध नहीं है; केवल वैयक्तिक लाभों के लिए दल बदलने के लिए व्यक्ति-सदस्यों को उत्तेजना देने के कारण, अनेक राज्य सरकार अस्थिर हो गए और उन्हें अपने बचाव के लिए सोचना पड़ा। यह शासनात्मक विफलता और अदक्षता का कारण बन गया। इसका पहला प्रहार विकास कार्यों पर पड़ा, और परिणामस्वरूप आर्थिक परिस्थिति का अध:पतन हुआ।

इससे यह सबक मिलता है कि संयुक्त रंग कांग्रेस सरकार का पर्याय नहीं हैं। सरकार की रचना के लिए जब स्पष्ट बहुमत नहीं होता है तो सीमित संख्या के राजनीतिक दलों को कुछ सामान्य और मान्य सिद्धांतों तथा कार्यक्रमों के आधार पर स्थापित दृढ़, अर्थपूर्ण सम्मिश्र दल की.सरकार की रचना की जानी चाहिए।

आज राज्यों में दिखाई देनेवाली यह दुर्भाग्य की परिस्थिति – जैसे कई लोग चाहते हैं – दूसरी जगहों पर भी पुनरावर्तित हो तो, देश पाताल तक गिरेगा और प्रजासत्तात्मक संरचना तथा देश की समग्रता का विनाश हो सकता है।

यह, आज की परिस्थिति का संपूर्ण चित्र नहीं है। सदभिप्राय के कई लोगों द्वारा पोषित - कभी कभी मज़ेदार लगने पर भी - खतरनाक मनोभाव यह है कि कांग्रेस विरोधी मनोभाव, मूलतः प्रजासत्तात्मक है और कांग्रेसेतर अर्थात प्रजासत्तात्मकता उससे अलग है। कुछ कांग्रेसवाले जब कांग्रेस से दल बदलते हैं उन्हें ''प्रजातंत्र का रक्षक'' कहते हुए कभी कभी उन्हें मुख्यमंत्री अथवा मंत्री का स्थान दिया गया। उसके बदले कांग्रेसेतर दलों से अथवा संयुक्त रंगों से दल बदलने पर उसे प्रजाप्रभुत्व विरोधी देश विद्रोही तथा अनैतिक कहा गया। कभी कभी इन दल बदलुओं पर मारपीट के भयानक संदेश आए। यही मनोभाव, पश्चिम बंगाल में आजकी परिस्थिति के कारण हैं। वहाँ संविधानात्मक विचारों को रास्तों पर सुसंघटित हिंसाचारों द्वारा, सुलझाने के प्रयत्न हो रहे हैं। आजके मंत्रिमंडल के अस्तित्व के बारे में सभाध्यक्ष द्वारा दिए गए विचित्र रूलिंग के कारण, बंगाल की विधानसभा निष्क्रिय हो गई है। नागरिक अविधेयता के नाम पर लोगों को बड़े पैमाने में विद्रोह करने के लिए - एक अर्थ में - सशस्त्र आंदोलन के लिए, उसकाया जा रहा है। परिस्थिति पर वामपंथीय कम्युनिस्ट दल के अधिकार को देखने से उसकी गंभीरता का अनुमान लगा सकते हैं। संयुक्त रंग सरकार की कार्यशैली के बारे में ये बातें उद्देश्यपूर्वक नहीं हैं। वहाँ कानून की व्यवस्था बिगड़ गई है; श्रमिकों के शासन के बीच के विवादों को कुख्यात घेराव आंदोलन के द्वारा, सामान्यतः सुलझाने के प्रयत्न होते हैं। इसी को विवाद के दूसरे क्षेत्रों को भी लागू किया जा रहा है।

राजनैतिक क्षेत्र के इन सवालों के बारे में अधिक गंभीर चिंतन आवश्यक है। किसी भी मूल्य पर, कानून सुव्यवस्था की रक्षा करनी होगी। कानून भंग और हिंसाचार को उत्तेजित करने के प्रयत्न आज भी हो रहे हैं, यह बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण है। सभी दृष्टियों से यह खतरनाक है, यह कहना गलत नहीं है कि ''ऐसे कार्यों को प्रोत्साहित करनेवाले राजनीतिक पार्टियों के लिए भी यह खतरनाक है।'' उद्देश्यपूर्वक एक बार कानून के प्रति बेइज्जती दिखाना, चाहे अनुमान की या वास्तविक समस्याओं के निवारण का एकैक साधन मानते हुए, हिंसाचार को प्रेरणा देकर, उसे मौका दे तो समाज की नींव हिल जाएगी; प्रजातंत्र की ही नहीं, देश की ही रक्षा के लिए वह बाधक बनेगा और स्वातंत्र्य संग्राम से जो भी पाया गया है, उसे खोना पड़ेगा। इसलिए मैं राजनीतिक दलों से बिनती करता हूँ कि वे अपने विचार तथा कार्यों से हिंसाचार को दूर करे और हमारे स्वतंत्र

सार्वभौम देश की नींव को नष्ट करना छोड़ दे। राजनीतिक मतभेद जो भी हों, जितने भी हों, प्रजासत्तात्मक चुनावों में कांग्रेसेतर दलों की विजय के बारे में मुझे कोई ईर्ष्या नहीं है। परंतु पक्षसंघर्ष नियमानुसार हों; अर्थात् हिंसाचार, द्वेष, देशद्रोह को उकसाना, देश की आंतरिक सुव्यवस्था को नष्ट करना – इत्यादि कार्यों को छोड़ दे। वैसे देशद्रोही व प्रजातंत्र विरोधी कार्यों को देश सह नहीं सकता। उन्हें दबाने के लिए जरूरी सभी कारवाई किए जायेंगे। यदि आवश्यक हो तो देश की समग्रता और सुरक्षा के लिए वैसे कार्य में लगे हुए संगठनों का बहिष्कार भी किया जायेगा।

आर्थिक विकास और राजनीतिक स्थिरता भारत की आज की प्रमुख आवश्यकतायें हैं। ये वास्तव में, परस्परावलंबी होने पर भी आर्थिक विकास के बिना राजनीतिक स्थिरता रहने के संदर्भ की कल्पना कर सकते हैं; परंतु राजनीतिक स्थिरता के बिना आर्थिक विकास कभी हो नहीं सकती। ऐसे संदर्भ में चुनाव के बाद के विकास के बारे में परिशीलन करके निर्णय लेना होगा।

केंद्र की अधिकृत भाषा की समस्या हमेशा कठिन तथा झंझट में डालनेवाली है। काफी चर्चा-परिशीलनों के बाद, दिवंगत प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरूजी ने इस विषय के बारे में एकमत सूत्र को अपनाते हुए, हिंदीतर लोगों को आश्वासन दिया था कि "हिंदी को अधिकृत भाषा के रूप में अपनाने के लिए अननुकूल संदर्भ में उनके चाहने तक दबाव नहीं डाला जायेगा।"

केंद्र सरकार के प्रशासन के लिए, द्विभाषा का उपयोग और पूरक के रूप में आवश्यकता के अनुसार 'शिक्षा क्षेत्र में त्रिभाषा सूत्र' – यही निवारणोपाय की मूलश्रुति हैं। हमें खुशी देता है कि हाल ही के संसद् अधिवेशन में अधिकृत भाषा संशोधन मसौदा को मानते हुए, नेहरूजी के आश्वासन को कानूनबद्ध भूमिका प्राप्त हुई है। निर्णय जो मसौदा के साथ मान्य हुआ। उसमें कुछ संशोधनों के बारे में कई विवाद उठे हैं। इस विषय पर अभी चर्चाएँ हो सकती हैं। इसके बारे में, केंद्र के साथ बात करने के लिए मैं तैयार हूँ। यदि व्यावहारिक उपयोग में कोई अडचन हो तो, उनके बारे में उचित स्तरों पर चर्चा करके तदनुसार परिहार ढूँढ सकते हैं। इसलिए सभी हिंदीतर भाषियों से मेरी बिनती है कि आंदोलन का मार्ग छोड़कर संविधान सभी वर्गों को मान्य समाधान ढूँढने की परिस्थिति के लिए योग्य वातावरण का निर्माण किया जाय। हिन्दी भाषियों से भी मेरी बिनती है। संविधान में हिंदी को केन्द्र की राजभाषा माना गया है। हिंदी का

विरोध करनेवाले भी इसलिए विरोध करते हैं कि द्विभाषिक संक्रमणकाल होना चाहिए। यह दीर्घकाल भी हो सकता है। उसका कारण है कि हिंदीतर लोगों को कष्ट न होना चाहिए, और उनकी उपेक्षा न हो – दूसरों को अपनी भाषा मान्य हो, यह माँग करनेवाले हिंदीभाषी अपनी भाषा हिंदी के लिए छूट दिखाकर, हिंदीतर लोगों के सभी संदेहों का निवारण करनेवाले सुरक्षाक्रम लेना अनिवार्य है। दुर्भाग्य से इन भाषा समस्याओं का अन्य उद्देश्य के लिए उपयोग किया जा रहा है। इस प्रक्रिया में सभी देशभक्त भारतीयों को परममान्य, देश की समग्रता को ही धक्का पहुँचाने की परिस्थिति उत्पन्न हुई है। अब जो उत्तर और दक्षिण भारत के कई भागों में होनेवाले – तीव्र हिंसा में पर्यवसान हो सकनेवाले –विरोधी आंदोलन में लगकर, अपनी शक्ति को व्यर्थ करने के बदले, देश के सामनेवाले अनेक मुख्य समस्याओं के समाधान के लिए, सभी प्रजा को प्रयत्न करना है। मैं फिर से विनम्रता से बिनती करता हूँ कि समग्रता और एकता को दृढ़ बनानेवाले प्रयत्नों के विरोध में जो कार्य हो रहे हैं उन्हें समाप्त करे।

कई राज्यों के बीच में, सीमा-विवाद से संबंधित समस्यायें भी हैं। बहुत समय पहले 1921 में, गाँधीजी के नेतृत्व में भाषावार प्रांत रचना का निर्णय कांग्रेस ने लिया। कांग्रेस के उत्तम संगठन के लिए 'कर्नाटक-प्रांतीय कांग्रेस समिति' और 'आन्ध्रप्रदेश प्रांतीय कांग्रेस समिति' जैसी प्रांतीय कांग्रेसों की रचना हूई। इससे पहले ही उत्तर भारत में भाषाधारित 'सिंध' और 'उड़िया' जैसे कुछ राज्यों की रचना हुई थी। परंतु संपूर्ण रूप से पूरा देश भाषाधारित राज्यों के रूप में विभाजित हुआ 1956 में। इससे प्रजासत्तात्मक कार्यविधान तथा जनता के प्रयत्न और परिणामकारी होकर, उनकी आर्थिक विकास के बढ़ने में कोई संदेह नहीं है। परंतु दो-तीन राज्यों में, थोड़े बहुत, सीमा समझौते के लिए आंदोलन अभी हो रहे हैं। इस सीमा-समझौते का अंतिम रूप से समाधान करना आवश्यक होने पर भी राजनीति अथवा पार्टी की हितसाधना के लिए उसे मूलधन नहीं बना लेना होगा। इस समस्या के लिए व्यापक और उदार मनोभाव की आवश्यकता है। सीमाओं के प्रदेश में आपस में एक दूसरे की भाषा बोलनेवाली तथा समझनेवाली प्रवृत्ति के होने के कारण दृढ़ रूप से रेखा खींचकर, सीमा निर्धारित करना संभव नहीं है। इसी प्रकार कई नदियों के पानी को बाँटने के बारे में भी विवाद है। ऐसे छोटे मोटे मतभेदों को चर्चा-सदभावनाओं के द्वारा दूर कर सकते हैं। उसके लिए हिंसात्मक आन्दोलनों की अथवा उस तरह के

आन्दोलनों को करने की धमकी की कोई आवश्यकता नहीं है। वैसे कार्य दुधारू छुरी जैसे होने के कारण, प्रयोग करनेवाला ही मुसीबत में पड़ सकता है।

पिछले पाँच वर्षों में देश ने अनेक कठिनाइयों का सामना किया है। चीनी आक्रमण से लेकर, पाकिस्तान के साथ हुए संघर्ष और पाँच वर्षों तक लगातार गंभीर सूखा की स्थिति - इनके कारण देश की परिस्थिति अनेक दृष्टियों से संदिग्ध अवस्था में है। कृषि-उत्पादनों के कुंठित होने के कारण चीजों का उसमें भी खाद्यपदार्थों का और अन्य आवश्यक वस्तुओं का दाम बढ़ गया है। इस मुद्रास्पीति के साथ, आर्थिक पिछडी हालत से आवश्यक वस्तु तथा इंजनियरिंग क्षेत्र को लेकर व्यापक औद्योगिक क्षेत्र पर आघात पड़ा है। परंतु सौभाग्य से इसमें स्वस्थ बदलाव दिखाई दे रहा है। इसके लिए कृषि उत्पादन का बढ़ना ही कारण है। इस वर्ष करीब साढ़े नौ करोड़ टन तक आहारधान्य और उसके बराबर ही जूट और तेलबीजों के उत्पादन का प्रमाण बहुत बढ़ गया है। इसके लिए केवल अनुकूलकर मौसम की परिस्थिति ही नहीं है उसके साथ कृषि क्षेत्र के सुधरे विधान भी कारण है। गेहूँ, धान, मकई, जवार और अनेक अधिक फल देनेवाले धान्य और साथ ही कृतक खाद् का उपयोग और सस्य-संरक्षण के विधान कृषि उत्पादन क्रांति के कारण हैं। नए विधानों के कारण कपास, जूट और तेल-धानों के उत्पादन में भी हितकर बदलाव हो रहे हैं। दृढ़निश्चय के साथ यदि आगे बढ़े तो कृषि क्षेत्र में हमारी इच्छानुसार क्रांति को वास्तव में बदल सकते हैं। इससे आहार-स्वयंपूर्णता के साथ औद्योगिक उत्पन्न, कच्ची सामग्री तथा अन्य सामग्री के उत्पादन में भी बढ़ोत्तरी होने से निर्यात के लिए भी अनुकूल होगा। इससे हमारी आर्थिक स्थिति में उछाल संभव होगा। उत्तम कृषि उत्पादन की अनुकूलता का उपयोग करते हुए, देश की समग्र आर्थिक व्यवस्था के लिए योग्य विधानों का उपयोग करना होगा।

कृषि क्षेत्र की यह उत्तम साधना और एक दृष्टि से भी उत्तेजनकारी है और वह है – ग्रामीण प्रदेशों में काम करनेवाले करोड़ों लोगों के जीवन के लिए, नया भरोसा! कृषि उत्पादन से किसानों का जीवन सुधर जाएगा और साथ ही ग्रामीण प्रदेशों के विकास के लिए नई आधारों की सृष्टि का कारण भी बनेगा। नई तरह के आहार-संस्करण-घटक, भण्डार व्यवस्था, यातायात की सहूलियत भी चाहिए। नए ग्रामीण भारत के निर्माण के लिए नायकत्त्व को रूपित करने के लिए निष्ठा और उत्साह से भरी नई पीढ़ी की सुसंगठित सेना को तैयार होना है।

परंतु इसे साधने के लिए कुछ मूलभूत अंश चाहिए और वे हैं – खाद बोने के लिए अच्छे बीज और कीटनाशक का। सहकारी संग्रहण पद्धति और योग्य रीति से बाँटना, इन्हें प्रोत्साहन देते हुए उनके कृषि के भाग होने पर भी, दो विषयों को अधिक आद्यता देनी होगी। पहला है – कम व्याजदर पर ऋण सुविधा, किसानों को सहकार संघों के द्वारा ऋण सुविधा प्राप्त करने की व्यवस्था उत्तम होने पर भी, अभी बहुत कुछ करना बाकी है। किसान के लिए ऋण सुलभ रीति से समय पर जल्दी और पास में प्राप्त होने का समय शीघ्र आना चाहिए। साथ ही कृषि को ऋण देने के उद्देश्य से उसे एक उद्योग मानना होगा। किसान प्रामाणिक ऋणदेनेवाला होता है और ऐसे लोगों पर विश्वास कर सकते हैं; खासगी या सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों द्वारा देनेवाली ऋण सुविधा की शहरों से तुलना करे तो, गाँवों में कम दिया जाता है। यह बदलकर अधिक ऋण सुविधा ग्रामों की तरफ जानी चाहिए। कृषि को उद्योग की मान्यता पाकर, गरिष्ठ ऋण सुविधा प्राप्त होनी चाहिए। सरकार और बैंकों को इसकी आवश्यकता समझ में आ रहा है। इसे देखकर, मुझे बहुत खुशी हो रही है। शहर के बड़े बड़े उद्योगों में धन लगाने के लिए निजी या सार्वजनिक बैंक जो उत्साह दिखाते हैं, वही उत्साह गाँवों में धन लगाने में नहीं दिखाते हैं। यह जितनी जल्दी बदलेगा उतना ही अच्छा है। ऐसा लगता है कि इस प्रमुख सामाजिक और आर्थिक आवश्यकता को पूरा करने के लिए, केंद्र सरकार का वित्त मंत्रालय शायद अधिक दबाव डाल रहा है। मुझे भरोसा है कि दोनों क्षेत्रों के बैंक अपना मार्ग और मनोभावों को बदलने की आवश्यकता समझ जाएँगे। नहीं तो अपेक्षणीय मार्ग का अनुसरण करने के लिए सरकार को लभ्य, सही कारवाई को अपनाना चाहिए। कृषि उत्पादनों को उत्तम दाम मिलने के कारण, ग्रामीण क्षेत्र के बैंकों में या सरकारी संस्थाओं में अधिक धन रखना संभव होता हुआ नज़र आ रहा है। इसका सूक्ष्म रीति से परिशीलन कर, ऐसे धन लगाने को प्रेरित करने की कारवाई करनी चाहिए।

इतना ही प्रमुख कार्य है, अधिक से अधिक प्रदेश को सिंचाई में लगाना। हमारे देश में वर्षा की अनियमितता के कारण, कृषि एक जुए के समान हो गया है। मौसम के बारे में शिकायत करते रहने से कुछ नहीं होनेवाला है। इसलिए, विश्वसनीय अन्य मार्गोपायों को अपनाना होगा। वर्षा की हर बूँद को सुरक्षित रखने के कार्यों को अपनाकर अधिक से अधिक भूमि में सिंचाई का प्रयोग करना

चाहिए। सिंचाई कुएँ, खेतों की सीमाओं की रक्षा करना, अरण्यीकरण, तलाबों के द्वारा छोटी छोटी सिंचाई योजनाओं को अपनाते हुए इसे साकार करना है। परंतु इनसे समस्या का भागशः निवारण होता है। यदि वर्षा नहीं होती है तो आनेवाली समस्याओं का सामना करने के लिए मध्यम और बड़ी सिंचाई-योजनाओं को लेना चाहिए। इससे सिंचाई की समस्याओं का सीधा निवारण ही नहीं होता, साथ ही अकाल जैसी परिस्थितियों में यह पूरक का काम करेगा।

हमारी बड़ी बड़ी नदियों का इस उद्देश्य के लिए उपयोग कर लेना चाहिए। कहा जाता है कि इनमें 10% भाग के पानी का भी उपयोग नहीं हो रहा है। इतनी बड़ी समस्या की तरफ यदि हम ध्यान देते तो हमें मानव की मूलभूत आवश्यकता आहार के लिए भिक्षा माँगने की परिस्थिति नहीं आती।

अभी भी इस मध्यम और बड़ी सिंचाई योजनाओं के निर्माण के लिए आवश्यक धन के अधिक भाग को राज्यों द्वारा निर्वाह के लिए तड़पने के बदले योजना आयोग और केंद्र सरकार दोनों को मिलकर, इस तरफ ध्यान देते हुए इन बड़ी योजनाओं को राष्ट्रीय योजना मानकर, उन्हें पूरा करने के लिए आवश्यक धन का मूल ढूँढना होगा। सिंचाई जैसी योजनाओं के निर्वाह के लिए धन कम पड़े तो भी इन योजनाओं को आगे बढ़ाने के बारे में, मैं सूचना देना चाहता हूँ। इससे अब से तीन-चार गुना अधिक आहार-धान्य और वाणिज्य फसल पाने के लिए सहायक होता है।

गाँव, शहर तथा नगरों में बढ़नेवाली जनसंख्या के कारण आवास-योजनाओं के लिए अधिकाधिक भूप्रदेशों का उपयोग हो रहा है। रास्ते, तालाब और उद्योगों के गणनीय मात्रा में प्रदेशों को वश में किया जा रहा है। इसलिए, इन प्रदेशों को हम कृषि के लिए विस्तृत नहीं कर सकते। भारत के अरण्य प्रदेश के प्रमाण को विस्तृत करने के लिए सभी ओर आवाज उठाई जा रही है। उसे अगर कम किया जाय तो, वह हमारे विनाश का कारण होगा। इतना ही नहीं, अरण्यों से हमें उद्योग के लिए कच्चीवस्तु मिलती हैं। यदि यह सीमित हो तो हम जीवित रह सकते हैं। परंतु आज के कृषि प्रदेश में कम से कम दुगुना आहारधान्य उत्पन्न नहीं करेंगे तो, खाद्य के विषय में स्वयंपूर्ण होना संभव नहीं है। सिंचाई भूप्रदेश को बढ़ाने के द्वारा हम इसे साध सकते हैं। सिंचाई से रोजगारी भी बढ़ते हैं। एक व्यक्ति को कृषि करने के लिए जो प्रदेश चाहिए उसे यदि सिंचाई के अंतर्गत किया

जाय तो उसमें तीन लोग काम कर सकते हैं। इसके और दूसरे कारणों से सिंचाई को प्रथम आद्यता देने के लिए मैं दबाव डालता हूँ।

वर्षा के पानी का उपयोग करने के साथ ही देश के अनेक स्थानों पर उपयोग न किये गए अन्तर्जल भी है; उसका भी उपयोग किया जा सकता है। प्राप्त अन्तर्जल का प्रमाण कितना है, इसका अंदाज लगाने या उपयोग करने के कोई भी प्रयत्न अभी शायद नहीं हुए हैं। सिंचाई प्रदेश को बढ़ाने के साथ ही इस कार्य की बृहत रूप में लेना चाहिए।

कृषि से संबंधित मूलभूत अंश के बारे में मैं जो सूचित करना चाहता हूँ वह बहुत ही मुख्य विचार है कि किसी भी राज्य में भू-सुधारण को संपूर्ण रूप से जारी नहीं किया गया है। यह तृप्तिदायक नहीं है। अगले एक वर्ष के अन्दर, सभी राज्य सरकार 'हल चलानेवाला ही जमीन का मालिक है' – इस माँग को पूरा कर सकती है। इस दिशा में अबतक जो भी प्रयत्न हुए हैं, उनकी सहायता लेते हुए उसपर निर्णय लेकर, आवश्यक हो तो उसके अनुष्ठान के लिए कानून में योग्य बदलाव लाना चाहिए।

देश के अनेक भागों में बहुत बड़े तथा केंद्रीकृत उद्योगों की स्थापना की जा रही है। ऐसे अधिक से अधिक उद्योगों की स्थापना होनी चाहिए। कई जगहों में प्रचलित दैत्याकार का आकर्षण ठीक नहीं है। आकार की दृष्टि से इस विशाल देश की सभी आवश्यकताओं को पूरा करनेवाले दो या तीन दैत्य घटकों को बनाने के लिए हमें आर्थिक दृष्टि से संभव नहीं होगा। उसके बदले कुछ ही स्थानों में उनके केंद्रीकृत होने को बंद करना होगा। कच्चीसामग्री को पाना, जल, विद्युत, स्थानीय कार्मिक बल और यातायात की दृष्टि से सभी जगहों में समान रूप से उसके फैलने की व्यवस्था होनी चाहिए। इसके साथ ही मार्केट का पास में रहना भी एक प्रमुख अंश है। परंतु वह अनिवार्य भी नहीं है।

निजी अथवा सार्वजनिक क्षेत्र में क्यों न हो, काफी हद तक, श्रमिकों में अतृप्ति का होना दिखाई देता है। कितनी ही बार वे हिंसाचार करने को भी तैयार रहते हैं। मालिकों से श्रमिकों को न्याय मिलना चाहिए; तथा उनके जीवन स्तर में सुधार होना चाहिए। परंतु कुचेष्टा तथा देशभक्ति रहित नेता कई बार उनको गलत रास्ता दिखाते हैं। क्योंकि वैसी हितासक्तियाँ देश में अराजकता

लाना और समाज में अस्थिरता उत्पन्न करना पसंद करते हैं। अब समय आ गया है कि अद्भुत विविध कार्मिक विवादों का परिशीलन करके उनमें हितासक्त लोगों का पात्र क्या है – इसे पहचानना अत्यंत मुख्य है। अपनी सहूलियतों को बढ़ा लेने का श्रमिकों को पूरा हक है, परंतु उत्पादन और उत्पादकता को बढ़ाते हुए इसे साधने की जिम्मेदारी भी उनके ऊपर है।

देश की आर्थिकता को बढ़ाने में, छोटे तथा गृह उद्योगों का पात्र भी उतना ही मुख्य है और उससे अधिक भी है। बहुत बड़ा उद्योग होने पर भी कृषि ही सबको रोजगार नहीं दिला सकती है। कृषि का यांत्रीकरण यदि प्रत्याशा के अनुसार लोकप्रिय हो जाय तो ग्रामीण श्रमिकों को रोजगार मिलना और सीमित हो जाता है। आधुनिक बृहत उद्योग अधिक लोगों को रोजगार नहीं दिला सकते। हमारे जैसे देश में करोडों लोग या तो बेरोजगार हैं या अल्पावधि रोजगार हैं; ऐसे स्थानों में छोटे तथा गृह उद्योग अत्यंत महत्वपूर्ण पात्र निभा सकते हैं। बैंक और अन्य आर्थिक संस्थाओं को इनकी मदद करनी चाहिए। कृषि के बारे में जो भी कहा गया है वह उतनी ही हद तक छोटे और गृह उद्योगों को भी लागू होता है। इसीलिए हमारे देश के बारे में, सबसे गहरा ज्ञान रखनेवाले गाँधीजी छोटे तथा गृह उद्योगों को अधिक महत्व देने के लिए कहते थे।

गाँधीजी ने स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए अहिंसात्मक और सत्य के मार्ग का अनुसरण किया तथा हमारे देश की आर्थिकता को बढ़ाने के लिए समझाया, उसी तरह धर्म तथा पंथों की सीमा पार करते हुए समाज के सभी वर्ग के लोगों में समानता लाने के लिए भी उन्होंने हमेशा परिश्रम किया। इसीलिए वे हरिजन तथा अन्य दुर्बल वर्गों के उद्धार के लिए अपना जीवन समर्पित करना चाहते थे। अस्पृश्यता के विरुद्ध शासन जारी हो गया है। परंतु परिशिष्ट जाति तथा वर्ग के लोगों के जीवनस्तर का सुधार करने के लिए अधिक परिणामकारी मार्गोपायों को अपनाकर विशेष रूप से गाँवों में ग्रामीणों की तकलीफों को निवारण करने के प्रयत्न करना चाहिए। हमारे साथ ही रहने का मौका उन्हें देते हुए, यह हम साध सकते हैं। गाँवों में अथवा छोटे शहरों में नए एक्सटेंशन करते हुए, निवेशन बाँटने में कहीं एक ही जगह पर उन्हें निवेशन सुरक्षित न रखकर, सभी जाति-धर्म के लोगों के बीच किसी तरह की दुर्बलता झिझक के बिना, समान रूप में जीवन चलाने के लिए सहायक हो ऐसा इधर उधर उन्हें भूमि

देने की पद्धति रूढिगत हो। उसी तरह हरिजन छात्रावास को केवल उन्हीं को न देकर, सभी छात्रवासों में हरिजन विद्यार्थियों को मौका देते हुए उनका खर्चा सरकार द्वारा ही निभाया जाय।

कुछ राजनीतिक तथा सामाजिक सवालों का सामना अंतरंग में करना चाहिए और सामना कर जीतना चाहिए। पडोसियों के साथ तथा बाहरी दुनिया के साथ सवाल ऐसे ही बड़े और गंभीर होते हैं। हमारे पडोसियों के साथ, सौहार्दता से रहने के विषय में हमारी महान तथा प्राचीन परंपरा है। कोई भी हम पर कलंक नहीं लगा सकता है कि हम आक्रमणकारी हैं। यह हमारे सहजीवन और तटस्थ विचारों के अनुसार है। हमारी संस्कृति के पकाफल जैसे पंडित नेहरूजी दुनिया की राजनीति के अत्यंत मेधावी विद्यार्थी रहे तथा दुनिया के सभी समय के अत्यंत श्रेष्ठ राजनेताओं में एक हैं। इस विषय में हमें अनुसरण करने के लिए वे अनेक महत्वपूर्ण कीमती सबक सिखा गये हैं। किसी दूसरों पर आक्रमण करने के उदाहरण हमारे नहीं हैं। परंतु पहले और अभी ऐसे आक्रमण के हम शिकार हो गए हैं। उनका हमने वीरता से सामना किया है। चीना द्वारा फटे गए अणुबम की धाप दुनिया की शांति के लिए सवाल बनी है। उसने इस भाग की शांति का भंग करते हुए उसके द्वारा अंतराष्ट्रीय वातावरण का भंग किया है। वैसे कार्यों का दमन करने के लिए हमें लगातार जागरूक रहकर योग्य कारवाई करनी चाहिए।

इसके साथ चीन विशेष रूप से हमारे विरुद्ध तथा कुछ औरों के विरुद्ध लगातार शीतल-समर को आगे बढ़ा रहा है। भारत और चीन दोनों विकासशील देश हैं। हमारे पडोस के होने से परस्पर स्नेह–सौहार्द से रहने का मौका है। हमें आशा है कि 'दो हजार वर्षों के सुदीर्घ समय का हमारे निकट सांस्कृतिक संबंध के साथ किसी भी गलतफहमी को मौका न देते हुए चीन दुर्भाग्यपूर्ण मतभेदों को आगे बढ़ाने की व्यर्थता को जल्दी ही समझ जायेगा।

हमारे दोनों देशों की अत्यंत प्राचीन और वैभवशाली सभ्यता हैं। दोनों प्रबुद्धता और विवेक के लिए मशहूर हैं। इसलिए भिन्नता को बढ़ाना दोनों के लिए ठीक नहीं हैं। चीन की जनता से तो हमें कोई झगड़ा नहीं है। चीन में स्थापित कम्युनिस्ट पार्टी का निरंकुश, सर्वाधिकारी तथा आक्रमणकारी नायकत्व अपने लिए अनुकूल रीति में, कम्युनिस्ट सिद्धांत को मोड़ रहा है। न्याययुत और निष्पक्षपात निवारणोपाय हमें ढूँढ़ना है।

यह बात पाकिस्तान के लिए भी सच है। भारत और पाकिस्तान, दोनों भाई-भाई की संतान हैं। हमारी धमनियों में एक ही खून बहता है। अपनी संदेहभरी दृष्टि छोड़कर उन्हें दोनों देशों की जनता के हित के लिए मदद दिखाना चाहिए। साथ ही दोनों पर कालानुकाल से भौगोलिक दबाव हैं। ''जहरीले द्वेष से बड़ी गलती कोई और नहीं है'' – जितनी जल्दी वह इसे जान लेता है, उतना ही उसी के लिए अच्छा है। प्रामाणिकता से हम सब यही चाहते हैं; यह हमारे लिए भी अनुकूल होगा।

दूसरे देशों के साथ हमारा संबंध दिवंगत प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरूजी के प्रयत्नों के कारण सौहार्दयुत और स्नेहयुत है। मैं सोचता हूँ कि इस सुमधुर संबंध के लिए तटस्थ नीति ही कारण है। इससे हमारे देश के लिए ही नहीं दूसरों को भी, प्रगति की दृष्टि से अनुकूल है। विज्ञान और तंत्रज्ञान के विकास के इस युग में, अंतर कम होता जा रहा है। दुनिया के किसी भी कोने में होनेवाली प्रमुख घटना का प्रभाव दूसरे सभी भागों पर पड़ता है। कोई भी देश अपने दृष्टिकोण में इससे अलग नहीं रह सकता। दुनिया में शांति और प्रगति के लिए परस्पर सौहार्द और स्नेहपरता अति मुख्य हैं। मानव जाति ही अपने रास्ते के मोड़ पर है। प्रकृति पर मनुष्य के नियंत्रण पर नैतिक, आध्यात्मिक शक्ति का यदि नियंत्रण नहीं होता तो उनके विवेकहीन उपयोग से दुनिया विनाश की ओर जा सकती है। परंतु यदि उनका विवेकयुत उपयोग किया जाय तो मानव जाति की प्रगति और मानव मूल्यों को स्थिर बनाने में सहकारी होता है। इसी कारण विनोबाजी भावे कहते हैं कि, विज्ञान व अध्यात्म दोनों को साथ साथ चलना चाहिए। अपने जीवन के अंत में पंडितजी इस अपेक्षणीय दिशा की ओर आकर्षित थे। पूंजीवाद और कम्युनिज़म् की तेजधार और तेज होकर दोनों परस्पर समझने की ओर बढ़ने से संघर्ष के लिए रास्ता न होगा'' – ऐसा मुझमें भरोसा है।

यह सच है कि अमेरिका, रूस, इंग्लैंड, जापान और जर्मनी जैसे अनेक देश, देश के औद्योगिक तथा विद्युत-उत्पादन, सिंचाई आदि के विकास के लिए हमें आर्थिक सहायता देने के साथ ही और अनेक रीति से सहायता दे रहे हैं। हम उनके प्रति कृतज्ञ हैं। पहले कभी न हुए, सूखे की परिस्थिति के कारण हमारी हालत को देख कई सालों से हमें आहारधान्य दे रहे हैं। हम अमेरिका के प्रति आभारी हैं। सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार करने के लिए तथा आर्थिक

विकास के लिए अत्यावश्यक बड़े उद्योगों की स्थापना के लिए हमें विशेष सहायता देनेवाले सोवियत रूस के प्रति भी कृतज्ञ हैं। साथ ही ये देश दूसरे देशों के साथ हमें तांत्रिकज्ञान की सहायता भी करते हैं।

इस सहायता के लिए हम कृतज्ञ होते हुए भी और आगे भी इस मदद का स्वागत करते हुए, आत्म निर्भरता सीखने के लिए यह सुसमय है। हमेशा सभी विषयों के लिए दूसरे देशों की मदद पर आश्रित रह नहीं सकते। यह खुशी की बात है कि धीरे धीरे अब हमारे लोग इसे समझ रहे हैं। अपने देश के भीतर ही ढूँढते हुए अलग अलग उद्योग तथा वैज्ञानिक क्षेत्रों में शोध के द्वारा हमें तांत्रिक कौशल अपनाना चाहिए। हमारे युवा-वैज्ञानिकों को आवश्यक उत्तेजना, सहायता और मौका देने के द्वारा हम इसे साध सकते हैं।

हम अपनी इस पृष्ठभूमि में शांतिप्रियता और 'सर्वेजनाः सुखिनः भवन्तु' जैसी सद्‌भावनाओं के द्वारा शांति तथा मानवीयता के साथ राजनैतिक अथवा किसी और तरह के संघर्ष के बिना संतोषपूर्ण समाज के निर्माण के लिए ठोस योगदान दे सकते हैं।

पहले ही जैसे कहा गया है आजादी को पाने के बाद पिछले 20 वर्षों में कांग्रेस की सलाह और सक्रिय मार्गदर्शन में देश की आर्थिकता की सुभद्रता के लिए काफी कार्य हमने किए हैं। शायद विदेशी शासन के पिछले 200 वर्षों में हुए विकास से भी अधिक हमने साधा हैं। परंतु जनसंख्या स्फोट के कारण यह बेकार होता जा रहा है। इसलिए परिवारनियोजन के बारे में एक बृहत् प्रचारांदोलन की अब आवश्यकता है। अधिकाधिक लोग इसे समझते हुए इसका अनुकरण कर रहे हैं – यह संतोष का विषय है। महत्व का विषय यह है कि यह योजना, शहरों से ज्यादा ग्रामीण प्रदेशों में अधिक लोकप्रिय हुई है। इसके लिए ग्रामीण प्रदेशों की बुरी आर्थिक स्थिति ही कारण है। जो भी हो, जाति धर्म भेद के बिना प्रामाणिकता से इसे आचरण में लाते हुए इसे और लोकप्रिय बनाना, हम सब की जिम्मेदारी है।

देश में अतृप्ति फैलानेवाले कुछ अंशों के बारे में बताते हुए उस दिशा में जाने के लिए मुझे सही लगनेवाले रास्ते का मैंने जिक्र किया है। हमारी अंतर्दृष्टि को अभी गहरी होनी चाहिए। विविध सरकारों के कार्य का परामर्श करना है; हमसे कहाँ गलती हुई है – इसे समझना है। ''लोगों की अतृप्ति का क्या कारण

है, प्रजासत्तात्मक समाजवाद के कल्याण राज्य में बद्ध सरकार में पुलिस राज्य से सीधे उत्तराधिकारी बनकर आए हुए हमारा शासनयंत्र क्या परिणामकारी कार्यनिर्वाह कर सकेगा, पिछले तीस वर्षों के हमारे अनुभव के आधार पर हमारी व्यवस्था में क्या बदलाव कर सकते हैं, हमारा शासन यंत्र बोझीला होने से क्या संकोच का कारण बना है, इस यंत्र में अधिक देरी और निर्लक्ष्य है तो उन्हें बदलने की क्या आवश्यकता नहीं है'' –इत्यादि सवाल हमें अपने से पूछ लेने हैं। आर्थिक विकास की प्रक्रिया में अधिक गुणात्मक तथा परिणामकारी रीति से जनता को लगे रहने के मार्ग को ढूँढना है। हमारे प्राणाणिक परामर्श की प्रतीक्षा करने के ये कुछ विषय हैं। यदि आवश्यक हो तो धैर्य के साथ व बिना झिझक के जरूरी बदलाव करना होगा। मैं आशा करता हूँ कि शासन-सुधार आयोग यहाँ योग्य मार्गदर्शन करेगा। परंतु एक पार्टी के रूप में, हमें भी इन प्रश्नों का परिशीलन करना है सोचना है कि हम क्या कर सकते हैं?

हमें परिशीलन करने का एक महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि ''प्रजातंत्र व्यक्ति-गौरव और सामाजिक न्याय पर आधारित 'प्रजासत्तात्मक समाजवाद' के बारे में भुवनेश्वर में हमसे अंगीकृत निर्णय का अनुष्ठान कहाँ तक हुआ है''। हमारे समाज में वैसे क्रांतिकारी बदलाव लाने के लिए समय चाहिए। परंतु क्या हम उस दिशा में, योग्य कदम रख रहे हैं?

क्या हम सही रास्ते पर जा रहे हैं? गरीब व धनवानों के बीच के अंतर को, कम करने में, क्या हम सफल हुए हैं? आर्थिकाधिकार के, केंद्रीकरण को रोकने में, क्या हम समर्थ हो गए हैं? अथवा, आर्थिकता की एकस्वाम्यवृत्ति को कुंठित करने में, हम सफल हुए हैं? हमें मानना होगा कि, इनमें किसी को भी कार्यगत करने में, हम, सफल नहीं हुए हैं। अनुष्ठान के बारे में, अभी हम सुस्पष्ट नहीं हैं, प्रजासत्तात्मक समाजवाद समाज के निर्माण के रास्ते पर चलने में, अभी कोई सूचना उभरती नहीं है। कांग्रेसी लोगों में ही नहीं, समाजवाद में तल्लीन कई पार्टियों के बारे में भी यह सच है। सरकार का कार्याचरण बैंक-राष्ट्रीकरण, अथवा सामाजीकरण खासगी तथा सार्वजनिक क्षेत्र में औद्योगिकता इत्यादि विषयों के बारे में, नेताओं में उन्नत नायकवर्ग में भी अभी विभिन्न दृष्टिकोण दिखाई देते हैं। हमारी विस्तृत होनेवाली आर्थिकता है - इसकारण अभिप्राय भिन्नता में, कोई आश्चर्य नहीं है। जनता के आर्थिक स्तर में सुधार होना चाहिए और जीवन को और संपूर्ण श्रीमंत और उत्तम बनाने का कारण होना चाहिए। आमदनी का अंतर

कम होना होगा; धन का केंद्रीकरण बंद हो, जहाँ तक हो सके, उत्पादन मूलों का और अधिकार का विकेंद्रीकरण हो जाय। इनके जैसे ध्येयों को हमारे सामने रखना आवश्यक है। अखिल भारत कांग्रेस समिति द्वारा, मान्य किए गए दस अंशों का कार्यक्रम हमें एक क्रियायोजना देता है। इसके राजकीय, सामाजिक और आर्थिक ध्येयों को साधने के लिए लोगों की समझ के साथ सहभागिता आवश्यक है। कांग्रेस को इस दिशा में ध्यान देना होगा उसके प्रति समर्पित होना चाहिए। केंद्र तथा राज्यों की सरकारों के साथ पार्टी को निरंतर संपर्क (साधन) रखते हुए, प्रगति पर ध्यान देते हुए अनुष्ठान को तेज़ करना होगा। इस उद्देश्य के लिए स्थापित होनेवाले संपर्क यंत्र का क्या स्वरूप होगा - इसे सोच व सलाहों के द्वारा मैं निर्दिष्ट रूप से आगे सूचना दूँगा।

आजादी के बाद पूरे देश में सभी स्थानों में अपनी जड़ जमा दी है, एकैक पार्टी कांग्रेस ने। परंतु जनसमुदाय पर उसकी पकड़ और प्रभाव धीरे-धीरे कम हो रहा है। राज्य अथवा केंद्र को अथवा स्थानीय संस्थाओं के लिए होनेवाले चुनावों के समय और सदस्यत्व के आंदोलन और कांग्रेस समितियों के होनेवाले चुनावों के अलावा किन्हीं और सृजनात्मक, कार्यों के प्रति हम आसक्ति नहीं दिखा रहे हैं।

इस निष्क्रियता के अनेक कारण हैं। मेरी दृष्टि में इसका प्रमुख कारण है- युवजनों को हम कांग्रेस में नहीं ले रहे हैं। मेरे वरिष्ठों में कइयों को उन्हें लेने में उत्साह ही नहीं है। युवाओं को आकर्षित करके उन्हें ट्रेनिंग नहीं दे रहे हैं। इस समय के एक अत्यंत श्रेष्ठ व्यक्ति के नेतृत्व में हुए भारत स्वातत्र्य-संग्राम के वैभवपूर्ण चरित्र को और उन्होंने कैसे प्रतिभा सद्व्यवहार और देशभक्ति भरे युवाओं को तैयार कर उन्हें अहिंसा और सत्यमार्ग का बोध कराते हुए ध्येय के समान ही साधना मार्ग भी प्रमुख होने की बात समझाने की रीति के बारे में नहीं बतायेंगे तो हम आगे नहीं बढ़ सकते हैं। पुरानी पद्धति के अनुसार अभी-अभी जिला और राज्य स्तर पर राजनैतिक सम्मेलन बुलाते हुए हमारे ध्येयों के बारे में बताकर प्रगति के अनुष्ठान का परिशीलन करके युवाओं को हमारी तरफ आकर्षित करना होगा उन युवाओं पर नायकत्व की जिम्मेदारी का मौका देना होगा गांधीजी के दिखाये गए अहिंसा और सत्य को हमारी वृत्तियों में अपनाकर युवा सहकर्मीयों को गांधीजी को समझने का मौका देना चाहिए। गांधीजी के उपदेश को हम भुला सकते तो शांति-स्थिरता द्वारा समाजिक परिवर्तन करने का हमारा प्रयोग असफल हो जाएगा।

कांग्रेस की प्रस्तुत संदिग्ध व कठिन परिस्थिति में हर एक कांग्रेसी को अत्मनिरीक्षण करके अपने आपसे पूछना चाहिए कि क्या मैं गांधीजी के बताए गए उन्नत आदर्शों का पालन कर रहा हूँ? परीक्षित स्तर में सद्व्यवहार और सज्जनता को अपनाकर समस्या के परिहार के रास्ते में मेरा व्यवहार व्यक्तिनिष्ठ न होकर वस्तुनिष्ठ है न? मैं सभी कांग्रेस जनों से बिनती करता हूँ कि हमें अपने उन्नत स्तर की रक्षा करनी है।

किसी भी पार्टी के समूह के समाजविरोधी और देशविरोधी कार्यों को करने के प्रयत्नों को हमें रोकना होगा। वैसे ही देश की समग्रता को नष्ट करनेवाले भाषा-जाति और समुदाय जैसे संकुचित मनोभाव को दूर करना होगा। मैं हर एक व्यक्ति से विनती करता हूँ कि हमारे इस राष्ट्र के पुनरुज्जीवन मात्र ही नहीं राष्ट्र की रक्षा के कार्य में हृत्पूर्वक सहकार देते हुए कार्योन्मुख हो जाइए।

राज्य और केंद्र के बीच के तथा विविध राज्यों के बीच के संबंध का प्रश्न प्रमुख हो रहा है। इसका कारण कुछ राज्यों में भिन्न राजनीतिक दलों का शासन करना ही है। इनमें से पहले सभी को तृप्त करने की रीति में किसका पहले परिहार करना है - यह एक चक्रबंध समस्या बनी है। इसकी मूल परिगणना है कि देश की सर्वांगीण प्रगति, समग्रता की रक्षा सामर्थ्य और महानता का परिपालन करना है।

जैसे मैं ने पहले भी कहा है देश के सभी भागों में अपनी जडों को जमानेवाली पार्टी कांग्रेस मात्र है। किसी भी कारण से उसका सामर्थ्य अथवा प्रभाव यदि कम हो जाता है या व विभजित घर हो जाय तो वह दिन देश का सबसे बड़ा दुर्दिन होगा। केंद्र में या अनेक राज्यों में सरकार चलाने की जिम्मेदारी लेने का सामर्थ्य वाली कोई और पार्टी दिखाई नहीं देती। इसलिए जमा हुई गंदगी को साफ करके हमारे घर को सुस्थिति में रखना अतिमुख्य कर्तव्य है। हमारी आवाज़ों में भिन्नता न हो। काफी चर्चा के बाद निर्णय लेकर एकता और समझ के साथ उनका अनुष्ठान करेंगे। इसके लिए केंद्र तथा राज्य स्तरों के साथ उनका अनुष्ठान करेंगे। इसके लिए केंद्र तथा राज्य स्तरों पर कांग्रेस संगठन को सुदृढ़ करना चाहिए। अब कांग्रेस को व्यवहार सूत्रों से बद्ध होकर कार्य निर्वहण करना होगा। उसके कार्यालय का कार्य विधान तीव्रतर होना चाहिए अनुशासित कार्यसेना हो, देश के अन्य कांग्रेस सरकारों के साथ उसकी

सूक्ष्मतासहित संपर्क संयोजकत्व और सहकार हों। इस संकीर्ण समस्या के स्वरूप का अध्ययन करने के बाद कांग्रेस कार्यविधान के बारे में आपकी सलाह पाकर मैं इसके बारे में योग्य कारवाई क्या चाहता हूँ।

प्रजासत्तात्मक व्यवस्था में सामान्य लोगों को उनके कर्तव्यों के बारे में समझाना उतना ही मुख्य है। क्या हुआ है, क्या होना चाहिए और उसमें उसका पात्र क्या है ? इसका ज्ञान उसे होना चाहिए। हमें उसे बताना होगा कि 'कर्म' का मतलब क्या है। यह भी बताना है कि 'कर्म' का अर्थ विषादपूर्ण तृप्ति नहीं है या जो है उसके साथ समझौता करके रहना नहीं है। उसे स्पष्ट करना है कि 'कर्म' सक्रिय कार्य का नाम है, साधना तथा अधिक संपत्ति की तरफ और परिपूर्ण जीवन की तरफ जाने का कार्य है। उसे समझाना है कि अपनी सरकार को खुद चुनने का मतलब क्या होता है। अपना देश उसका इतिहास, उसकी दार्शनिकता, उसकी परिनिष्ठ सांस्कृतिक परंपरा आदि के बारे में उसके मन में गर्व महसूस हो और उसके द्वारा उसमें राष्ट्र के बारे में और भी सद्‌भावना का भाव उत्पन्न हो ऐसा करे और भी सार्थक सृजनशीलता से कार्यशील होने के लिए प्रेरणा दे।

भारत के राष्ट्रीय कांग्रेस के सामने यह कर्तव्य है कि राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों के इन सवालों का सामना करने के लिए हमें खुद को पुनः समर्पित करना है। ये सवाल बदलते हुए भारत के सामने हैं स्थगित समुदाय के सामने समस्यायें भी पुरानी होती हैं। इस कारण नया ज्ञान कौशल अथवा मनोभावों का उत्पन्न होना संभव नहीं है। परंतु प्रगति का अर्थ बदलाव है अर्थात् उसे-प्रायः अधिक कष्टकर समस्याओं का सामना करना है। स्वातंत्र्यपूर्व तथा स्वातंत्र्योत्तर समय में वैसे ऐतिहासिक पात्र निभानेवाले भारत राष्ट्रीय कांग्रेस को प्रगति और बदलाव के नए संदर्भ के सवालों का सामना करने के लिए डरना नहीं है। इस उद्देश्य के लिए यदि आवश्यक हो तो कांग्रेस के स्वरूप को पुनः रूपित करना होगा उसे नई आकृति देनी होगी।

कांग्रेस संस्था के अंदर ही सृजनशील चिंतन तथा नए आविष्कार के लिए हमें प्रोत्साहन देना है। कुछ समय के लिए इन सृजनशील चिन्तन तथा नए आविष्कारों के लिए मौका न मिला होगा। अब हमारी पीढ़ी को प्रमुख पात्र लेना है। यह तभी संभव होगा, जब हम नई पीढ़ी को उसमें भी शिक्षित नई युवा

पीढ़ी को हमारी तरफ आकर्षित करने में समर्थ होंगे। बुद्धिजीवियों तथा प्रज्ञावानों के मन में हमारी पार्टी के बारे में और अधिक उत्तम भावना को भरने में जब हम यशस्वी होते हैं तभी हम इसमें सफल होते हैं।

कांग्रेस में शामिल होते हुए उसे और अधिक सार्थक पार्टी बनने के लिए युवाओं में बिनती करने के साथ ही मुझे लगता है कि कांग्रेस में ही सभी सक्रिय क्षेत्रों में कर्तव्यनिष्ठ शाश्वत कार्यकर्ताओं के दल का निर्माण होना है। स्वातंत्र्य आंदोलन के समय और उसके बाद भी अनुशासन के लिए प्रसिद्ध सेवादल को हमें सदृढ़ बनाना है। महिला-घटक को और तेज करना है। युवाजनता में सेवामनोभाव भरनेवाले युवाकांग्रेस को और सुसज्जित बनना है इन सबसे अधिक हमारे कार्यकर्त्ताओं को गाँवों तथा शहरों की जनता के साथ हमेशा संपर्क में रहना है। लोगों को उनके कर्तव्यों के बारे में जिम्मेदारियों तथा हकों के बारे में उन्हें समझाना हमारा कर्तव्य है। इससे देश में होनेवाली घटनाओं के बारे में वे अच्छी चरह जानकारी रख सकते हैं। इससे ज्यादा जनता में नैतिकस्थैर्य बढ़ाकर देश के लिए आवश्यक वस्तुओं का अधिक उत्पादन के लिए और ज्यादा परिश्रम बढ़ाकर कार्य करने को प्रोत्साहन देना है। यह सब तभी संभव होगा जब हमेशा जनता के संपर्क में रहते हुए स्वातंत्र्य संग्राम के समय के जैसे उनका विश्वास प्राप्त करेंगे।

जनता के जीवन को अर्थपूर्ण और उत्तम बनाने के लिए कांग्रेस ने अनेक योजनाओं को अपनाया है। आपके गंभीर परिशीलन के लिए एक और योजना है और वह है ग्रामों का निर्माण। अभी जो कूडे कचरे से भरी गंदगी में रहते और कन्दाचारों से भरे गावों के बदले स्वस्थ स्वच्छ और सुन्दर ग्रामों का निर्माण करना चाहिए। योजना आयोग केंद्र सरकार और राज्य सरकार सभी मिलकर अब से पन्द्रह वर्षों में अधिक स्वच्छ और वैज्ञानिक तथा सभी सहूलियतों से भरे उत्तम विन्यास के घरों वाले ग्रामों का निर्माण करना चाहिए। नगर प्रदेशों में गंदीगलियाँ न बढ़ाते हुए जागरूकता से, निर्माण कार्य करना होगा। ग्रामों की ओर से, शहरों की तरफ 'बौद्धिकता न बहकर' शहर-प्रदेशों से उत्कृष्ट तथा उत्तम सहूलियतों के आकर्षण के कारण ग्रामों की तरफ प्रतिभा तथा कौशल बहकर आने का समय आना चाहिए। अंतिम बात है कि हमें आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक ध्येयों तक पहुँचने के लिए केंद्र तथा राज्य सरकारों के बीच उत्तम संबंध बनाये रखना चाहिए। सभी सरकारों के एक ही राजनैतिक पार्टी

के न होने की परिस्थिति में यह आवश्यक होता है किसी भी पार्टी की सरकार हो देश की आर्थिकता के निर्माण करने में और जनता को उत्तम जीवन स्तर देने में तथा एकता और समग्रता की रक्षा करने में संपूर्ण सहकार तथा संयोजन की आवश्यकता को सभी मानेंगे यह भरोसा मुझे है और इस दिशा में मुझसे जो हो सकता है उसे अवश्य करूँगा।

कई निराशावादी महोदय भविष्य करेंगे कि आगे गहरा अंधेरा है। उसका कारण शायद उनका स्वभाव ही वैसा होगा। मुझ में वैसी भावना नहीं है। उत्तम भविष्य की तरफ तथा हमारे सपनों को साकार करने की ओर हमें ले जाते हुए प्रबल एकता से युक्त आरेग्यपूर्ण और पहले से ज्यादा वैभवशाली भारत का निर्माण करनेवाला एकैक पार्टी है कांग्रेस। उसे साकार करने के लिए हम सभी को एक होना है।

मित्रों, मेरे मन की बातें मैंने खुले दिल से बताया है। पिछले तीन दशकों में विभिन्न स्तरों में विभिन्न जिम्मेदारियों को निभाते हुए थोड़ा बहुत शासन का अनुभव रखनेवाला कांग्रेस का एक सेवक तथा सिपाही होकर आगे भी सेवा करने के लिए मैं तैयार हूँ। आप से ही मुझे मार्गदर्शन और स्फूर्ति मिलनी चाहिए और मुझे विश्वास है कि आप मुझे वह स्फूर्ति भर देंगे।

निजलिंगप्पा जी का अतुल्य घोष स्मारक-व्याख्यान

भारतीय अर्थ-व्यवस्था में असंतुलन और उनके लिए निवारणोपाय

मैं समझता हूँ कि अतुल्य घोष स्मारक-समिति के मित्रों का सर्वप्रथम स्मारक-व्याख्यान देने के लिए मुझे बुलाना, मेरे लिए गौरव की बात है। अतुल्य घोष जी का महान् व्यक्तित्व, उनकी उपलब्धियाँ, राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में उनके चिंतन मार्ग, सुदृढ़ बाह्य और व्यवहार-ज्ञान, सभ्यता, उन सब से अधिक उनकी न्यायपरता और सज्जनता पर मुझे बात करने का मौका मिलता है तो मैं और आनंदित होता हूँ। मैं उन्हें प्यार से अतुल्य दा पुकारता था। बीस साल से कांग्रेस कार्यकारिणी समिति में उनके साथ सदस्य के रूप में बैठता था। जब मैं भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष बना तब मेरी कार्यकारिणी समिति में इंदिरा गाँधीजी और उनके साथियों की अनुशासनहीनता और अन्य अनर्हता के कारण, कांग्रेस विभाजन के पहले और बाद में भी अपनी कार्यकारिणी के सदस्य के रूप में उन्हें अच्छी तरह जानता था। विभाजन के बाद उन्होंने 'विभाजन' शीर्षक से आलेख लिखकर प्रकाशित किया था। विभाजन के समय में क्या क्या बीता उसे जो भी जानना चाहते हैं, उन्हें अवश्य यह लेख पढ़ना चाहिए। मुझे समर्थन देनेवाले अतुल्य घोष और अन्य साथियों का मैं आभारी हूँ।

बच्चों के प्रति उनका जो अतीव प्रेम और वात्सल्य था उस गुण ने मुझे विशेष रूप से आकर्षित किया और मुझ पर प्रभाव डाला। दिल्ली में मेरे साथ मेरी पोती संध्या रहती थी। कई बार मेरी प्रार्थना पर वे मेरे घर सुबह के नाश्ते पर आ जाते। आते ही 'संध्या' कहकर पुकारते थे। उनकी ऊँची आवाज़ सुनते ही उनके पास आ जाती और गोद में बैठ जाती। वे उसे बहुत प्यार करते। उन्होंने उसे सालगिरह पर जो उपहार के रूप में 'दीप' दिया था, वह अब भी अभिमान पूर्वक यादगार के रूप में उसके पास सुरक्षित है। यह कोई आश्चर्य नहीं कि उन्होंने इस शहर में बालकों के लिए अत्युत्तमं संस्था की स्थापना की थी। फूलों पर, विशेषकर गुलाब पर उनका मोह था। अपने गाँव के घर में मुझे बुलाया था। बदकिस्मती से मैं जा न सका। बंगालियों के समान वे अच्छा आतिथ्य करनेवाले थे।

इस प्रथम स्मारक-व्याख्यान का विषय उनके बारे में न चुनने का कारण यह है कि यहाँ उन्हें मुझसे भी अच्छी तरह जानने और बोलनेवाले बहुत सारे मित्र हैं। यदि उन पर बोलता तो पहाड़ पर पत्थर ढोने के समान होता। इसलिए मैंने 'भारत की आर्थिक व्यवस्था में असंतुलन और उनके लिए निवारणोपाय' विषय चुना। सामान्य अर्थ में मैं कोई अर्थशास्त्रज्ञ नहीं हूँ। मैंने अपने अनुभवों से, चिंतन और पचास से भी अधिक वर्षों के राजनीतिक जीवन से अपने ही कुछ निवारणोपाय सोच लिये हैं। आजादी के बाद पिछले चालीस सालों से जो असमानताएँ बढ़ रही हैं, वह किसी के लिए भी पीड़ादायक है। आर्थिक प्रगति इससे भिन्न और उत्तम हो सकती थी। उसका अध्ययन और विश्लेषण होना चाहिए। एक ओर बृहत् औद्योगिक नगरों में और दूसरी ओर ग्रामीण प्रदेशों में जो भी घूमते हैं वे इन दोनों प्रदेशों की जीवनशैली के अंतर को देख घबरा जाते हैं।

यहाँ मैं महात्मा गाँधीजी के दो वक्तव्यों को उद्‌धृत करना चाहता हूँ– ''जब तक धनी और लाखों भूखे लोगों के बीच की खाई चौड़ी रहती है, तब तक अहिंसात्मक व्यवस्था की सरकार की स्थापना बिलकुल असंभव है। स्वतंत्र भारत में नई दिल्ली के राजमहलों और पास बसी गरीब और पीड़ित श्रमिकों की झोंपड़ी एक दिन भी नहीं रह सकेगा। वहाँ देश के गरीब, धनी लोगों के समान ही अधिकार का आनंद लेंगे। धन संपन्नता और धन संपन्नता से प्राप्त अधिकार का जब तक सब की भलाई के लिए उपयोग करने का समय नहीं आयेगा, एक न एक दिन हिंसात्मक और रक्त-क्रांति की संभावना निश्चित है।''

''उच्चवर्ग और निम्नवर्ग, राजकुमार और भिखारी इनमें से पहले वर्ग को अधिक चाहिए कहकर उस अंतर का कोई भी वैभवीकरण न करे। वह व्यर्थ का काम है और मेरे तर्क का उपहास करना है। आज जो गरीब और धनी के बीच अंतर है वह दर्द देनेवाला है। विदेशी सरकार बेचारे गाँववालों को लूट रही है। साथ स्वदेशी नगरवासी भी लूट रहे हैं। आहार पैदा करने पर भी उन्हें भूखों रहना है। दूध का उत्पादन करते हैं पर उनके बच्चे दूध से वंचित रहते हैं। यह तो अपमान का विषय है। सब को संतुलित आहार चाहिए। रहने को सुविधा युक्त घर चाहिए। बच्चों की पढ़ाई के लिए सुविधा चाहिए। और सबको वैद्यकीय चिकित्सा-सुविधाएँ प्राप्त होने चाहिए।'' यह उनके द्वारा खींचा

गया आर्थिक समानता का चित्र है। न्यूनतम आवश्यकताओं से बाहर हर चीज़ का उन्होंने बहिष्कार नहीं करना चाहा। परंतु उनका क्रम गरीबों की अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति और तृप्ति के बाद होना चाहिए। आवश्यक वस्तुओं के लिए पहली प्राथमिकता।

पहला वक्तव्य 1946 का है, तो दूसरा 1948 का। ये वक्तव्य आज भी प्रासंगिक हैं। उनकी अपेक्षाएँ फलप्रद नहीं हुई। बदले में विरुद्ध दिशा में चल रही है। इस बेचारे देश में सारी बातें धनवानों के अनुकूल चल रही हैं और गरीबों की स्थिति शोचनीय हो रही है। आजादी की प्राप्ति के डेढ़ साल में ही महात्मा गाँधीजी की, जिन्होंने अहिंसा के आधार पर देश का स्वातंत्र्य संग्राम करके, उसमें सफल होकर उत्पादन के अधिकार और संपत्ति के विकेन्द्रीकरण का प्रतिपादन किया, एक धर्मांध हिन्दू के द्वारा हत्या कर दी गयी।

उसके बाद और दो साल में, सरदार वल्लभभाई पटेल जी अस्वस्थता से दिवंगत हुए, जिन्होंने दृढ़ता, दूरदर्शिता, कुशलता और करुणामयी रीति से 560 राज्यों के देश की समस्या का निवारण कर देश की समग्रता और एकता को बनाये रखने में प्रमुख भूमिका निभायी थी। उन दोनों के समान भारत को समझनेवाले नेता विरले ही थे। उन्हें गाँवों के करोड़ों करोड़ों लोगों की गरीबी, अस्वस्थता, निरक्षरता और उन सब से बढ़कर बेरोजगारी का परिचय था। यदि वे आज होते तो अब जो देश को आर्थिक, सामाजिक और नैतिक अधःपतन की ओर ले जानेवाली गलत आर्थिक नीतियाँ और राजनीति है, उन्हें स्वस्थ और आवश्यक प्रतिरोध द्वारा रोकते। प्रत्याशा के अनुसार आजादी के प्राप्त करते ही, हमने संविधान सभा के लिए सदस्यों का चुनाव किया। तीन वर्षों में सभी विभागों, विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के अत्यंत श्रेष्ठ व्यक्तियों से तीव्र चर्चा करके एक श्रेष्ठ, हमारी संस्कृति, इतिहास और प्रतिभा के लायक संविधान को रूपित किया गया। संविधान में मूलभूत अधिकारों की सूची है। सरकार के नीति निर्देशक तत्त्व हैं। यहाँ मैं कहना चाहता हूँ कि मूलभूत अधिकारों में नौकरी का अधिकार और सूचना का अधिकार भी उसमें जोड़ना चाहिए था।

मूलभूत अधिकार और सरकार के नीति निर्देशक तत्त्वों क़े बारे में न्यायिक प्रख्यापन को यहाँ उद्धृत करना चाहता हूँ– ''मूलभूत अधिकार और सरकार के नीति निर्देशक तत्त्व हमारे संविधान की 'अंतःप्रज्ञा' से युक्त हैं। मूलभूत

अधिकार का उद्देश्य है, समानता के आधार पर समाज निर्माण, समाज के बलप्रयोग से सभी प्रजाओं को मुक्तकर सभी को स्वतंत्रता प्रदान करना। सरकार के नीति-निर्देशक तत्वों का उद्देश्य है, अहिंसात्मक क्रांति द्वारा कुछ सामाजिक और आर्थिक लक्ष्य को तुरंत प्राप्त करना। ऐसी समाजिक क्रांति द्वारा संविधान आम जनता की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है और हमारे समाज की संरचना को बदलना चाहता है। उसका उद्देश्य आम जनता को गुणात्मक रूप में स्वतंत्र करना है। सरकार की नीति के निर्देशक तत्वों का प्रामाणिकता से परिपालन किये बिना, संविधान से कल्याण राज्य की स्थापना असंभव है।

मेरी दृष्टि में ये हमारे संविधान के मस्तिष्क और हृदय हैं।

स्वातंत्र्योत्तर काल में हमारे आर्थिक विकास का इतिहास देखेंगे तो पता चलता है कि अत्यंत प्रमुख निर्देशक तत्वों का परिपालन नहीं हुआ है और उन्हें सम्मान भी नहीं दिया गया है। उनका तिरस्कार न करने पर भी उन के प्रति उदासीनता दिखाई जा रही है।

जन समुदाय की कल्याण साधना की ओर ध्यान न देकर सरकार औद्योगिक पश्चिम से आकर्षित होकर उसका अनुसरण करते हुए पूँजी पर आधारित बड़े उद्योगों के प्रति आसक्त होकर हर तरह से मदद और प्रोत्साहन दे रही है। आवश्यक पूँजी के लिए आंतरिक संसाधनों को इकट्ठा करने के साथ सरकार यंत्र और तंत्रज्ञान के साथ विदेशी मुद्रा भी प्राप्त करने मदद कर रही है। भारत को उन्नत प्रौद्योगिकी कौशल से युक्त देश के रूप में मानने पर भी और तकनीकिविद् की संख्या की दृष्टि से अमेरिका और रूस के बाद का स्थान रखने पर भी, इसका उपयोग हम नहीं कर पा रहे हैं और प्रोत्साहन भी नहीं दिया जा रहा है, यह देश का दुर्भाग्य है। जिन यंत्रों को देश में तैयार किया जा सकता है, उनको बाहर से आयात करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। हज़ारों-करोड़ रूपये के ऋण प्रगतिशील देशों से, छोटे देशों से भी लिये जा रहे हैं। यह बात सब को मालूम है, अतः विस्तार में जाने की जरूरत नहीं। अनेक बड़े उद्योगपति आ रहे हैं। कुछ वर्ष पहले जो कम पूँजी के औद्योगिक भवन थे उन्होंने अब अपनी पूँजी कई गुना बढ़ा ली है। यह प्रक्रिया

चल रही है। उसी तरह कारोबार भी बढ़ गये हैं। आयात और निर्यात के लिए लाइसेंस मनमाने ढ़ंग से दे रहे हैं। इसके साथ ही, 1969 में कांग्रेस के विभाजन के बाद, सिद्धांतों के लिए गौरव न होने से सरकार के प्रशासन में भ्रष्टता बढ़ गयी है। नौकरशाही सर्वशक्त हो गयी है। इससे करवंचक, काले बाजारी, तस्कर-व्यापारी, जमाखोर आदि समाज-विरोधी तत्व बढ़ गये हैं। राष्ट्रीय जीवन के आज दो लक्षण हैं – 1. अधिकार ही मेरा भगवान है। उसे पाना और बचाके रखना ही मेरा धर्म है। 2. धन ही मेरा भगवान है। उसको कमाना ही मेरा धर्म है। इस प्रकार भ्रष्टाचार राष्ट्र जीवन के हर क्षेत्र में प्रवेश कर चुका है। यह भ्रष्टाचार देशभर में व्याप्त है। उपरोक्त वर्ग के लोग और सभी श्रेणी के नौकरशाही तंत्र के कारण कुछ लोगों को छोड़कर अपने अपने स्तर और शक्ति के अनुसार धनवान बन रहे हैं। देश की कुल आबादी में ऐसे 10% धनी लोग हैं। वे अधिकतर नगरों में रहकर धनी राष्ट्रों के समान ऐशो-आराम का जीवन बिताते हैं। इन धनी और ग्रामीण गरीबों के बीच का अंतर एक वक्तव्य में कहना हो तो, धनी महिला एक दिन में जो खर्च करती है, उससे गाँव का गरीब परिवार एक महीने का खर्च निकाल सकता है।

इसके विपरीत, गाँवों में हम क्या देखते हैं? अंतर आघातकारी है। इन दोनों के बीच की खाई दिन-ब-दिन बढ़ रही है। गाँव के लोग ही 60% से 70% तक है। शेष 20% या 25% लोग मध्यम वर्ग के हैं। वे अपने आपको संभाल लेते हैं। गाँव के 80-90% लोगों में अत्यधिक गरीबी है। साथ ही उन्हें रोजगार नहीं, हर दिन उनकी स्थिति बिगड़ती रहती है। उन्हें न खाने को अन्न मिलता है, न पहनने को कपड़े। उनके घर धूप और वर्षा के कारण शिथिल होते हैं। गाँव के जीवन का मुख्य लक्षण निरक्षरता है। सरकार के निर्देशक तत्त्वों में प्रमुख है – हर बच्चे को 14 वर्ष का होने तक अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करना चाहिए। संविधान को मानते हुए यदि अनुष्ठान में लाते तो अब तक 75% भाग के लोग शिक्षित हो जाते। परंतु इन निर्देशक तत्त्वों के अनुष्ठान के लिए कोई भी कारवाई नहीं की गयी। संविधान को माने अब इतने साल हो गए। यह जनता के अज्ञान के लिए पूरक बना है। लोग समझ नहीं पाते हैं कि वह समर्थन में है या विरोध में है।

पहले ग्रामीण भारत के बारे में चर्चा करेंगे।

आर्थिक जीवन, उसकी प्रगति और राष्ट्रीय विकास को नियंत्रित करनेवाला मूल क्षेत्र है – कृषि। ज्यादा ध्यान से वैज्ञानिक तरीके से पोषण करनेवाला वह एक उद्योग है, यह मेरी निश्चित धारणा है। देश का कुल भू प्रदेश लगभग 81 करोड़ एकड़ है। उसमें 35% भाग जंगल के लिए रखना पड़ता है। शेष 52-53 करोड़ एकड़ में तीन करोड़ एकड़ प्रदेश कृषि करने में अनुपयोगी, व्यर्थ प्रदेश है। बचता है केवल 50 करोड़ एकड़। उसमें से 7 करोड़ एकड़ आजादी के पहले ही से सिंचाई के अंतर्गत है। परंतु ठीक तरह से ध्यान न देने के कारण सरकार को उसकी प्रामुख्यता न मालूम होने से, तब से आज तक सिर्फ 6 करोड़ एकड़ उसमें मिलाया जा सका है। अतः अब सिंचाई के अंतर्गत लगभग 13 करोड़ एकड़ हुई। देश को आजाद हुए 60 साल बीत गये हैं। कृषि और सिंचाई के लिए भी आद्यता दी जा रही है कहकर सरकार घोषणा ही करती रह गयी है। परंतु जो हुआ है, वह नहीं के बराबर है या बहुत कम। अब तक और 12 से 13 करोड़ एकड़ प्रदेश सिंचाई के अंतर्गत कर सकते थे। नदी, अंतर्जल, चरस आदि जल संसाधनों का पूर्णतः उपयोग कर सकते थे। एक लाख एकड़ भूमि सिंचाई के अंतर्गत लाते तो देश के किसानों को 40 करोड़ रुपये अधिक आमदनी मिलती। अंदाज़ लगाइए कि देश की आय कितनी बढ़ती। उद्योग कहकर प्राथमिकता देने का मार्ग न अपनाते तो इस ओर ध्यान दे सकते थे। और एक विषय इसके अंतर्गत है। अधिक भू प्रदेश को सिंचाई के अंतर्गत करते तो लगभग 200% रोजगार के लिए मिलता। एक एकड़ भूमि को सिंचाई के अंतर्गत करने का खर्च 10 से 15 हजार रुपये होंगे। यदि हम 11 से 12 करोड़ एकड़ ज़मीन को सिंचाई के अंतर्गत ले लाने के लिए आवश्यक धनराशि की व्यवस्था की ओर आसक्ति दिखायेंगे तो दस वर्ष के अंदर यह संभव है। जो सिंचाई की लघु और बृहत परियोजना शुरू हुई है वे 25-30 वर्षों से चल रही है। राजस्थान नहर जिससे 10 से 11 लाख एकड़ ज़मीन के लिए सिंचाई हो सकती है, उसे 30 वर्ष पहले ही पूर्ण होना था, परंतु अब भी निर्माणाधीन है और सिंचाई कुछ भागों में ही हो सकी है। उसी तरह, मेरे कर्नाटक के मुख्य मंत्रित्व की अवधि में मैंने जो 6 बृहत और कई मध्यम और कुछ लघु सिंचाई परियोजना के लिए शिलान्यास किया था, इन 25 वर्षों के बाद भी पूर्ण नहीं हुई

हैं। ऐसी ही स्थिति बहुत-से राज्यों की है। इससे हुई बहुत बड़ी हानि को आंका जा सकता है। 10-15 वर्षों में उन्हें पूर्ण हो जाना चाहिए था। केन्द्र सरकार सोचती है कि इसके लिए संसाधन का मूल राज्य सरकारों को तलाश लेना चाहिए, यह उनकी जिम्मेदारी है। यह भी पूर्णत: गलत है। सिंचाई अत्यंत महत्वपूर्ण राष्ट्रीय योजना है, जो देश के आर्थिक विकास करने और लगभग 60 करोड़ आबादीवाली ग्रामीण जनता का आर्थिक स्तर ऊँचा करने की दृष्टि से है। मेरे इस सुझाव पर आवश्यक प्रतिक्रिया हो, यही मेरी कामना है। मैं यह बताना चाहता हूँ कि यदि आप सिंचाई के लिए 15,000 रुपये एक एकड़ के लिए खर्च करेंगे तो आप उससे 4000 रूपये अतिरिक्त वार्षिक आय पा सकते हैं। कृषि की उत्पत्ति का मतलब है 25% वार्षिक आमदनी। ऐसा कोई उद्योग निजी या सार्वजनिक सेक्टार में है क्या जो पूँजी पर इतनी आय दे सके। आज भी शेष 12 करोड़ एकड़ 10 वर्षों में सिंचाई के अंतर्गत कर सकते हैं। ऐसा किया जायेगा क्या ?

सिंचाई के बाद, गाँवों के लोगों का जीवन देखें। गाँव जो हैं परिस्थितिवश अस्वस्थकर हैं। हर गाँव छोटा या बड़ा, छोटी बस्ती भी हो, हम शाम को, विशेषकर सुबह देखेंगे स्त्री, पुरुष, बच्चे सभी उम्र के, बिना संकोच के शौच के लिए जाते और वातावरण को गंदा करते हैं। तो लगता है वे घृणा और तिरस्कार के स्रोत हैं। यह लाखों टन की अमेध्य व्यर्थ होते देखेंगे।

इसके साथ, हमारे लिए गर्व की बात है कि भारत में अत्यधिक संख्यक प्राणियों जैसे – गाय, भैंस, ऊँट आदि हैं। उनकी संख्या 25-30 करोड़ होंगी। उनका गोबर व्यर्थ किया जाता है। विश्व के जानवारों का आधा भाग भारत में ही है, ऐसा अंदाज लगाया गया है।

यदि उपरोक्त दो अमूल्य 'अमेध्य कचरे' को जैविक गैस या गोबर गैस उत्पादन में उपयोग करें तो काफी मात्रा में मिट्टी के तेल में बचत होगी। हमारे अनुसंधानकर्ता या वैज्ञानिकों ने लगभग तीस साल पहले ही सोचकर अविष्कार किया था गोबर गैस या जैविक गैस का। चीन ने भी जैविक-मैस स्थावर की इस अवधि में करीब 5 दशलाख यूनिट की स्थापना की है, यह मेरे लिए प्राप्त जानकारी है। दूसरी ओर, भारत में अत्यधिक संख्या में जानवार होते हुए भी

और केवल गाँवों में ही साठ करोड़ लोगों के होते हुए भी, कुछ वर्ष पहले मैंने सुना था कि केवल पाँच लाख यूनिट स्थापित हैं। कितना अंतर है? यह जैविक गैस शाश्वत वाणिज्येतर इंधन मूल है जिसका हमने उपयोग नहीं किया है। हमने इस अत्यधिक मात्रा के इंधन मूल का उपयोग नहीं किया है। गैस से संबन्धित और भी अनेक विषय हैं। यह सुबह और शाम गाँवों में शौचालय न होने से स्त्री-पुरुषों के मैदान में शौच जाने के असंस्कृत, असभ्य और वातावरण गंदा करने को रोकता है। यदि गोबर और मल-मूत्रादि कचरे को इन स्थावरों के लिए कच्ची वस्तु के रूप में उपयोग करें तो सात आठ दस लाख टन प्रथम दर्जे का खाद तैयार होता है। इसलिए कि किसी भी प्रकार के खेत की खाद में जिसमें सामान्य खाद से तीन गुना अधिक नाइट्रोजन होता है। साथ ही, बीजों को जीर्ण कर फसल को नष्ट करनेवाली खत परवार नहीं रहती। इन सब प्रयोजनों के अलावा, जैविक अनिल का उपयोग रोशनी और रसोई के लिए भी कर सकते हैं। जलाने की लकड़ी के लिए जंगलों में पेड़ों को काटना भी रोका जा सकता है।

अमूल्य इंधन और खाद उत्पादन के कार्यक्रम के लिए मेरे अंदाज़ से लगभग 6000 करोड़ रूपये लगाना पड़ता है। यदि गाँववालों के लिए उपयुक्त है यह समझने की श्रद्धा और इच्छा हो तो यह संपूर्ण कार्यक्रम जारी कर सकते हैं। सालाना 600 करोड़ की हिसाब से दस साल यह कार्यक्रम बढ़ा सकते हैं। इस उपयुक्त कार्यक्रम के लिए केंद्र और राज्य सरकार दोनों खर्च को बाँटे सकती हैं। इस जैविक अनिल का उपयोग विद्युत उत्पादन के लिए भी कर सकते हैं। इस दिशा में कोई अनुसंधान कार्य हुआ है क्या? मैं जानना चाहता हूँ। गाँवों के प्रति जो तिरस्कार भावना है, उसे देखने से लगता है कि कोई काम नहीं हुआ होगा। अब इस पर अनुसंधान कार्य क्यों न करें?

कृषि के अत्युत्तम विधान का अनुसरण करने पर भी, केवल सिंचाई ही बेरोजगारी की समस्या का हल नहीं कर सकती। श्री पालकीवाला के अनुमान के अनुसार भारत में हर दिन व्यर्थ हो रहा श्रम 2000 दसलक्ष मानव घंटे हैं। अर्थात् दिन के आठ घंटे में 125 दसलक्ष लोग अथवा 12.5 करोड़ लोग बेरोजगार हैं। इस बृहत् व्यर्थ श्रम का उपयोग जो वेकारी के कारण गाँवों और नगरों में जो श्रम व्यर्थ हो रहा है, उपयुक्त रीति से कर सकते हैं। गाँधीजी इसी उपयुक्त

कार्यक्रम पर बहुत ज़ोर देते थे। वह है गृह उद्योग। बेकारी के कारण गरीबी बढ़ गयी है, इस बात को सभी मानते हैं। बेकार लोगों को अधिकतर नंगे, भूखे रहना पड़ता है। वे अपने बच्चों को पढ़ा नहीं सकते हैं। जैसे अभी कहा गया, इसके निवारण के लिए योग्य उपाय है गृह उद्योग। कृषि को छोड़कर, मानव की दो मूलभूत माँगों को पूर्ण करनेवाला बड़ा उद्योग है कपड़े का उद्योग। अभी अभी बिनाई के संबंध में लिए निर्णय में हथकरघा और खादी के बारे में कुछ भी न विचार व्यक्त करना विषादनीय है। इससे पता चलता है कि सरकार की इस दिशा में सोच क्या है? गाँधीजी ने कहा था, ''सूत कातना गृह उद्योग की रानी है। हर वर्ष 2 अक्टूबर की गाँधी जयंती के दिन कांग्रेस नेता अपने सामने चरखा रखकर सूत कातता है। वह काम महात्मा जी को खुश करने के लिए करते थे। अधिकार प्राप्त करने के बाद उनके मनोभाव ने खादी के प्रति सोचना ही छोड़ दिया है। इसका मतलब है कि गृह उद्योग द्वारा मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएँ पूर्ण होती हैं। इस तत्व में उन्हें विश्वास ही नहीं रह गया है।

मैं यहाँ गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम की ओर विशेष ध्यान दे रहा हूँ। कइयों के अनुसार हमारे ग्राणीण प्रदेशों में बेकारी की समस्या हल करने के लिए रामबाण यही है। भारत की 80 करोड़ अबादी में 80% अर्थात् लगभग 60 करोड़ ग्रामीण प्रदेश में हैं। जैसा कि सब जानते हैं उद्योग पूँजी पर आधारित है। जैसे जैसे तंत्रज्ञान आधुनिक होता जाता है, उसका श्रमिकाधार कम होता जाता है। बिना सोच के सरकार और धनी पूँजीपति सब मिलकर ऐसे अधिकाधिक उद्योग स्थापित करने को आगे आये हैं। ब्रिटिश साम्राज्यशाही नीति वस्तुतः स्थानीय ग्राम उद्योगों को नाश करना रही है। उसमें भी कपड़ों की तैयारी को आजादी के बाद इसके अंतर्गत लाने की तीव्रता बढ़ गयी है। खादी जैसे गृह उद्योग जिसमें हाथ से कातकर, हाथ से बुनकर कपड़े तैयार करना, कोल्हू का तेल, बढ़ई, कुम्हार, लुहार, चर्मकार आदि को मार दिया गया है। या वे वस्तुतः मर रहे हैं। उनकी जगह कुछ ही केन्द्रीकृत उद्योग किस प्रकार लाखों लोगों के उद्योग के मौके को बरबाद कर रहे हैं, उसे दिखाने के लिए एक-दो उदाहरण – तैयार होने वाले कपड़े के 110% भाग में 99% मिलों में बनते थे, शेष 1% खादी। 99% कपड़े उत्पादक उद्योग 13 लाख श्रमिकों की शक्ति रखते हैं। हर श्रमिक को महीने में 15000/- के हिसाब से देखें तो 1% कपड़े

तैयार करनेवाला खादी और 13 लाख जोड़ी हाथों के लिए काम देता है। हर श्रमिक महीने की 300-400 रुपये की आमदनी पाते हैं। कपड़े का मिल 10 करोड़ मूल्य का है। उसमें 800-1000 लोग काम करते हैं। परंतु चरखा सूत कातनेवाले आजकल अंबर चरखा के लिए 1000 रुपये पूँजी लगाते हैं। अर्थात् एक लाख लोग, विशेषतः महिलाएँ सारा धन लगाकर काम कर सकती हैं। आप लोगों को कौनसा चाहिए। उसके लिए गांधीजी ने उत्तर दिया है। मैं दूसरा ही उदाहरण देता हूँ। खाद्य के लिए आवश्यक तैल तैयारी के लिए आवश्यक आधुनिक यंत्र के कोल्हू के लिए 8 से 10 करोड़ रूपये चाहिए। परंतु तेल के कोल्हू प्राप्त व्यक्ति को 20,000 रुपये काफी है। अर्थात् एक यंत्र के कोल्हू के स्थान पर 5000 कोल्हू के मालिक हो सकते हैं। फिर प्रश्न ? आपको कौन-सा चाहिए ? और एक निदर्शन है चमड़े का उद्योग। चर्म जो कच्ची वस्तु है, उद्योग के लिए दूर ग्रामीण प्रदेशों से आना है। ऐसे कुल दस बारह उद्योग होंगे। उन्हें यह सारे चर्म चाहिए। साथ शेष चर्म को आयात कर लेते हैं। भारत अत्यधिक कच्चा चर्म तैयार करनेवाला देश है। दूरस्त गाँवों से 500 से 1000 कि.मी. दूर पर स्थित चर्म उद्योग के स्थान पर ट्रकों द्वारा कच्चा चर्म ले जाकर रास्ते भर वातावरण को खराब कर देते हैं।

इसलिए इस विकेन्द्रित चर्म सामग्री की तैयारी पर लाखों हरिजन बेरोजगार और गरीबी के शिकार हो जाते हैं। तुम लोगों को कौन-सा बेहतर लगता है ? मैंने देखा है प्लास्टिक शू को तैयार करने के लिए सरकार ने विदेशी पूँजी और तकनिकी से युक्त अत्याधुनिक कारखाना खोलने को लाइसेन्स दिया है। यह तो असहनीय बात है। इससे, बाहरी देशों से यंत्रों का आयात कर हरिजनों को पूर्ण रूप में बेरोजगार करने की सरकार की योजना स्पष्ट हो गयी। सरकारी हो या खासगी क्षेत्र हो केन्द्रीकृत तैयार करने के घटक करोड़ों लोगों को बेरोजगार करते हैं यह दिखाने के लिए काफी है।

हमारा देश कम आबादीवाला देश नहीं। यहाँ श्रमिकों की कमी नहीं है। रोजगार योग्य उम्रवाले लगभग 35-35 करोड़ लोगों को नौकरी देकर सुखी रखने का कर्तव्य हमें निर्वहण करना है। नित्य उपयोगी वस्तुओं को, जैसाकि अभी हमने उल्लेख किया, उन तीन उद्योगों के साथ गाँव में ही उत्पादन कर

सकते हैं। लुहार, बढ़ई, कुम्हार, साबून बनानेवाले, कागज बनानेवाले आदि रोज़ आवश्यक वस्तु तैयार करनेवालों को गाँव ही उद्योग दे सकते हैं। अर्थ शास्त्रज्ञों के यह कहने में कोई आश्चर्य नहीं कि भारत को श्रमिकों पर आधारित उद्योग घटक चाहिए।

बेरोजगारी और उसके फलस्वरूप गरीबी की समस्या से संबन्धित भारत सरकार का प्रचार है कि हरी क्रांति के द्वारा देश में 150 दशलक्ष टन धान पैदा हो रहा है। इस उत्पादन के कारण आवश्यकता से अधिक 20 से 30 दशलक्ष टन धान बढ़ गया है। यह सत्य का विकृत रूप है। वास्तव में, बेरोजगारी और गरीबी के कारण गाँव के लोग अपने लिए आवश्यक आहार और कपड़े खरीद नहीं सके हैं। इससे गाँवों में बचा धान मार्केट जाता है। यदि ये लोग नौकरी करते तो यह आहार भी काफी न होता।

एक श्रमिक व्यक्ति की ऊर्जा के लिए आवश्यक है 3100 से 3200 क्यालोरी। परंतु केवल 2000 क्यालोरी तक ही वह खरीद सकता है। अधिक उत्पादन हुआ है कहने का आतंरिक अर्थ यह है। यह जानकारी योजना बनानेवालों को या सरकार को है क्या? वैसे ही, गाँवों के लोग अपनी स्वास्थ्य रक्षा के लिए आवश्यक कपड़े भी खरीद नहीं सकते हैं। इसलिए उत्पादित कपड़े बचते हैं और उसे निर्यात करना संभव हुआ है। इससे हमारा ऋणभार कम हो सकता है। परंतु हमारे ग्रामीणों की जिंदगी को इसी हालत में आगे बढ़ने देना है क्या?

अब मैं कृषि भूमि के बारे में बताऊँगा। हमने जंगल को इतना काट डाला है कि अब जंगल के 33% प्रदेश में ज्यादा से ज्यादा 20% बचा है। हमें उनका पालन करना चाहिए। यदि हम इसके महत्त्व को भूल जायेंगे तो विनाश का कारण बनेंगे। भूसुधारण और भू छिद्रीकरण रोकने की विधियाँ अमल में होने पर भी भूमि को बाँट लेने पर औसत कृषि भूमि ढाई या 3 एकड़ के लिए सीमित हो गयी है। निस्संदेह अब भी ऐसे धनी ज़मीनदार हैं, जो अपने प्रभाव से कानून के होते हुए भी सैकडों एकड़ के स्वामी बने हैं। परंतु ऐसे लोगों की संख्या कम है। यदि ऐसे आर्थिक लाभ रहित भूमि से न आवश्यक धान्य पैदा कर सकते हैं न उद्योगों के लिए कच्चा माल उत्पन्न कर सकते हैं। मेरी सोच में, सारी भूमि

को आर्थिक दृष्टि से कार्य योग्य और निर्वहण योग्य भूमि के रूप में विभाजन कर देना ही एक निवारणोपाय है। इस कार्यक्रम के लिए केन्द्र को राज्यों से सहायता लेनी चाहिए। सिंचाई का प्रदेश हो तो यह ज़मीन का स्वाम्य छः एकड़ और खुश्की ज़मीन हो तो मिट्टी की गुणवता और बरसात के आधार पर 20 से 30 एकड़ हो सकता है। इन ज़मीनों के लिए संख्या देनी चाहिए और इसके सदस्य स्थायी और स्वामित्व एक का होना चाहिए। इसके कार्यान्वयन के लिए आवश्यक कानून होना चाहिए। कानून बनाना संभव है। उसका कोई दुष्परिणाम न होगा। क्योंकि अधिक संख्यक या तो छोटे ज़मींदार हैं या कृषि श्रमिक होते हैं। इस संदर्भ में मेरी सलाह है कि एक व्यक्ति के लिए एक से अधिक आमदनी का मार्ग नहीं होना चाहिए। यदि वह सरकारी कर्मचारी हो तो उसे अपने भू-स्वामित्व को छोड़ देना चाहिए। यह अन्य प्रकार के पेशेवाले पर भी लागू होता है। अब तो कई स्त्रोतों से आमदनी करनेवाले अधिक लोग हैं। यह सामाजीकरण प्रक्रिया के प्रयत्न की दिशा में सार्थक हो सकता है।

अब तक मैंने गाँवों से संबंधित कई समस्याओं और उसके लिए समाधान के बारे में बताया है। और भी समस्याएँ हैं और उनके लिए भी समाधान ढूँढना है। उसके लिए मेरे पास न समय है न मौका।

शहर कैसे विकसित होते जा रहे हैं इसका चित्रण मैंने प्रारंभ में ही दिया है। उसके लिए कारण है, सभी उद्योग चाहे वे खासगी हों या सार्वजनिक क्षेत्र के उनका नगरों में केन्द्रीकृत होना। फलस्वरूप उनकी आबादी बढ़ती ही जाती है। इसलिए, सामाजिक और नगर सेवाएँ बिगड़ जाती हैं। नागरिक सुविधाओं को पूरा करने की जिम्मेदारी नगरपालिकाओं पर है। हर नगर के दो मुख होते हैं : एक बड़े राजमहलों, वैसे ही सुसज्जित भवनों, विशाल सड़कों, उपवन, बगीचे आदि वैभवपूर्ण जीवन के लिए आवश्यक सुविधाओं से युक्त नगर; दूसरा मुख है - गरीब और श्रमिक लोगों के रहने गंदी बस्तियाँ और जीने योग्य कोई भी सुख-सुविधाओं से वंचित प्रदेश। जब मैं कांग्रेस का अध्यक्ष था तब मुझे कलकत्ता की गंदी बस्ती में ले गये। पर्यावरण में इतनी गंदगी थी कि गरीब लोग झोंपड़ियों में रहते थे, कुछ लोगों को छोड़कर औरत, बच्चे सभी छिथड़े में रहते थे। अतः मैं वहाँ ज्यादा समय तब ठहर न सका। उस दर्दभरे अनुभव को भूल नहीं सकता। मैं विनती करता हूँ कि हरेक उसे उपन्यास की तरह पढ़े

और उस पुस्तक का नाम है 'आनंदसागर'। उसका लेखक 'मध्य रात्री में स्वातंत्र्य' कृति के लेखकों में एक हैं। लेखक फ्रेंच हैं। वे उस 'आनंदसागर' में कुछ महीने रह चुके थे। उस ग्रंथ में गंदी बस्ती के वास का अनुभव दर्ज हुआ है। बस्ती की समस्याओं के लिए कारण हैं बड़े बड़े उद्योगों का नगर मध्य में आवृत्त होना। एक उद्योग के स्थापित होने के लिए कच्चा माल, पानी, यातायात, विद्युत का प्राप्त होना आवश्यक हैं। कई नगरों में पानी की सुविधा नहीं। कई जगह सड़कों और रेलों की यात्रा के लिए नगर से बाहर जाना पड़ता है। विद्युत को जहाँ चाहे ले जा सकते हैं। अत्यंत बड़ी समस्या मजदूरों की है। मेरी सलाह यह है कि नगरों में उद्योगों की स्थापना न करे जो पुराने कारखाने हैं उन्हें दूसरी जगह ले जाना चाहिए। इन्हें नगरों से 25 मील दूर पर स्थापित करना चाहिए। एक कारखाने से दूसरे कारखाने के बीच पच्चीस मील का अंतर होना चाहिए। उपरोक्त चार आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर जहाँ तक हो सकता है उद्योगों को ग्रामीण प्रदेशों में स्थापित करना चाहिए। उससे मजदूरों की समस्या भी हल होगी। कच्चामाल पास ही उपलब्ध हो जाता है। सामाजिक और नागरिक सुविधा की समस्याएँ बहुत कम होगीं। गाँववालों को नौकरी मिलती है। उनमें यह भावना रहती है कि यह अपने गाँव की है। मैंने सुना है कि अन्य देशों में इस प्रकार औद्योगिक विकेन्द्रीकरण प्रक्रिया चली है। वहाँ हो, या न हो भारत में तो होनी चाहिए। बड़े और राजधानी नगरों में प्रशासनिक और वाणिज्य केन्द्र स्थान हो, बस। केन्द्रीकरण की हानि से बचने के लिए और अधिक स्वास्थ्यकर जीवन के लिए यही एक मार्ग है।

नित्योपयोगी वस्तुओं का विकेन्द्रीकरण प्रक्रिया द्वारा गाँव में ही उत्पादन करना हो तो अब जो मिल हैं उनका क्या करें? उसका निवारणोपाय मेरी नज़र में उत्पादन का आरक्षण है और दूसरे भी इसके बारे में सोच सकते हैं। सभी प्रकार के कपड़ों को 50 कौंट और उससे कम की सूत की खादी के लिए आरक्षित रखें। 50 कौंट से ऊपर के कपड़े मिल में तैयार करें। तब हाथ से कातना, करघा के लिए आर्थिक सहायता माँगने की आवश्यकता नहीं। वे अपने में स्वतंत्र स्वावलंबी होंगे। मिल स्वतंत्र रह सकेंगे। आज़ादी के प्रारंभिक दिनों में धोती और साड़ियाँ इस प्रकार आरक्षण के अधीन थे। तब गाँधीजी का प्रभाव था। अन्य प्रभावों के कारण बाद में वह प्रयत्न समाप्त हो गया।

उसी प्रकार कोल्हू के लिए खाद्यतैल को पूर्णतः आरक्षित रखना चाहिए। खाद्यतैल मिल में तैयार न होना चाहिए। हरेक गाँव को दो कोल्हू के हिसाब से, दस से बारह लाख कोल्हूओं के कार्य का निर्वहण होना चाहिए। आधा करोड़ लोगों का पेट भरने के लिए वह काफी हो सकता है। उसी प्रकार, सेना और पुलिसों की चमड़े की वस्तुओं को मिलों के लिए आरक्षित रखें। मिल किसी प्रकार की पादरक्षाओं को तैयार न करके उन्हें शेष समाज के लिए आरक्षित रखें। इससे हरिजनों की कुल संख्या में से अधिक लोग चर्म शोधन और पादरक्षा आदि आवश्यक वस्तुओं को बनाने का रोजगार पा सकते हैं।

ऐसे उदाहरण दिए जा सकते हैं। गाँव में ही तैयार करनेवाली आवश्यक वस्तुओं के लिए आज के मूल्य के हिसाब से हरेक गाँववाला औसतन 300 रूपये खर्च करता है। एक हज़ार आबादी वाले गाँव का खर्च 3 लाख रूपये है। उस खर्च को रोकना हो तो, अधिकतर गाँववालों को लाभदायक कामों में लगना चाहिए। गाँव स्वयंपूर्ण होते हैं। उससे भी मुख्य और अर्थपूर्ण है, अर्थात् वे स्वावलंबी बनेंगे। यह असंतुलन कम करने का प्रमुख सकारात्मक उपाय है। मौके और समय के कारण हम यह विषय दीर्घ न करेंगे।

इससे संबंधित कुछ विषयों के बारे में अब चर्चा करना चाहता हूँ। प्रधान मंत्री, अन्य मंत्रीगण केन्द्र और राज्यों के शासक सभी भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, लालच दिखाना आदि के विरुद्ध लड़ने के बारे में उत्साह से बातें करते हैं। ऐसे बात करनेवाले ही घर जाकर भ्रष्टाचार आदि में लग जाते हैं। यह दिलचस्प ब्रात है। शेष लोगों को भी ऐसा ही लगा होगा। रिश्वतखोरी रोकने के लिए कानून बनाना अच्छा है। मेरा विनम्र निवेदन है कि समर्थ, ईमानदार और आदर्श संस्था की रचना कर आज के और पूर्व के मंत्री, प्रधान मंत्री और केन्द्र तथा राज्यों के शासक, सरकारी संस्थाओं के अध्यक्ष, ऊपर से नीचे तक के अधिकारियों के खुद के नाम पर हो या बेनामी नाम पर हो पिछले 20 वर्षों में प्राप्त स्वत्त्व और बैक में रखे धन की जाँच करने की व्यवस्था हो। यह विवरण एक साल में इकट्ठा करना चाहिए। मेरे अंदाज़ के अनुसार 70,000 करोड़ रूपये या कम से कम 50,000 करोड़ रुपये संग्रह कर सकते हैं। तुरंत इसका कार्यान्वयन हो। इसको तुरंत लागू करना चाहिए।

सरकारी अधिकारियों के संबंध में कहना हो तो, 40 साल तो हो गये अब, उन्हें लोगों और देश के बारे में सेवामनोभाव विकसित कर लेना चाहिए। उनमें यह सेवामनोभाव है या नहीं, संदेह है। कुछ अपवाद हो सकते हैं। न्यायपालिका को छोड़कर, अन्य सभी विभाग भ्रष्ट हो गये हैं।

बड़े और निवारणीय हानि करनेवाले क्षेत्र हैं केन्द्र और राज्य सरकार के स्वाम्य के उद्योग और उपक्रम। स्पर्धा रहितों को अलग कर दें तो, अन्य कौन-से उद्योग लाभदायक हैं। पूँजी पर जो ऋण है, उसका कितना सूद वे चुका सके हैं। सुनता हूँ कर आदि खर्च भर रहे हैं। इनसे जो नुकसान हो रहा है वह अधिक मात्रा में हैं। सहस्त्रों करोड़ होंगे। इसके लिए कारण है, आवश्यकता से अधिक कर्मचारियों को नौकरी में लेना, जहाँ तांत्रिक अधिकारियों की ज़रूरत है वहाँ शायद राजनीतिक दबाव के कारण आइ.ए.एस. या आइ.पी.एस. अधिकारियों की नियुक्ति कर असमर्थ और मूर्ख अधिकारी वर्ग के हाथ में प्रशासन को दे देना। उसका उदाहरण है कि हर राज्य में जो सड़क-यातायात है उसे शिक्षित बेरोजगारों को सड़क-परिवहन की जिम्मेदारी सौंपने के द्वारा सहस्त्रों करोड़ रुपये की हानि रोक सकते हैं। इज्जत से जीने लायक आमदनी लानेवाले एक लाख कर्मचारियों को इसमें लगा सकते हैं। खासगी बसों का टिकट-दर कम है और वे कच्ची सड़क में चलती हैं। फिर भी अच्छी सेवा देती हैं और लाभदायक भी बनाती हैं। ज्यादा दर और अच्छी सड़कों पर जाकर भी सरकार को लगभग एक हज़ार रुपये की हानि है। कारण भ्रष्टाचार। नुकसान क्यों? किस के पैसे? क्या केवल भ्रष्ट लोगों को फायदा पहुँचाने के लिए?

केन्द्र और राज्य सरकारों में अत्यधिक नुकसान का और एक बाबत है, महंगे प्रशासन यंत्र और उदार वेतन श्रेणी। प्रशासन का खर्च कुल आयव्यय का 45% है। अधिक से अधिक, प्रशासन खर्च 25% से अधिक नहीं होना चाहिए। इसके लिए कारण है आवश्यकता से अधिक तीन या चार गुना नौकरों का होना। यदि नयी नियुक्ति न करेंगे तो और दस साल में इसे·नियंत्रण में ला सकते हैं। मैंने तो इसके अनुष्ठान का प्रयास किया। परंतु मुझे अति शीघ्र मुख्य मंत्री स्थान से मुक्त होना पड़ा। सरकारी सेना तो 'फिंजेपोल' नहीं है न!

संविधान ने जिसकी सोच ही न की थी, वह योजना आयोग वाहन का अर्थरहित और महंगा पाँचवा चक्र है। उसकी अवास्तविकता, देश के प्रति, उनमें भी गाँवों की समस्याओं के प्रति अज्ञता आदि को दर्शाने को जितने चाहे कारण दे सकते हैं। जितना शीघ्र वह रद्द हो उतना ही अच्छा है। भूमि में उसकी जड़ें नहीं है।

अधिक बचत और आवश्यक धन की बचत के लिए, यदि मानें तो मैं कुछ सलाह दे सकता हूँ।

कुल, हमारी अर्थ व्यवस्था में जो असंतुलन हैं उनकी इस प्रकार सूची बना सकते हैं।

1. पूँजी आधारित उपक्रमों को प्रोत्साहित नहीं करना चाहिए। श्रमिक आधारित योजनाओं को आद्यता दें।
2. दस वर्षों के अंतर्गत 10 से 12 करोड़ एकड़ अधिक भूमि को सिंचाई के अंतर्गत करना है। धन और समय के फिजूल खर्च रोकें तो यह संभव है।
3. जहाँ जहाँ केन्द्रीकृत और विकेन्द्रीकृत उत्पादनों में संघर्ष है, वहाँ वहाँ दूसरे प्रकार की याने विकेन्द्रीकृत उत्पादनों को उत्तेजित करें।
4. गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों को प्रोत्साहन दीजिए। उससे गाँव स्वयंपूर्ण होकर स्वावलंबी बनेंगे।
5. उपरोक्त रीति से जहाँ तक संभव हो गृह उद्योगों के उत्पादनों को आरक्षण दीजिए।
6. जैविक अनिल इंधनों को और पशुओं के सामर्थ्य का उपयोग बेरोजगारी के निवारण के लिए पूर्ण रूप से कर लीजिए। गाँवों के समीप मार्केट के लिए कृषि उत्पादनों को ले जाने के लिए बैल गाड़ियों का उपयोग करें ट्रकों का नहीं। इससे पेट्रोल की बचत होती है।
7. सभी सरकारी कर्मचारियों की बेईमानी की कमाई को जब्त करने के लिए आवश्यक कानून बनाइए। उसी तरह उपरोक्त अन्य विषयों के बारे में भी विशेष ध्यान दीजिए।

8. अपराध करनेवाले सरकारी कर्मचारियों को कठिन सज़ा दीजिए। जहाँ संभव हो उत्तरदायित्व और सज़ा दोनों का प्रवर्तन कीजिए।
9. संपत्ति और अधिकार के केन्द्रीकरण को रोकिए।
10. गाँधीजी का स्मरण कीजिए और उनका अनुसरण कीजिए।

// सत्यं शिवं सुंदरं //

कर्नाटक के शिल्पी

"यह कोई अचरच की बात नहीं कि जब श्री निजलिंगप्पा जी की याद की जाय तो एकीकृत कर्नाटक और कर्नाटक की याद की जाय तो निजलिंगप्पा जी याद आ जाय। कर्नाटक के एकीकरण के लिए अथक परिश्रम कर, हजारों बरसों के कन्नड़ भाषियों की अभीप्सा की पूर्ति करनेवालों में निजलिंगप्पा जी अग्रमान्य हैं। उनके लिए 'कर्नाटक शिल्पी' अभिदान समुचित ही है।

आप राजनीतिज्ञ होकर भी सत्यवान्, तत्वनिष्ठ, मुख्यमंत्री होकर भी निरहंकारी और सरल जीवी, कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में राष्ट्र स्तर के नेता होकर भी, कभी अधिकार-लालसा और अन्याय के सामने झुके नहीं। आपने बसवेश्वर और महात्मा गाँधीजी के तत्वों को आत्मसात् करके, उनकी रोशनी में जिंदगी गुजार कर, आत्मगौरव से युक्त संतृप्त जीवन बिताया। वे परिशुद्धता एवं संतृप्ति उनकी कथनी और करनी में, उनकी छल रहित मुग्ध मुस्कुराहट में प्रतिबिंबित होते दिखाई पड़ती हैं।"

कुवेंपु
(ज्ञानपीठ से पुरस्कृत राष्ट्रकवि)

श्री एस. निजलिंगप्पा राष्ट्रीय प्रतिष्ठान

बेंगलूर-५६० ००१